रामाश्रम सत्संग (रजि.) ग़ज़ियाबाद डिजिटल प्रकाशन

सतगुरु वचनामृत

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के प्रवचनों / लेखों का शतकीय संकलन)

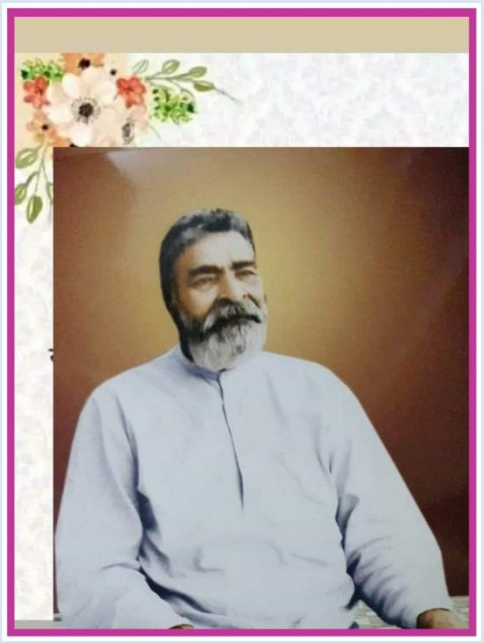

(अवतरण 15-10-1894 - निर्वाण 18-5-1970)

रामाश्रम सत्संग (रजिस्टर्ड)

E/297, 2nd फ्लोर,शास्त्री नगर,

ग़ज़ियाबाद (उत्तर प्रदेश)- 201002

एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता ! केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम ! जो लोग बिना अपने स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वे सज्जन हैं या दुष्ट, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ ! वे मेरे हैं और मैं उनका ! वे सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ !

--- महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

(अवतरण 15-10-1894 - निर्वाण 18-5-1970)

समर्पण

ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

की पुण्य स्मृति में

उनके

51-वे निर्वाण दिवस पर

भावपूर्ण श्रद्धांजली

अनुक्रमाणिका

(क) लेख

1. पूज्य डॉ श्रीकृष्ण लाल जी (सिकन्दराबादी)
   का संक्षिप्त परिचय
2. जगन्नाथपुरीके स्वामी चिन्मयानन्द पुरी की प्रेममूर्ति
   गुरु महाराज के प्रति प्रेरक प्रेमान्जलि
3. हमारे जीवनमुक्त भाग्यविधाता –
   परमपूज्य डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज
4. गुरुदेव का व्यक्तित्व और कृतित्व
5. उस महामना महात्मा की पुण्य स्मृति में
   समर्पित श्रद्धा के फूल
6. उन दयानिधान की दया क्या-क्या जल्बा नहीं
   दिखा सकती
7. मेरे बादशाहों के बादशाह की अनुकम्पा से जीवन
   को दिशा बोध
8. एक पुण्य पुरुष की विशेषताएँ - पूज्य गुरुदेव और
   उनकी शिक्षायें
9. पूज्य गुरुदेव डॉ श्रीकृष्ण लाल जी के गुरुजन तथा
   वंश-परिवारी
10. साहसी, कर्तव्यनिष्ठ और करुणा-निधन - मेरे पिता परमेश्वर

संत वचन - भाग I

पूज्य डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी (सिकन्दराबादी) का संक्षिप्त परिचय

पूज्य डॉ श्रीकृष्ण लाल जी का जन्म 15 अक्टूबर, 1895 को एक सुप्रतिष्ठित उच्च भटनागर कायस्थ कुल में हुआ। आपकी पवित्र जन्म-भूमि सिकन्दराबाद, जिला बुलन्दशहर (उ.प्र.) है। आपके पिता जी का नाम पूज्य श्री भगवत दयाल तथा माताजी का नाम पूज्या श्रीमती कृष्णा देवी था। आप अपने भाई-बहनों में सबसे ज्येष्ठ थे। आपके तीन भाई और तीन बहिनें थीं।

बाल्यावस्था से ही आप स्वतंत्र स्वभाव के, सरल प्रकति के प्रेमी तथा बाहर से देखने में हठी स्वभाव के प्रतीत होते थे. यद्यपि उनको हठी कहना सर्वथा अनुचित है क्योंकि जिस बालक की इच्छा-शक्ति और मनोबल अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक तीव्र और बलबान होते हैं उन्हें बाल्यावस्था में लोग हठी कह दिया करते हैं। बचपन से ही आपको भगवान श्री कृष्ण की भक्ति बहुत प्रिय थी और लगभग 8 वर्ष की आयु से ही उनकी याद में बैठकर रोया करते थे। बहुधा स्वप्न में भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन होते रहते थे। भविष्य में होने वाली बातें स्वप्न में ज्ञात हो जाती थीं। एक बार जब आप नवीं कक्षा में पढ़ते थे और परीक्षा के कारण कुछ घबराये हुए थे तो भगवान कृष्ण ने कृपा करके आपको परचा भी बतलाया था। आपको भगवान के यह पवित्र दर्शन तब तक होते रहे जब तक आप अपने गुरुदेव, परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज की शरण में नहीं आये थे।

आपके पितामह श्री बृषभानु जी बहुत सीधे स्वभाव के और बड़े धार्मिक प्रवत्ति के मनुष्य थे। कुछ ज़मीदारी थी जिसकी आय से घर का काम काज चलता था। आपके पिताजी सार्वजनिक निर्माण विभाग (P.W.D.) में ओवरसीयर के पद पर काम करते थे।

धार्मिक प्रवृत्ति आपको अपने वंश में अपने पितामह, पिताजी तथा माता जी से मिली थी। आपके पितामह ने राय साहब परमसन्त सालिगराम जी साहब व परमसन्त सरदार सावण सिंह साहब से उपदेश लिया था। आपके पिताजी ने युवावस्था में ही उपदेश ले लिया था,

किन्तु उस ओर उनकी प्रवृत्ति स्थायी नहीं रह सकी। आपकी माताजी बहुत सीधी-सादी, नेक ओर धार्मिक प्रवत्ति की थीं। पूजा-पाठ में अधिक समय व्यतीत करती थीं। उन्होंने परमसन्त महाराज सरदार सावण सिंह जी साहब (व्यास गद्दी) से उपदेश लिया था। उसके बाद उन्होंने अपने आपको गृहस्थी के मामलों से बिलकुल अलग कर लिया था। हर समय उन्हीं के ध्यान में रहती थीं और अन्त समय तक उनका यही हाल रहा। अपने ज्येष्ठ पुत्र डाक्टर साहब को वे बहुत प्रेम करती थीं। कुछ काल के बाद पिताजी ने भी उनकी शरण ले ली थी।

पूज्य डाक्टर साहब की प्रारम्भिक शिक्षा फ़तेहगढ़ (उ.प्र.) में हुई जहाँ से आपने मैट्रिक की परीक्षा पास की। आपके पिताजी उन दिनों फ़तेहगढ़ में ही तैनात थे। यहाँ की एक मुख्य घटना उल्लेखनीय है जो उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :-

" अक्टूबर सन 1914 की घटना है। सेवक विद्यार्थी जीवन में था और गवर्नमेन्ट स्कूल, फ़तेहगढ़ में दसवीं कक्षा में पढ़ा करता था। एक दिन सेवक के पिताजी ने एक चैक ख़ज़ाने से रुपया लाने के लिए दिया। जब सेवक ख़ज़ाने में चैक लेकर क्लर्क साहब के पास गया और उन्होंने सेवक की ओर ध्यान से देखा तो आनन्द की एक लहर सारे शरीर में इस फैल गयी। सेवक के जीवन में इस प्रकार का यह पहला अवसर था। घबरा गया और आँखें नीची कर लीं। थोड़ी देर में वो हालत जाती रही। दो-तीन घंटे बाद जब सेवक ख़ज़ाने से रुपये लेकर वापिस आ रहा था तब बरामदे में उन्हीं क्लर्क साहब को टहलते पाया। सेवक ने उनकी ओर फिर देखा। ज्योंही आँख का मिलना था फिर वही हालत हो गयी जो पहली बार हुई थी, लेकिन इस बार अकेली आनन्द की लहर ही नहीं थी बल्कि प्रेम भी शामिल था जो अपनी ओर खेंच रहा था। सेवक के मन में विचार उठा कि यह कोई mismeriser हैं ? तबियत पास बैठने और बात करने की चाहती थी, लेकिन हिम्मत नहीं हुई और दिल पर काबू करके बिना बातचीत किये हुए ही घर चला आया। दो -चार दिन बाद परेड ग्राउण्ड के मैदान में सेवक शाम को एक जगह बैठा हुआ था। थोड़ी देर बाद वही सज्जन टहलते हुए वहाँ आ गये जहाँ सेवक बैठा हुआ था।

सेवक ने नम्रतापूर्वक नमस्कार किया और पूछा कि "क्या आप किसी विद्यार्थी से मिलना चाहते हैं, जिसको कि मैं बुला लाऊँ जो वहाँ खेल रहे थे।" आपने कहा - "नहीं, हमें किसी विद्यार्थी से नहीं मिलना है, हम तो सिर्फ़ हवाखोरी (वायु-सेवन) के लिए इधर आ निकले हैं।" यह कह कर एक तरफ़ चल दिए और सेवक तब भी आपसे बातचीत न कर सका।

" उसी रात को स्वप्न में एक वृद्ध फ़क़ीर दिखाई दिए जो कभी ॐ, कभी अल्लाह और कभी राम की आवाज़ लगाते थे। शरीर पर कभी सुनहले कपड़े, कभी रेशम के, कभी टाट के कपड़े और कभी थेगलियाँ ही थेगलियाँ थीं, और कभी बिलकुल नंग धडंग। आदर भाव से सेवक ने उनके चरण छूने चाहे तो उन्होंने यह कहकर क़दम हटा लिए कि - ःहम दुनियाँ के कुत्तों से पाँव नहीं छुआते।" फिर सेवक को बचपन की हालत बतलाने लगे और नसीहत करने लगे कि क्या करने आया था और क्या करने लगा, अभी वक़्त है सम्भल जा। सेवक उनके पास से हटकर दूसरी तरफ़ चला गया, लेकिन जहाँ जाता था वही फ़क़ीर दिखाई देते थे, वही उनके कपड़े थे, वही सदा (आवाज़ लगाना) थी और वही नसीहत (शिक्षा)। सारी रात यही हालत रही। सुबह को जब सेवक उठा तो तबियत परेशान थी, क्योंकि सेवक को अक्सर और वही स्वप्न दिखाई देते थे जो आगे चलकर घटनाओं की सूरत में बदल जाते थे और सत्य सिद्ध होते थे।

" वह रविवार का दिन था और सेवक के साथी हर इतवार को एक संत के पास आन्तरिक अभ्यास करने जाया करते थे जिनकी वे बहुधा प्रशन्सा किया करते थे। सेवक उनकी बात सुनकर हँसी उड़ाया करता था। उस दिन उन्होंने सेवक से पूछा - "क्या तुम भी हमारे साथ चलोगे ?" इस विचार से कि तबियत बहलेगी सेवक भी उनके साथ चल दिया। जब महात्मा जी के मकान पर पहुँचा तो यह देखकर अचरज हुआ कि वे वही सज्जन थे जिनके दर्शन सेवक ने ख़ज़ाने व परेड -ग्राउण्ड पर किये थे। आप ज़मीन पर बिछी चटाई पर बैठे थे। सेवक को देखकर आपने कहा - "श्रीकृष्ण। भाई तुम कैसे आये।" सेवक ने निवेदन किया कि -"मैंने रात एक स्वप्न देखा है, जिसके कारण परेशान हूँ और ताबीर (स्वप्न का क्या आशय है) जानना चाहता हूँ।"

आपने कहा कि - "यह ख़्वाब नहीं वाक़ा (सत्य) है। मैं मुद्दत से तुम्हारी तलाश में था। तुम मेरी बिछुड़ी हुई आत्मा हो। मैंने तुमको पहली मर्तवा ख़ज़ाने में देखा, पहचान लिया। मैं तुमको कई रोज़ से बुला रहा था, लेकिन तुम नहीं आये। रात को जो फ़क़ीर तुमने देखा वह मैं ही था और तुमको बुलाना मक़सूद था (मैं तुम्हें बुलाना चाहता था)। ताबीर (स्वप्न का आशय) यह है कि मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरे हो। अब तुम यहाँ से कहीं और नहीं जा सकते।"

सन 1916 में पूज्य डाक्टर साहब का विवाह हो गया। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती चन्दा देवी अत्यंत सुशील, पतिव्रता और धार्मिक प्रवत्ति की थीं। जिन सज्जनों को उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनका कहना है कि वे अत्यंत शांत प्रकृति की महिला थीं, बहुत कम बोलती थीं और साक्षात लक्ष्मी थीं। आपकी पाँच सन्तानें थीं जिनमें दो ज्येष्ठ पुत्रियाँ तथा तीन पुत्र थे। सभी विवाहित हैं तथा सुशील और नेक हैं और अपने-अपने घर खुश हैं।

मैट्रिक पास करने के बाद पूज्य डाक्टर साहब ने बिसातखाने की एक छोटी सी दुकान खोली किन्तु उसमें आपका मन नहीं लगा। फिर स्कूल में कुछ दिनों लिपिक पद पर रहे परन्तु वहाँ भी तबियत नहीं लगी। अपने गुरुदेव के आदेशानुसार सन 1919 में आप डाक्टरी पढ़ने आगरा चले गये। डाक्टरी पास करने के बाद कुछ दिनों आपने सरकारी नौकरी की। उसके उपरान्त सिकन्दराबाद (उ.प्र.) में अपनी निजी प्रैक्टिस शुरू कर ली। आरम्भ में बहुत आर्थिक कठिनाई हुई(जिसकी वजह कुछ नयी प्रैक्टिस थी और गुज़ारे भर के लिए मिल जाता था)। एक बार आपको यह कहते हुए सुना गया कि - "तुम्हें परमात्मा दोनों वक़्त रोटी तो भर पेट दे रहा है, हमारा ऐसा भी वक़्त गुज़रा है जब कई दिनों तक एक समय लगभग उपवास ही करना पड़ता था धर्मशास्त्र को आपने कभी नहीं छोड़ा। अपने व्यावहारिक जीवन में सदा सत्य, अहिंसा, सदाचार, परोपकार और दीनदुखियों, ग़रीब और विधवाओं की सेवा में लगे रहे।

पूज्य डाक्टर साहब की रूहानी तालीम बचपन से ही प्रारम्भ हो गयी थी। सन 1914 में आपने परमसन्त सतगुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज की शरण ग्रहण कर ली थी। आपको आपने गुरुदेव से इतना अधिक प्रेम था कि बाल्यावस्था में ही देखने वालों को उस प्रेम की

झलक प्रत्यक्ष प्रतीत होती थी। जब कोई चीज़ घर में खाने को मिलती तो उस रख लेते थे और जब गुरुदेव के पास जाते थे तो सरल स्वभाव से उनके साथ बाँटकर खाते थे। यदि कोई शारीरिक कष्ट आता तो साधारण बालकों की तरह आपने माता-पिता की याद न करके अपने गुरुदेव की याद किया करते थे।

सन 1915 में आपके गुरुदेव ने आपको आध्यात्मिक शिक्षा का काम सुपुर्द कर दिया और उसी समय जितने ख़ानदानी अथवा आध्यात्मिक परम्पराओं से उन्हें इज़ाज़त थीं, सब अता फ़रमाई। सन 1915 में इज़ाज़त बैत (उपदेश करने की अनुमति) प्रदान की, और सन 1922 में इज़ाज़त ताअम्मा (सर्वोच्च और सम्पूर्ण इज़ाज़त) देकर हुक्म दिया कि, "मेरा काम करो और मेरे भूले भटकों और ज़रूरतमंदों तक पहुचाओ। अगर तुमने मेरे काम में कोताही (कमी,आलस्य) की तो आक़बत (परलोक) में में दामनगीर होऊँगा।"

बहुधा जब डाक्टर साहब के पूज्य गुरुदेव उन पर विशेष प्रसन्न होते थे तो कहा करते थे कि - " मैं तुम्हें दुनियाँ और दीन की सब चीज़ें दे सकता हूँ, जो चाहो माँग लो।" किन्तु डाक्टर साहब ने सिवाय गुरु प्रेम के और कुछ नहीं चाहा। अनामी पुरुष का दर्शन कराते समय महात्मा जी ने डाक्टर साहब से कहा कि -"यही असल है, इसी में अपने आपको लय कर दो।"

सन 1922 में डाक्टर साहब को बुलाकर आदेश दिया कि - "मुझे जो कुछ देना था सब कुछ तुम्हें दे चुका हूँ, मेहनत करो, सब कुछ तुम पर खुल जायेगा। सदा अपने भाइयों की शिक्षा का ध्यान रखना। अगर तुमने मेरे काम को फैलाया तो मैं तुम्हें दीन और दुनियाँ दोनों दूँगा।"

तभी से पूज्य डाक्टर साहब अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन निरन्तर करते रहे और उन्हीं के चरण-चिन्हों पर चलकर उनका दिव्य सन्देश भूले-भटकों और परमार्थ के जिज्ञासुओं तक पहुँचाते रहे। जब तक गृहस्थ में रहे तब तक गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए इस पवित्र मिशन को चलाते रहे। सन 1950 में आपकी धर्मपत्नी जी का देहान्त हो गया।

उसके दो-तीन साल बाद आपने दुकान छोड़ दी और सारा समय आध्यात्मिक शिक्षा के कार्य में व्यतीत किया यद्यपि वृद्धावस्था और शरीर दुर्बल रहता था, किन्तु अपने गुरुदेव के मिशन की पूर्ति की लगन ऐसी थी कि ऐसी दशा में भी दूर-दूर जाकर आध्यात्मिक शिक्षा का प्रसार और प्रचार जीवन-पर्यन्त करते रहे। आप सन्तमत के महान आचार्य और रामाश्रम सत्संग के अध्यक्ष रहे जिसका मुख्य केंद्र सिकन्दराबाद, जिला बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) है।

(आप जीवन पर्यन्त अपने पुण्य गुरुदेव के मिशन को आगे बढ़ाने तथा रामाश्रम सत्संग के माध्यम से आध्यात्मिक विद्या के प्रचार-प्रसार, दीन दुखियों की सेवा तथा परोपकार में लीन रहे।)

18 मई 1970 (जो 12 रबीउल अब्वल जो मोहम्मद साहब का जन्म दिन है तथा 12 बफात का दिन था) की प्रातः काल में आपने सिकन्दराबाद में सत्संग के कमरे में ही आपने पार्थिव शरीर का त्याग कर उस अखण्ड ज्योति को सदा-सदा के लिए उसके अमर भण्डार में लीन कर दिया।)

जगन्नाथ पुरी के स्वामी चिन्मयानन्द पुरी की प्रेममूर्ति

गुरु महाराज के प्रति प्रेरक प्रेमान्जलि

आज तक जाने अनजाने कितने महात्मा इस देश में भारतवर्ष के कोने-कोने में साधना कर सिद्ध हुए हैं, एवं हो रहे हैं, उनका पता भी नहीं चलता। । कितनों का कोई भी वेश-धारण नहीं है परन्तु हैं संत-परमसन्त तथा अपने साध्य साधनाओं में सिद्ध व्यक्ति जन-साधारण को ऐसे महात्माओं का पता भी कम चलता है। ऐसे ही संतों में श्री श्रीकृष्ण लाल जी भी एक थे ।

भाई साहब श्रीकृष्ण लाल जी ने भगवत गीता के शीर्ष उपदेश के अनुरूप उपदेश बतलाया है कि ' इन सबसे ऊपर उठना चाहिए ' क्योंकि मन में सारे सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, संकल्प-विकल्प, काम, क्रोधादि रहते हैं, मन ही इन सबका आधार है । सारे प्रमाद मन से ही होते हैं. इसलिए अभ्यास से मन के ऊपर उठने से भी "इन सबसे ऊपर उठना" आसान है. रुड़की में उनसे मेरी यह अन्तरंग भेंट न होती, तो मैं भी उनके विषय में यह भाव या यह बात नहीं कह सकता था कि वे यथार्थ में एक परमसन्त थे, एक महापुरुष थे, 'पराभक्ति' में मग्न (मशगूल) थे। अतः वे प्रातःस्मरणीय हैं।

इस स्वार्थ-सर्वज्ञ भौतिक युग में ऐसे परोपकारी परम सतों का होना अति आवश्यक है. संत तो बहुत होते हैं परन्तु ऐसे संतों का होना साधारणतः दुर्लभ है. लगभग उन्हीं के शब्दों में उनका थोड़ा सा परिचय देता हूँ :-

" श्री श्रीकृष्ण लाल जी से मेरा पहला परिचय १ ।१५० दशक के शेषार्द्ध में हुआ था. तत्पश्चात मैं उनके आमंत्रण पर उनके निवास-स्थान सिकन्द्राबाद में भी गया था और करीब एक सप्ताह रहा. उन दिनों डॉ. हरी छात्र थे । बरेली में 'मृणाल भवन' मठिया, बिहारीपुर में जहाँ उनके पहले दीक्षा लेने वालों में से श्री जय नारायण गौतम रहा करते थे, मेरे से उनकी भेंट बहुत दफ़ा हुई थी ।

हमारा अन्तिम मिलन परस्पर रुड़की में मार्च 1969 में हुआ था. उन्होंने मुझसे कहा था कि " यहाँ कुछ गिने चुने ख़ास-ख़ास आदमियोंको बुलाकर यह छोटा सत्संग आप ही के लिए किया गया है." तीन दिवसीय सत्संग के अधिवेशन में सत्संगी भाइयों की उपस्थिति लगभग 300 की थी, जो मुख्यतः उत्तर प्रदेश स्थित रुड़की, काशी, गोरखपुर, कासगंज और कुछ बिहार से आये थे।

उन्होंने मुझसे कहा कि " अब मेरी अवस्था हो गयी है, तबियत भी ठीक नहीं रहती, न मालूम कब यह शरीर छूट जाये. हमारे संत समाज में एक रीति (रिवाज़) है कि कोई आचार्य अपने बाद कौन आचार्य तथा अध्यक्ष होंगे, यह बात तीन परमसंतों की सम्मति (राय) से निश्चय की जाती है. पहले दो संतों की सम्मति हमने ले ली है परन्तु कोई नतीज़ा नहीं निकला है। अब आप तीनों में से जिसको कहेंगे उसी को मैं अध्यक्ष तथा आचार्य बनाऊँगा।"

" भले ही वह आपके मन के ख़िलाफ़ भी हो ?"

" जी हाँ. ज़रूर, नहीं तो आपकी इस आखिरी राय का मूल्य कहाँ रहा ?"

इसी सिलसिले में जब मुझको उन्होंने ने "परम संत " कहा तो मैंने तत्काल ही कहा कि अभी तक तो मैं एक संत ही नहीं बन सका, तो फिर आपने मुझको "परम संत" कैसे कहा। आपकी नज़र (दृष्टि) ही ग़लत है। यह सुन कर वे अपने ढंग से हँसकर, मुस्कराते ही रहे और अपना मुख-मण्डल (सिर) हिलाते रहे।

रुड़की में पहले दिन रात को श्री जय नारायण गौतम के साथ पहुँचा था। वे दूसरे दिन दिल्ली से 'कार' में आते ही मेरे कमरे में आये और क़रीब एक घंटे तक मेरे साथ बात-चीत करते रहे. इनमें मुख्यतः अपने साधन-भजन तथा अन्तिम दस वर्षों में किस प्रकार अपने अनुभव हुए, ये सभी बातें कहीं, साथ ही साथ इस बात का उल्लेख करते रहे कि सिकन्दराबाद में मुझसे भेंट होने के बाद में सब पक्का हुए (उनके अनुभव). तीनो दिन जब हम दोनों से भेंट होती थी तो पारस्परिक साधनाओं तथा अनुभवों की ही बातें होती थीं.

उन्होंने कहा कि " मैं अपना दिल खोलकर ये सब बातें करूँगा. आपको छोड़कर मेरी नज़र में अब कोई नहीं है।"

जब बार-बार अध्यक्ष या आचार्य के बारे में ज़िद (आग्रह) करते रहे तो मैंने एक और रात का समय लिया एवं अपनी अन्तर्दृष्टि से या विचार से कि तीनो में से जिसको अध्यक्ष तथा आचार्य बनाने का नाम लिया, तो वे कुछ देर तक गंभीर होकर आँखें बन्द कर ध्यान की मुद्रा में रहे. फिर मुस्कराते हुए कहा कि "हाँ, अपने जैसा फ़रमाया, मैं ऐसा ही करूँगा..... आपने ही जो बताया, आप ही की बात (राय) मैंने मान ली.आप उस पर सदा आशीर्वाद रखें कि वह यथार्थ में आपके निर्वाचन के अनुसार योग्यतम बन सके। "

यह कहना यहाँ अवान्तर नहीं होगा कि परमात्मा की कृपा से और उसकी शुभेच्छा से वे ही उस समय एक साधरण व्यक्ति में दीखते हुए आदमी आज किस प्रकार योग्यता के साथ "रामाश्रम सत्संग" के अध्यक्ष तथा आचार्य के रूप में इसके कर्णधार बने हुए हैं. एवं इस सत्संग रूपी नौका को कितने ही झाड़-झटके तथा आँधियों में भी डूबने नहीं दिया है और अहर्निश सेवा करके निरंतर आगे ही बढ़ाते जा रहे हैं।

एक दिन प्रवचन में उन्होंने बतलाया कि साधु संत चार प्रकार के होते हैं. एक तो ऐसे होते हैं कि जो न तो किताबों (शास्त्रों) के पढ़े हुए ही हैं और न अभ्यासी ही हैं. दूसरे ऐसे हैं जो केवल किताबों के पढ़े हुए हैं, पर अभ्यासी नहीं. तीसरे अभ्यासी हैं, परन्तु किताबों के पढ़े हुए नहीं हैं. चौथे ऐसे होते हैं - जो किताबों के पढ़े हुए, शास्त्रों को जानने वाले भी हैं और यथार्थ में अभ्यासी भी हैं. ऐसे महात्मा बहुत दुर्लभ हैं. ऐसे संतों का भाग्यवश साथ मिला तो उनसे विशेष लाभ उठाना चाहिए. उन्होंने कहा कि पहले व दूसरे से तीसरे प्रकार के संत अच्छे होते हैं परन्तु उनका भी आज का अनुभव दस वर्ष के बाद बदल सकता है। किन्तु चौथे प्रकार के संतों का अभ्यास से होने वाला अनुभव, किताबों से, शास्त्रों से मिलता हुआ होने से यथार्थतः उत्तम है। यह बात वे तो अन्य किसी विशेष व्यक्ति के लिए नहीं, अपने सत्संगी शिष्यों से उस दिन कह रहे थे. परन्तु, आप स्वयं भी इसी चौथी श्रेणी के परमसन्त थे।

भाई साहब श्रीकृष्ण लाल जी ने यह भी बतलाया है - "हम माया के देश में रहते हैं. दुःख-सुख आएंगे ही, शरीर की पीड़ा, मानसिक पीड़ा, आर्थिक पीड़ा, समाज से उत्तेजना, अपने प्रियजनों से उत्तेजना, अपने मन की ही चंचलता और संस्कारों के कारण अशांति उत्पन्न होती है. श्रीकृष्ण लाल जी ने फ़रमाया है कि - " इन सब से ऊपर उठना चाहिए। "

हमारे प्रिय ..... श्री करतार सिंह जी ने अपने गुरुदेव के इस कथन की व्याख्या करते हुए एक सही दृष्टांत दिया है कि - " (देखो) भगवान शिव की समाधि अवस्था की ओर कि इस माया देश में किस तरह रहना है ? भगवान शिव की तरह. उनके गले में भी लोग साँप डाल देते हैं, उन्हें विष पिलाते हैं, परन्तु भगवान् शान्त हैं. सत, चित, आनन्द हैं. सत्यम, शिवम्, सुन्दरम हैं। "

विगत सन 1970 की 18 मई को हमारे परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी ने अपने देह को छोड़ दिया. ऐसा लगा कि मानो इस नश्वर संसार से एक आस्वर नक्षत्र अदृश्य हो गया. लौकिक दृष्टि से तो सत्संगी लोग आज अनाथ बने हैं परन्तु आत्मिक दृष्टि से वे ओर भी सनाथ हुए हैं. क्योंकि - सत्संगियों की दृष्टि से वे देहधारी के रूप में, सिकन्दराबाद में, उनसे बहुत दूर रहते थे परन्तु आज वे इस सीमित शरीर को छोड़ - अव्यक्त मूर्ति से, व्यापक रूप में सभी प्रेमी सत्संगियों के अति समीपवर्ती हुए हैं. स्थूल दृष्टि तथा देहात्माभिमान वालों के लिए यह बात अनुभव योग्य नहीं है परन्तु उनके प्रिय शिष्यों में से जो-जो "देहेन्द्रिय-भूमि" से "मनोमय" भूमि तक पहुँचे हैं, उनके लिए यह तत्व समझना अति सुगम होगा. अपने गुरु की स्थूल देह के रहते हुए भी, कृपा तो इसी भूमि पर पहुँचने वालों को ही यथार्थतः तथा कायतः अनुभव होती है. अतः यथार्थ में परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी मरे नहीं हैं, अतः उनके लिए हमें शोक करना उचित नहीं है।

मैं आशा करता हूँ कि उनका अन्तरङ्ग प्रिय साधक-वर्ग, उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर, उनके उपदेशों के अनुसार लगातार साधना कर स्वयं कृतकृत्य होंगे ओर ऐसे एक परमसन्त की स्मृति को जीवन्त रखेंगे. मैं हृदय से यह शुभेच्छा करता हूँ कि भाई साहब महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज का ' बच्चा ' - यह सत्संग और तुङ्ग स्थान में उठे एवं इसके सहयोगी सभी का आत्मिक (आध्यात्मिक) कल्याण हो. ....ॐ शम....

हमारे जीवनमुक्त भाग्यविधाता - परम् पूज्य डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

- डॉ. करतार सिंह, नई दिल्ली

परम् पूज्य गुरुदेव की जन्म-शताब्दी के महत्वूर्ण सुअवसर पर कोई विशेष लेख, संस्मरण या श्रद्धांजलि के भाव व्यक्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है. आपके पावन सम्पर्क, सानिध्य में बिताये स्वर्णिम समय की साक्षात अनुभूतियों तथा जीवनोपरान्त भी परोक्ष कृपाओं की स्मृतियों का इतना बड़ा भण्डार है कि उसकी एक-एक बात हमारी - सभी कृपापात्रों की - अमूल्य निधि है. तो भी, कर्तव्य पालन की दृष्टि से अपनी मनोभावना को प्रकट करने वाले प्रभावशाली सुधियों के आनन्दमय कुछ संस्मरण उन्हीं को पुनः समर्पित हैं.

प्रथम भेंट का सौभाग्य

परम् पूज्य गुरु महाराज से मेरी पहली मुलाक़ात सन 1951 में हुई. मेरे मित्र बाबू श्री रामजी वकील, मुझे यह कहकर ' चलो एक परम् संत के दर्शन कर आयें' बाबू गिरवर कृष्ण जी के मकान पर ले गए. वहाँ सत्संग हो रहा था. कुछ विशेष आकर्षण का अनुभव हुआ. सत्संग की समाप्ति पर वकील साहब ने जाने की आज्ञा माँगी. गुरुदेव ने इज़ाज़त दे दी. मैंने भी अनुमति चाही तो आपने कहा - " आप रुकिए." इन दो शब्दों में अद्भुत प्रेम था. कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात् गुरुदेव कहने लगे कि ' हम आपके घर चलेंगे'. आप मेरे साथ घर आये, भोजन किया. बड़े प्रसन्न हुए.

अनुपम कृपा की अनुभूति

इस मुलाकात के बाद, आप जहाँ भी जाते मुझे साथ ले जाते। सन 1952 में आपकी विशेष कृपा हुई। एक समय मैंने अपने आपको प्रकाश के एक महान सागर में पाया. इस अवस्था को बर्दाश्त न कर सका और घबरा गया. होश आने पर मैंने एक असीम आनन्द का आभास किया। आपके चरणों में पत्र डाला. आपने उत्तर दिया - " आपको पहले ही दिन जन-सेवा के लिए चुन लिया था। वह बड़ा ख़ुशक़िस्मत है जिसको वह (परमात्मा) इस

काम के लिए चुन लेता है। सबसे बड़ी ख़िदमत यह है कि गिरे हुए और भटकते हुए इन्सान को राहेरास्त (सीधे रास्ते) पर लाया जाए।"

मन में बार-बार चाह उठती थी कि ग्रह त्याग कर सन्यासी हो जाऊँ. गुरुदेव से आज्ञा माँगी तो उन्होंने लिखा -

" आप दुकान पर मालिक की हैसियत से काम न करें, बल्कि एक मुलाज़िम की हैसियत से रहें - और हैं भी आप मुलाज़िम. ग़लती से अपने आपको मालिक समझे हुए हैं. अगर दुकान आपकी होती तो आपके साथ आयी होती, आपके साथ जाती, पर क्या ऐसा है ? नहीं. यही आपकी परेशानी का बायस (कारण) है." आप फ़रमाया करते थे कि तपस्या जंगलों में जाकर नहीं होती. हमारे यहाँ तप अपने मन को साधने में है। कुछ अमूल्य निर्देश लिखे जाते हैं, जैसे -

1. किसी को दोष दृष्टि से मत देखो।

2. जो आपसे बुरा सलूक करें उनसे क्रोधित न हों, अन्तर में टटोलो कि क्या आपकी गलती के कारण तो दूसरा आपसे दुर्व्यवहार नहीं करता ?

3. सहनशीलता बढ़ानी चाहिए। घृणा करने वाले को प्रेम से अपना बनाओ।

4. प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम करो। सदैव यह विचार करो कि अन्य व्यक्ति भी आपसे प्रेम करते हैं।

5. अपना चरित्र पहाड़ की चट्टान की तरह बनाओ। तब परवाह मत करो कि लोग क्या कहते हैं।

एक बार कुछ ख़ालीपन (शून्यता) का अनुभव हुआ। गुरुदेव ने कहा - " ये अच्छी अवस्था थी। चिन्ता मत करो, अच्छा है थोड़ी देर रही, परन्तु आनन्द की अवस्था भी ममता है, फँसाने वाली होती है। उससे भी आगे चलना चाहिए। राज़ी-बा-रज़ा की स्थिति में आओ। "

गुरुदेव का निःस्वार्थ प्रेम व त्याग

आप ज़रूरतमन्दों की सहायता करने के लिए सदैव तत्पर व उत्सुक रहते थे. कभी-कभी तो बेचैन हो जाते थे। अगस्त 1956 में डॉ. श्यामलाल जी ने आपको लिखा, " मैं आज तक यह नहीं समझ सका कि वो कौन सी चीज़ मुझमें है कि आपकी इतनी दया और बुजुर्गों का हाथ मेरे ऊपर रहा। मैं अपने को टटोलता हूँ, तो किसी का न हमदर्द, न शुभ इच्छुक, और न मददगार पाता हूँ, फिर भी मुझ पर इस क़दर आपकी कृपा है। उस वक्त मैं भी घबरा गया था. शुक्र है, आपकी दुआ क़बूल हुई।"

गुरुदेव किसी को दुखी नहीं देख सकते थे। 22-11-65 के पत्र में आपने लिखा - " मुझको मालूम हुआ कि आपकी तबियत ठीक नहीं है, ये भी उसकी कृपा है। बुरे कर्म इसी तरह कटते हैं। इसलिए घबराना नहीं चाहिए। हर हालत में शुकराना वाज़िब है। हर हालत में पूरी श्रद्धा से उसका नाम लेते रहो और ध्यान रखो कि वो हर वक्त तुम्हारे साथ है, और दुनिया से पीछे हटते जाओ. बग़ैर तर्क (त्याग) के प्यार अधूरा है और जब सब छोड़ना ही है, तो क्यों न धीरे-धीरे छोड़ते चलो।?"

सदा दुःख हरने को तत्पर

इन दिनों कुछ स्थिति ऐसी हो गयी थी कि मैं घबरा गया था. आपने लिखा - " आपकी परीक्षा का यह समय है. देखना फ़ेल (असफल) न होना. उस ईश्वर पर भरोसा रखो, जो भी होगा आपके हित के लिए होगा. आप मत आइये. मैं आपके लिए प्रार्थना कर रहा हूँ. " आपकी असीम कृपा हुई, स्थिति धीरे-धीरे सुधरती गयी।

बाबू प्यारे मोहन जी को गुरुदेव अक्सर मिलने जाया करते थे. कहा करते थे, ' कान्ती के सन्तान नहीं है. सत्संग ही इन बेचारों का वंश है. इससे उनको (कान्ती बहन व प्यारे मोहन जी को) राहत मिलेगी " । डॉ. महेश चन्द्र जी की धर्मपत्नी अक्सर बीमार रहती थीं, इसलिए आप अक्सर आगरा जाया करते थे।

भाइयों को कष्ट में देखकर गुरुदेव दुःखी हो उठते थे। उनका दुःख अपना दुःख समझते थे. तन, मन, धन से, जैसी भी स्थिति हो, उनकी सहायता करते थे। कुर्बानी का अंश आपमें इतना था कि मैंने अन्य किसी पुरुष में अब तक नहीं देखा। मेरी धर्मपत्नी मौत के पंजे में थी, गंगाराम हस्पताल में बैठे थे, आपने कहा - " बहन को बचाने के लिए ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना की, अपनी शेष आयु भी अर्पण की है ताकि वो ठीक हो जाय, परन्तु ऊपर से निराशाजनक उत्तर मिलता है। अब वो कुछ घंटों की मेहमान है।"

सत्संगी जनों की सेवा

गुरुदेव सत्संगियों को अपने बच्चों से भी अधिक प्रेम करते थे. अपने गुरुदेव की सन्तान समझते थे. कभी -कभी तो कह देते थे कि ये हमारे गुरु हैं, उसी रूप में उनकी सेवा करते थे. प्रेमियों से कहा करते थे, " जो कुछ हमारे पास है सो आपका है, यदि इससे भी अधिक हो तो वो भी हम न्योछावर करने के लिए हमेशा तैयार हैं।"

अगस्त 1958 में, मैं आपकी सेवा में ग़ज़ियाबाद गया. पहुँचते ही सेवक को आराम करने के लिए कहा. कुछ देर बाद आपने कहा कि आप स्नान कर लीजिये। एक नई धोती मुझे दी. मैं ग़ुसलख़ाने में चला गया. वहाँ बर्तन व जल रखे हुए थे। मैं अपना जूता ग़ुसलख़ाने के बाहर छोड़ गया था. जब मैं स्नान करके निकला तो चकित रह गया, जूता कमरे में रखवा दिया गया था, बाहर मेरे लिए खड़ाऊं रखी मिलीं। सत्संगियों के स्नान के लिए स्वयं जल रख दिया करते थे - उनके लिए चाय भी स्वयं बना दिया करते थे। सत्संगियों को अपना परिवार समझते थे और कहा करते थे कि उनकी सेवा गुरु-सेवा है. और ऐसे ही प्रत्येक की सेवा करते थे।

आपकी क्षमाशीलता

पूज्य गुरुदेव क्षमा की सजीव मूर्ति थे. एक बार मुझसे कुछ गलती सी हो गयी. समझाते हुए आपने कहा -" शत्रु के मुँह पर थूकने पर भी हज़रत अली ने क्रोध नहीं किया था. क्रोध से अपना ही मन अशान्त होता है. इसलिए संयम में रहना चाहिए।"

योग्य पात्रों को शिक्षा

सन 1958 के भण्डारे पर कुछ व्यक्तियों को आपने शिक्षा देने की आज्ञा प्रदान की. उनसे कहा कि -

1. सेवा करना परन्तु अपनी सेवा न कराना.
2. पूजा का धन अपने ऊपर व्यय न करना - यदि भेंट कभी लेनी भी पड़े तो उसे किसी की सहायता में खर्च कर देना
3. अपना चरित्र ऊँचा रखना ताकि औरों पर प्रभाव पड़े.
4. भाइयों के दुःख में उनकी सहायता करना.
5. किसी का मन, वचन, कर्म से दिल न दुखाना.
6. भाइयों में परस्पर प्रेम उत्पन्न करना. हमारे यहाँ पहले ईश्वर या गुरु से प्रेम पैदा करते हैं.
7. साधन में - यानी सुरत-शब्द-योग में -उत्साह, सोज़ व प्रेम होना चाहिए. प्रत्येक सांस पर ध्यान रखना चाहिए कि अभ्यास हो रहा हैं.
8. मन तथा इन्द्रियों को वश में लाना हैं।

चमत्कार व तमाशे

आप एक बार मौज़ में बैठे थे, एक सत्संगी को पत्र लिखा कि उसका पुत्र पास हो जायेगा तथा दूसरा लड़का क्षय रोग से निरोग हो जायेगा. ऐसा ही हुआ, पहले लड़के ने प्रश्न -पत्र ठीक नहीं किये थे और दूसरा लड़का ठीक होने वाला नहीं था. जब सन्त आत्मा के स्थान पर होता हैं, तब वह जो कहता हैं वैसा ही हो जाता हैं. सन्त से करामात, कभी- कभी इच्छा न रखते हुए भी, अनजाने में हो जाती हैं. आप फ़रमाया करते थे - " करामात दिखा कर अपनी प्रसिद्धि करवानी या धन बटोरना, ये सन्त के लिए वाज़िब नहीं हैं. करामात फ़क़ीरी नहीं हैं. यदि सेवक के पास रिद्धि-सिद्धि आती हैं तो गुरु उनसे वंचित करा देते हैं, ताकि परमार्थी में अहंकार न आ जाए."

पूज्य बनर्जी साहब का सन्सर्ग

सन 1960-62 में गोरखपुर पहुँचने पर गुरुदेव को शिव भगवान के दर्शन हुए. आदरणीय

बनर्जी साहब से पहली बार मुलाक़ात हुई तो आपने कहा कि, " उनकी शक्ल भगवान शिव जैसी लगती है."

एक रोज़ हम पूज्य बनर्जी साहब के दर्शन करके लौट रहे थे, तो आपने कहा, " आज ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे तमाम श्रष्टि हमसे निकल रही हो." दूसरे दिन भी मौज़ में थे, फ़रमाया, " हमारे तथा परमात्मा में क्या अन्तर है ?" कुछ क्षण मौन धारण करने के पश्चात् प्रश्न किया - " श्रष्टि सुखरूप है या दुःखरूप ?" फिर स्वयं ही उत्तर दिया - "यदि हमारी सुरत आत्मा पर है तो श्रष्टि सुखरूप प्रतीत होती है और यदि यह मन तथा बाहर की ओर हो तो दुःखरूप." ८

पारमार्थिक लक्ष्य व अभ्यास

गुरु कौन है ? आप कहते थे, " असली गुरु परमात्मा है. उसके चरणों से प्रकाश तथा शब्द जारी हुआ. यह निचले दर्ज़े के गुरु हैं। इसका भाव यह है कि शब्द 'शिष्य' है तथा ईश्वर प्रेम 'गुरु' है। इसका भाव यह है कि शब्द के पश्चात् शरीर बना। इसीलिए साधना के प्रारम्भ में गुरु के रूप का ध्यान किया जाता है, परन्तु यह सदैव ऐसा नहीं किया जाता। जिस समय प्रकाश या शब्द खुल जाये, तब इनका ध्यान करना चाहिए. जब प्रेम का उदय हो जाये तब उसमें लीन हो जाना चाहिए। प्रत्येक स्थान व स्थिति में गुरु का ख्याल अवश्य होना चाहिए। जैसे एक पिता अपनी कन्या को पढ़ा लिखाकर तैयार करता है और उसे उसके पति को अर्पण कर देता है, ऐसे ही गुरु अपने शिष्य की गढ़त करके ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देता है. असली गुरु ईश्वर है. परन्तु बिना सीढ़ी के छत पर नहीं चढ़ा जा सकता, इसीलिए गुरु की आवश्यकता होती है."

आपका कहना था - " गुरु वह होना चाहिए जिसने आत्म-स्थिति प्राप्त कर ली हो, या उसकी नज़दीकी (सामीप्य) हासिल कर ली हो. ऐसे व्यक्ति का मन अपने वश में होना चाहिए। उसकी कथनी तथा करनी एक जैसी होनी चाहिए ताकि जैसी अपनी अवस्था है वैसी शिष्यों की भी कर सके। यह आवश्यक नहीं कि वह व्यक्ति अपने को 'गुरु' कहलाये, वह

भाई, पुत्र, सेवक सखा आदि का सम्बन्ध रखकर भाइयों की सेवा कर सकता है. ऐसा करने से अहंकार नहीं होता।"

कुछ और अनमोल बातें

०. एक बार मैंने आपसे पूछा कि मन को कैसे काबू किया जाये? अपने प्रेम से कहा , " पिछले संस्कारों के कारण मन की वृत्तियाँ काम करती हैं. तमाशबीन (दर्शक) बन कर मन की हरकतों को देखो - यह मत समझो कि वह कर्म आपके हैं. कर्म जिनके गहरे संस्कार बन चुके हैं, वह तो भुगतने ही हैं, परन्तु यदि द्रष्टा के रूप में देखो तो दुःख नहीं होगा. अपने आपको कर्ता मत समझो. जैसे एक लट्टू को छोड़ दिया जाय, जब तक उसमें चाल है, वह घूमता रहेगा. यही अवस्था संस्कारों की है, जिस समय इनका अन्त हो जायेगा, शान्ति हो जाएगी. द्रष्टा तथा अकर्ता बने रहो, इससे संस्कार नहीं बनेगे. यदि कोई ऐसा नहीं करता, तो संस्कार बनते रहते हैं और कभी शान्ति नहीं मिलती।

० " ग़लती करके पश्चाताप करो. ईश्वर से क्षमा के लिए प्रार्थना करो. ग़लती करके justify (उसे सही साबित) मत करो कि आप ठीक हैं, यानी उसे उचित मत कहते रहो. यह मूर्खता है।"

० " स्थूल संस्कारों से बचने के लिए गुरु का ध्यान करना चाहिए, सूक्ष्म संस्कारों के लिए 'सुरत शब्द अभ्यास' तथा कारण रूप संस्कारों से मुक्त होने के लिए आत्मा में लय होना चाहिए।"

० " एक बार एक प्रेमी भाई ने शिकायत की कि उसको ईश्वर दर्शन क्यों नहीं होते? गुरुदेव ने उससे पूछा - "क्या अपकी खुदी मिट गयी है?" साधक चुप हो गया. आपने फ़रमाया - " जबतक अन्तर में खुदी तथा इच्छाएं हैं, आत्मा का साक्षात्कार होना नामुमकिन है। इसलिए अपने आपको मिटा दो तथा ईश्वर में पूर्णता से लय कर दो. अहंकार रहित होकर सब कर्म करो और उनके फल ईश्वर के चरणों में अर्पण कर दो. ऐसा करने से ही आत्मा का विकास होगा और ईश्वर के दर्शन करने के क़ाबिल (योग्य) हो सकोगे।"

परमपूज्य लालाजी महाराज के कृपापात्र - श्रद्धेय डॉ. हर नारायण सक्सेना, जयपुर द्वारा

गुरुदेव का व्यक्तित्व-कृतित्व

परम पूज्य भाई साहब महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल साहब हमारे गुरु भगवान परम् पूज्य श्रीमान महात्मा रामचन्द्र जी (लाला जी) महाराज के वरिष्ठ शिष्य थे। आपका जन्म सिकन्दराबाद (उ. प्र.) में तारीख 15 अक्टूबर सन 1894 ई. को हुआ था। आपके पूज्य पिता श्रीमान भागवत दयाल जी भटनागर सिकन्दराबाद के पुराने निवासी थे और उत्तर प्रदेश के निर्माण विभाग (PWD) में ओवरसियर के पद पर कार्य करते थे. परिवार में चार भ्राता और तीन बहने थीं जिनमें आप सबसे बड़े थे।

आपका शरीर लम्बा सुडौल था - रंग गोरा - हाथ सामान्य से थोड़े बड़े थे. स्वभाव सरल और मुद्रा आकर्षक थी. हम कह सकते हैं कि आप अपने यौवन काल में बड़े सुन्दर युवक थे। मेरा परिचय आपसे सन 1926 में हुआ - जब फतेहगढ़ में भण्डारा के अवसर पर आप बहुत से सत्संगियों के साथ प्रबन्ध कार्य में रत रहते थे। आगे चलकर जब अपने दाढ़ी रख ली तब तो आपका व्यक्तित्व और भी भव्य और आकर्षक हो गया था।

मैं सन 1925 में ही कानपुर कॉलेज शिक्षा के लिए गया था. उन्हीं दिनों (श्रीमान चच्चा जी) महात्मा श्रीमान रघुवर दयाल साहब की सेवा में पहुँच गया और श्रीमान लालाजी महाराज के दर्शन वहीं हुए। फिर तो मैं भण्डारा आदि के अवसरों पर जाने लगा और धीरे - धीरे सभी सत्संग परिवार से मेरा परिचय बढ़ता गया।

पूज्य भाई साहब श्रीमान लाला जी महाराज के सम्पर्क में सन 1914 में आये. उस समय आपके पिताजी फतेहगढ़ में कार्यरत थे. आपके पिताजी ने आपको एक चैक का रुपया लेने बैंक ट्रेज़री में भेजा. प्रथम दर्शन के समय ही आप पर गुरुदेव का ऐसा प्रभाव पड़ा कि सारे शरीर में जैसे बिजली का संचार हुआ हो. एक बार और परेड ग्राउंड पर आपकी भेंट गुरुदेव से हुई। परन्तु आप कुछ समझ नहीं पाए कि उनकी दृष्टि पड़ने पर क्यों ऐसी हालत हो

जाती हैं. शीघ्र ही आप उनके घर कुछ साथियों के साथ पहुँच गए - और वहाँ जाते ही जीवन-भर के लिए प्रेम के अटूट बंधन में जकड़ लिए गए।

संस्कारी महापुरुष भगवान् के नाम तथा संतों के आध्यात्म प्रसार के लिए ही जन्म लेते हैं. आपने भी अपने गुरु -भगवान् के सम्पर्क में आकर उनकी सारी आध्यत्म विद्या सहज ही में ग्रहण कर ली। उनके समय में भी कार्य किया और उनके निर्वाण के पश्चात् जो कार्य किया उससे हमारे सत्संग के भ्रातागण भली-भाँति परिचित हैं।

पूज्य भाई साहब ने हाई स्कूल की परीक्षा फ़तेहगढ़ में ही पास की. फिर कुछ समय इधर-उधर कार्य करते रहे. 1919 में श्रीमान लाला जी महाराज के आदेशानुसार आप आगरा मैडिकल कॉलेज में पढ़ने गये और डाक्टर बन गए। गवर्नमेन्ट सर्विस भी की परन्तु फिर सिकन्दराबाद आकर अपना ही क्लीनिक खोल लिया. आरम्भ में कुछ कठिनाई हुई परन्तु शीघ्र ही क्लीनिक चल गया और धीरे-धीरे आपकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी और आपकी गिनती अच्छे मशहूर डाक्टरों में होने लगी।

रोग निदान (diagnosis) का वरदान आपको गुरु भगवान से मिला. इस व्यवसाय के लिए यह अत्यन्तावश्यक है. औषधि उपचार बाद की बात है - उसके लिए तो साधन भी उपलब्ध हैं। आपका विश्वास होमियोपैथी में भी खूब था और जहाँ उचित समझते होमियोपैथिक औषधियों का भी प्रयोग करते थे।

आपकी जीवनी आपके शिष्यों द्वारा लिखी जा चुकी है जिनमें उनके जीवन का परिचय पर्याप्त रूप से मिलेगा.अतः मैं इतना ही परिचय - देकर मेरी जानकारी में उनके जीवन की वे घटनायें लिखना उचित समझता हूँ - जिनकी जानकारी सम्भवतः कम ही महानुभावों को होगी।

सन 1928 में मेरे एक सहपाठी श्री रामप्रसाद जी दलेला - फतेहगढ़ निवासी - के साथ मुझे एक परीक्षा के लिए दिल्ली जाना था। परीक्षा के पश्चात् हम दोनों ने सलाह की कि वापसी में ग़ाज़ियाबाद, सिकन्दराबाद होते हुए ही लौटें. ग़ाज़ियाबाद में पूज्य भाई साहब

डॉ. श्याम लाल जी के साथ तथा सिकन्दराबाद में आपके दर्शन किये - तबसे हमारी घनिष्टता आपसे बढ़ी और दिनोंदिन बढ़ती ही चली गयी।

कभी आप कानपुर श्रीमान चच्चा जी महाराज के पास भी पधारते. मैं तो अधिकतर उनके पास हुई रहता - आपके सम्पर्क का लाभ वहाँ भी मिलता रहा. मैंने आपको श्रीमान लालाजी तथा श्रीमान चच्चा जी महाराज के परिवारों में इस प्रकार रहते देखा कि जैसे उनके कुटुम्ब के ही सदस्य हों। आत्मिक कुटुम्ब के साथ आप थे ही - आत्मिक सम्बन्ध शारीरिक सम्बन्ध से कम घनिष्टता का किसी प्रकार भी नहीं होता।

सभी की सेवा में श्रीमान लालाजी महाराज के समय से ही आप पूजा के अतिरिक्त सत्संगियों के निवास-आराम-भोजन आदि की व्यवस्था करने में अग्रसर रहते। परिवार में विवाहादि के अवसर पर भी इसी प्रकार सारा कार्य करते जैसे परिवार के आम सदस्य करते।

इज़ाज़तनामा - आपकी स्वयं की बतलायी हुई घटना इस प्रकार है। श्रीमान हुज़ूर मौलवी साहब, भौगाँव निवासी का एक पत्र आपको मिला, लिखा था - " बरखुर्दार तुम्हें देखने को जी चाहता है, वक्त निकालकर मिल जाओ."

आप भौगाँव गए , 2-3 दिन सेवा में रहे - इज़ाज़त ली और लौट आये। कुछ समय बाद फिर ऐसा ही पत्र मिला और पूज्य भाई साहब गए और 2-3 दिन रहकर लौट आये.

तीसरी बार फिर ऐसा ही पत्र आया और पूज्य भाई साहब चले गए। इस बार जब लौटने लगे तो श्रीमान मौलवी साहब ने अपने बॉक्स में से एक क़ागज़ निकाला और फ़रमाया - " बरखुर्दार, ये तुम्हारा इज़ाज़तनामा मुंशी जी (श्रीमान लाला जी) मुझे दे गए थे। लो मैं तस्दीक किये देता हूँ. इसे ले जाओ - तुम्हें मुबारक़ हो."

पूज्य भाई साहब ने मुझे बतलाया था कि श्रीमान लाला जी महाराज ने दो इज़ाज़तनामे लिखे थे. एक तो यह था - दूसरा श्री चच्चा जी, जयपुर वाले (पूज्य श्रीमान डॉ. कृष्णा

स्वरुप साहब) के लिए पूज्य भाई साहब के अनुसार हमारे यहाँ मौखिक आज्ञा के अतिरिक्त लिखित आज्ञा होना भी आवश्यक होता है।

दाँत का दर्द - आपने एक बार बतलाया कि श्रीमान लाला जी महाराज बैठे हुए कुछ आगुन्तकों से बातें कर रहे थे। उनका हाथ बार-बार अपने गाल और ठोढ़ी पर जाता था। पूज्य भाई साहब ने समझ लिया कि इनके दाँत में दर्द हो रहा है। आपने एक तरफ बैठ कर दर्द को सल्व कर लिया। परन्तु उस समय न तो आपको सल्व करने का नियम ही मालूम था और न गुरु भगवान की आज्ञा ही इसके लिए मिली थी। अतः वह दर्द आपके दाँत में आ गया। आप बताते थे कि चारपाई के नीचे लोटने लगे, " हाय मरा, हाय मरा " ऐसे शब्द निकल पड़े। श्रीमान लाला जी महाराज का ध्यान तुरन्त ही उधर गया. बोले - "अरे श्रीकृष्ण ये तुमने क्या किया ? तुमसे बर्दाश्त नहीं होगा - मुझे तो इसकी आदत है." यह कहते कहते दर्द वापिस ले लिया।

बीमारी - पूज्य भाई साहब डॉ. श्याम लाल जी ने एक बार बतलाया कि वे फतेहगढ़ गए थे और इन भाई साहब का भी प्रोग्राम उस दिन फतेहगढ़ पहुँचने का था। परन्तु इन्हें शिकोहाबाद पहुँचते-पहुँचते हैज़ा (cholera) का ऐसा प्रकोप हुआ कि शिकोहाबाद गाड़ी से उतारकर इन्हें अस्पताल पहुँचा दिया गया। कुछ घंटों में तबियत सम्भल गयी और दूसरे दिन आप फ़तेहगढ़ पहुँचे और अपना समाचार बतलाया। भाई साहब डॉ. श्याम लाल जी ने बतलाया कि जिस समय वे भाई साहब बीमार हुए, ठीक उसी समय से कई घंटे तक श्रीमान लाला जी महाराज बरामदे में बराबर जल्दी-जल्दी टहलते रहे. उस समय कोई बात करने आता तो उसे टाल देते. चेहरे से पता चल रहा था कि बहुत परेशान हैं. पूज्य भाई साहब के पहुँचने पर यह सब समझ में आया कि श्रीमान लाला जी महाराज की परेशानी क्या और क्यों थी ?

फ़क़ीरों की सात मंज़िलें

जयपुर में पूज्य संत श्रीमान डॉ. कृष्णा स्वरुप जी रहते थे। मैं इनकी सेवा में जाता ही रहता था. एक दिन दोपहर को चला गया तो देखा कि ये भाई साहब वहाँ बैठे चच्चा जी से बात कर रहे हैं. चच्चा जी की दृष्टि उन दिनों बहुत मंद हो रही थी. मोतियाबिन्द उन दिनों बढ़ गया था. बाद में तो ऑपरेशन हुआ और वे ठीक हो गए. परन्तु उस समय उनकी लिखित एक पुस्तक का प्रारूप ऐसा था कि वे स्वयं उसे पढ़ भी नहीं सकते थे. ये प्रारूप उन्होंने पूज्य भाई साहब को दिखलाया कि इसे कौन पूरा करे ? पूज्य भाई साहब ने उस पुस्तक का प्रारूप उनके अनुरोध पर ले लिया. बाद में आपको जब आपको समय मिला तो उसे एक पुस्तक के रूप में - " फ़क़ीरों की सात मंज़िले " नाम से प्रकाशित करा दिया। (रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन पर उपलब्ध)

सन 1966 में रिटायरमेंट की छुट्टी पर था और एक मित्र के पास दिल्ली आया हुआ था। मेरे बड़े पुत्र कैप्टेन प्रेम प्रकाश उन दिनों बम्बई में पोस्टेड थे और फ्लाइट लेकर दिल्ली आये थे। मैंने एक टैक्सी का प्रबन्ध किया और प्रेम को साथ लेकर सिकन्दराबाद पूज्य भाई साहब की सेवा में गया और प्रेम को उनके सामने पेश किया। आपने बड़े प्यार से अपने पास बिठलाया - फिर खाना खिलाया और कहा - " बेटे, लंगोट के सच्चे रहना, गुरु महाराज तुम्हारा भला करेंगे।" उस समय का आशीर्वाद कई वर्षों बाद फलीभूत हुआ जब उनकी पोस्टिंग बम्बई से दिल्ली हुई और पूज्य श्रीमान सरदार साहब ने उन्हें दीक्षित किया।

सौभाग्यवश पूज्य भाई साहब के छोटे भ्राता श्रीमान डॉ. महाराज कृष्ण जी की पोस्टिंग शाहजहाँपुर में हैल्थ ऑफ़िसर के स्थान पर हो गयी। पूज्य भाई साहब भी वहाँ आते-जाते रहते थे। मैंने पहले इन्हें इन हैल्थ ऑफ़िसर साहब से मिलवाया और फिर पूज्य भाई साहब से भी इनका सम्पर्क हुआ। गुरु भगवान की दया कृपा से इन भाई साहब के प्रति उनका विश्वास जाग्रत करने में सहायता मिली और पहले शाहजहाँपुर में इनसे मिले - भाई साहब इनके घर भी गए - और ये मामा जी सिकन्दराबाद आने लगे और कई बार आये।

गुरु भगवान की कृपा से इनका विश्वास बना और बनता ही चला गया। परन्तु फिर भी पूज्य भाई साहब इन्हें मामा जी कहते और ये भांजे नाते उन्हें उपहार देते। यह व्यवहार देखकर मुझसे रहा नहीं गया और पूज्य भाई से अकेले में यह प्रश्न कर ही डाला कि ये आपका भांजा और आप इन्हें मामा जी मानते हैं - इन्हें इस समय गुरु की आवश्यकता है जो इनका काम बनाये ? ये सब कैसे होगा ?

पूज्य भाई साहब ने मुझे आश्वासन दिया कि " सब ठीक हो जायेगा - चिन्ता न करो। गुरु महाराज श्रीमान लालाजी महाराज की कृपा इन पर है - वे सब सम्भाल लेंगे।"

इन मामाजी के बड़े सुपुत्र, जिनके पास ये अपने अन्त समय में रहे - बतलाते थे कि उनके दोनों हाथ निर्बल होने के कारण उठते नहीं थे - सहायता करनी पड़ती थी। अन्त समय में उठे और हाथ जोड़कर मस्तक पर हाथ लगाए और उसी मुद्रा में प्राण त्याग दिए। तब हाथ भी गिर गए। इस सबको जानकर यही लगता है कि उस समय उन्हें श्रीमान लालाजी महाराज तथा पूज्य भाई साहब दोनों के दर्शन हुए और उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और उनके साथ ही चले गए।

इन मामाजी ने अपने सुपुत्र श्री गुरु प्रकाश, एडवोकेट, शाहजहाँपुर तथा भतीजे श्री विद्या शरण कंचन को भी पूज्य भाई साहब से दीक्षा दिलवाई।

प्रेम नारायण जी -- जब आप अपने बड़े सुपुत्र श्री शिवनाथ सहाय के पास बरेली रहते थे, आपके एक प्रियजन श्रीमान प्रेम नारायण जी - भी पूजा में सम्मिलित होने लगे। ये प्रेम नारायण जी भी मामाजी के साथ सिकन्दराबाद आये और पूज्य भाई साहब से दीक्षा के लिए निवेदन किया। आपने (पूज्य भाई साहब ने) इनसे पूछा तो बतलाया कि वे इससे पहले तीन गुरु कर चुके हैं जिनसे उन्हें कोई आत्मिक लाभ नहीं मिला. आपने आज्ञा दी कि इन गुरुओं से पूछ आओ - यदि यह विद्या उनके पास हो तो उन्हीं से लो नहीं तो आज्ञा ले लो - तब मैं अभ्यास में दाखिल करूँगा। इन प्रेमनारायण जी को कई मास बाद एक गुरु ने तो आज्ञा दे

दी - एक संसार से जा चुके हैं - एक का पता ही नहीं चला कि जीवित भी हैं अथवा नहीं। तब आपने अभ्यास बतलाया और फिर दीक्षा भी दी।

संतों की सन्तान के विषय में हमारी परम्परा में मैंने देखा कि कुछ महानुभावों ने तो संतों की जीवनी लिखते हुए ही लिख दिया कि अमुक सन्तान को आध्यात्म में कोई रूचि नहीं है. यह अनुचित ही नहीं - गुरुदेव की सन्तान का निरादर है. गुरुदेव की सन्तान आध्यात्म में कभी भी उतर सकते हैं और हम सब से आगे निकल सकते हैं - किसे पता है ? मैं इस विषय में हमारे श्रीमान लालाजी महाराज की एक घटना प्रस्तुत करना आपकी सूचनार्थ - अपना कर्तव्य समझता हूँ।

एक बार श्रीमान लालाजी महाराज अपने चौक में बैठे हुए कुछ आगुन्तकों से बातें कर रहे थे कि द्वार पर एक इक्का आकर रुका। आपने थोड़ा झुककर देखा कि कौन आया है, और उठकर बिना जूता पहने ही लपकते हुए द्वार पर पहुँचे और आगुन्तक को आदर से इक्के पर से उतारा और उन्हें आगे करके पीछे-पीछे आये। जिस स्थान पर आप बैठते थे वहाँ उन्हें बिठलाया और हाथ बांधकर सामने बैठे, उनसे कुशल समाचार पूछा. बाद में श्रीमान जी ने बतलाया कि ये सज्जन हमारे गुरुदेव के परिवार के थे - यद्यपि इनका आध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं था।

जहाँ तक मुझे पता है सन 1964 में ही पूज्य भाई साहब ने अपनी संस्था " रामाश्रम सत्संग " का पंजीकरण करवा दिया था। उसके पहले से ही वे तीन खाते रखा करते थे :

(1) भंडारा फण्ड - भेंट की आय और व्यय

(2) पुस्तकों का फण्ड

(3) मासिक पत्रिका (राम सन्देश) फण्ड

इनकी आय तथा भोजन आदि पर व्यय का पूरा हिसाब रहता था। वार्षिक भण्डारा पर ये तीनों वार्षिक आय -व्यय का हिसाब एक सभा में प्रस्तुत किया जाता था और पास

कराया जाता था। यह क्रम बाद में भी चलता रहा और अब भी चल रहा है। मासिक पत्रिका में यदा-कदा कमी पड़ती तो भण्डारा फण्ड से पूर्ति की जाती है।

पूज्य भाई साहब को यह तो पता था कि मैं कई वर्ष कानपुर में श्रीमान चाचा जी महाराज की सेवा में रहा. इसी कारण उन्हें अनुमान था कि मेरी दीक्षा भी श्रीमान चाचा जी महाराज द्वारा हुई है। सिकन्दराबाद जब आया तो आरम्भ में ही आपने मुझसे पूछा कि तुम्हें दीक्षा तो श्रीमान चच्चा जी महाराज ने दी है. मेरे यह निवेदन करने पर कि मुझे मार्च सन 1928 में श्रीमान लाला जी महाराज ने दीक्षा दे दी थी - वे बहुत प्रसन्न हुए. मुझे ऐसा लगा कि मेरी और उनका झुकाव तथा प्रेमाकर्षण कुछ अधिक हो गया।

हमारे सन्तमत में जिन्हें अपना अधिकारी बनाना अभीष्ट होता है - उनसे सद्गुरु प्रायः अपने जीवन-काल में ही काम लेना प्रारम्भ कर देते हैं - ऐसा देखा गया है. हमारे श्रीमान लाला जी महाराज ने भी अपने कई शिष्यों से समय-समय पर काम लिया और सामूहिक आयोजनों में, भण्डारों आदि में, अपने शिष्यों से अपने स्वयं की देख-रेख में काम कराया. मेरी जानकारी के अनुसार मैंने इन सभी संतों की सूची अपनी पुस्तक 'यादें' में दी है।

हमारे भाई साहब ने भी कई महानुभावों को 'पूर्ण' किया और काम करने योग्य बनाकर उन्हें 'गुरु' पदवी दी। इनमें मेरी जानकारी में उनके निम्नलिखित शिष्यों को यह अधिकार प्राप्त है :

(1) श्रीमान डॉक्टर करतार सिंह धींगरा - दिल्ली

(2) श्रीमान डॉक्टर. हरीकृष्ण भटनागर - सिकन्दराबाद

(3) श्रीमान डॉक्टर राजेंद्र कुमार - ग़ाज़ियाबाद

(4) श्रीमान डॉक्टर वीरेन्द्र कुमार - लखनऊ

(5) श्रीमान डॉक्टर ब्रजेन्द्र कुमार - रुड़की

(6) श्रीमान डॉक्टर ब्रजेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ - सुपुत्र परमसन्त डॉ. चतुर्भुज सहाय जी - मथुरा

इनके अतिरिक्त और भी हो सकते हैं जिनकी जानकारी मुझे नहीं है।

लगभग सभी संतों के निर्वाण के पश्चात् उनके सत्संग का विभाजन हुआ और उनके शिष्यों ने अपना-अपना सत्संग अलग करना प्रारम्भ कर दिया. श्रीमान लालाजी महाराज के पश्चात् उनके शिष्यों के द्वारा भी अलग-अलग काम हुआ और फिर उनके शिष्यों के काम भी इसी प्रकार बँट गए।

श्रीमान लालाजी महाराज ने अपने समय में ही ऐसा एक संगठन बनाना चाहा था कि सारा कार्य-संचालन एक ही स्थान पर रहे. उनके द्वारा लिखित एक नोट भी उन्होंने सन 1929 या 1930 के भण्डारे के अवसर पर पढ़कर सुनाया था, परन्तु उस समय वातावरण अनुकूल न होने के कारण उस सबको उन्होंने उठाकर रख दिया। यह सब मुझे पूज्य भाई साहब ने स्वयँ ही बताया था।

हमारे पूज्य लालाजी महाराज तथा पूज्य भाई साहब जैसे संतों के विषय में बहुत कुछ और लिखा जा सकता है . हमारे भ्रातागण यह सब लिखते ही रहते हैं और भविष्य में भी लिखते रहेंगे. मैंने जो निवेदन किया है वह मेरी निजी जानकारी के अनुभव के अनुसार हुआ है. कोई त्रुटियाँ रह गयीं हों तो पाठकगण कृपा करके मुझे क्षमा कर दें।

गुरु भगवान हम सबका कल्याण करें।

उन महामना महात्मा की पुण्य स्मृति में

समर्पित श्रद्धा के फूल

- डॉ. महेश चन्द्र, ग़ज़ियाबाद

हे परम् पिता,

आपके चरणों में शत-शत प्रणाम.

मेरे लिए यह कितने दुर्भाग्य की बात थी कि 18 मई सन 1970 को आपके दर्शन न हो सके. मैं जब ग़ज़ियाबाद से चला तो रास्ते में रेल का फाटक बन्द मिला। कुछ देर में गाड़ी आई और निकल गयी. फाटक खुलने पर जब मैं आगे बढ़ा तो सामने अपशकुन हुआ। मेरा माथा ठनका और जब आपके द्वार पहुँचा तो मालूम हुआ कि १५ मिनिट पहले आप पर्दा का चुके थे. केवल आपका क्षीर्ण शरीर मौजूद था। चेहरे पर अनन्त शान्ति की वही अनुपम झलक प्रकाशित थी जो मैं सदा से निहारता चला आया था। जिसे निहार-निहार कर तृप्ति नहीं होती थी और उस अतृप्ति की तड़प आजीवन रहेगी।

आप इतने महान थे, इतने विशाल हृदय थे, ऐसे प्रेम-रूप थे कि आपको कोई श्रद्धांजलि अर्पित करना मानो सूर्य को दीपक दिखाना है। आपकी आज्ञा का उल्लंघन न हो, यही मेरी तुच्छ श्रद्धांजलि है।

आपकी शिक्षा, जहाँ तक मेरा तुच्छ अनुभव है, शब्दों द्वारा नहीं होती थी। जो आप अपने प्रेमियों को बख्शते थे, उसे पहले स्वयँ करके दिखाते थे। कितना ऊँचा था आपका आदर्श. बच्चों में आप बच्चे बन जाते थे। बच्चों को कहानियाँ पसन्द होती हैं। आप बच्चों को शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाते और बच्चे भी सरल स्वभाव से आपको कहानियाँ सुनाते। मैं भी एक अबोध बालक सा हूँ, आपको नहीं समझ पाया क्योंकि मैं बुद्धिहीन हूँ, ज्ञानविहीन हूँ. लो, परदे में ही सही, एक छोटी सी कहानी सुनाता हूँ - एक तोते की कहानी।

किसी घर में एक तोता पिंजरे में क़ैद था। वह अपनी मुक्ति के लिए तड़पता और फड़फड़ाता था। लोहे के पिंजरे में चोंच की ठोकरें मार-मार कर उसकी चोंच घिस गयी थी। किन्तु न वह पिंजरा टूटता और न तोता आज़ाद होता था। एक बार उस घर में भगवत कथा का आयोजन हुआ जो कई दिन चला। पहले ही दिन एक श्रोता ने बताया कि एक महान संत हमारे नगर में पधारे हैं जो नदी किनारे रहते हैं. तोते ने यह बात सुनी और उस श्रोता से कहा - " हे देव। जब आप उन संत जी महाराज के दर्शन करने जाएँ तो मुझ अभागे का प्रणाम निवेदन कर दें और उनसे पूछें कि संतों का अवतार तो जगत उद्धार के लिए होता है, एक अभागा तोता पिंजरे में क़ैद है, आपकी सेवा में आने में असमर्थ है। कृपा करके कोई ऐसी विधि बताइये जिससे उध्दार हो और उसको पिंजरे से मुक्ति मिल जाये।

उस व्यक्ति ने संत जी से तोते की बात कह दी. उस समय संत जी नदी में स्नान कर रहे थे। तोते का सन्देश सुन उनका शरीर निर्जीव-प्राय सा हो गया और नदी में बहने लगा जैसे मुर्दा बहता है। किनारे पर खड़े दर्शक अवाक रह गए और उस सन्देश वाहक से कहने लगे कि तूने यह कैसा सन्देश लाकर दिया कि इनकी मृत्यु हो गयी लगती है। वह मनुष्य भी बड़ा दुखी हुआ और रोता हुआ वापिस लौटा। तोता उसके वापिस आने की बाट जोह रहा था. उसने उस मनुष्य से पूछा - "देव। मेरे निवेदन के उत्तर में संत महात्मा ने क्या कहा ?" वह मनुष्य फूट-फूट कर रो पड़ा और बोला , " अरे अभागे तोते, तेरी बात सुनकर उन संत जी का शरीर प्राण विहीन हो गया और नदी में बह गया। पता नहीं कि वे मूर्छित हुए या उनके प्राण निकल गए। हाय। यह कैसा दुर्भाग्य है कि तेरे इस अभागे सन्देश को मुझे ले जाना पड़ा।"

तोता संस्कारी जीव था। संत जी की कृपा से उनके मूक सन्देश को समझ गया और पिंजरे में ही लोट-पोट होकर मृतप्राय हो गया। दर्शकों को और भी अधिक आश्चर्य हुआ। कुछ देर बाद घर के मालिक ने समझा कि तोता तो मर गया, अब इसे पिंजरे से निकल कर फेंक देना चाहिए। अतः उस तोते को मरा हुआ समझ कर छत पर डाल दिया। तोता उड़

गया । एक संत के व्यावहारिक उपदेश से पिंजरे से तोते की मुक्ति हो गयी । ऐसा ही व्यावहारिक उपदेश आपका भी होता था ।

हे संत शिरोमणि /

दया और कृपा का सागर सदैव आपके चरणों में लहलहाता रहता । आपका उपदेश था कि संत और तोते की कहानी जैसे कि ज़िन्दगी में ही मौत का अनुभव कर लो.

" ज़िन्दगी पर मरने वाले, ज़िन्दगी में मरके देख "

आपके जीवन में हमने इसे प्रत्यक्ष पाया और वही सन्देश आप हम लोगों के लिए अनुकरण हेतु छोड़ गए हैं।

हे प्रेममूर्ति /

आपकी जय हो. आपके श्री-चरणों में बैठकर प्रेम की शीतल धारा का ऐसा अनुभव होता था कि दुनियाँ बिसर जाती थी, कण्ठ गद-गद हो जाता था, और आँखे भीग जाती थीं। कुछ पता नहीं चलता था कि इसका कारण क्या है। पता भी क्यों कर चले, क्योंकि अपने श्रीमुख से स्वयँ ही तो बताया था - " असली प्रेम वह है जिसके बिना रहा भी न जाये. "

हे महादानी /

आपकी क्षण-क्षण पर होती कृपा का वर्णन करने में वाणी मूक और असमर्थ है. आप कहा करते थे कि संत तीन तरह के होते हैं - एक तो वे जो दुनियाँ दे सकते हैं, दूसरे वे जो दीन (परमार्थ) दे सकते हैं और तीसरे वे जो दीन और दुनियाँ दोनों देते हैं, किन्तु ऐसा बिरला ही कोई संत होता है। हे परमगुरु । आप तो ऐसे ही महापुरुष थे जिन्होंने दीन और दुनियाँ दोनों ही बख्शी। इस दास की दुनियाँ में क्या हैसियत थी ? आपने किन्तु आपकी दात के प्रभाव से उसकी तो दुनियाँ ही पलट गयी. दीनता भी आपने ठूँस-ठूँसकर भरना चाहा, पर मेरे साथ तो यह बात हुई -

"तेरे करम से बेनियाज़, कौन सी शै मिली नहीं /

झोली ही मेरी तंग है, तेरे यहाँ कमी नहीं //"

मैंने प्रत्यक्ष देखा कि आपके प्रेमियों पर सदा यही अनुकम्पा रही कि आपने दुनियाँ भी दी और दीन भी।

हे युग पुरुष /

आप जब तक शरीर धारण किये रहे तब तक अपनी अलौकिक ज्योति से सबका मार्ग प्रशस्त करते रहे। अब यह दिव्य ज्योति हमारी स्थूल आँखों को दिखाई नहीं देती। वह ज्योति उस अखण्ड, अनन्त ज्योति में विलीन हो गयी है जिसका वह अंश थी। हमें विश्वास है कि हम भूले-भटकों को सदा मार्गदर्शन करेगी।

हे परम संत /

आपकी जय हो, आप सत्य का रूप थे, सगुण रूप में निर्गुण का अवतार थे। आप धन्य हैं और धन्य हैं वे माता-पिता, कुल और नगर जहाँ आपका पवित्र जन्म हुआ। आपके पल-पल के अहसानों को और निरन्तर बरसती कृपा को हम कैसे भुला सकते हैं ? आपके पवित्र उपदेश हमारे उर-अन्तर में आज भी उसी तरह गूँज रहे हैं जैसे आपकी मौजूदगी में गूँजते थे। जब तक आप जीवित रहे, हमें आपका ही सहारा रहा और अब जब मौजूद नहीं हैं तो भी आप ही के सहारे पर आश्रित हैं।

असतो मा सदगमय,

तमसो मा ज्योतिर्गमय /

मृत्योर्मा अमृतं गमय,

उन दयानिधान की दया क्या-क्या जल्वा नहीं दिखा सकती

- डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना. ग़ाज़ियाबाद

मैंडीकल कॉलेज में प्रवेश

मेरे पिता जी (पू. श्री कृष्णा सहाय जी) गुरु महाराज की सेवा में जाया करते थे। इसी नाते सन 1966 में मुझे भी उनकी शरण में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन दिनों में डाक्टरी पढ़ने का इच्छुक था। कई मैंडीकल कॉलिजों में प्रवेश पाने के लिए प्रार्थना पत्र दिए, वहाँ से साक्षात्कार के लिए पत्र भी आये परन्तु किसी न किसी बहाने से मुझे प्रवेश नहीं मिला। मेरे पिताजी भी परेशान थे और जब उन्होंने यह परिस्थिति देखी तो बोले कि अब अगर इस दुनियाँ में कोई मदद कर सकते हैं तो वे हैं केवल हमारे गुरु महाराज। मुझसे कहने लगे कि कल तुम मेरे साथ सिकन्दराबाद चलो। उनकी कृपा से शायद कुछ काम बन जाये।

अगले दिन सिकन्दराबाद पहुँचने पर पहले तो गुरुदेव ने कुछ देर पूजा पर बिठाया, जैसा कि उनका सबके साथ नियम था, फिर पिताजी से घर के सब लोगों की कुशलता पूछी, किन्तु असल बात यानी मेरे मैंडीकल कॉलेज के प्रवेश के बारे में न तो गुरुदेव ने ही पूछा और न मेरे पिताजी ने ही कुछ निवेदन किया। शाम को पिताजी ने दिल्ली वापिस जाने की आज्ञा माँगी और चलते समय जब चरण छूने लगे तो गुरुदेव पिताजी से बोले - " बाबू साहब, गुरु के पास जो भी शिष्य सच्ची श्रद्धा से जो भी इच्छा लेकर आता है वह ज़रूर पूरी होती है." उस समय मैं उनकी इस बात का मतलब नहीं समझा।

गुरु महाराज का द्वार छोड़कर बाहर निकलते ही मेरे पिताजी ने कहा - " अब तुम्हारा दाख़िला हो गया, गुरु महाराज ने आशीर्वाद दे दिया." अगले दिन मौलाना आज़ाद मैंडीकल कॉलिज, दिल्ली, से (जिस कॉलिज में प्रवेश की बात मैं कभी सोच भी नहीं सकता था) मेरे लिए प्रवेश पत्र आज्ञा और मुझे डाक्टरी में प्रवेश मिल गया। मैंडीकल कॉलेज की पढ़ाई के अन्तिम चरण में बंगलादेश की लड़ाई शुरू हो गयी और अपने कॉलिज में से मुझे वहाँ सेवा

कार्य के लिए भेज दिया गया। इस लड़ाई के बाद मुझे सेना में मैंडीकल कोर में कमीशन मिल गया.

जीवन दान

एक घटना सन 1978 की है। मैं तब सेना में मेजर के पद पर था। हमारी यूनिट मध्य प्रदेश में रीवाँ के निकट अभ्यास कर रही थी। एक रात को हमारी यूनिट एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रही थी। हमें रात ही रात में एक स्थान से दूसरे स्थान पर, जो काफ़ी दूर था, पहुँचना था। हमारी सारी यूनिट एक कनवॉय (क़ाफ़िला) के रूप में सेना की मोटरों में सवार होकर जा रही थी। मेरी गाड़ी, और गाड़ियों से अलग थी जिसमें मैं ड्राइवर की साथ वाली सीट पर मैं बैठा हुआ था। रात काफ़ी बीत चुकी थी और मैं सीट पर बैठा ही बैठा सो गया।

अकस्मात ही मुझे गुरुदेव के स्वर में आवाज़ सुनाई दी " हे राम " और मैं एकदम चौंक कर उठा कि इस समय और इस एकान्त जगह में गुरु महाराज की आवाज़ कैसे ? देखा तो गाड़ी का चालक भी गहरी नींद में स्टीयरिंग (वह पहिया जिसे पकड़ कर ड्राइवर गाड़ी चलाता है) पर सिर रख कर सो गया था। गाड़ी सड़क से नीचे उतर चुकी थी, सामने के नाले में गिरने वाली थी. मैंने एकदम चालक को हिलाकर जगाया और गाड़ी रुकवाई। उस समय मन ही मन में गुरुदेव की याद करके रोने लगा कि सोते में भी जबकि मैं उनकी याद से गाफ़िल था उन्होंने ऐसी अपार कृपा की, मेरी और गाड़ी में सवार सैनिकों की जान बचायी और एक बड़ा भारी संकट टाल दिया।

सचमुच गुरु सदा अपने शिष्य की रक्षा करता है और हर समय परछाई की तरह चारों और छाया रहता है।

पूज्य गुरुदेव की डाक्टरी शिक्षा के लिए एक चमत्कारी घटना

पूज्य गुरुदेव (परम पूज्य डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) परमपूज्य लालाजी के सम्पर्क में फतेहगढ़ में थे ही, उनके पूछने पर आपने बताया कि मैं तो डाक्टर बनना चाहता रहा पर अब दाख़िला नहीं हो सकता क्योंकि मेरी आयु नियत आयु सीमा से दो वर्ष अधिक हो गयी है. परम पूज्य महात्मा जी ने कहा- " आगरा के मैंडिकल कॉलेज में पढ़ने की अर्ज़ी (याचिका) तुरन्त भेज दो - आयु सच-सच है लिखना, ईश्वर में विश्वास रखो।"

दाख़िले का याचना -पत्र भेज दिया। साथी लड़कों ने हँसी उड़ाई। श्रीकृष्ण जी शरीर से लम्बे, हृष्ट-पुष्ट, फुर्तीले, आकर्षक व्यक्तित्व के थे -जनरल कॉलेज में अग्रिम रहते थे। आगरे में सिलेक्शन कमेटी के चेयरमैन अँग्रेज़ सिविलसर्जन थे। सभी तीन मेम्बरों ने प्रत्याशी श्रीकृष्ण से प्रश्नों के उत्तर प्रभावी पाए। सिलेक्ट कर लिया. 'बायोडाटा ' की लिस्ट देखी तो सिविल सर्जन चेयरमैन ने एस.एल.सी. का असली प्रमाण पत्र माँगा, यह देखकर दंग रह गया कि आयु सीमा-परिधि से दो वर्ष अधिक हैं, बोला - " You, Shrikrishnal – in my assessment your date of birth so shown is wrong. I find you two years younger ." (श्रीकृष्ण, मेरे निष्कर्ष में तुम्हारा जन्म वर्ष ग़लत लिखा है, मैं तुम्हें इस सर्टिफिकेट में लिखे हुए के प्रतिकूल दो वर्ष छोटा पाता हूँ.) और उसी प्राकृतिक प्रभावित आवेश में उन सिविल सर्जन साहब ने जन्म वर्ष काट कर दो वर्ष कम लिख दिया. कटिंग भी सत्यापित कर दी. तदानुसार बायोडाटा लिस्ट भी अपने हस्ताक्षरों से ही ठीक कर दी. फलतः मैंडीकल कॉलेज में प्रवेश हो गया। डाक्टरी पास की, डाक्टर बने।

मेरे बादशाहों के बादशाह की अनुकम्पा से जीवन को दिशाबोध

- श्री उमाकान्त प्रसाद, पटना

भाग्योदय की पुनीत वेला

जीवन की खिड़की से जब एक ओर जवानी झाँक ही रही थी तो दूसरी ओर 'स्व ' और अपने सच्चे परम् हितेषी स्वामी की खोज की आतुरता और छटपटाहट बढ़ती ही जा रही थी। शायद पूर्वजन्मों के कर्मफल अथवा पैतृक संस्कारों से संचालित होकर मैं अनेक दार्शनिक एवं ज्ञानी महापुरुषों का साहित्य टटोलता रहा किन्तु कहीं प्यास नहीं बुझी। अन्ततः पांडिचेरी के योगिराज स्वनाम धन्य श्री अरविन्द घोष के आश्रम की दैवी विभूति श्री माँ से प्रभावित होकर उनकी शरणागति प्राप्त हुई। उसी समय The Mother (श्री माँ) की आत्मिक प्रेरणा से मेरी जन्म-जन्म की साध पूरा कराने के लिए अपने सम्बन्धी श्रद्धेय नन्द जी भाई साहब के माध्यम से प्रातः स्मरणीय गुरु महाराज और सत्संग का परिचय प्राप्त हुआ।

और फिर मेरे जीवन की अत्यन्त सौभाग्यशाली घडी आयी जबकि समग्र सत्ता के प्रवाह से हक़ीक़त और असलियत से वाक़िफ़ कराने हेतु प्रेमाकर्षण के पुंज, एक ईश्वर के सारे गुणों से विभूषित, विलक्षण आभा-तेज, माधुर्य-गाम्भीर्य से परिपूर्ण, शान्त, सरल चित्त वाले, अनुपम प्रेम व्यवहार वाले बादशाहों के बादशाह परमपूज्य गुरुदेव डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के दरबार में इस दासों के दास को दाख़िल और हाज़िर कराकर 21 सितम्बर, 1960, बृहस्पतिवार को 'निस्बत क़ायम' करा ही दी।

उनके अद्भुत, विलक्षण और अलौकिक गुणों, व्यवहार एवं मनमोहक छवि तथा अतिआकर्षक स्वरुप ने अपने सच्चे हितेषी और प्रेमी पिता के पास अपने आपको समर्पित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की. उनकी पैनी परख और अति सूक्ष्म दृष्टि ने अपनी हृदय विशालता, अति उदारता के साथ-साथ स्पष्टवादिता और असलियत एवं हक़ीक़त का परिचय देकर बताया कि तुम्हारा यहाँ शेयर (share) है और The Mother (Pondicherry) के आदेशानुसार यहाँ (सिकन्दराबाद) आये हो। तुम्हें दीक्षा ही दूँगा। उनके अनुपम, अनूठे,

असीम,और अलौकिक प्रेम के सामने सृष्टि की सारी चीज़ें फीकी लगने लगीं और दीक्षित होकर अपना अहोभाग्य मनाने लगा। फिर क्या था, सच्चे पिता, सच्चे हितेषी, परम सन्त सद्गुरु, वक्त-वक्त पर असलियत और हक़ीक़त की झलक एवं आन्तरिक जगत की झाँकी दे देकर अपने असीम, अनूठे प्रेम से परिप्लवित करते रहे, आत्मिक प्रसादी देते रहे, प्रेम पथ का सच्चा पथिक बनने की प्रेरणा देते रहे और छाया की भाँति निगरानी करते हुए मार्ग-दर्शन करते रहे. तब मुझे तुलसीदास की वाणी " बिनु हरि कृपा, मिलहिं नहीं सन्ता " की सत्यता का भान हुआ।

सन 1970 के मई माह तक उनके विलक्षण तेज, मनमोहक सूरत, प्रेमाकर्षण छवि का दीदार और दर्शन होता रहा। निर्वाण प्राप्त के बाद भी मुझे तथा उनके अन्य प्रेमी भाई-बहिनों को अपना परिचय दिया हैं जिनके आधार पर इसकी पुष्टि हो जाती हैं कि परम कृपालु, दीन बन्धु, कृपानिधि, करूणानिधि, कृपाधाम, दयासागर, प्रेमसागर, प्रातः बन्दनीय परम सन्त, दयाल देश वासी महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल भटनागर बादशाहों के बादशाह थे और हैं भी। स्पष्टतः कारण यही हैं कि केवल मोक्ष आत्माएं (liberated souls) ही शरीर छोड़ने के बाद भी संतान के उद्धार हेतु उतरती हैं।

इसमें किन्चित मात्र भी शंका नहीं कि जबतक कोई सन्त, औलिया, पीर अपना परिचय स्वयं नहीं देते तब तक उन्हें कोई समझ नहीं पाता। अपवाद-स्वरूप कोई समझ भी सकते हैं तो केवल पीर, औलिया, ब्रह्म ज्ञानी, सद्गुरु ही जो ईश्वर के सारे गुणों से गुणान्वित और विभूषित हैं। इसमें भी संदेह नहीं कि सच्चे जिज्ञासु भक्त और प्रेमी जो सरल हृदय से, दीनता के साथ, निष्कपट होकर बिना परीक्षक या निरीक्षक बने सद्गुरु के पास जाते हैं और हृदय की झोली फैलाते हैं तो सन्त-सद्गुरु उन्हें प्रेम से ओत-प्रोत कर देते हैं और अपनी आत्म प्रसादी से मालामाल कर देते हैं।

पूज्य गुरुदेव के सानिध्य में रहकर प्रेम-पान करने का सौभाग्य सन 1960 से 1970 मई के प्रारम्भ तक मिला. और प्रेम-पान के क्रम में उनके जिन अलौकिक, अद्भुत और विलक्षण गुणों का इस सेवक को परिचय मिला उनमें से कुछ संस्मृतियों का उल्लेख करना वाँछनीय

एवं आवश्यक हैं जिनसे उनके 'बादशाहों के बादशाह' होने की झलक ही नहीं मिलती बल्कि पुष्टि होती है. सूक्ष्म पराज्ञानलोक में प्रविष्टि रखने वालों ने भी इस सत्यता को स्वीकार किया है।

गुरु आदेश की अवज्ञा का पश्चाताप

वे प्रेम-पुंज, दीनता, मधुरता, धीरता, निर्भीकिता व अनोखे स्नेह की प्रतिमूर्ति थे। उनकी वाणी का मिठास, स्नेहिल विलक्षण व्यवहार और आत्मरती होने की पहचान और समझ, उनके शान्तिमय निवास स्थान पर पहुँचते ही होने लगती थी। वे फ़रमाते थे कि संत की पहचान यह भी है कि यदि बाघ (tiger) भी पास आ जाये तो शान्त होकर बैठ जायेगा। संक्षेप में, उनमें अलौकिक गुणों की खान थी। वे सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान थे।

सन 1965 के 17 नवम्बर की एक घटना है जो उनकी सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमान होने की झलक देती है तथा उनकी वास्तविकता को प्रगट करती है। नीचे वर्णित घटना से उनके आत्मज्ञानी और आध्यात्मिकता में परिपूर्णता का परिचय मुझे तो मिला ही, परन्तु अन्य जानने वाले साधकों एवं सत्संगी बन्धुओं को भी यदा-कदा मिलता रहा है।

एम.ए. करने का बाद और लाख प्रयास करने के बाबजूद भी मुझे सरकारी नौकरी प्राप्त नहीं हो रही थी। कुछ जगहों पर नियुक्ति हेतु चुन भी लिया गया, फिर भी मंत्री के हस्तक्षेप से मैं नियुक्त होने से वंचित रह गया। मुझे सूचना मिली कि तारीख 17.11.1965 को गुरुदेव बक्सर पधार रहे हैं। मैं अपने प्रभु के दर्शन हेतु बक्सर स्टेशन पर ही हाज़िर हो गया। फिर वहाँ से पूज्य गुरुदेव एवं अन्य सत्संगी बन्धुओं के साथ मान्यवर गिरिजा भाई साहब के यहाँ पहुँचे।

चाय नाश्ते के बाद गुरुदेव ने मुझसे पूछा कि तुम्हारी नौकरी का क्या हुआ ? जिस समय गुरुदेव ने मुझसे प्रेमरस से सनी, मृदु वाणी में यह बात पूछी, उस समय मेरे बहुत से अग्रज सत्संगी मौजूद थे। उनमें पूज्य नन्द जी भाई साहब, पूज्य बंशीधर भाई साहब के

साथ अन्य लोग भी थे, किन्तु किसी ने मुझे यह नहीं बताया कि गुरुदेव के आदेश को आँख मुद कर मानना चाहिए। वहाँ पर तर्क की और अपनी इच्छा की कोई गुंजाइश नहीं।

पूज्य गुरुदेव के पूछने पर मैंनें जबाब दिया कि, ' प्रायः मेरे सभी साथियों को नौकरी मिल गयी, केवल मुझको ही सतत प्रयास के बाद भी नौकरी नहीं मिली।' इस पर गुरुदेव ने मुस्कराते हुए फ़रमाया - " नौकरी क्या चीज़ है। किस department (विभाग) में नौकरी चाहते हो ? नौकरी अभी मिलेगी।" उन्होंने फिर कहा कि - "मैंने ही तुमको नौकरी नहीं होने दी है." इस पर मैंने कारण जानने की जिज्ञासा प्रगट की। पूज्य गुरुदेव बोले कि ' worldly bitter experience (सांसारिक कटु अनुभव) के लिए ऐसा किया है। अभी बेकारी की हालत में तुम्हारे सगे-सम्बन्धी तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करते हैं ?" इस पर मैंने निवेदन किया कि " माँ का प्रेम तो निःस्वार्थ रहता है। हाँ, और अन्य सभी मुझसे दुःखी और उदासीन रहते हैं ।" इस पर पूज्य गुरुदेव बोल पड़े, " इस दुनियाँ में किसी का प्रेम बेग़र्ज़ाना (निःस्वार्थ) नहीं होता है। समय आएगा तुम देख लोगे।" उनकी यह भविष्यवाणी कालान्तर में शत-प्रतिशत सही निकली।

गुरुदेव के पूछने पर कि किस नौकरी में जाना चाहते हो, मैंने विनीत और मर्यादित तथा संयमित प्रांजल भाषा में कहा कि - " मैं बिहार सरकार की नौकरी के लिए केवल 5.2.1964 तक ही eligible (योग्य) हूँ यदि non-gazetted post की सरकारी नौकरी मिल जाएगी तो 31 वर्ष तक बिहार सरकार में gazetted के लिए 3 बार exam. दे सकता हूँ और विश्वास के साथ कहा कि डी.एस.पी. या किसी अन्य राजपत्रित पद पर प्रतिष्ठित हो जाऊँगा।" यहाँ पर मेरा अहँकार झलका। इस पर गुरुदेव बोले कि non-gazetted की नौकरी में कम तनख्वाह मिलेगी। इसमें जाने से क्या फ़ायदा होगा। फिर उन्होंने कहा कि, "मेरी समझ से तुम्हें Lecturership में (प्राध्यापक बनने को) जाना चाहिए। आध्यात्मिकता के लिए यही अच्छा होगा। मेरी समझ से तुम semi-government service में जाओ, तनख्वाह अच्छी मिलेगी, नहीं तो रेलवे में जाओ." इस पर मैंने फिर अपनी बात पर ज़ोर दिया कि बिहार सरकार में

इम्तहान के लिए तीन चान्स तो मिलेंगे और उसमें कही न कहीं कुछ हो जायेगा।" इस पर गुरुदेव ख़ामोश हो गए।

फ़क़ीरों का मिज़ाज़ बहुत नज़ाकत वाला होता हैं. वे तनिक सी ' ना-नूं ' कभी बर्दाश्त नहीं करते और अपने विचारों को दबा लेते हैं। मुझमें अहँकार भी विशेष था। अपने घर, ग्राम, जिला और प्रान्त से भी अधिक आसक्ति थी। उस समय फ़क़ीरी राज़ को कुछ न समझा था। फलस्वरूप non-gazetted की एक के बाद एक पाँच नौकरियाँ मिलीं। पर उनके आदेश की अवेहलना और उनके ज्ञान और सूझ को नज़रअन्दाज़ करने का अन्जाम यही हुआ कि मेरी इच्छा के अनुसार उन्होंने नौकरी तो दे दी, पर नौकरी में मैं वैसा नहीं बन सका जैसा कि वे मुझे बनाना चाहते थे। लेकिन इसके पश्चात् वर्षों तक घोर अशान्त रहा। अभी भी नौकरी में पूरी शान्ति नहीं ही कही जा सकती। अगर उनकी इच्छा के अनुसार प्रोफेसर या अर्ध -सरकारी पद पर चला गया होता तो उनकी प्रसन्नता मिल गई होती और आध्यात्मिकता या दुनिया के लिए दर-दर का भिखारी न बनता। अगर अपने सच्चे पिता की बात मन लेता तो आज आध्यात्मिक क्षेत्र में भी असंतुष्ट नहीं रहता। वे सच्चे पिता थे, सच्चे हितेषी थे. अपनी नासमझी तथा अज्ञानता के लिए अब पश्चाताप करता हूँ। भूल और गुस्ताख़ी के लिए रोता हूँ और तड़पता हूँ पर 'अब पछतावत होत का, जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत'। सच्चाई यह है कि केवल सद्गुरु ही बेहतर जानते हैं कि किसमें क्या भलाई है।

संतों की वाणी हैं :-

"गुरु जो करे सो हितकर जाना ,

गुरु जो कहे सो चितधर माना.।।"

गुरुदेव की सर्वज्ञता का परिचय

बादशाहों के बादशाह की कुछ अपनी ख़ास विशेषतायें होती हैं जिनकी झलक और परख उनकी ही कृपा से किसी सच्चे प्रेमी भक्त को हो सकती हैं ।१९६५ के भारत-पाक युद्ध में मेरे एक ममेरे भाई. श्री कमलेश प्रसाद वर्मा, Missing in Action (मोर्चे से ग़ायब) घोषित हो चुके थे. देश के प्रायः सभी जाने-माने ज्योतिषियों और पंडितों से उनके पिता (डॉ.राम दयाल प्रसाद) ने सम्पर्क किया. मोटी रक़म खर्च भी हुई। सभी ने लड़के को जीवित बताया। सभी ने एक ही तरह की बात बताई कि डॉ. प्रसाद को पुत्र शोक नहीं हैं. परिवार का चिन्ताग्रस्त कारुणिक और हृदय विदारक दृश्य देखकर मैं इस उलझन और दुविधा से उनको निकालने और वास्तविकता से अवगत कराने के लिए उस लापता भाई का फ़ोटो लेकर अपने प्रेमसागर गुरुदेव के पास सिकन्दराबाद गया.

उस समय करुणानिधि प्रभु आँगन में खाट पर लेटे थे. कुछ समय तक वे प्रफुल्लित और असीम प्रेम की मुद्रा में रहे और मुझे भी अपने अनूठे, अनवरत प्रेम से ओत-प्रोत करते रहे. उन्हें अति प्रसन्न चित्त देखकर जैसे ही मैं उस ममेरे भाई का फ़ोटो निकालने की सोच ही रहा था कि गुरुदेव ने करवट बदलकर दूसरी ओर कर ली. मैं घबरा गया कि शायद मेरे प्रभु मेरे विचार और व्यवहार से नाराज़ हो गए हैं. इसी बीच लगभग पाँच मिनिट के अन्दर ही फिर करवट बदलकर मेरी ओर मुँह करके समअवस्था में प्रेमपूर्वक, माधुर्य से मिश्रित वचनों से मेरे घर और पत्नी तथा बच्चे का हाल पूछने लगे.

अनुकूल, आनन्दमय और प्रेममय वातावरण पाकर मैंने ज्यों ही अपने पाकिट से उस भाई का फ़ोटो निकालना चाहा कि पूज्य गुरुदेव ने रोक दिया और कहा कि " यही न पूछोगे कि जिसका फ़ोटो तुम पाकिट में रखे हो वह मर गया या ज़िंदा हैं." मेरे 'जी' कहने पर गुरुदेव बोले - "मेरी समझ से वह अब नहीं हैं." इसके बाद मैंने पूछा कि उसकी मृत्यु कैसे हुई ? इस पर गुरुदेव नाराज़ से हुए और एक बड़े राज़ के बारे में मेरी आँखें खोलीं जब कहा कि, "फ़क़ीर प्रकृति के हर राज़ को जानता हैं, पर राज़ खोलता नहीं हैं . खोलने से श्रष्टि

और प्रकृति के सारे नियम बिगड़ जायेंगे." साथ ही साथ उन्होंने यह चेतावनी भी दी कि आईन्दा कभी मज़बूर मत करना. वे सर्वज्ञ और सर्वव्यापी थे. वे बादशाहों के बादशाह थे.

हे मेरे गुरुदेव करुणासिन्धु करुणा कीजिये

हे मेरे गुरुदेव करुणासिन्धु, करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये॥

खा रहा गोते हूँ मैं भव सिंधु के मझधार में।
आसरा है दूसरा कोई न अब संसार में॥

मुझ में है जप-तप, न साधन और नहीं कुछ ज्ञान है।
निर्लज्जता है एक बाकी और बस अभिमान है॥

पाप बोझे से लदी नइया, भंवर में जा रही।
नाथ दौड़ो अब बचाओ, जल्द डूबी जा रही॥

आप भी गर सुधि न लेंगे, फिर कहाँ जाऊँगा मैं।
जन्म-दुःख से नाथ कैसे, पार कर पाऊँगा मैं॥

सब जगह 'मन्जुल' भटक कर ली शरण प्रभु आपकी।
पार करना, या न करना दोनों मरज़ी आपकी॥

एक पुण्यपुरुष की विशेषताएँ - पूज्य गुरुदेव और उनकी शिक्षाएँ

-- डॉ. ब्रजेन्द्र कुमार सक्सेना, रुड़की

हम गुरुदेव को क्या समझें ? यह प्रश्न बहुत ही मुश्किल है. वह हमारे सच्चे हितेषी, प्रियतम और इष्ट हैं. मगर सब भाई -बहिनों को वे पिताजी, चाचा जी, मामा जी, नाना जी, बाबा जी, अथवा भाई साहब आदि ही प्रतीत होते थे. नर- लीला में इतने निपुण और कुशल थे कि व्यवहार एकदम पारिवारिक ही था. सत्य और प्रेम की मूर्ति - दीनता और सेवा के आभूषणों से सुसज्जित, हम सबको तो वे अपने सच्चे संरक्षक ही नज़र आते थे. इससे ज़्यादा हम उनके विषय में कैसे समझ सकते हैं क्योंकि उनकी नरलीला और स्वाभाविक प्रेम हमारी बुद्धि को सदैव संतृप्त रखते थे और फिर प्रेम में समझ-बूझ का ख्याल भी नहीं रहता. मगर आइये आज हम कुछ भेद जो उन्होंने स्वयं ज़ाहिर किये, उन्हें पढ़कर अपने प्रियतम को अपने अन्तर्तम में दर्शन करें क्योंकि वह हमारे बहुत निकट हैं - वह आज भी हमसे पृथक नहीं हुए हैं।

मोक्षावस्था व सर्वव्यापकता

26 दिसम्बर सन 1967 की बात है. ग्वालियर में भाई कैलाश जौहरी के घर पर गुरुदेव पधारे हुए थे. सेवक प्रातः सेवा में हाज़िर हुआ - चरण कमलों पर माथा टेका और अपने प्रियतम का प्यार और आशीर्वाद पाया. तदुपरान्त अपने फ़रमाया कि " तुम आगये तो एक भेद बताता हूँ - वैसे यह हालत हरेक को बताते नहीं हैं. इस समय मेरी मोक्षावस्था है और मैं सर्वव्यापक हूँ. पूरी तरह आनन्द अवस्था है - यह आनन्द स्वाभाविक है - किसी पर निर्भर नहीं है. इसी हालत को प्राप्त करना चाहिए और यह permanent (स्थायी) हो जाना चाहिए। दुनियाँ के सब व्यवहार होते रहेंगे - मगर हालत एक सी रहेगी।"

यह फ़रमाकर गुरुदेव मौन हो गए. थोड़ी देर बाद सेवक ने प्रश्न किया कि दुनियाँ में बिना फँसे हुए इस अवस्था को आसानी से प्राप्त कर सकते हैं या दुनियाँ को भोग कर ? आपने फ़रमाया "सवाल बहुत अच्छा है। गोरखपुर में मैंने यह सवाल बेनर्जी साहब से किया था।

वहाँ एक तेरह वर्ष के लड़के को संन्यास दिलाया गया. जब मैंने पूछा कि इस लड़के ने तो अभी कुछ देखा नहीं - अभी से ही संन्यास दिला दिया, तो बताया कि यही जीवन का लक्ष्य है - इसमें क्या हर्ज़ है ? फिर बेनर्जी साहब ने समझाया कि दोनों ही रास्ते ठीक हैं. मगर अपने सिलसिले में दुनियाँ भोग कर उपरति हासिल करने का तरीक़ा है. खतों में पढ़ा होगा कि जब मेरी शिकायत की कि ' मैं दुनियादार हूँ " तो गुरुदेव के जबाब दिया कि " मेरी तालीम दुनियादारी सिखाती है. इसमें बरतकर श्रीकृष्ण एकसाथ पलटेगा।"

हृदय की कोमलता व तकलीफें

सिकन्दराबाद में आपने फ़रमाया था की "फ़क़ीरों का हृदय बहुत कोमल होता है. वे दूसरों को तक़लीफ में नहीं देख सकते - यहाँ तक कि दूसरों के संस्कार भी अपने ऊपर ले लेते हैं. यही कारण है कि फ़क़ीरों को ज़्यादा तक़लीफ उठानी पड़ती हैं. कर्म फल का सिद्धान्त सब पर लागू होता है. अवतारों को भी नहीं बख्शती. अगर गुनाहों की मुआफ़ी के लिया दुआ की जाती है तो intensity (तीव्रता) कुछ कम हो जाती है मगर duration (समय) बढ़ जाता है या फिर मुआफ़ी करने वाले को खुद भोगना पड़ता है.

फिर फ़रमाया कि " तकलीफ़ें तो हमारे प्रीतम की अदा हैं, वो तो उसके आने की आहट हैं. जैसे पायल की आवाज़ की आहट से माशूक़ के आने का इन्तज़ार होता है वैसे ही तक़लीफ़ें हमारे प्रीतम के दर्शन की घड़ी नज़दीक आने का इशारा हैं. हम तो यह प्रार्थना करते हैं कि परमात्मा हमें ताक़त दे, ताकि भारी तकलीफें थोड़े समय में कट जायें."

उनकी अमूल्य शिक्षाएँ

गुरुदेव की तालीम सच्चाई, दीनता, सेवा और प्रेम सिखाती है. गुरुदेव के ही शब्दों में जो कि सेवक ने पत्रों और प्रवचनों से लिए हैं - इसका बयान करते हैं - " शुरू में तमाम गुण सत रज तक की समावस्था में होते हैं. बच्चा जैसे माँ-बाप के यहाँ जन्म लेता है और जिस सोसाइटी (समाज) में रहता-सहता है उनके असरात (प्रभाव) उस पर पड़ते रहते हैं. किसी से सुख मिलता है, किसी से दुःख. जिन से सुख मिलता है उनसे मुहब्बत हो जाती है और

उनको अपना समझता है. जिनसे दुःख मिलता है उनसे नफ़रत (विमुखता) हो जाती है. और उनसे दूर रहना चाहता है. समावस्था में फ़र्क़ आजाता है. किसी के हासिल (प्राप्त करने) और किसी को हटाने की ख़्वाहिशात पैदा हो जाती है और इन ख़्वाहिशतों के ज़ेरे-असर (प्रभाव से) उनके लिए प्रयास करता रहता है । इस अवस्था में जीवात्मा जो कि सद्चिदानन्द की अक्स (प्रतिबिम्ब) है इन ख़्वाहिशात (इच्छाओं) के नीचे दबी पड़ी रहती है और उसको अपने असली लक्ष्य का बिलकुल पता नहीं रहता।"

इच्छाओं का उतार-चढ़ाव

" जब उसको अपनी इच्छाओं में कामयाबी नहीं मिलती होती और दुनियाँ में अपने आपको दुखी पाता है, उस वक्त परेशान होकर ईश्वर से छुटकारे के लिए प्रार्थना करता है. ईश्वर की कृपा की मौज़ उठती है और वह गुरु-रूप में आकर दुनियाँ के दुखों से निकलने की तरकीब बताता है और मदद भी करता है. जब मन समावस्था में आ जाता है - कोई ख्वाहिश नहीं रहती तो आत्मा का अनुभव हो जाता है - जहाँ पर पूरा आनन्द - पूरा ज्ञान, पूरी ज़िन्दगी और जन्म मरण के फंदे से हमेशा के लिए छूट जाता है. यही मोक्ष है, यही निर्वाण-पद है - यही ज़िन्दगी का लक्ष्य है।"

दर्शन और साधना की लय अवस्था, समाधि अवस्था सत्व खण्ड के दर्शन, ईश्वर से एकाकार, परमात्मा का प्रेम आनन्द के रूप में ज़ाहिर होता है, जो आत्मा अनुभव करती है. बुद्धि के मुक़ाम पर उतरकर ये ज्ञान के रूप में तब्दील हो जाता है और नीचे उतरकर मन की वासनाओं और इन्द्रिय भोग के रूप में और फिर उनके ज़रिये जीवात्मा दुनियाँ में फंस जाती है. जिस तरह से उतार होता है, उसी तरह से चढ़ाई होती है।

साधक की अवस्थाएँ

हृदय के स्थान के नीचे तमावस्था है - हृदय के स्थान पर रज और उससे ऊपर सत. रज से यानी अज्ञानी हृदय से अभ्यास करके सत पर या आज्ञा चक्र पर आते हैं तब आत्मा का दायरा आता है. नीचे के स्थानों में मन का दायरा है - वहाँ आत्मा दबी हुई है। आज्ञा

चक्र के ऊपर आत्मा का दायरा है - यहाँ आत्मा का राज्य है और यहाँ केवल सत-मन की ही पहुँच हो सकती है। मन का असली रूप सत है जिस पर रहकर यह आत्मा के नज़दीक रहता है. तम और रज में बरतकर ग़लत काम करने से इसे दुःख होता है. तमावस्था से निकालने के लिए गुरु रज है और रज से ऊपर उठाने के लिए गुरु सत है. इससे ऊपर गुरु आत्मा है। निज मन यानी त्रिकुटी के स्थान पर पहुँच कर गुरु में लय हो जाती है तब यहाँ के दर्शन होते हैं. यह 'फनाफ़िल-शेख़' (गुरु में लय होने) का दर्ज़ा है।

' मुरीद' और 'मुराद'

अभ्यास में तरक़्क़ी करते हुए जो साधक चलते हैं वो 'मुरीद' हैं. पहले उनकी इन्द्रियाँ मन, बुद्धि, मौतदिल हालत में यानी सत अवस्था में आते हैं और बाद में आत्म- साक्षात्कार होता है. इससे पहले होली होती है, फिर दशहरा, दिवाली और तब बसन्त आता है। और जो सच्चे प्रेमी ईश्वर के होते हैं उनको पहले आत्मा का साक्षात्कार होता है. फिर बुद्धि शुद्ध होती है - बाद को मन,इन्द्रियाँ और रहनी-सहनी ठीक होती है.इन लिए पहले बसन्त आता है फिर दिवाली, दशहरा और बाद को होली होती है। यह 'मुराद' कहलाते हैं - यह गुरु के सच्चे आशिक़ होते हैं और यही सच्चे गुरु मत होते हैं, लेकिन हज़ारों मुरीदों में से सिर्फ़ एक या दो. (हमारे गुरुदेव अपने गुरु की मुराद थे)।

प्रेम-भक्ति और ज्ञान

पूज्य गुरुदेव फरमाते थे - " प्रेम-मार्ग व ज्ञान -मार्ग दो रास्ते हैं. प्रेम-मार्ग में अहंकार नहीं रहता - यहाँ सेवा और दीनता का भाव रहता है. इस मार्ग में श्रेष्ठ अधिकारी वह है जो गुरु से बेग़र्ज़ाना (निःस्वार्थ) मुहब्बत करता हो - वह ईश्वर को भी नहीं चाहता। लेकिन जो ईश्वर-दर्शन चाहता है, वह भी सच्चा अधिकारी है. सन्तों से ईश्वर दर्शन की चाह करना सही है, जो ऊँचे अधिकारी हैं वह गुरु के ख्याल को receive (ग्रहण) करते हैं और उनकी तबियत के ख़िलाफ़ बातों को छोड़ देते हैं. इस रास्ते में ख़राब रुपया, ख़राब सौहबत, काम वासना और अहंकार गिराने वाले हैं. इनसे बचते रहना चाहिए। पहले सत पर आना है. जब सत पर

आ जाओगे - नेकी ही नेकी रह जाएगी, तब तरक़्क़ी समझो. परमार्थ कई ज़िन्दगियों का सबाल है. घबराना नहीं चाहिए. सच्चाई के साथ कोशिश करते रहोगे, तो गुरु-कृपा से सब कुछ मिलेगा।

वापिसी का पूर्वाभास

3 सितम्बर, 1958 को सिन्दराबाद में आपने फ़रमाया था कि - "फ़क़ीरों को आपने जाने के बारे में आभास हो जाता है. लाला जी महाराज आख़िरी दिनों में फरमाते थे कि मेरे चारों और बुज़ुर्गों की रूहें रहती हैं. अब चलने का वक्त आ गया है. परमसन्त श्री शिवदयाल सिंह साहब ने आपने सत्संगियों को बतला दिया था कि कल वापिस जायेंगे. सत्संगी इकठ्ठे हो गए. उन्होंने सुरत ऊपर खेंच ली - पुतली चढ़ गयी। मगर थोड़ी देर बाद आँखें खोल दीं और कहा कि अभी वक्त नहीं है. उनके भाई ने पूछा तो फ़रमाया कि शाम को चार बजे वापिसी होगी और उन्होंने ठीक चार बजे ही देह छोड़ी। बैनर्जी साहब ने भी कह दिया था कि अब वापस जायेंगे और ठीक पन्द्रहवें दिन ऐसा ही हुआ।"

"मुझे 29 सितम्बर 1967 को लाला जी महाराज ने स्वप्न में कहा ' अब वापस आ जाओ'. मैंने पूछा 'कब तक' तो उन्होंने फ़रमाया - 'दो महीने तक'. फ़रवरी 1968 में आँख में रक्तस्राव (haemorrhage) हुआ और मुझे लग रहा था कि अब वक्त आ गया. मगर फिर महाराज जी ने दर्शन दिए और फ़रमाया कि यह भी भोग लो।

फ़रवरी 1970 में बसन्त भण्डारे के बाद सेवक को आपने न जाने कितनी दया, कृपा व प्रेम से अपने बिलकुल नज़दीक ही काफ़ी देर बिठाया और न जाने कितना प्रेम बख्शा और फिर परशादी दी और फिर फ़रमाया कि - "अब मैं जल्द ही शरीर छोड़ना चाहता हूँ." चरण कमलों को हृदय और माथे से लगाकर बिदाई लेकर सेवक बाहर निकल चुका था कि आपने कुछ बातें बतलाने के लिए फिर बुला लिया। यह बिलकुल आसाधरण ही था। मगर सेवक इन इशारों को उस समय पूरी तरह नहीं समझ पाया कि मेरे प्रियतम की वापिसी का समय नज़दीक आ पहुँचा है।

गुरुदेव सबका कल्याण करें.

पूज्य गुरुदेव डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी के गुरुजन तथा वंश-परिवारी

- श्री जयनारायण गौतम, अहमदाबाद

पूज्य डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी

प्रातः स्मरणीय संत प्रवर 'श्रीकृष्ण' ने उत्तरप्रदेश के सिकन्दराबाद में जब एक सौ वर्ष पहले, पिताश्री भगवददयाल व माता श्रीमती विशन देवी के यहाँ आश्विन शुक्ल नवमी, विक्रमी संवत 1951 तदुनसार 15 अक्टूबर सन 1894 ईस्वी के पुनीत दिवस जन्म पाया होगा, उस समय 'वैदिक' भावना का आशीर्वाद " शत जीवी भव" में निहित आंतरिक आकाँक्षा उन माता-पिता के मन में सक्रिय रही होगी कि बेटा प्रसिद्धी प्राप्त शतायुष बने। इस ही भावना के अनुरूप 'श्रीकृष्ण' नामकरण हुआ. ऐसे व्यक्ति दुनिया में इनेगिने ही मिलते हैं जो 'यथानाम तथा गुण' वाले सिद्ध हुए हों, पर हमारे महामना 'श्रीकृष्ण' ऐसे ही खरे उतरे थे।

'शत' शब्द का प्रथमाक्षर 'श' और श्रीकृष्ण शब्द का प्रथमाक्षर भी 'श' इस अनुरूपता की पुष्टि करते हैं कि महामना परम संत के समारोह आयोजन में 'जन्म शताब्दी' भाव सार्थक हुआ, फलतः चंहुओर प्रकाश की राशिमयां बरस रहीं हैं।

इन महामना का भौतिक शरीर तो 76 वर्ष में दिवंगत हो गया था, पर मानवी कल्याण की भावना की प्रसिद्धि आज भी छिपी नहीं हैं. एक ओर सन 1994 ई. के जन्माष्टमी पर्व में उन 'वासुदेव' की याद में समस्त भारत देश नतमस्तक हैं कि उन्होंने स्वयं को ज्ञान, विज्ञानं, कर्म, उपासना के रहस्य का प्रतीक बनकर दिखाया था, तो दूसरी ओर संत प्रवर डॉक्टर 'श्रीकृष्ण' ने आचरण, गृहस्थ धर्म, जीवन का समुच्चय स्वयं बनकर दिखाया कि जन साधारण उस व्यवहार को अपनाकर अपनी गिरी पड़ी वर्तमान स्थिति से उभर सके। इन्हीं कल्याणकारी महान विभूति की पृष्ठभूमि में रहे उनके गुरुजन तथा वंश-परिवार का संक्षिप्त सा परिचय, अपरिचित प्रेमी भाई-बहनों के लाभार्थ पुनः प्रस्तुत हैं।

गुरुदेव के गुरुजन

पूज्य गुरुदेव के परम पूज्य गुरु महाराज महात्मा रामचन्द्र जी अपने इलाक़े के एक प्रसिद्ध कायस्थ घराने चौंधरी ख़ानदान के चौंधरी हरबख़्श राय जी के सुपुत्र थे. चौ. हरबख़्श राय के दूसरे सगे भाई का नाम चौंधरी उल्फ़त राय सक्सेना था. चौंधरी हरबख़्श राय के दो पुत्र थे - (1) महात्मा रामचन्द्र, और (2) महात्मा रघुवर दयाल. उधर चौ. उल्फ़त राय के दो पुत्र - (1) श्री राम स्वरुप, (2) डॉ. कृष्णस्वरूप जी थे. रामचन्द्र जी का जन्म बसन्त पंचमी पर्व के दिन 02-02-1873 को हुआ था. पढ़े एवं आध्यात्मिक शिक्षा जनाब फ़ज़्ले अहमद खां साहब से पायी. आपको शिक्षक पदवी 23-01-1896 को मिली एवं आचार्य (ताअम्मा) पदवी के 11-10-1896 को पुष्टिकरण हुआ. सत्संग कार्य प्रसारण 1914 ई. से किया, कुल आयु 58 वर्ष में 15-08-1931 को 01.00 बजे (रात) को शरीर का निधन हुआ था. इनकी समाधि फ़तेहगढ़ में कन्नौज मार्ग पर है।

पूज्य महात्मा रामचन्द्र जी (लाला जी) महाराज ने सबसे पहला सत्संग इलाहबाद (प्रयाग) में 1929 में किया था. विचारों में 'सन्तमत' के अनुयायी थे. हिंदी, उर्दू, फ़ारसी व अंग्रेजी भाषाओँ में प्रवीण थे. दान-दक्षिणा नहीं लेते थे - यदि कभी किसी ने हठ पूर्वक श्रद्धा से कुछ दिया भी तो तुरन्त 'सत्संग' कार्य में लगा देते. मनुष्य का आध्यात्मिक, सामजिक उत्थान उनका ध्येय रहा. स्वामी ब्रह्मानन्द सन्यासी उनके मित्र थे एवं उनके न्योछावर शिष्य रहे, हमारे पूज्य डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी।

महात्मा रामचन्द्र जी के बाद कुछ काल उनके पुत्र मा. जगमोहन नारायण ने कार्य संचालन रखा - उनको दीक्षा मौ. अब्दुलग़नी खां साहब ने दी.थी. मा. डॉ. महेश्वरी सहाय ने उज्जैन में (शिष्य मा. रामचन्द्र - सहपाठी मित्र डॉ. श्रीकृष्ण तथा म.बा. श्यामबिहारी, पोस्टमॉस्टर, फ़तेहगढ़ ने लोकल कार्य देखा. और म.पं. हीरालाल जोशी रावटी (रतलाम) शिष्य लाला जी + डॉ. कृष्णस्वरूप जी - ने मध्य प्रदेश में सत्संग कार्य चलाया।

महात्मा श्री रघुवर दयाल जी

महात्मा रघुवर दयाल जी म. रामचन्द्र जी के सगे छोटे भाई एवं म. रामचन्द्र जी की तरह गृहस्थी साधु थे - गुरु परम्परा में अटूट विश्वास था एवं मौलवी फ़ज़्ले अहमद खां के शिष्य थे। म. रामचन्द्र जी को उन्होंने मात्र बड़े भाई ही नहीं, अपितु गुरुवत श्रद्धा दी. इनका जन्म

भी करवाचौथ के दिन 07-10-1875 को हुआ। 1911 ई. को होलिका पर्व पर श्री लाला जी से आचार्य पदवी मिली थी जिसकी 1913 ई. में जनाब मौ. अब्दुलग़नी खां ने पुष्टि की थी।

आपका स्वभाव अत्यन्त विनोद प्रिय था और शिक्षा की प्रणाली भी इसी रंग में रमी हुई थी. इनका आशीर्वाद सबको सहायक था. इनका कार्यक्षेत्र कानपुर रहा, और इन्होने काफ़ी प्रसद्धि पायी. इनकी समाधि भी कानपुर में है। वहीँ हर वर्ष भण्डारा आयोजित किया जाता है। आपने 07-06-1947 को कानपुर में शरीर त्याग किया था. इन्हीं के नाम पर कानपुर में 'रघुवर नगर ' है।

पूज्य बैनर्जी साहब का सानिध्य

एक अन्य सन्त श्री अक्षय कुमार बैनर्जी से गोरखपुर में मिलन 1958 में हुआ. उनसे भी श्री गुरुदेव को प्रेमदान 1966 तक मिला. वे 'शिव सिद्धान्त प्रणाली' के सिद्ध पुरुष थे एवं समय-समय पर उपयुक्त मार्गदर्शन देते रहते थे। श्री गुरुदेव ने पुनः अपना 'गुरु' बैनर्जी साहब को नहीं बनाया था, पर आदर उनके प्रति वैसा ही था. सन्तों में दुइ नहीं होती। श्री बैनर्जी साहब अपनी आध्यात्म प्रसादी श्री गुरुदेव को दे गए थे - श्री बैनर्जी साहब के लिखित गूढ़ रहस्यों को स्पष्ट करने वाले विचार अंग्रेजी में लिखित - Discourses on Hindu Spiritual Culture नामक तीन पुस्तकों में पूज्य गुरुदेव ने वर्तमान अध्यक्ष डॉ. करतार सिंह जी के संरक्षण में दिल्ली में करवाया।

गुरुदेव के गुरुभाई

महात्मा डॉ. कृष्णा स्वरुप जी

महात्मा. डॉ. कृष्ण स्वरुप जी, जयपुर, सुपुत्र चौ. उल्फ़तराय, म. रामचन्द्र जी के चचेरे भाई थे, एवं उन्हीं की आज्ञा से महात्मा फ़ज्ले अहमद साहब से दीक्षा ली थी. परन्तु तरबियत म. रामचन्द्र से पायी थी। उनकी जन्मतिथि 22-12-1879 है। आगरा मेडिकल कॉलेज से 1905 में पास करके डॉक्टर बने थे।

म. रामचन्द्र से उन्हें 1931 के प्रारम्भ में आचार्य पदवी मिली थी. वे 1915 से 1920 तक रतलाम ज़िले के रावटी में सरकारी डॉक्टर थे एवं उनके ही यहाँ काम करने वाले प्रिय शिष्य थे पं. रेवाशंकर और श्री हीरा लाल जोशी (बाप्पा जी) फिर वे 1920 से 1934 तक अजमेर

और 1934 से 1958 तक जयपुर रहे एवं 19-09-1958 को जयपुर में शरीरान्त हुआ. आपने सत्संग प्रसार राजस्थान एवं मध्यप्रदेश में किया।

महात्मा. डॉ. चतुर्भुज सहाय जी

. डॉ. चतुर्भुज सहाय जी का कार्यक्षेत्र पहले एटा फिर मथुरा में ही मुख्यतः रहा. वे. भी म. रामचन्द्र के शिष्य थे. उनका जन्म कासगंज के ही समीप ग्राम चमकरी में 03-11-1883 ई. कार्तिक शुक्ल चतुर्थी को हुआ था। पिताश्री का नाम था श्री रामप्रसाद कुलश्रेष्ठ. प्लेग की महामारी के दिनों में डॉ. चतुर्भुज सहाय जी ने सतत 'फ्री' सेवा दी थी।

विचारों में स्वतन्त्र दार्शनिक हिन्दुत्व प्रभाव के थे एवं दार्शनिक इतिहास की जानकारी का बाहुल्य उनमें था। अनेक पुस्तकें उन्होंने प्रकाशित करीं थीं. 'साधन' पत्रिका (मथुरा) उनकी संस्था का मुख्य प्रकाशन है. उनकी यौगिक प्रणाली में 'प्रकाश' का महत्त्व रहा है. ७४ वर्ष की आयु पर शरीरान्त मथुरा सत्संग भवन में हृदयगति रुकने से हुआ। डॉ. साहब के बाद उनकी पत्नी 'जियामाता' के नाम से सत्संग चलाती रहीं. उनके पुत्र डॉ. विजेंद्र कुमार एवं श्री हेमेंद्र कुमार ने दीक्षा डॉ. श्रीकृष्ण जी से ली थी. साधन मासिक पत्रिका को अब उनके पुत्र प्रोफेसर (डॉ) नरेन्द्र कुमार मथुरा से चला रहे हैं।

महात्मा. श्री बृज मोहन लाल जी

आपका जन्म रामनवमी के पवित्र दिन 31-03-1898 को पूज्य लालाजी के गुरु महाराज पूज्य हुजूर जनाब रायपुरी साहब के आशीर्वाद से पूज्य चच्चा जी महाराज के सुपुत्र के रूप में हुआ. साँसारिक व आध्यात्मिक शिक्षण पूज्य लालाजी से पाकर भौंगाँव वाले मौलवी साहब ने अपनी पगड़ी इनके सिर दशहरे पर सन 1928 में बाँधी और पूज्य लालाजी ने ही इन्हें सम्पूर्ण आज्ञाएँ दिनांक 31-01-1928 को प्रदान कर दीं।

पू. लालाजी के कहने पर थानेदारी छोड़कर क्लर्की करी व जीवनयापन पूरी निष्ठां और सादगी से किया. आप पूज्य लालाजी की भाँति भजन बहुत सुरीले ढंग और भाव से गाते थे। आप सिकन्दराबाद और मथुरा भण्डारों में भी जाते थे। इनके दो पुत्र हुए, श्री ओंकार नाथ जी तथा मुन्ने बाबू और शिष्यों में प्रमुख रहे सर्वश्री पेशकर मोहन लाल (बुलन्दशहर), पेशकर कुंवर बहादुर (बरेली) और यशपाल जी (देहली) में सत्संग कार्य करते रहे।

अन्य सुहृज्जन

संगत की सेवा जहाँ एक ओर उत्तराधिकारी करते हैं - तहाँ अपने आपको दबा या छुपाकर अन्य भाई लोग भी अपने आपको सेवा में व्यस्त रखते हैं. म. रामचन्द्र जी, म. रघुवरदयाल जी एवं डॉ. कृष्णा स्वरुप के बाद यशस्वी भक्तों में जयपुर के ठाकुर रामसिंह के बाद डॉ. हरिनारायण सक्सेना जी हैं. वे अब जीर्ण-शीर्ण परिपक्व आयु में भी फ़तेहगढ, कानपुर, लखनऊ, रावटी, सिकन्दराबाद, ग़ज़ियाबाद, भण्डारों में सम्मिलित होते रहते हैं। इन्होने भी अंग्रेजी, हिंदी में 'दर्शन' विषय पर कई पुस्तकें लिखीं हैं. डॉ. हरनारायण जी ने मार्च 1928 में म. रामचन्द्र से दीक्षा ली थी एवं तकमील म. रघुवर दयाल, म. डॉ. कृष्ण स्वरुप जी से पायी थी और अब वे पूरी तरह से सत्संग समर्पित जीवन में रहते हैं. अपने पुत्रों को दीक्षा डॉ. सरदार करतार सिंह जी से दिलाई हैं।

वंश परिवार - संस्कारी माता पिता

परम पूज्य महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी के पिता जी, श्री भगवत दयाल भटनागर, मुहल्ला कायस्थवाड़ा, सिकन्दराबाद (जिला बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश) के कौटुम्बिक निवासी थे, कि जो अपनी सर्विस की अवधि में पर्याप्त समय फ़तेहगढ़(फ़र्रुख़ाबाद, उ.प्र.) में सार्वजनिक निर्माण विभाग में 'ओवरसियर ' रहे. 'सर्विस' के बाद सिकन्दराबाद में आटे की बिजली की चक्की चला रखी थी. शरीर से लम्बोतरे, गौर वर्ण के थे. पिताश्री डेरा बाबा जयमल सिंह, व्यास, जिला अमृतसर (पंजाब) के 'राधास्वामी' सत्संग के अनुयायी थे, एवं स्वयं संत सावनसिंह जी महाराज के शिष्य थे और उनकी पत्नी स्वनाम धन्य 'श्रीमती कृष्णा जी इन्हीं महाराज सावन सिंह जी से दीक्षित थीं, जो आजन्म अंतिम सांस तक हुजूर सावन सिंह जी की पुस्तिका संतमत का नित्य पाठ करती रहीं. इस प्रकार घर में शुद्ध सात्विकी वातावरण था।

जन्म एवं शिक्षा-दीक्षा

महामना डॉक्टर श्रीकृष्ण लाल जी सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश) का जन्म आश्विन शुक्ला नवमी (श्राद्ध पक्ष) के बाद पवित्र नवरात्र पर्व की मंगलवार संवत 1951 विक्रमी, तदनुसार 15-10-1894 का हैं. सुन्दर छवि व हृष्ट-पुष्ट शरीर के पाँच फुट साढ़े

सात इंच के थे. श्रीकृष्ण जी का विवाह 1916 ई. में हुआ था. आपने 76 वर्ष की आयु में वैशाख शुक्ला 12 संवत 2027 वि. सोमवार तदनुसार 12 रबी उलअव्वल बारे वफ़ात दिनांक 18-05-1970 को शरीर छोड़ा।

युवा श्रीकृष्ण लाल ने एस. एल. सी. एन्ट्रेंस पास करने के बाद कुछ समय 'क्लर्की', फिर 'टीचरी' करी पर असंतुष्ट से रहते थे. इस पर गुरुदेव की अद्भुत कृपा से डॉक्टरी करने की इच्छा पूर्ण हुई।

उनकी भेंट महात्मा रामचन्द्र से 1914 ई.में फ़तेहगढ़ में हुई थी एवं पूर्वजन्म के संस्कारों ने यकायक ज़ोर मारा, कि 1915 ई. में उनको म. रामचन्द्र ने आगे शिष्य वर्ग को उपदेश करने की अनुज्ञा दे दी। मई स. 1920 ई. में श्री लालाजी ने 'इज़ाज़त ता अम्मा ' मौखिक दी फिर उसको ही 1931 में लिखित प्रदान कर दी थी कि जिसकी तसदीक़ (पुष्टि) मौ. अब्दुलग़नी खां साहब ने करी थी।

गुरुदेव के भाई-बन्धु

परमपूज्य म. श्रीकृष्ण ने भाइयों को पढ़ाया. दूसरे भाई श्री गिरवर कृष्ण जी भी श्री लालाजी महाराज से दीक्षित थे. वे पंजाब एवं दिल्ली में इनकम टैक्स अधिकारी रहे एवं हमारे वर्तमान अध्यक्ष आचार्य डॉ. करतारसिंह जी के साथी थे, तीसरे भाई 'बैनी' का शादी से पहले ही निधन हो गया था. चौथे भाई डॉ. महाराज कृष्ण भटनागर (अब 84 वर्ष) रिटायर्ड हेल्थ ऑफीसर, ग़ाज़ियाबाद में रहते हैं - जिन्हें पू. डॉ. श्रीकृष्ण जी ने दीक्षा परमपूज्य म.रघुवर दयाल (चच्चा जी) से दिलवाई थी एवं सत्संगी तरबियत स्वयं देते रहे. अब वे तन-मन-धन से सत्संगी सेवा में रत हैं. पाँचवे भाई जगदीश कृष्ण जी को पढ़ा-लिखा कर केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग में 'ओवरसियर' कराया था, वे श्री गुरुदेव से दीक्षित थे.

तीनो बहनोइयों में से बड़े बहनोई श्री बलबीर सहाय भटनागर महात्मा श्री बृजमोहन नारायण म. रघुवर दयाल, चच्चा जी महाराज के शिष्य थे.दूसरे बहनोई डी.ए.वी.कॉलेज बुलन्दशहर के प्रिन्सिपल थे एवं तीसरे बहनोई वेस्टर्न रेलवे में सीनियर पी.डब्लू.आई. इंजीनियर थे ।

सुयोग्य सुपुत्र

परम् पूज्य डॉक्टर साहब के बड़े सुपुत्र डॉक्टर हरिकृष्ण जी ने अपने पूज्य पिता जी की डाक्टरी दुकान सम्भाली थी कि जिस पर आज भी उन्हीं के पौत्र डॉ. नरेन्द्र बैठते हैं. माननीय डॉ. हरिकृष्ण तीनों भाइयों में आध्यात्मिक शिक्षा में सबसे अग्रणी रहे और आजीवन सत्संग कराते रहे. आपको पूज्य गुरुदेव ने 'इज़ाज़त ता अम्मा ' देकर पूर्णाचार्य भी बनाया।

पूज्य डॉ. साहब के दूसरे सुपुत्र श्री राधाकृष्ण हैं जो देहली में राजकीय लेक्चरर थे, अब निबृत आयु में ग़ाज़ियाबाद अपने फ्लैट में रहते हैं - एवं पर्याप्त पढ़ी-लिखी संतानों के पिता हैं. तीसरे सुपुत्र श्री गोपाल कृष्ण जनरल इंश्योरेन्स के सीनियर अधिकारी हैं एवं अपने मकान में ग़ाज़ियाबाद में रहते हैं. सभी की सत्संगी वृतियाँ हैं।

साहसी, कर्तव्यनिष्ठ और करुणानिधान - मेरे पिता परमेश्वर

- डॉ. हरिकृष्ण भटनागर, सिकन्दराबाद

मेरे वालिद अर्थात हमारे गुरुदेव परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी अपने ज़माने के एक महान संत हुए हैं. उनमें वे सभी गुण व खूबियाँ मौजूद थीं जो एक संत में होनी चाहिए। वे प्रेम, त्याग, सेवा व दीनता की साक्षात् मूर्ति थे। मेरा उनका मेरे जन्म से लेकर उनके निर्वाण तक का रात-दिन के लगभग 47 वर्ष का घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। मैंने उनको तथा उनके व्यक्तित्व के हर हिस्से को बड़ी बारीकी से देखा है, उनकी आत्मा को अपनी सम्पूर्ण नग्नावस्था में महसूस किया है । वह बाहर से जितने सख्त, मज़बूत और साहसी नज़र आते थे, भीतर से उतने ही नर्म, दयालु व रहमदिल थे। प्यार उनकी वाणी से बरसता था। उनकी पुण्यतिथि के अवसर पर उनकी ऐसी शानदार हस्ती के कुछ तज़ुर्बात पेश कर रहा हूँ।

(1) एक बार का ज़िक्र है कि उन्होंने मुझे हुक्म दिया कि तुम इस पेशे (डाक्टरी) से दुनियाँ ही नहीं, दीन भी कमा सकते हो, बस ईमानदारी, मेहनत व नेकनीयती से काम करते चले जाओ। हाँ, सचमुच जो व्यक्ति गुरुदेव की तालीम पर सख्ती से अमल करेगा, उसे चाहे दो वक़्त की रोटी के अलावा और कुछ न भी मिले, परन्तु सत्संग में रहकर उनके बताये रास्ते पर चलकर ईश्वर की कुर्बत (सामीप्य) हासिल कर सकेगा और निशिचय ही परमात्मा के करीब रहेगा। एक दिन मैं clinic (दवाखाने) से किसी कार्यवश घर आया हुआ था तो गुरुदेव ने मुझे बुलाकर कहा कि मैंने आपके नुख्से पढ़ लिए हैं। ये बहुत महँगे हैं। हमारी गरीब जनता इतना पैसा खर्च नहीं कर सकती। आप क्या समझते हैं कि आपकी दवाएँ फ़ायदा करती हैं ? नहीं दरअसल फ़ायदा करने वाली शक्ति कोई और है। आप परचे सस्ते लिखा करें जो जनता आसानी से afford (खर्च) कर सके। और जो कुछ लिखें ईश्वर के ध्यान में लिखें। इस भावना के साथ कि मरीज़ जल्दी से ठीक हो। अगर आपने ये रवैया इख़्तियार कर लिया तो थोड़े ही पैसों में काम हो जायेगा और मरीज़ भी सन्तुष्ट और जल्दी स्वस्थ होगा। इसके बाद मैंने यही रवैया इख़्तियार कर लिया. मैंने देखा कि मेरी प्रैक्टिस पर कोई आँच नहीं आयी बल्कि फ़ायदा हुआ।

(2) गुरुदेव परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज कहा करते थे कि जो व्यक्ति दुनियाँ नहीं कमा सकता वह दीन क्या ख़ाक कमायेगा। वह इरादे (willpower) के बहुत ही मज़बूत थे, साहसी व हिम्मत वाले भी बहुत थे। जायज़ बात पर वह किसी की भी नहीं सुनते थे। मैंने ज़िन्दगी में किसी भी वक्त किसी मुसीबत में उन्हें हिम्मत हारते नहीं देखा था। वह अन्य किसी भी व्यक्ति की पीड़ा देखकर तड़प उठते थे और हर प्रकार का खतरा मोल लेकर तन-मन-धन से उसकी सेवा करने को तत्पर रहते थे। ऐसी ही एक घटना याद आती है :-

हमारे ख़ानदान की कुछ गाँवों में ज़मींदारी थी जिसका लगन वसूल करने के लिए गुरुदेव ने एक आदमी मुक़र्रिर कर रखा था। एक दिन गुरुदेव clinic (दवाखाने) पर बैठे थे। देखते क्या हैं कि वही व्यक्ति खून से लथपथ उनके सामने खड़ा है। आपने सबसे पहले उसके घावों की मरहम पट्टी की, फिर पूछने पर पता लगा कि लगान वसूल करने गया था, वहीं गाँव वालों ने घेर कर बेरहमी से मारा है। बस गुरुदेव तिलमिला गए, फ़ौरन तांगा मँगवाया, बन्दूक हाथ में उठायी और उस व्यक्ति को साथ लेकर गाँव जा पहुँचे और गाँव वालों को ललकारा। कोई व्यक्ति सामने नहीं आया। बाद को गाँव के लोगों ने माँफी माँगी, तब मामला रफ़ा-दफ़ा हुआ। तो यह उनके साहस और हिम्मत की मिसाल है।

(3) एक और किस्सा याद आता है कि वो मुसीबत में पड़े व्यक्ति को देखकर किस कदर व्याकुल हो उठते थे कि अपनी स्वयं की ज़िन्दगी को भी ख़तरे में डाल देते थे। आज़ादी के पूर्व की घटना है। मुझे अच्छी तरह याद है. मेरी उम्र उस समय 10-11 साल की थी। उन दिनों कांग्रेस पार्टी का ज़ोर था। आये दिन अंग्रेज़ों की क्रांतिकारियों से झड़पें सुनने में आती थीं. हमारे कस्बे से थोड़ी दूर पर एक क़स्बा गुलावठी है, वहाँ पर पुलिस और कांग्रेसियों की मुठभेड़ हुई थी जिसमें कांग्रेसी घायल हो गए थे। न मालूम कैसे उन ज़ख़्मी कांग्रेसियों को वह सिकन्दराबाद ले आये और अपने अस्पताल में रखकर इलाज शुरू कर दिया। पुलिस को भी शायद भनक पड़ गयी। गुरुदेव को अंदर किसी ने बताया कि डॉ. साहब, आपके अस्पताल को पुलिस ने घेर लिया है। उनके चेहरे पर चिन्ता की शिकन तक नहीं आयी। बड़े धीरज के साथ उन्होंने कांग्रेसियों को पीछे के रास्ते से बाहर निकाल दिया और दृढ़ता से

थानेदार को आमंत्रित किया। पुलिस वहाँ कांग्रेसियों को न पाकर लज्जित होकर चली गयी। ऐसी दृढ़ता, साहस तथा प्रेम व करुणा जैसे परस्पर विरोधी गुणों की मिलौनी थे गुरुदेव।

(५)) इसी प्रकार की करुणा तथा साहस से भरी एक घटना याद आती है जिससे उनके अद्भुत एवं दिव्य व्यक्तित्व में झाँकने का अवसर मिलता है। मेरी बहिन को पढ़ाने जो पंडित जी आते थे उनके गाँव में एक डकैती के दौरान महिलाओं से बड़ी बदसलूकी की गयी जिसमें एक महिला को काफी शारीरिक कष्ट पहुँचा था, जिसके लिए उस महिला को सिकन्दराबाद के गवर्नमेन्ट अस्पताल में भर्ती करा दिया गया था। इत्तफ़ाक़ से वहाँ डाक्टर ड्यूटी पर नहीं था जिससे महिला की हालत ख़राब होती जा रही थी। उन दिनों सरकारी डाक्टर का बहुत दबदबा होता था। शाम को पंडित जी ने आकर यह सारा किस्सा गुरुदेव को बताया तो गुरुदेव इतने भावविह्वल हुए कि फ़ौरन ताँगा मँगवाकर पंडित जी को साथ लेकर सरकारी अस्पताल से मरीज़ को अपने साथ ले आये और घर पर रखकर इलाज शुरू कर दिया।

अगले रोज़ सरकारी डाक्टर के आने पर किस्सा पता लगा। उसने इसको अपना अपमान समझा और पुलिस को लेकर हमारे घर चले आये। गुरुदेव पर अभियोग था कि वो बिना आज्ञा मरीज़ को लेकर चले आये हैं। गुरुदेव उस समय खाना खा रहे थे, मैंने जब उन्हें इस बात की इत्तला दी तो भी वे बड़े इत्मीनान से खाना खाते रहे, कोई घबराहट या आक्रोश उनके चेहरे पर नहीं था। खाना खाने के बाद उन्होंने मुझसे बन्दूक मँगवाई और बन्दूक थामकर थानेदार से बातचीत की। काफ़ी देर तक काफ़ी ऊँचे स्वर में बातचीत की आवाज़ें सुनाई देती रहीं। फिर गुरुदेव ने थानेदार तथा डाक्टर को मरीज़ की पीड़ा तथा डाक्टर की duty (कर्तव्य) का भान कराया। डाक्टर ने महसूस किया कि मानवता के नाते गुरुदेव ने जो किया वह ठीक किया है। थानेदार भी लज्जित होकर चला गया।

तो यह हैं हमारे गुरुदेव के बुलन्द हौंसले के परिचय और पीड़ितों के लिए हमदर्दी के जज़्बे की मिसालें। कौन है आज के ज़माने में ऐसी निःस्वार्थ हमदर्दी रखने वाला कि अपनी जान तथा आजीविका पर ख़तरा मोल लेकर सेवा करे? वाकई महापुरुषों का तो जीवन ही अपनाने योग्य होता है। सचमुच शब्दों के मायाजाल में कुछ नहीं है, न गीता पढ़ने के लाभ है, न क़ुरान पढ़ने का। हमारे लिए तो गुरुदेव के जीवन को हूबहू अमल में लाने की ज़रूरत है. उनका बताया रास्ता ही गीता है,क़ुरान है।

गुरुदेव सबका भला करें.

(ख) प्रवचन

1. हमारा तरीक़ा
2. अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय - प्रथम चरण
3. अभ्यास क्यों किया जाता है ?
4. अभ्यास में तरक़्क़ी की परख
5. अनेक समस्याओं का समाधान - हमारे प्रभु के हितोपदेश
6. आत्मा की धार
7. आत्मा की वापसी
8. इन्सानी ज़िन्दगी का आदर्श
9. एकता ही सत्य है
10. कथनी, करनी, रहनी
11. तत्वज्ञान की चाह
12. दीन भाव
13. परमात्मा की दयालुता
14. परमार्थ पथ में पात्रता
15. परमार्थ में सफलता पाने के साधन
16. प्रेम और प्रति
17. प्रेमी भाइयों के ध्यान योग्य सन्देश
18. ब्रह्मलीन परमसंत डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज का एक पत्र
19. भक्ति के अनेक रूप
20. मन, विचार-शक्ति और मुक्ति
21. मनुष्य का सर्वोच्च कर्तव्य क्या है ?
22. मनुष्य जीवन का आदर्श सच्चे आनन्द की प्राप्ति करना है
23. मार्ग दर्शन
24. मोक्ष प्राप्ति के लिए अनिवार्य है - इच्छाओं का त्याग
25. व्यवहार
26. संत - वाणी
27. सन्त दर्शन ही सत का दर्शन है
28. संसार को मन से छोड़ देने से संसार के स्वामी बन जाओगे
29. सच्ची भेंट
30. सच्चे आत्मदर्शी गुरु का सहारा लें

31. सच्चे आनन्द की प्राप्ति
32. सत्संगी के लिए दिशा निर्देश
33. सद्गुणों को अपनाना सीखें
34. सद्गुरु प्रसाद
35. सन्त वाणी
36. संतों का निर्मल परमार्थ व आत्मा की आज़ादी
37. साधक की उन्नति के लक्षणों की पहचान स्व-निरीक्षण से मुमकिन
38. साधना में सच्चे गुरु का सहारा लें
39. हमारे दुखों के कारण
40. अपने आपको पहिचानो
41. अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय
42. आप अपनी किस्मत खुद बदल सकते हैं
43. ईश्वर की दूरी और नज़दीकी
44. ईश्वर से सहयोग करें - जिस हाल में उसने हमें रखा है, उसमें ख़ुश रहें
45. कथनी, करनी, रहनी
46. गुरु का प्रेम पाने के लिए शिष्य क्या करे ?
47. गुरु कृपा कैसे प्राप्त हो ?
48. गुरु में प्रीति आये बिना उन्नति नहीं होती
49. चाह और दीनता
50. जन्म जन्मान्तर के संस्कार
51. तुम जब ख़ुद तैयार हो जाओगे तो गुरु की मदद काम पूरा करेगी
52. दीनता संतों के चरणों में बैठने से मिलती है
53. परमार्थ के मार्ग में सांसारिक बाधाएँ
54. प्रार्थना
55. प्रेम का स्वरुप
56. भेंट
57. मन और माया से आत्मा को आज़ाद करो
58. मनमानी मत करो
59. विश्वास और श्रद्धा
60. संत करहिं भवसागर पारा
61. संत मत में वेदान्त के साधनों का समन्वय
62. सर्वप्रथम कर्तव्य क्या है - समर्पण क्या है ?
63. साधना के दो पथ

64. स्तुति करने का तरीक़ा
65. ईश्वर के नाम का जाप ईश्वर तक पहुँचाता है - संतों की कृपा
66. गुरु का काम सेवा और सहारा देना है
67. गुरु प्रेम एवं गुरु कृपा
68. गुरु शिष्य का अन्तरंग प्रेम
69. गुरु-भक्ति का भेद और पाँच प्रश्न
70. ज़िन्दगी में रूहानियत लाओ (जीवन में आध्यात्मिकता लाओ)
71. दीनता परमार्थ में अनिवार्य है तथा अहंकार बाधक
72. नाम की महिमा
73. पढ़ो और मनन करो
74. परमात्मा से प्रेम करो, अभ्यास करो और यह मत सोचो कि कितना समय लगेगा
75. परमार्थ दीनता से बनता है
76. परमार्थ में सफलता के सुलभ साधन
77. पूजा में मन न लगने के कारण और उपाय
78. प्रेम का स्वरुप
79. प्रेम से वैराग्य - आत्मज्ञान या ईश्वर प्राप्ति का सरल और छोटा रास्ता
80. फ़ैज़ - ईश्वर कृपा
81. भक्ति मार्ग में सांसारिक बाधाएँ
82. भजन सुमिरन का तरीक़ा
83. मन की चौंकसी
84. मन के विकार
85. मन को दुनियावी इच्छाओं से साफ़ करो
86. मनुष्य की तीन प्रवत्तियाँ
87. मोक्ष का ज़रिया धन
88. वैराग्य और अनुराग
89. शरण की महिमा
90. सत्संग में आने का असली फ़ायदा

हमारा तरीक़ा

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

हमारे यहाँ ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग - दोनों को साथ-साथ लेकर चलते हैं । जहाँ तक लक्ष्य का सम्बन्ध है, हमारे यहाँ केवल एक ईश्वर को मानते हैं, जो सर्वभूतों का आधार है, जो अनन्त है, अनादि है और वर्णन में नहीं आ सकता । जो सब ब्रह्माण्डों का मालिक है, सब जगह व्याप्त है और जो सब की आत्मा है, सिर्फ़ उसी एक निर्गुण की उपासना करते हैं । जितने अवतार या पैग़म्बर आये, वे उनकी सिर्फ़ कुछ शक्तियाँ लेकर आये, और अपना-अपना काम पूरा करके चले गए । भगवान राम चौदह कला लेकर अवतरित हुए और कृष्ण भगवान सोलह कलायें लेकर आये, मगर पूरी शक्ति लेकर कोई नहीं आया। जैसे हमारे देश में अवतार हुए वैसे अन्य देशों में भी हुए हैं। किसी ने उसे ईश्वर का बेटा कहा और किसी ने पैग़म्बर। ईसाइयों में हज़रत ईसा मसीह हुए, जिन्हें ईश्वर का बेटा कहा गया। मुसलमानों में हज़रत मौहम्मद साहब हुए, वे पैग़म्बर कहलाये। किसी भी नाम से पुकारो, ये सब उसी परमात्मा के प्रतिनिधि (representative) थे जो सिर्फ़ 'एक' है। वे स्वयं परमात्मा नहीं थे, बल्कि उनकी शक्तियाँ लिए हुए थे। अन्तिम प्रतिनिधि हज़रत मौहम्मद हुए। उन्होंने भी एक ही परमात्मा 'जाते-वाहिद' की इबादत (उपासना) करना बताया।

उस पारब्रह्म परमात्मा की इबादत या उपासना के लिए जो तरीक़े हैं, उन्हें चार हिस्सों में बाँटा गया है। उनके नाम हैं - (1) शरीयत, (2) तरीक़त. (3) मार्फत , और

(4) हक़ीक़त।

<u>शरीयत</u> कहते हैं विधि-विधान या कर्मकाण्ड को, जिससे इन्द्रियाँ शुद्ध रहें और शरीर तन्दरुस्त रहे । जो जिस धर्म में पैदा हुआ उसके मुताबिक़ उसके रहन-सहन, सामाजिक रीतियों पर चलना और बरतना, खान-पान, शादी-विवाह वग़ैरा आ जाते हैं। अगर कोई मुसलमान है तो उसको मुसलमानी शरह लाज़िम हैं, जैसे नुमाज़ पढ़ना, वुज़ू करना, उसी

समाज की प्रचिलित पोशाक पहनना, चार से अधिक विवाह न करना, वग़ैरा। यदि कोई हिन्दू है तो उसे हिन्दू धर्म शास्त्र के मुताबिक़ रहनी-सहनी बनाना चाहिये। यही शरियत या कर्मकाण्ड है। अपने-अपने धर्म के मुताबिक़ कर्म करना शरियत कहलाता है।

तरीक़त कहते हैं उपासना को, जिससे मन के विकार दूर होते हैं और मन शुद्ध हो जाता है। मन के तीन रूप हैं

(1) तमोगुणी मन - जो हमेशा बुराई की तरफ़ ले जाता है।

(2) रजोगुणी मन - जो कभी अच्छाई और कभी बुराई की तरफ़ ले जाता है, और

(3) सतोगुणी मन - जो हमेशा अच्छाई की तरफ़ लगाये रहता है।

मन की दो तरह की वृत्तियाँ होती हैं - एक, मलिन वृत्ति, और दूसरी शुद्ध वृत्ति। मलिन वृत्ति भेद-भाव पैदा करती है - मेरा लड़का, दूसरे का लड़का, मेरा घर, तेरा घर, मेरी दुनियाँ, दूसरों की दुनियाँ, मैं आदमी हूँ, यह पेड़ है, जानवर है, इत्यादि, इत्यादि। शुद्ध वृत्ति पैदा होने पर ये सब बातें चली जाती हैं लेकिन यह बहुत ऊँची अवस्था है जिससे मन शुद्ध होकर आत्मा में लय हो जाता है। उसका मिथ्यापन चला जाता है।

इसके बाद तीसरी चीज़ आती है जिसे 'मार्फ़त' कहते हैं। इसमें बुद्धि शुद्ध हो जाती है। बुद्धि दो प्रकार की होती है - एक 'परा' और दूसरी 'अपरा'। जो ख़्यालात और सोच विचार दुनियाँ और उसके सामान के बारे में आते हैं वे सब 'परा' बुद्धि के द्वारा होते हैं। जो विचार ईश्वर चिन्तन से सम्बन्ध रखते हैं वे सब 'अपरा' बुद्धि के कारण होते हैं। बुद्धि शुद्ध हो जाने पर विवेक की प्राप्ति होती है। ' मैं कौन हूँ, कहाँ से आया, यह दुनियाँ क्या है, मेरा इससे क्या सम्बन्ध है, ये सूरज, चाँद और सितारे किसने बनाये, सितारों से भरपूर यह आसमानी चादर किसने बनाई, यह रंग-बिरंगे फूल, यह चहचहाती चिड़ियाँ, यह झरनों का राग, यह बर्फ़ से ढँके पहाड़, ये हरे-भरे जँगल, ये ख़ूबसूरत बच्चे, यह मख़लूक़ किसने बनाया ? कौन है वह ख़ूबसूरत परी जिसने इन्हें सजोया, कौन है वह कुशल कारीगर जिसने इन्हें बनाया, जो इनका मालिक है ? जब यह इतने ख़ूबसूरत, मनमोहक हैं तो इनका बनाने वाला ख़ुद कैसा

होगा ? यहाँ से सोच-विचार करते-करते हैरत (आश्चर्य) के मुक़ाम में आ जाता है, जहाँ बुद्धि शान्त हो जाती है और अपना तर्क-वितर्क बन्द कर देती है।

हैरत दो प्रकार की होती है। एक हैरत महमूद (अच्छे क़िस्म की हैरत) जिसमें हुज़ूरी (ध्यान) हर वक़्त रहती है और एक ऐसी हालत आनन्द की पैदा हो जाती है जो बयान में नहीं आ सकती। यहीं पर आदमी आश्चर्यचकित हो जाता है और कह उठता है -'हैरत, हैरत, हैरत ' - 'वाह गुरु, वाह गुरु, वाह गुरु '। यही विराट रूप का दर्शन है। दुनियाँ के सब काम बिना थोड़ा-सा भी ख़्याल किये होते जाते हैं और उनमें ज़रा सी भी परेशानी नहीं होती। ज़्यादातर वक़्त सोज़ोतड़प (प्रेमावेश) में गुज़रता है, इसमें अपने आप से बेख़बर नहीं होता, हर चीज़ पर क़ाबू रहता है। दूसरी हैरत मज़मूम (बुरी क़िस्म की हैरत) होती है। इसमें और सब बातें तो हैरत महमूद की तरह होती हैं लेकिन किसी तरह का आनन्द और हर हालत की अपने को ख़बर नहीं होती। ऐसे लोगों को मजज़ूब (खिंचा हुआ) कहते हैं। दुनियाँ का कोई भी काम इसमें अक़्लमन्दी के साथ नहीं होता। लोग ऐसे आदमी को पागल समझने लगते हैं ।

इससे अगली हालत जब आती है उसे 'हक़ीक़त' कहते हैं। जो आत्मा द्वारा जाना जाय, जिसका अनुभव आत्मा में हो, जहाँ इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि सब पीछे रह जायें, वहाँ केवल एक शुद्ध आत्मा रहती है और वही अपने प्रीतम का साक्षात्कार करती है। प्रकृति की सारी चीज़ों में से उसे वही एक प्रीतम झाँकता हुआ दिखाई देता है और उसका हृदय इतना विशाल हो जाता है कि सारी दुनियाँ के लिए उसमें जगह हो जाती है। उस परमात्मा के सर्वत्र और और सब में रमे होने का उसे साफ़ -साफ़ भास होने लगता है। सारा विश्व मेरा ही बन्धु है - ऐसी भावना उसमें जाग जाती है। संसार के किसी भी कोने में हुए सभी अवतार, पैगम्बर, देवदूत, उसे एक ही बात कहते हुए सुनाई देते हैं। उनकी भाषा भले ही अलग-अलग हो, लेकिन उसे सुनाई सब एक सी ही देती है, और वह सबका एक ही अर्थ समझता है। यही हक़ीक़त का जानना है। इसी को आत्म दर्शन कहते हैं। इस स्थान पर आकर भेद -भाव, मज़हब सब नीचे रह जाते हैं। सूफ़ी इस जगह कहता है - " ओ मुसलमानों। कहो कि हम

एक ही ईश्वर में विश्वास रखते हैं, जो अब्राहीम, इस्माईल, मूँसा, ईसा, मौहम्मद आदि सभी पैगम्बरों में प्रकट हुआ था, क्योंकि हम उनमें से किसी में अन्तर नहीं देखते।"

आधुनिक युग में परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (फ़तेहगढ़ निवासी) भी ऐसे ही विशाल हृदय के महापुरुष हुए हैं जिन्होंने मुस्लिम सूफ़ी सन्तों की वंश परम्परा को नज़दीक से देखा और उसे अपनाया। इनका अध्ययन करने पर उन्होंने यह जाना की भले ही यह मत हज़रत मौहम्मद से चला हो लेकिन इसमें और हिन्दुओं के वेदान्त में कोई अन्तर नहीं है। फ़र्क़ है तो सिर्फ़ शरीयत में है। सूफ़ी मुसलमान शरह को मानते हैं, क्योंकि वे वैसे मुल्क में पैदा हुए। वेदान्ती हिन्दू कर्मकाण्ड को मानते हैं क्योंकि वे वैसे देश में पैदा हुए। किन्तु इससे हक़ीक़त या वास्तविकता थोड़े ही बदल जाती है। ईश्वर तो वही है जो सबका एक है। अतः उन्होंने एक ऐसी नवीन और अद्भुत प्रणाली को जन्म दिया जिसमें इस्लाम के सूफ़ी मत और हिन्दुओं के वेदान्त का समन्वय है, और वह है आपका सत्संग। जहाँ तक कर्मकाण्ड का ताल्लुक़ है, जहाँ तक शरीयत है, मन का साधना (तरीक़त) और बुद्ध की शुद्धि (मारफ़त) का सम्बन्ध है, हमारा तरीक़ा सनातन है। हमारे वही तरीक़े हैं जिन पर पुराने ऋषि मुनि चलते आये हैं और जिनका हिन्दू शास्त्रों में वर्णन है। और जहाँ तक आत्म दर्शन का ताल्लुक़ है, हमारी परम्परा सूफ़ी है। हम सब उन सब विगत मुस्लिम और हिन्दू महापुरुषों से दुआ करते हैं और उनसे हमें सदा मदद मिलती है जो इस वंश परम्परा में हुए हैं। सब अवतार या पैग़म्बर - चाहे वे किसी देश में हुए हों और चाहे वे किसी मज़हब से ताल्लुक़ रखते हों - चाहे वे राम हों या कृष्ण, मौहम्मद हों या ईसा, या और कोई, हमारे लिए सब एक समान आदरणीय हैं। भले ही उन लोगों ने अलग-अलग रास्ते ईश्वर-प्राप्ति के लिए बनाये हों, पर वे सभी रास्ते उसी लक्ष्य पर पहुँचते हैं, जो लक्ष्य सबका एक है। जहाँ तक सदाचार का सम्बन्ध है, सभी कहते हैं - सच बोलो, नेक काम करो, नेकी पर चलो, बुराई से बचो, दीन दुखियों की सेवा-सहायता करो, सब में एक ईश्वर का ही रूप देखो।

क़ुरआनशरीफ़ में लिखा है - ईश्वर श्रष्टि का कर्त्ता है (Allah is the Creator of all things, and He is One the Almighty) । वह एक है, उसके सिवाय दूसरा कोई

परमात्मा नहीं (There is no God save Him – the Alive, the Eternal) वह नित्य और सर्वशक्तिमान है (Allah is the Absolute, clement), पथ प्रदर्शक तथा संरक्षक भी वही है। वह इष्ट, श्रोता और साक्षी है। वह स्वतः पूर्ण है। (Allah is Hearer, Knower) वह सबमें रमा हुआ है, सर्वज्ञ है (He is Alll Embracing, All Knowing), न उसका आदि है और न अन्त (He is the First and the Last), वह सर्वोच्च सत्ता है जो अप्रत्यक्ष भी है प्रत्यक्ष है। विश्व का कण-कण उसी का प्रदर्शक है। वह सर्वोत्कृष्ट और समृद्धिवान है, विजेता है और महान है। संसार का सबसे बड़ा हितकारी और श्रेष्ठ न्यायकारी भी वही है। सारे पदार्थ उसी से उत्पन्न हुए हैं और अन्त में उसी को चले जायेंगे। (Unto Allah belongeth whatsoever is in the Heaven and whatsoever is in the Earth, and unto Allah all things are returned) जो उसमें विश्वास करते हैं और सन्मार्ग पर चलते हैं वे आनन्द का उपभोग करते हैं - (Those who believe and do right, joy is for them, and bliss their journey's end) इनमें से कोई ऐसी बात नहीं है जो हिन्दू धर्म ग्रंथों में न हो। भेद भाव की बात ही कौन सी है ?

अगर कोई चाहे कि समुद्र को लोटे में भर लूँ तो यह नामुमकिन बात है। वह अपार और अथाह समुन्द्र भला लोटे में कैसे आ सकता है ? फिर वह परमात्मा, जो सारी श्रष्टि का रचयिता है, सम्पूर्ण रूप से कैसे जाना जा सकता है। उसका न आदि है न अन्त। अगर कोई चींटी हाथी को देखने चले तो उसे साश कैसे जान सकती है ? कोई पैर पर रेंग कर यह मालूम कर लेगी कि हाथी खम्बे की तरह है, कोई कान पर चढ़ जाये तो उसे सूप की तरह बताएगी। इतने बड़े हाथी का सम्पूर्ण ज्ञान एक चींटी को नहीं हो सकता। इसी तरह मनुष्य को परमात्मा का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। जिस महापुरुष ने जितना अनुभव किया उतना उसने बता दिया। अपने-अपने अनुभव के लिए सबने अलग-अलग रास्ते अपनाये, मगर लक्ष्य सबका एक ही रहा।

हमारे यहाँ का रास्ता सबसे सरल और सीधा है। यह प्रेम का रास्ता है। सब अवतार और पैग़म्बर हमें प्यारे हैं लेकिन रास्ता हमारा वह है जो हमारे वंश के महापुरुषों ने दिखाया

हैं। सबकी नसीहत अच्छी हैं। सब में से अच्छाई छाँट लो (Take good from all), अगर किसी की कोई चीज़ तुम्हें अच्छी नहीं लगती, तुम्हें पसन्द नहीं आती, तो उसकी बुराई मत करो। प्रेम का रास्ता सबसे छोटा और सरल रास्ता है।

हमारा मत विशाल हृदयता सिखाता है। घर वालों से प्रेम करो, पड़ोसियों से प्रेम करो, मुल्क़ वालों से प्रेम करो, दुश्मन से भी प्रेम करो और जीव-मात्र, बनस्पति, स्थावर-जंगम, सबसे प्रेम करो। सबमें एक ही परमेश्वर समाया हुआ है जो प्रेम का भण्डार है। वही हमारा सच्चा गुरु है। सबसे प्रेम करते हुए तुम भी एक दिन प्रेम रूप हो जाओगे और अपने प्रियतम परमात्मा में समां जाओगे। लेकिन ऐसा करना बहुत कठिन है। हर एक से अपने बलबूते पर ऐसा नहीं बन सकता। तो फिर किसी ऐसे महापुरुष का सहारा लो जो इस रास्ते पर चल चुका हो। केवल इतना करो कि संसार भर की चीज़ों में जो तुम्हारा प्रेम बंटा हुआ है, उसे समेट कर उसके चरणों में लगा दो। यही गुरु धारण करना है। बिना रहबर को साथ लिए, बिना गुरु धारण किये, रास्ता तय नहीं होगा। निर्गुण का ध्यान कैसे हो सकता है ? इसलिए उस महापुरुष की शरण लो जिसने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है। उसका स्थूल शरीर मन्दिर है जिसमें निर्गुण परमात्मा विराजता है। उससे प्रेम करने से, उसका ध्यान करने से, तुम्हें भी आत्मदर्शन होगा। इसलिए हमारे यहाँ के तरीक़े में गुरु धारण करते हैं। गुरु की पूजा को ही मुख्यता देते हैं। गुरु और ईश्वर को दो नहीं मानते।

<u>किसी महात्मा ने अपने शिष्य से पूछा - " तू मुझे क्या समझता है ?" उसने उत्तर दिया - " मैं आपको ईश्वर की जगह समझता हूँ।" महात्मा ने कहा - " यह कुफ्र है, तू मुझे ही परमात्मा क्यों नहीं समझता।" गीता में स्वयं भगवान ने कहा है</u> -

आचार्य मां विजानीयात नाव मन्यते किहिंचित।

न मतरय बुद्धयासूते सर्व देवोमयो गुरुः ॥

(अर्थ - आचार्य को मेरा ही रूप समझना चाहिए और उनको कभी भी ईश्वर से अलग जानकर अपमानित नहीं करना चाहिए। मनुष्य बुद्धि से उनके गुण-दोष का विचार नहीं करना चाहिए। गुरु सर्वदेवमय होता है।)

पहले गुरु को ईश्वर का रूप समझो और अपने आपको उसमें लय कर दो। और जब आदि-पुरुष परमेश्वर के दर्शन हो जायें जो उसमें निवास करता है, तो फिर ईश्वर ही गुरु नज़र आने लगेगा। पहले सगुण ईश्वर की उपासना गुरु-रूप में की जाती है और उसके द्वारा गुरु में लय हो जाने पर ईश्वर के दर्शन निर्गुण रूप में होते हैं।

राम सन्देश : नवम्बर-दिसम्बर, 2008

अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय - प्रथम चरण

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

संतमत के अभ्यासियों को बहुधा यह शिकायत करते सुना गया है कि जो आन्तरिक अभ्यास करने को उन्हें बतलाया गया है, यदि उसको सत्संग में बैठकर करें तब तो मन लगता है और यदि उसी अभ्यास को अकेले में बैठकर करें तो मन नहीं लगता है। न उन्हें अन्तर में कोई ऐसा परिचय मिलता है, जैसे प्रकाश दिखाई देना या शब्द सुनाई देना। होता यह है कि बजाय ईश्वर की तरफ़ ध्यान जाने के, मन संसार की बातों को सोचने में उलझ जाता है और सांसारिक बातों का ही ध्यान आने लगता है। जो समय (आधा या एक घण्टा) अभ्यास के लिए निश्चित किया जाता है वह सोचने में ही व्यतीत हो जाता है।

यह बात निश्चित है कि अभ्यास के समय यदि संसार के कामों तथा व्यवहार का विचार आवेगा तो उस समय मन और सुरत का प्रवाह अन्तर्मुखी न होकर उस इन्द्रिय की तरफ़ होगा जिसके द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता है। जैसे यदि किसी स्वादिष्ट पदार्थ का ध्यान आता है तो मन और सुरत की धार स्वादेन्द्रिय यानी रसना या जीभ की ओर होगी। यदि किसी सुन्दर दृश्य का ध्यान आता है तो मन ओर सुरत की धार नेत्रों की ओर होगी। इसी तरह कान ओर अन्य इन्द्रियों का भी यही हाल है। यह इन्द्रियाँ मनुष्य की वृत्तियों को बहिर्मुखी बनाती हैं और उसके ध्यान या सुरत (attention) को बाहर की ओर यानी दुनियाँ की तरफ़ ले जाती हैं। यह भी बात निश्चित है कि मन के द्वारा एक समय में एक ही काम हो सकता है, या तो वह अपने अन्तर में धंस कर ईश्वर का चिन्तन करे, प्रकाश रूप का दर्शन करे, या शब्द का श्रवण करे। और यदि वह संसार की बातों को सोचता है तो फिर उसका बहाव उधर ही को हो जायेगा। जब तक वह ध्यान में लगकर अपनी सुरत के द्वारा ऊपर की चढ़ाई नहीं करता तब तक उसका मेल चैतन्य की उस धार से नहीं होता जो ऊपर यानी परमात्मा से

आ रही है और जब तक उस धार से मेल न हो तब तक भजन और ध्यान या अभ्यास में रस कैसे आये, कैसे तबियत लगे और अन्दर के परिचय किस प्रकार मिलें ?

अभ्यास या पूजा में बठते समय सिवाय ईश्वर के ख़्याल के और कोई ख़्याल सामने न हो। यदि कोई संसारी काम या उसका ख़्याल करके अभ्यास में बैठते हैं तो उसका मन और सुरत दोनों उस समय उस संसारी काम या उसके विचार से परिपूर्ण है, उस समय उनका प्रवाह नीचे की ओर हो रहा है और उसी नीचे की ओर (सांसारिक) प्रवाह में वह बहा जा रहा है। ऐसी स्थिति में मन ध्यान में नहीं लगेगा। मन को प्रभु के रंग और ईश्वर चिन्तन के गहरे चाव के रंग में रंगना चाहिए, तब वह संसार की बातों से हटकर अभ्यास में लगेगा। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि कोई ऐसा भजन, ग़ज़ल या प्रार्थना जिसमें ईश्वर प्रेम या विरह भरा हुआ हो, दिल से तन्मय होकर गायें और उसके साथ ही साथ अपने संसारी विचारों की ओर प्रवाहित होने से रोककर अन्तर्मुखी बनायें। जैसे ढ़ोलक या किसी और बाजे की ताल पर नाचता हुआ नट रस्से पर चढ़ता हुआ चला जाता है और उसी तरह से भक्ति-भाव और प्रेम भरे उस भजन की तान पर मन और सुरत थिरकते हुए अन्तर में ऊपर की ओर चढ़ाई करने लगते हैं और इस प्रकार अभ्यास में कुछ रस और आनन्द मिलने लगताहै।

अनावश्यक आतुरता

किसी-किसी अभ्यासी का यह हाल होता है कि वह जब अभ्यास में बैठता है तो यह चाहता है कि आन्तरिक चक्रों का जो हाल उसने संत -मत की पुस्तकों में पढ़ा है उनमें से पहला चक्र अभ्यास में बैठते ही खुल जाये। प्रथम तो यह बिना अधिकार बने सम्भव नहीं है और मान लो कि यदि गुरुकृपा से ऐसा हो भी जाय तो फिर उनकी इच्छा होती है कि उसकी झलक बराबर उनके सामने खड़ी रहे। इसी प्रकार गुरुकृपा से यदि कोई आन्तरिक शब्द उन्हें सुनाई दे चुका है तो उस शब्द को भी निरन्तर सुनते रहना चाहते हैं। किन्तु यह झलक या शब्द उनकी अपनी इख़लाक़ी कमज़ोरी (सदाचार की अपूर्णता) के कारण टिकाऊ नहीं रहता। इसका दूसरा कारण यह भी है कि उसकी जो क़दर होनी चाहिये, वे नहीं करते। इसके

कारण अभ्यास में रूखापन और फ़ीकापन पैदा हो जाता है। अभ्यासियों को यह मालूम होना चाहिये कि आन्तरिक चक्रों की झलक दिखाई देना या शब्द सुनाई देना कोई साधारण बात नहीं है और उन स्थानों में स्थिति पाना बहुत ही कठिन है। जब तक अभ्यास के साथ-साथ सदाचार में पूर्णता न आ जाये तब तक स्थिरता आ जाना बहुत कठिन है। किन्तु यदाकदा इन चक्रों के आन्तरिक शब्द, जैसे घंटे की आवाज़ सुनाई देना, यह भी बड़े सौभाग्य की बात है। यदि इसी पर concentrate किया जाये (ध्यान जमाया जाये) तो शनैः -शनैः शब्द की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देने लगेगी। ऐसा लगने लगेगा कि वह ध्वनि निकट आती जा रही है। सबसे आवश्यक बात यह है कि गुरुचरणों में प्रीति और प्रतीति के साथ अभ्यास करता रहे। संतमत में अभ्यास से अभिप्राय यह है कि आत्मा और मन जिसकी ग्रंथि इस स्थूल यानी पिण्ड शरीर में बंधी हुई है, वह खुलने लगे, आत्मा मन के फन्दे से न्यारी होकर उसकी चाल ब्रह्माण्ड की ओर हो और फिर चढ़ाई करके संतों के देश, दयाल देश तक पहुँचे।

अभ्यास करते समय ध्यान में यदि कोई अभ्यासी अपने मन और सुरत को पहले या दूसरे चक्र पर जमावे और कुछ देर के लिए अपनी स्थिति वहीं रखे तो सम्भवतः कोई शब्द न भी सुनाई दे या किसी स्वरुप का दर्शन न भी हो, परन्तु इतना तो अवश्य होगा की मन ने दुनियाँ की तरफ़ से सिमटकर ऊपर की ओर जो चढ़ाई की है, उसका रस अवश्य मिलेगा। इसी प्रकार अभ्यास करते-करते जब शब्द सुनाई देने लगेगा और अपने ध्यान को जोड़ेगा तो धीरे-धीरे उस शब्द के आनन्द और आकर्षण में खिंचा हुआ उस स्थान तक पहुँच जायेगा जहाँ पर वह शब्द हो रहा है। इस बात के लिए यह आवश्यक है कि जब अभ्यास करने बैठें तो अपने आपको दुनियाँ के सब ख़यालों से अलग कर ले और अपने मन और सुरत को उस स्थान पर जमाये जहाँ से गुरु ने अभ्यास शुरू कराया हो। उसके लिए वही स्थान पहला है। संतमत में अभ्यासियों को बहुधा हृदय-चक्र या आज्ञा-चक्र से अभ्यास शुरू कराते हैं। यदि ध्यान नीचे को उतर आये यानी दुनियाँ की तरफ़ चला जाये तो बार-बार उसे मोड़कर उसी स्थान पर लगाये और शब्द सुने या प्रकाश देखने की कोशिश करें।

संतमत के जिज्ञासुओं को आन्तरिक अभ्यास के मामले में जल्दी नहीं करनी चाहिए। धैर्य से काम लेकर रास्ता धीरे-धीरे चलना चाहिये। दुनियाँ के काम भी जल्दी नहीं बनते, फिर वह तो परमार्थ है, इसमें जल्दबाज़ी कैसी ? हाँ, लगन में कमी न आने पाये। विद्या सीखने में भी विद्यार्थी चाहे कितनी भी दिन-रात पढ़ाई करे उसके अठारह -बीस वर्ष इसी में बीत जाते हैं। वह अपना सारा समय पढ़ने में ही लगा देता है, यहाँ तक कि घर छोड़कर छात्रावास में रहना भी स्वीकार करता है, उसे लगन होती है और वह सफ़ल होता है। जिन्हें लगन नहीं होती वे सफ़ल नहीं होते। जिज्ञासु का काम तो परमार्थ पथ पर चलकर उस विद्या की प्राप्ति करना है जो संसार भर की सब विद्याओं की मूल है। यदि इस काम में एक या दो घण्टे नित्य लगाता है और शेष सारा समय संसार के कामकाज में व्यतीत करता है तो वह विद्या जल्दी कैसे प्राप्त हो सकती है ? यह तो बड़ी भारी दया संत-सतगुरु या परमपिता परमेश्वर की समझनी चाहिये कि वे इतनी थोड़ी मेहनत पर भी अपनी कृपा का बल देते हैं और यदि अभ्यासी अपनी लगन में सच्चा है, तो उसे अन्तर में थोड़ा बहुत सहारा भी देते हैं।

संतमत का अभ्यास बहुत सरल है परन्तु मन का बहाव संसार की तरफ़ होने के कारण अभ्यासी इसमें कठिनाई का अनुभव करता है। अभ्यासी को चाहिये कि सच्चे मन से अपनी इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाये और जो लगन संसार की तरफ़ लगी है उसे शनैः-शनैः छोड़ता जाये। इस काम में सदा सतर्कता के साथ अपने मन की चौकसी करता रहे और यह देखता रहे कि मन क्या-क्या तरंगे उठाता है। जो तरंगें संसार तथा विषयों की तरफ़ ले जाती हैं और जो परमार्थ पथ में बाधक हैं, उन्हें रोके, बढ़ावा न दे और जो तरंगें परमार्थी विचारों को बढ़ावा दे, उन्हें प्रोत्साहन दे।

मन की तरंगो पर रोक

अब यह प्रश्न उठता है कि मन को संसारी तरंगों से कैसे रोका जाये ? मन की तो यह आदत जन्म-जन्मान्तर से पडी हुई है कि हर समय विषय -चिन्तन में लगा रहता है, संसारी बातें ही सोचा करता है। सोते-जागते वह अपनी यही चाल चलता रहता है। यहाँ पर यह सोचना चाहिये कि यह स्थिति उन लोगों की है जो निपट संसारी हैं। इसके विपरीत जिन्होंने

सतगुरु के श्री चरणों में आशय ग्रहण किया है और उनसे नाम लिया है, यानी दीक्षा ली है, उनमें और निपट संसारियों में कुछ भेद अवश्य है। सतगुरु के सत्संग से और नाम के सुमिरन तथा अन्तर में ध्यान करने से अभ्यासी में ऐसी योग्यता स्वतः आ जाती है कि वह अपने मन की चाल पर निगाह रख सके। इस काम में सतगुरु से सहायता माँगें। लगन सच्ची होने पर सहायता अवश्य मिलती है। जब-जब सांसारिक हिलोरें मन में उठती हुई दिखाई पड़ें, जब-जब मन की चाल बहिर्मुखी हो, तुरन्त चौंकन्ना हो जायें और अपनी सुरत और ध्यान को ऊपर की तरफ़ जोड़ दें, अर्थात जिस स्वरुप का ध्यान करने को बताया गया है वही ध्यान करने लगें या जिस नाम का सुमिरन करने को बताया गया है वह ध्यान करने लगें। ऐसा करने से उनके मन की धार का प्रवाह इन्द्रियों की ओर न जाकर ऊपर की ओर जुड़ जायेगा और प्रभु-प्रेम का रस पाकर (चाहे वह किनकी मात्र ही क्यों न हो) मन का बहाव संसार की ओर होने से बच जायेगा।

नाम के स्मरण का रस तथा स्वरुप के ध्यान का रस जिस विधि से गुरु ने बताया हो, अभ्यास करके प्राप्त करना चाहिए। आन्तरिक शब्द का रस (चाहे वह सहस्दल कँवल का हो, त्रिकुटी का या अन्य किसी ऊँचे स्थान का) इतना आकर्षण रखता है कि यदि ध्यान उधर लगा दिया जाये तो वह मन की धार को संसार की ओर से हटाकर अपनी ओर खींच लेगा। अभ्यासी को चाहिये कि शब्द की धार को पकड़ने का प्रयत्न करें। जैसे-जैसे शब्द का रस अधिक मिलेगा तो वह धार इसी तरफ़ को बढ़ती जायेगी और जितनी देर वह धार इस स्थान पर ठहरेगी, जहाँ वह शब्द हो रहा है उतनी देर वह ख़ूब रस देगी। इस तरह अभ्यास करने से मन की चाल दुनियाँ की तरफ़ को तथा इन्द्रियों की ओर को कम होती जायेगी और ऊपर की चढ़ाई करने में आसानी होगी।

अभ्यास के लिए समय निश्चित करो - मन को अन्तर्मुखी करने का उपाय

संतमत के अभ्यासियों को चाहिये कि अभ्यास के लिये विशेष समय निश्चित कर लें। उस समय के लिये कोई काम उठाकर न रखें। जब अभ्यास करने बैठें तो उस समय संसार तथा उसके पदार्थों का ख़्याल मन में न आने दें। अपना ध्यान गुरु के बताये हुए अभ्यास में

लगावें या गुरु के चरणों में लगावें। ऐसा करने से ध्यान और भजन में कुछ रस अवश्य मिलेगा अन्यथा मन दुनियाँ के ख़यालों में लगा रहेगा और अभ्यास का कोई लाभ नहीं होगा। ऐसा तो सम्भव नहीं है कि मन, जो जन्म-जन्मान्तर से दुनियाँ और उसके विषयों के सुख का अभ्यस्त है, अपना काम एकदम बन्द कर दे या एकदम उधर से हटकर ईश्वरोन्मुख हो जाये। आदत के वश वह संसारी भोगों की तरंगें भजन के समय भी उठायेगा, किन्तु अभ्यासियों को चाहिए कि उसी समय उसको रोकें। उसको संसारी ख़्यालों से ऊँचा आनन्द दें जिससे वह संसारी विचारों के घटिया आनन्द को छोड़ देगा। इसका आशय यह है कि उसे गुरु स्वरुप के ध्यान में या शब्द या प्रकाश के ध्यान में (जैसा जिसको बताया गया हो) लगा दें, जिसका प्रभाव यह होगा कि ध्यान लगाने में आसानी हो जायेगी। जब दुनियाँ का ख़्याल पैदा हो और ध्यान के समय भी दुनियाँ की गुनावन दूर न हो तो ध्यान के साथ-साथ नाम का सुमिरन भी करें। यदि यह युक्ति भी काम न दे तो कोई भजन इत्यादि जिसमें प्रभु का प्रेम विरह भरा हुआ हो और जो मन को बहुत प्यारा लगता हो, उसे मन ही मन गाकर पाठ करें और अभ्यास में लग जायें। जब मन इस काम में लग जायेगा तो दुनियाँ की गुनावन छोड़ देगा। जब मन में थोड़ा बहुत प्रभु प्रेम का प्रवाह होने लगेगा, उस समय शब्द की ध्वनि भी स्पष्ट होती जायेगी और अभ्यास में रस मिलने लगेगा।

मन एक समय में एक ही काम कर सकता है, यदि वह भजन में न लगे तो ध्यान में लगावें और यदि ध्यान में भी न लगे तो प्रेम या विरह से परिपूर्ण भजन गाने में लगायें और यदि ऐसा करने पर भी दुनियाँ के ख़्याल को न छोड़े तो फिर सुमिरन करें। सुमिरन के लिए जो नाम गुरु ने दिया हो, उसी को पकड़ना अच्छा है। वैसे तो अनेकों नाम हैं, जैसे ॐ, राम, सतनाम, अल्लाह, राधास्वामी, आदि परन्तु उस नाम विशेष का उच्चारण इस तरह करें कि उसे हृदय चक्र से उठावें और कंठ चक्र, सहसदल कँवल से गुजारता हुए त्रिकुटी पर ख़त्म करें। (नोट - इसकी विधि संत सतगुरु से मालूम करके तब इस अभ्यास को करना चाहिए)

जैसा कि ऊपर कहा गया है, मन पूजा, ध्यान और भजन के समय संसारी तरंगें उठाया करता है और उसमें विघ्न पैदा करता है क्योंकि उसकी यह आदत पड़ी हुई है। उसी आदत के

वश वह पूजा के समय के अतिरिक्त भी संसारी तरंगों में झूमता रहता है। यह सब तरंगें अनुचित और बेफ़ायदा हैं क्योंकि इनमें कोई परमार्थी लाभ नहीं होता। ऐसे वक़्त में भी, यानी पूजा के अलावा और समय में भी, मन की सांसारिक तरंगों पर चौकसी रखें और उन्हें रोकने के लिए अन्दर गुरु-स्वरुप का ख़्याल करें। अपनी सुरत को उन संसारी विचारों और तरंगों से ऊपर उठाकर ऊँचे चक्रों (सहस्दल कँवल या त्रिकुटी) की ओर फेरें। ऐसा करने से वे हिलोरें या तो बन्द हो जायेंगी या उनका वेग कम हो जायेगा। किन्तु यह आवश्यक है कि अभ्यासी का प्रेम (चाहे थोड़ा बहुत ही हो) गुरु चरणों में तथा उनके स्वरुप में हो, या अन्तर में ऊपर की ओर सुरत को फेरने में रस आता हो। यह रस कुछ दिन अभ्यास करने की आदत डालने से आता है।

यदि किसी अभ्यासी का गुरु स्वरुप में प्यार ओर भाव कम है या नहीं है, और न उसे आन्तरिक शब्द का कोई रस मिला है, तो उसके लिए यह उपाय है कि जब कोई ख़राब तरंग मन में उठे तो उसे नर्क का भय दिखायें, चौरासी लाख योनियों का डर दिखावें और यह समझायें कि ऐसी तरंगों के उठाने से भजन और ध्यान की हानि होती है। यदि उसे संत महात्माओं के वचनों में श्रद्धा और विश्वास है और थोड़ी भी प्रीति है तो मन और इन्द्रियाँ भयभीत होकर रुक जावेंगी और तरंग हट जायेंगी।

राम सन्देश :अक्टूबर-दिसम्बर, 2016 .

अभ्यास क्यों किया जाता है ?

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

आत्मा के ऊपर दो गिलाफ़ (आवरण) चढ़े हुए हैं. एक माया का और दूसरा अंतःकरण का, जिसको साधारण भाषा में सब लोग मन कहते हैं. उसी का नाम महापुरुषों ने अंतःकरण रखा है, जिसके चार हिस्से माने गए हैं और हरेक हिस्से के कार्य (functions) के मुताबिक उनके अलग-अलग नाम रखे गए हैं जो इस प्रकार हैं – 1. मन, 2. बुद्धि, 3. चित्त, और 4. अहंकार .

जो भाग बाहर से ज्ञान हासिल करता है उसका नाम बुद्धि है. जो हिस्सा discuss करता है, संकल्प-विकल्प उठाता है उसको चित्त कहते हैं, जो हिस्सा record (लेखा-जोखा) रखता है, आगे के लिए याद रखता है, मेरे तेरेपन में फँसाता है, वह अहंकार कहलाता है. मन का यह मिलाजुला रूप इस मनुष्य शरीर में ही रहता है।

शरीर भी तीन होते हैं. सबसे पहले स्थूल शरीर जो पाँच तत्वों से से बना है - पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। यह पाँच चीज़ें शरीर को बनाती हैं और क़ायम रखती हैं। जब शरीर निर्जीव हो जाता है तो ये पाँचों तत्व अपने मूल में समा जाते हैं। उसके बाद मनुष्य का दूसरा शरीर यानी जो आत्मामय मन का है, जो मन की अपूर्ण इच्छाओं के कारण कुछ समय के लिए घूमता-फिरता है और ऐसे घर में जन्म लेता है जहाँ पर वे इच्छायें पूरी हो सकें। आत्मा जब निर्लेप होती है यानी मन के चक्कर से छूट जाती है तो वही उसका असली रूप या तीसरा शरीर है जो ईश्वर का अंश है। जब तक आत्मा मन के चक्कर में रहती है तब तक मन उससे शक्ति लेकर अपनी ख़्वाहिशें (इच्छायें) पूरी करता है. मन के चंगुल से छूट जाने के बाद वह अपने मूल यानी असल - ईश्वर में समा जाती है।

अन्तःकरण के चार भागों में एक भाग जो मन है उसके तीन रूप हैं - 1. तम, 2. रज, और 3. सत । तम हमें इन्द्रिय भोगों में फँसाता है. यह मन की सबसे निकृष्ट अवस्था है।

इसका स्थान मनुष्य की नाभि के ऊपर है, जहाँ घोर अंधकार है. इसके ऊपर Sternum (उरोस्थि) के नीचे cordial perplex (हृदय का स्थान) है जहाँ palpitation (धड़कन) होती है, वह रजोगुणी मन का स्थान है. यहाँ संकल्प-विकल्प उठा करते हैं. कभी कोई विचार आया, कभी कोई. कभी एक चीज़ चाहता है कभी दूसरी।

रजोगुणी मन वाला हर वक्त किसी न किसी धुन में लगा रहता है. अगर एक हज़ार रुपया है तो चाहेगा कि दस-बीस हज़ार और हो जायें, अगर एक मकान मौजूद है तो चाहेगा कि दूसरा और बन जाये । इस तरह जीते जी कुछ ख़्वाहिशें पूरी हो जाती हैं और मरने के बाद जो ख़्वाहिशें बच जाती हैं उनका बण्डल बाँधे हुए आत्मा इधर-उधर भटकती फिरती है और ऐसा वातावरण खोजती है जहाँ जन्म लेकर उन ख़्वाहिशों को पूरा किया जा सके ।

तीसरा सतोगुणी मन कहलाता है जिसे ब्रह्माण्डी मन भी कहते हैं. इसका स्थान दोनों भोंहों के बीच में एक इंच नीचे की तरफ है, जिसे आज्ञा चक्र कहते हैं. यह आदमी को हमेशा सत यानी सच्चाई की तरफ़ ले जाता है।

जब हम जन्म लेते हैं तो हमारी सुरत (attention) इन्द्रियों (senses) के परदे पर जम जाती है और इसी से हम दुनियाँ में फँसते हैं. जन्मते ही जब आँख खुलती है तो हम देखते हैं - कौन है ? माँ, जिनसे हमें आराम और सुख मिलता है उनसे हम प्रेम या मुहब्बत करते हैं और जिनसे दुःख मिलता है उनसे नफ़रत करने लगते हैं। यहीं से मन का काम शुरू हो जाता है और इसी मुहब्बत और नफ़रत को लेकर हम राग और द्वेष का जाल बना लेते हैं. इसी उधेड़बुन या जद्दोजहद (संघर्ष) में हमारी ज़िन्दगी बीत जाती है। इन्द्रियों और मन के चक्कर में उलझे रहकर ही ज़िन्दगी बिना किसी और मक़सद को हासिल किये ख़त्म हो जाती है।

इन्सान में तीन ख़्वाहिशें बड़ी प्रबल होती हैं - 1. हमें पूर्ण सुख मिल जाये, 2. हमें पूर्ण ज्ञान मिल जाये, और 3. हम हमेशा ज़िन्दा रहें. यह क्यों है ? हमारे अन्दर जो आत्मा है ये तीन उसी के गुण हैं, जो सत, चित, और आनन्द हैं. मन का परदा पड़ जाने से अज्ञानवश

होकर वह मन के साथ रहने लगी और अपना असली रूप भूल गयी. इन तीनों चीज़ों (सत, चित, और आनन्द) को आत्मा उन चीज़ों में ढूँढ़ने लगी जो material (भौतिक) हैं। ऐसा करने में वह दुःख पर दुःख उठाती रहती है क्योंकि जिन चीज़ों में वह सुख तलाश करती है वे चीज़ें तो नाशवान हैं और हमारी ज़िन्दगी में तबाह (नाश) हो जाती हैं. जब उन चीज़ों को पाते हैं तो ख़ुशी होती है और छूटने और बिछुड़ जाने पर दुःख होता है।

हम भूल जाते हैं कि यह गुण आत्मा के हैं और जब तक आत्मा का असली रूप प्रकट नहीं होगा तब तक उनकी प्राप्ति हमें नहीं हो सकती। जब तक मन का पर्दा मौजूद है तब तक आत्मा का असली रूप और गुण प्रकट नहीं हो पाते. यही भूल है - जहाँ आत्मा है वहीं परमात्मा है, जहाँ सूरज है वही किरण है, जहाँ आत्मा बूँद रूप में मौजूद है वहीं ईश्वर सागर रूप में मौजूद है।

अगर आत्मा न हो तो इस शरीर को कौन क़ायम रखेगा ? इसी के द्वारा सब तत्व (element) और सब शक्तियाँ (forces) इस श्रष्टि (universe) में काम कर रही हैं। यह एक ऐसी पेचीदा (complicated) मशीन है कि इसमें कई लाख पुर्जे स्वतः (automatic) काम कर रहे हैं. किस शक्ति से ? जहाँ वह शक्ति हटी वहाँ सब कुछ गायब , कोई वस्तु क़ायम नहीं रहेगी। आत्मा की या ईश्वर की तलाश कैसी ? वो तो हमारे अन्दर मौजूद है. आत्मा को पाना नहीं है - हमने उसके ऊपर कई परदों का ढक्कन लगा रखा है. उसे हटाना अभ्यास है। मन के पर्दो को हटा दो, आत्मा प्रकट हो जायेगी. सूरज चमक रहा है लेकिन बादलों की वजह से हम उसे देख नहीं सकते। बादल हट जायेंगे तो सूरज दिखाई देने लगेगा।

हमारा असली रूप क्या है ? हम आत्मा हैं, हम ईश्वर हैं. हमारे असली रूप पर मन और माया के परदे पड़ गए हैं जिनसे वह छिप गया है. अभ्यास यह है कि इन परदों को झीना (thin) करते चलो. बादल जितने गहरे होंगे, सूरज का प्रकाश उतना ही दबा हुआ होगा. यदि वे परदे झीने होते जावेंगे तो सूरज का प्रकाश उतना ही साफ़ नज़र आयेगा.

इन्द्रियों का दमन करो. मन की वासनाओं को, जिनके बिना काम न चले, दिन-ब-दिन झीना करते चलो. तब देखोगे कि प्रकाश ही प्रकाश है।

आप स्वयं ही देख लीजिये कि अगर इच्छाओं को कम करते जायेंगे तो ख़ुशी हासिल होती जायेगी. क्यों ? क्योंकि आत्मा के परदे हटते जाते हैं, इसका प्रतिविम्ब (reflection) आनन्द आपको महसूस होता जायेगा। अभ्यास से संस्कार ख़त्म नहीं होते, वे तो भोगने ही पड़ेंगे क्योंकि यह प्रकृति माँ का विधान है। लेकिन अभ्यास से अपनी तक़लीफ़ों को कम महसूस करोगे। अभ्यास से अपने दुःखी जीवन (miserable life) को आनन्दमय (blissful) बना लोगे. इसलिए अभ्यास करने की ज़रूरत और अहमियत (महत्व) है।

राम सन्देश : जनवरी-फरवरी, 2007.

अभ्यास में तरक़्क़ी की परख

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

कुछ सत्संगी जिनको सतगुरु की शरण में आये केवल दो चार वर्ष ही हुए होते हैं, वे अपने अन्तर में तरक़्क़ी यानी अपने मन को अन्तरमुखी हुआ कम पाते हैं. यह विचार ठीक नहीं हैं, क्योंकि उनको अपने हाल की परख नहीं है या उनको अपने मौजूदा हाल और पिछले हाल की हालत की ठीक-ठीक जानकारी नहीं है. जो कोई भी सच्चे मन और शौक़ से संतमत को अख़्तियार करके प्रेम से थोड़ा बहुत अभ्यास दो मरतबा हर रोज़ सुरत शब्द मार्ग का और सुमरन और ध्यान कर रहा है, तो यह मुमकिन नहीं कि सत्पुरुष दयाल की दया से ख़ाली रहे. थोड़ा बहुत रस और आनन्द भजन और ध्यान का ज़रूर आवेगा।

मन थोड़ा बहुत निश्चल होकर अभ्यास में लगने लगेगा. शब्द पहले मुक़ाम का जाग्रत हो जायेगा और अभ्यास के वक़्त मन और सुरत शब्द की डोर का आनन्द लेते हुए, इस क़दर अन्तर में लग जावेंगे कि दुनियाँ की ख़बर और सुधि नहीं रहेगी, यानी दुनियाँ से मन कमज़ोर पड़ता जावेगा।

ऐसी हालत कभी-कभी या रोज़मर्रा हो जाना बहुत खुशकिस्मती है. सतगुरु सत्पुरुष दयाल जैसा अभ्यास की चाल के मुआफ़िक मुनासिब समझते हैं तरक़्क़ी देते हैं, यानी उसके मन और सुरत का सिमटाव और चढ़ाई करते जाते हैं. इसका सरूर भी उसको अपनी दशा से थोड़ा बहुत हज़म कराते जाते हैं, नहीं तो इस क़दर रस पाकर बहुतेरे अभ्यासी मस्त होकर घर-बार और कारोबार छोड़ने को तैयार हो जावें. अवधूत की सी हालत हो जावे।

जिन प्रेमियों को अपने अभ्यास के समय ऐसी हालत की पहचान कम हो तो उसकी वजह यह है कि उनको गुनावन यानी संसारी विचार आकर अकसर भजन और ध्यान में सताते हैं, उनको चाहिये कि वह अपनी एक या दो वर्ष गुज़री हुई पहले की हालत से मुक़ाबिला करें और यदि वे सच्चे सत्संगी और अभ्यासी हैं तो उनको और उनके घर वालों को इस क़दर

ज़रूर मालूम पड़ेगा कि पहले की निस्बत उनकी तबियत संसारी लोगों के संग में और संसारी बातों में कम लगेगी । दुनियावीं विचारों से भी छूट पाने लगेगा. फ़िज़ूल और नामुनासिब चाहें और दुनियाँ के भोगों की तरंगें कम होती जावेंगी । जीवन सरल बनता जावेगा. सत्संग, बानी और गुरु-वचन में और सतनाम में प्रीती और प्रतीती पहले से ज़्यादा होती जावेगी ।

इस समय सतनाम की विशेष महिमा है. सतपुरुष दयाल अपने सच्चे परममार्थी जीवों को ऐसे रास्ते और ऐसी युक्ति से चलाते और चढ़ाते हैं कि जिसमें उनके दुनियावी किसी कारोबार में हर्ज़ भी न होवे और परमार्थ में आला दर्ज़ा सहज में बे मालूम हासिल होता जावे ।

सच्चे और प्रेमी अभ्यासी को चाहिये कि वह सत्संग में बैठकर अच्छी तरह से निर्णय कर ले, और इन पाँच बातों को गौर से सुनकर, समझ कर अपने मन के भरम, सन्देह और शकों को जिस क़दर जल्दी हो सके दूर करे वरना वह अभ्यास में बाधा डालेंगे और मन व सुरत को सफ़ाई और शौक़ के साथ भजन और ध्यान में लगने नहीं देंगे. ये पाँच बातें निम्नलिखित हैं :

(1) इस बात का निश्चय कि केवल सतगुरु दयाल ही कुल मालिक और सर्वसमर्थ हैं. कुल रचना के सच्चे माता-पिता वही हैं।

(2) यह कि सुरत शब्द मार्ग सच्चा, पूरा और सहज धुर पद तक पहुँचाने वाला रास्ता और तरीक़ा अभ्यास का है. असली परमार्थ वहाँ से शुरू होता है जहाँ दीन और दुनियाँ का अन्त है. अपने को राम-चरित्र के आदर्श तक पहुँचाना केवल इस दुनियाँ में धर्म के शिखर पर पहुँचना होता है, परन्तु इसके बाद ही शुरू होता है।

(3) यह कि मन और इन्द्रियों का स्वभाव माया के मसाले का है और इस वास्ते उनका झुकाव बाहर और नीचे की तरफ़ संसार के भोग और पदार्थों में है।

मन का फ़िज़ूल तरंगें और ज़रूरत से ज़्यादा चाहें उठाने में हर्ज़ और नुक़सान है. इसलिए अभ्यासी को थोड़ा बहुत शौक़ और सम्भाल अपने मन और इन्द्रियों की, ख़ासकर वक़्त अभ्यास के, बहुत ज़रूरी है. नहीं तो भजन और ध्यान का रस जैसा चाहिए वैसा नहीं आवेगा।

(4) यह कि दुनियाँ और दुनियाँ-परस्त और ग़ैर ख़्याल वालों के संग और धन वालों की मुहब्बत और संग से सच्चे मालिक के प्रेम में और अभ्यास में विघ्न और ख़लल पड़ता है।

इसलिए यह ज़रूरी है कि ऐसे जीवों का संग और मुहब्बत उसी क़दर रखी जावे जिस क़दर ज़रूरी है और मुनासिब है. उसमें अपने दिल को बाँधना या अपना वक़्त बेफ़ायदा उनके संग में या दुनियाँ की गपशप में ख़र्च करना अभ्यासी को ठीक नहीं है। जिन लोगों को किताबें पढ़ने का शौक़ होता है वह वक़्त को बहुत सम्भाल कर ख़र्च करते हैं यानी सिवाये रोज़गार और देह और गृहस्थ के ज़रूरी कामों के बाकी वक़्त किताबों की सैरों में बिताते हैं, तो फिर परमार्थी अभ्यासी को किस क़दर ख़्याल अपने कीमती वक़्त का होना ज़रूरी है, ग़ौर तो कीजिये।

(5) सतनाम में प्रीति और प्रतीति और सतगुरु दयाल के चरणों में सच्ची शरण और उनकी दया और मेहर का आसरा और भरोसा सदा रखना।

अभ्यासी को परमार्थ के रास्ते और ज़ल्दी नहीं करनी चाहिये. ज़रा ग़ौर तो कीजिये कि विद्या सीखने में पन्द्रह और अठारह वर्ष सहज में गुज़र जाते हैं, जबकि विद्यार्थी कुल वक़्त अपना इसी काम में ख़र्च करता है. फिर परमार्थ के काम में जब कि उसमें दो या तीन घंटे बमुश्क़िल लगाए जाते हैं, किस तरह ऐसी ज़ल्दी तरक़्क़ी हो सकती है।

यह उसकी बड़ी मेहर है कि ऐसी थोड़ी मेहनत पर भी अपनी दया से हरेक को मालामाल करते रहते हैं और सच्चे अभ्यासी को अन्तर से सहारा हमेशा बख़्शते रहते हैं।

हे सतपुरुष। तेरी विशेष दृष्टि हम पर सदा बनी रहे।

रामाश्रम प्रकाशन "भावांजलि " में प्रकाशित लेख

अनेक समस्याओं का समाधान - हमारे प्रभु के हितोपदेश

यह सन्त लोग ही धर्म की धुरी को धारण करने वाले होते हैं. वह दिव्य प्रकाश उन्हीं के पास होता है, जिससे पथ से भटक गए मनुष्य को वह सत्य का मार्ग दिखाते हैं। ऐसे दीन दयालु सन्त कभी भाग्य से मिल जाते हैं और जीव का कल्याण कर देते हैं।

प्रतिपल स्मरणीय हमारे प्रभु(परमपूज्य संत शिरोमणि डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी साहब) ऐसे ही थे - जो उनके सामने पहुँच गया कभी ख़ाली हाथ नहीं लौटा। जो सिलसिला उन्होंने शुरू किया था भगवती धारा सत्संग की आज भी उसी वेग से आगे बढ़ रही है। जो उस तट पर गया उस पावन धारा में प्रवाहित हो गया. वह शान्ति जल धारा आज भी मानव का कल्याण कर रही है। उस जगह पहुँच कर असीम शान्ति का अनुभव होने लगता है, अन्तर में व्याप्त गहन अंधकार में एक अलौकिक दीप प्रज्वलित हो जाता है. प्रतिपल उसी एक ज्योति से ज्योतिर्मय रहने के लिए प्राण व्याकुल हो कह उठता है - दीप मेरे जल अकम्पित /

यही वह प्रकाश है जिसे धर्म कहते हैं. यही पाथेय (रास्ता) है आत्मा को परमात्मा तक पहुंचाने का. यही वह कोष है जिसके सम्मुख विश्व के सभी कोष व्यर्थ हैं। इस अवर्णनीय अलौकिक कोष की प्राप्ति करने के लिए हमें एक ही कार्य करना है - नित्य नियमित सत्संग में जाकर बैठें, अपने कल्याण के लिए प्रार्थना करें, बाक़ी तो सब वह सम्भाल ही लेंगे।

हमारे महाप्रभु परमसन्त डाक्टर श्रीकृष्ण लाल जी को आध्यात्मिक संस्कार बचपन से अपने माता-पिता से मिले थे. प्रातःस्मरणीय महात्मा श्री रामचन्द्र जी (फतेहगढ़) उच्चकोटि के गृहस्थ सन्त थे। आप उनके आत्मपुत्र थे. उनके सानिध्य में मानो सोने को सुगन्धि मिल गयी. दिव्य ज्योति चहुँ ओर फैलने लगी। गुरुदेव की महान कृपा से आध्यात्म विद्या के महाविद्यालय "रामाश्रम सत्संग" में वे सभी वहाँ पहुँचकर अपनी आत्मिक पिपासा को शान्त कर रहे हैं. उनका कहना था कि आप दैनिक जीवन में जो भी कार्य करने जायें पाँच मिनट केवल अपने इष्टदेव का ध्यान करके जायें. आपको बल मिलेगा, उत्साह मिलेगा और काम

करने की एक सुन्दर दिशा मिलेगी. भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को यही उपदेश दिया था कि तुम कुछ देर के लिए सभी धर्मों का त्याग करके हमारे निकट हमारी छाया में आजाओ. तुम्हारे अन्तर के पापों की जलन मिट जाएगी और शान्ति का अनुभव करके तुम अपने धर्मों और कर्त्वयों को उत्तमता से निभा सकोगे. यही हमारे गुरुदेव भी कहा करते थे कि -"एक बार तुम हमारे तो हो जाओ।"

बात 29 दिसम्बर 1960 की है. आप बनारस में थे. प्रातः के सत्संग में आपने आत्मा पर प्रवचन दिया था। उसके बाद सबको लेकर कबीर चौरा गये, वहाँ भी काफी देर तक आन्तरिक अभ्यास हुआ। तत्पश्चात आपने बुद्ध भगवान के बारे में फ़रमाते हुए कहा कि उनका पालन-पोषण इस प्रकार से किया गया था कि उन्हें जीवन में किसी भी प्रकार के दुःख मुसीबत का अहसास न हो, पर हो ही गया. इसी तरह से बातचीत चल रही थी तभी आपने फ़रमाया -

प्रवचन - " जो आदमी परमात्मा की ओर लौ लगाए हुए हैं उनसे मिलकर दूसरा आदमी भी उतना ही ताक़तवर (आध्यात्मिक शक्ति) हो जाता है। वह ऐसे चमकने लगता है जैसे कंचन, जो एक वक्त में मन के स्थान पर होते हैं, वह उनके स+म्पर्क में आकर आत्मा के स्थान पर आ जाते हैं।"

प्रवचन - " अगर हमारा ताल्लुक़ भण्डार (आत्मा) से हो जाये तो हम बहुत शक्तिशाली हो जायेंगे. जो शक्ति से ताल्लुक़ पैदा कर लेता है, वही 'गुरु' है. जिन लोगों का विश्वास ईश्वर पर है वह 'सत्संगी' है ओर वही इस हल्के(दायरे) में बैठने के अधिकारी हैं। "

पूज्य भाई साहब (श्री करतार सिंह साहब) भी यही कहते हैं. जब आप सत्संग में बैठें उस समय आप अपने विचारों को चारों ओर से हटाकर ईश्वर के ध्यान में लगा दें। ख़याल करें कि गुरुदेव के शरीर से रश्मियाँ निकल रही हैं. इस तरह जब विचार शुद्ध हो जायेंगे तब परमार्थी साधना में स्थिरता आयेगी।

प्रवचन - " साधन मन का है. आत्मा एक है ओर सब जगह एक ही काम कर रही है. सूरज एक है और सब पर उसका प्रकाश भी एक सा ही पड़ रहा है. परमात्मा का माइन्ड एक है और जब सब माइन्ड मिल जाते हैं तो सब पर उसका असर पड़ता है।"

प्रवचन - " आगे चल कर सब माइन्ड एक हो जाते हैं। जिस तरह दो विरोधी लक्ष्य के साथ कोई भी व्यक्ति आपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँच सकता, उसी तरह सत्संग (हल्का) में अलग-अलग विचार अगर हैं तो उसका एक दूसरे पर प्रभाव ज़रूर पड़ेगा । सत्संग (हल्का) ऐसी जगह करते हैं जो सबसे एकान्त हो और वहाँ शोरगुल न हो। उसके बाद उन लोगों को बैठने की इज़ाज़त देते हैं जो परमात्मा को मानते हैं. इसको 'हुज़ूरी' कहते हैं. हुज़ूरी का अर्थ यह है कि हम सब जगह परमात्मा को देख रहे हैं. गुरु सबको सत्संग (हल्के) कराता है, मॉनिटर्स मदद करते हैं. बाज़ जगह तो मॉनिटर को पहरे पर खड़ा कर देते हैं. उनका काम है कि सब आदमियों के खांसी,खखार, खुजली पर अपने ख़याल के ज़रिये रोक लगा दें । सब लोग अपना ख्याल गुरु में लगाते हैं और गुरु अपना ख़्याल परमात्मा में लगाते हैं. अभ्यासी सत्संग में ध्यान करते हैं, मन की हालत को देखते हैं. कोई यह सोचता है कि प्रकाश आ रहा है। इससे दुगना फ़ायदा होता है. यह सत्संग है। अगर किसी को ख़यालात सताने लगें और ध्यान संसार की बातों में उलझने लगे तो चुपचाप वहाँ से उठकर चला जाना चाहिए. यह इस चीज़ का नाज़ुक सिलसिला है. यही सत्संग है।

गुरु ऊपर से फ़ैज़ लाकर आपके ऊपर व आपके दिल में डालते हैं. अभ्यास में यह फ़ैज़ गुरु के मार्फत लिया जाता है. साधक अपनी शक्ति गुरु में अनुभव करता है इसलिए साधक में अभिमान नहीं होता है. साधक चाहे परमात्मा बन जाये, गुरु को नहीं छोड़ता। वह कभी 'मैं' नहीं कहता। जो किसी भी काम में 'मैं' को महत्व देता है वह मन का गुलाम है। मन का साधना बहुत मुश्किल है. योग क्रिया करनी होती है. सात पर्दे चीरकर आत्मा के नज़दीक आते हैं, लेकिन भक्तों को सिर्फ़ दो पर्दे चीरने होते हैं, एक मन का दूसरा आत्मा का। गुरु में जिस्म व आत्मा है. प्रकाश नज़र आएगा तो जिस्मानी गुरु का ध्यान जाता रहेगा. साधक को पर्दे भी नहीं चीरने पड़ते, अगर उसको अपने गुरु में पूरा विश्वास है। गुरु अपनी शक्ति से

उसको दर्शन करा देगा. बाक़ी उम्र में पुख्तगी और सैर होती है। गुरु फिदायी हो और शिष्य शैदाई हो. मुर्दे और मुरीद में सिवा जान के कोई फ़र्क़ नहीं होता। जो मुरीद अपने को गुरु के हाथों में पूर्ण रूप से समर्पण कर देता है उसका काम बहुत जल्द बन जाता है।

कुछ ख़ास लोगों की ओर मुख़ातिब होकर आपने फ़रमाया -

<u>हमारे सिलसिले की बरकत</u>

" अब मेरा आखिरी वक्त है और तुमको सम्भालना है इसलिए सख्ती करनी है। इतने लोगों में से अगर दो या तीन भी बन जाएँ तो बहुत काम बन जायेगा। जहाँ ज़्यादा आदमी होते हैं वहाँ व्यक्तिगत ध्यान नहीं दिया जा सकता। गुरु को महनत करनी पड़ती है। सोते वक्त वह मध्यरात्रि में अपने शिष्यों को तवज्जोह देता है। इसमें फासले का सबाल नहीं है। जो शिष्य जहाँ होता है और यदि उसकी धार गुरु से जुडी है, तो लाभ मिलता है। सामने बिठाकर तवज्जोह देने से लाभ होता है परन्तु सोते समय जो तवोज्जह दी जाती है उससे बहुत लाभ होता है। शमा जल रही है और यह निमंत्रण है कि आओ फ़िदा हो जाओ। लेकिन दुनियाँदार दुनियाँ में फँसे हैं, जो फिदायी हैं, खिंच कर चले आते हैं। गुरु प्रेम में मस्त हो जाता है तो शिष्य लोग भी गुरु से फ़ैज़ छीन लेते हैं। इससे मन का घाट बदलता है, यह हमारे यहाँ का तरीक़ा है।"

प्रवचन - बाज़ लोग सामने बैठकर असर क़बूल नहीं करते, बाज़ करते हैं। जब तवज्जोह आती है, मन अन्दर की ओर खिंच जाता है और उस वक्त कोई काम नहीं किया जा सकता, उस तवोज्जह को ग्रहण करना चाहिए। इससे फ़ैज़याबी होती है। जमात ज़्यादा होने पर यह नहीं हो सकता। अपने विश्वास से आपको फ़ायदा हो तो हो जाये मगर गुरु से फ़ैज़ नहीं आता। इसका कारण यह है कि लोगों की दुनियावी ज़रुरियात (सांसारिक ज़रूरतें) बहुत बढ़ गयीं हैं। और जब उनकी पूर्ति उनकी ताक़त से नहीं होती तो वह परमात्मा की तरफ़ रागिब (आकृष्ट) होते हैं, इस ख्याल से कि उसके नाम लेने से दुनियावी गरज़ (इच्छा) पूरी हो जाये। वे परमात्मा से प्रेम नहीं करते बल्कि दुनियावी चीज़ों से प्रेम करते हैं,

और परमात्मा के प्रेम को इन चीज़ों के हासिल करने का ज़रिया (साधन) बनाना चाहते हैं। हमारे यहाँ का तरीक़ा प्रेम का है। मुराद या फ़िदायी को अभ्यास नहीं करना पड़ता., बाकि लोगों को करना पड़ता है। इसका मतलब यह है कि मुरीद (फ़िदायी) बेग़र्ज़ गुरु से प्रेम करता हो और उसके (गुरु के) जीवन काल में ही उसमें फ़ना हो जाये। यदि मुरीद ऐसा नहीं कर सका तो बाद में उसे महनत अधिक करनी पड़ती है. फ़िदायी को अभ्यास इसलिए नहीं करना पड़ता कि वह गुरु के हुक्म पर चलता है. फ़िदायी पैदाईशी होते हैं. फिदाईयत या फनाईयत कमी ज़्यादा भी होती है. ग़लत समाज में बैठने या वर्जित काम करने से यह कम या ख़त्म हो जाती है. हमने यह अनुभव किया है कि गुरुदेव ने अगर ज़रा सा ध्यान हटा लिया तो फिर उसका ख़याल भी नहीं आया। गुरु शुरू में आपका मन रखता है और आपके मन जैसी बात करता है, लेकिन उसे तो आपको परमार्थ के मार्ग पर चलाना है, इसलिए वह आपके मन को तोड़ता है. चाचाजी साहब (मुन्शी रघुवर दयाल) ने तहसीलदार को सख़्त लफ्ज़ कह दिया कि -"अगर मैं इस कुर्सी पर नहीं बैठ सकता तो आप भी इस कुर्सी पर नहीं बैठ सकते ". जब-जब तहसीदार साहब ने कुर्सी पर आकर बैठना चाहा कोई न कोई घटना हो गयी और वह बैठ नहीं सके। मगर जब गुरुदेव (लालाजी साहब) को मालूम हुआ तो वह बहुत नाराज़ हुए। उन्हें सख़्त सजा दी - खड़े रहो। और फिर अलीगढ़ भेज दिया। चाचाजी साहब फतेहगढ़ से अलीगढ़ पैदल गए, जब लौटकर आये तो पूछा -"लौट आये"। चाचा जी ने कहा - "जी" । इतनी सज़ा काफी न थी और एक दिन चाचाजी को जूता खींच कर मारा और बोले - "क्या फिर इस तरह की ज़बान बोलेगा?" चाचाजी ने माफ़ी मांगी और आइन्दा ऐसा नहीं किया।

" मुझे लालाजी और चाचाजी ने इज़ाज़त दी, लेकिन तसदीक़ के लिए मौलवी अब्दुलग़नी साहब के पास भेजा। मौलवी साहब टालते रहे फिर बोले कि -" मैं इज़ाज़त तब दूँगा, जब देख लूँगा." और इसके चार साल बाद इज़ाज़त दूँगा"। इसी तरह चिश्तिया ख़ानदान के एक फ़क़ीर थे। निज़ामुद्दीन ने एक मुरीद की इज़ाज़त तसदीक़ करने के लिए

मुइनुद्दीन चिश्ती के पास अजमेर भेजा। मुरीद साहब ने तसदीक़ के लिए जल्दी की, अपने इज़ाज़त देने से इन्कार कर दिया.

"गया शैतान मारा एक सज़दे के न करने में /

अगर लाखों बरस सज़दे में सर मारा तो क्या मारा.// "

अभ्यास क्या है और क्यों कराया जाता है ? अभ्यास इसलिए कराया जाता है कि गुरु से जो कुछ मिले उसे पुख्ता कर लो. बदएतक़ादी इस चीज़ को दबाती है। कस्ब और अभ्यास द्वारा गुरु से मिली चीज़ बढ़ती है। अभ्यास का मतलब है कि तुम अपने को तम से रज और रज से सत पर लाओ। गुरु की मौहब्बत से आत्मा को शक्ति मिलती है। अभ्यास से कोशिश करके आत्मा को उस जगह पहुँचा दो जहाँ आत्मा नृत्य करती है। मन को नीचे के स्थानों से उस जगह लाना अभ्यास है। हमख्यालों (अपने विचारवालों) के साथ बैठें। सत्संग में अगर ध्यान न लगे तो ख़याल करें कि गुरु सामने बैठे हैं, और उनसे फ़ैज़ यानी प्रकाश की धार निकल रही है और आपका मन-शरीर प्रकाशित हो रहा है। इससे एक और अच्छी तरकीब ध्यान लगाने की यह है कि सोते समय सर गुरु के क़दमों में रखकर सो जाओ। इस थोड़े से concentration (विचार से) रात भर फ़ायदा होगा। आपने सर गुरु के चरणों पर रखा और गुरु ने आँख खोली तो वह चीज़ जिसकी आपको तलाश है, बहुत जल्दी हासिल हो जाती है। दुनियाँ मन को बार-बार नीचे खींचती है। अगर दुनियाँ के कामों के साथ-साथ अभ्यास को बराबर जारी रखोगे, सोते वक्त और सुबह उठकर पहले गुरु का ख़याल करोगे तो बहुत जल्दी कामयाबी होगी".

" सुबह उठकर आँखों पर हाथ रखकर गुरु का ख़याल करने का तरीक़ा बहुत पुराना है। "

-- श्रीमती शान्ता श्रीवास्तव, दिल्ली

तेरा नाम खालिके दो जहाँ, तू ख़ुदाये अर्शे मुक़ाम है

तेरा नाम खालिके दो जहाँ, तू ख़ुदाये अर्शे मुक़ाम है ।

तेरी बन्दगी में है सर झुके, तुझे लाख-लाख सलाम हैं ॥

तू ही हरम, तू ही बुतकदा, नहीं फ़र्क़ दोनों में कुछ जरा ।

यहाँ परदे में है निहां खुदा, वहाँ ज़ल्वाग़र वो ही राम है ॥

पियूं शौक से क्यूँ न मैं इसे, कि भरा है वादये इश्क़ से ।

जो दिखाये जल्वए दिलरुबा, ये वो जाम है, ये वो जाम है ॥

तेरी याद कैसे भुलाऊँ मैं, तुझे छोड़ के कहाँ जाऊँ मैं ।

तेरी याद दिल में ऐ ख़ुदा, तो ज़ुबाँ पै तेरा ही नाम है ॥

मुझे देख लुफ़्तो करम से तू, ये ही एक है मेरी आरज़ू ।

ये ही सुनके आया हूँ दर तेरे, तेरा फ़ैज़ ख़ल्क़ पै आम है ॥

नहीं हमदम अच्छी ये ग़फ़लतें, कि अज़ल है सर पै खड़ी हुई ।

करो तुम भी अब तो ख़ुदा -ख़ुदा, कि दुआ का वक्त है शाम है ॥

राम सन्देश : अप्रेल-जून, 2014.

आत्मा की धार

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

आत्मा की धार शरीर में चोटी के मुक़ाम पर उतरी है और वहाँ से रीढ़ की हड्डी से होती हुई (coccyx) दुमची के मुक़ाम पर ठहर गयी है और इसकी शक्ति nerves के जरिये फैली हुई है. यही ज़िन्दगी है जिससे यह जिस्म क़ायम है।

योग के दो तरीक़े हैं. एक अभ्यास और दूसरा सत्संग जिससे आत्मा की धार जो परमात्मा के चरणों से निकलती है, वापिस परमात्मा के चरणों में मिलाया जाता है. अभ्यास वह है जो गुरु ने बताया हो. योगियों में प्राणायाम के तरीक़े से कुण्डलनी को जगाते हैं, यानी अपनी साँस की धार से गुदा का मुक़ाम पर 'ओउम' शब्द की चोट देते है । इससे एक तरह की आवाज़ ( ) पैदा होती है. बाज़ लोग इसके लिए प्राणायाम के अलावा नेति, धोती, पानी चढ़ाना, आदि क्रियाएँ भी काम में लेते हैं. यानी प्राणायाम, अंतर की क्रिया और नेति-धोती व सफाई आदि बाहरी क्रियाओं से उस मुक़ाम को जगा लेते हैं और आत्मा उस मुक़ाम से उठ कर इन्द्रिय के स्थान पर आ जाती है. वहाँ से भी प्राणायाम आदि क्रियाओं से उसे और ऊपर उठाते हैं और नाभि चक्र, हृदय चक्र, कंठ चक्र, और ऊपर के चक्रों तक वापस ले जाते हैं. लेकिन संतों का तरीक़ा इससे अलग और सहल है. उनके यहाँ नीचे के तीन चक्र (गुदा, इन्द्रिय और नाभि) को छोड़ दिया जाता है. अभ्यास ज्यादातर हृदय चक्र से शुरू कराते हैं. यह मुक़ाम ऐसा है कि इसके साधने से नीचे के तीनों मुक़ाम और ऊपर के तीनों मुक़ाम अपने आप सध जाते हैं और वक्त बच जाता है।

यहाँ पर शब्द या प्रकाश, जो भी बताया जावे, उसका अभ्यास करने से हृदय का मुक़ाम जाग उठता है. आत्मा यहाँ से उठकर ऊपर के मुक़ाम कण्ठ-चक्र और आज्ञा-चक्र की तरफ चढ़ने लगती है. कण्ठ-चक्र का अभ्यास नहीं कराया जाता. आज्ञा चक्र (जो दोनों भौंहों के बीच में अन्दर की तरफ़ है) उस पर ध्यान जमाया जाता है और गुरु-मूर्ति का दर्शन, या

प्रकाश या शब्द का (जिसका अभ्यासी हो) उस मुक़ाम पर अभ्यास करने से यह मुक़ाम भी ज़ाहिर हो जाता है. आत्मा और ऊँची उठ जाती है. इसके बाद त्रिकुटी के स्थान पर (जो भौंहों के एक इंच ऊपर और और दो इंच गहरी जगह में है) अभ्यास कराया जाता है. त्रिकुटी के आगे सुन्न, महासुन्न, भँवर गुफ़ा, सत्पुरुष का मुक़ाम, और उसके बाद संतों का देश या दयाल देश है।

यह हुआ अभ्यास जो नीचे से ऊपर की तरफ़ किया जाता है. यह किसी वक्त भी किया जा सकता है. मगर सुबह शाम इसका करना ज़रूरी है।

दूसरा है सत्संग. यह क्रिया ऊपर से नीचे की तरफ़ होती है. इसमें गुरु या सत्संग कराने वाला अपने ख़्याल को परमात्मा के चरणों में लगाता है और वहाँ से फ़ैज़ खींच कर सत्संगियों पर ख़्याल से फैलाता है. इस तरह उस फ़ैज़ की धार को परमात्मा के चरणों से लेकर तमाम सत्संगियों में फैलाता रहता है. यह ऊपर से धार लेकर नीचे मिलाता है। सत्संगी यह ख़्याल करता है कि प्रकाश या आत्मा की धार ऊपर से (यानी ईश्वर से या गुरु की तरफ़ से) आ रही है, और हमारी चोटी के मुक़ाम से उतर कर सारे शरीर में फैली जा रही है।

उस धार में चार चीज़ें हैं - ज्ञान, प्रेम, प्रकाश और आनन्द. इसी से ज़िन्दगी है. अगर यह धार नहीं तो ज़िन्दगी नामुमकिन है. यह क्रिया सत्संग में गुरु के सामने बैठे हुए भी होती है. गुरुदेव के शरीर से (त्रिकुटी या हृदय के मुक़ाम से जहाँ से बताया गया हो) प्रकाश की धार निकल रही है और हमारे त्रिकुटी के मुक़ाम या चोटी के मुक़ाम से होती हुई सारे शरीर में फैली हुई है। इसमें ज्ञान है, प्रेम है, प्रकाश है और आनन्द है। दिन के या रात के किसी भी वक्त भी गुरु की ख़्याली शक्ल सामने रख लेते हैं और आँखें बंद करके ख़्याल करते रहते हैं। इससे ज़्यादा फ़ायदा होता है। परमात्मा का फैज़ आने लगता है और जैसे-जैसे आनन्द और शक्ति महसूस होने लगती है, दुनियाँ के बन्धन ढ़ीले होते जाते हैं।

राम सन्देश : जनवरी-मार्च, 2014.

आत्मा की वापसी

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

इन्सान एक उल्टा दरख़्त है जिसकी जड़ सत खण्ड में है और उसका फैलाव इस दुनियाँ में है. आत्मा में तीन ख़्वाहिशें छिपी हैं - (1) ज़िन्दा रहने की ख़्वाहिश, (2) ज्ञान प्राप्त करने की ख़्वाहिश, तथा (4) आनन्द प्राप्त करने की ख़ाहिश

इन्हीं ख़्वाहिशों की पूर्ति के लिए मनुष्य दुनियाँ की हर चीज़ में फँसता है। उनको अपनाता है और जिनसे ये चीज़ें हासिल होती हैं उनको अपना समझ कर रखने की कोशिश करता है। यह चीज़ ख़ुद आत्मा के अन्दर मौजूद है लेकिन किसी वजह से अज्ञानवश होकर आत्मा अपने असली रूप को भूल गयी है। उसको चेताने के लिए इस दुनियाँ में भेजा गया है. जैसे आदमी अपना अक्स ख़ुद नहीं देख सकता, स्वयं को नहीं देख सकता, बल्कि अपना रूप देखने के लिए उसे शीशे या पानी या किसी ऐसी चीज़ की ज़रूरत होती है जिसमें उसका अक्स पड़े और वह उसे दिखे. इसी प्रकार आत्मा को यहाँ भेजा गया है जिससे उसे अपना ज्ञान हो। अगर वो यहाँ न भेजी जाती तो हमेशा अज्ञान की हालत में पड़ी रहती। लेकिन चैतन्य कभी अज्ञान की अवस्था में पड़ा नहीं रह सकता. इसलिए उसको यहाँ आना ज़रूरी था। यहाँ आकर चीज़ों में उसका अक्स पड़ता है और वह अज्ञानवश अपने स्वरुप को उसमें देखकर इन चीज़ों को अपना समझती है और उनको अपनाती है. लेकिन दुनियाँ की सब चीज़ें नाशवान हैं, एक हालत पर सदा क़ायम नहीं रहतीं, हमेशा बदलती रहती हैं. एक की होकर नहीं रहतीं। जब वह उनसे छिन जाती है तो दूसरे की हो जाती है या उसका रूप बदल जाता है, तब दुखों का होना ज़रूरी है।

इस तरह से यद्यपि एक मतलब हल हो गया कि आत्मा सोते से जाग्रत अवस्था में आ गयी लेकिन अज्ञान अभी दूर नहीं हुआ है. दुःख पर दुःख उठाती है. कुछ समझ में नहीं आता,

लेकिन मन और माया उसे अपने जाल में फिर फाँस लेते हैं. इस तरह सैंकड़ों जन्म गुज़र जाते हैं।

सैंकड़ों वर्षों के तजुर्बे के बाद उसको ज्ञान होने लगता है कि उसे जिस चीज़ की तलाश है वह उसका अपना ही स्वरुप है. दुःख का कारण उसका अज्ञान है. असलियत को समझ कर वह मन और माया से अपना वास्ता सिर्फ़ काम निकालने तक रखती है और सुख, शान्ति, ज्ञान और आनन्द के लिए अपने अन्दर की तरफ़ घुसती है. जितना घुसती जाती है उतनी ही ये तीनों चीज़ें बढ़ती जाती हैं और उसका विश्वास पुख़्ता होता जाता है. जितना विश्वास पुख़्ता होता जाता है उतना ही वह और अन्दर घुसती जाती है, और बाहरी वस्तओं से कार्य मात्र के लिए ताल्लुक़ रखती है. इस तरह बतदरीज़ (शनैं शनैं) पूर्ण रूप से एक दिन अपने अन्दर स्थिति कर लेती है और बाहरी वस्तुओं से ताल्लुक़ तोड़ देती है. यही ज़िन्दगी का मक़सद है।

इस मक़सद को हासिल करने के लिए यह ज़रूरी है कि इन्सान किसी की हिदायत (आदेश) में ज़िन्दगी गुज़ारे क्योंकि जब इन्सान किसी भोग में फँस जाता है तो अव्वल तो उसको बुरा नहीं समझता जब तक कि कोई उसके नुक़सान से आगाह न कराये और आगाह हो जाने पर भी उसकी इच्छा-शक्ति इतनी कमज़ोर हो जाती है कि बुराइयों को जानने पर भी और उनकी तक़लीफ़ों को देखते हुए भी अपने आपको उनसे निकाल नहीं सकता । इसलिए ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत है जो इस रास्ते पर चला हो और जिसने अपनी आत्मा को इस प्रपंच से निकाला हो. जो हमारा हमदर्द हो, जिसकी इच्छाशक्ति इतनी प्रबल हो कि हमको मदद दे सके । ऐसे व्यक्ति के मिल जाने के बाद ज़रूरी है कि हम अपनी कठिनाइयों को उसके सामने रखें, उससे कोई बात छिपाकर नहीं रखें।

हम न मालूम किस-किस योनि से गुज़र कर इस मनुष्य चोले में आये हैं और कई योनियों के संस्कार हमारे अन्दर मौजूद हैं. एक तरफ़ आत्मा है और साथ ही साथ पुराने संस्कार भी हैं. पुराने संस्कार नीचे की तरफ़ ले जाते हैं. हमें नीचे से ऊपर की तरफ़ चलना है. हमारी ज़िन्दगी इन्द्रिय भोगों से शुरू होती है. हमें आहिस्ता-आहिस्ता तज़र्बा करके मन की

वासनाओं को छोड़ना और आत्मा को इन प्रपंचों से छुड़ाना है और नीचे के अन्तिम मुक़ाम से लेकर आख़िरी चोटी तक पहुँचाना है। यही हमारा असली घर है. इसलिए तज़र्बा करते हुए जो वस्तु हमें नीचे की ओर या बाहर की ओर खींचे उसे छोड़ना ओर जो चीज़ें ऊपर या अन्दर की ओर जाने में सहायक हों उनको साथ लेना होगा। लेकिन इसमें ज़ल्दी नहीं हो सकती। शुरू में चींटी की चाल चलना होगा जब तक कि हम तम ओर रज से निकलकर आज्ञा चक्र के स्थान पर न आ जायें. इससे ऊपर मकड़ी की चाल चलना है जो त्रिकुटी तक पहुँचाती है. जैसे मकड़ी अपने मुँह से तार निकालकर छत से उतरती है फिर धरती पर आकर अपना शिकार करके फिर उसी मार्ग से छत पर चली जाती है. इसके बाद मीन मार्ग यानी मछली की सी चाल चलना होगा ओर यह चाल शून्य अथवा सुन्न के स्थान तक रहती है. उससे ऊपर सतलोक तक विहंगम चाल चलना है, जैसे पक्षी उड़ते हैं। पक्षी पहाड़ की चोटी से उड़कर धरती पर आ जाते हैं. संतों का मार्ग विहंगम मार्ग है।

अब सवाल यह पैदा होता है कि दुनियाँ में रहते हुए हम किसी चीज़ को छोड़कर दुनियाँ का काम कैसे चला सकते हैं ? इसका जबाब यह है कि तमोगुणी वासनाओं को (यानी जो अधर्म की बातें हैं) उनका त्याग तो करना ही होगा. बिना उन्हें छोड़े गुज़ारा नहीं. रजोगुणी वासनाओं (यानी दुनियाँ के पदार्थों को प्राप्त करने और इकठ्ठा करने की इच्छाओं को) इतना रखो कि जितने के बिना काम न चल सके. सतोगुणी मन की वासनाओं को (यानी धर्म को) अपनाओ. उस पर चलने की कोशिश करो. लेकिन उनको भी अपना अन्तिम लक्ष्य मत समझो. उससे भी ऊपर जाओ. अपनी आत्मा का अनुभव करने की कोशिश करो. जहाँ तक वासनायें हैं, चाहे वे अच्छी हों या बुरी, मन उनमें लगा हुआ है. जहाँ कोई वासना न हो, बुद्धि शान्त हो, तर्क-वितर्क न हों. सबमें अपना ही रूप झलके. सबसे प्रेम हो. यही तुम्हारा अपना रूप है. यही ईश्वर प्राप्ति है. इस स्थान पर पूर्ण रूप से स्थिति प्राप्त करो. ज़रूरी काम वक़्त पर किया और फिर अपने स्थान पर आ बैठे. यही तुम्हारी वापसी है, यही अपने असली घर लौटना है।

राम सन्देश : जनवरी-फरवरी 1994.

इन्सानी ज़िन्दगी का आदर्श

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ.श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

इन्सानी ज़िन्दगी का आदर्श यह है कि अपने आपको पहचाने कि मैं क्या हूँ. ईश्वर को पहचाने और उसमें अपनी हस्ती लय कर दे। जो इस आदर्श का रास्ता दिखलाये वही सच्चा आध्यात्म है. जिसने इस आदर्श की प्राप्ति कर ली है, वही सच्चा गुरु है । जो इस आदर्श की प्राप्ति करना चाहता है वही सच्चा भक्त है. जब ऐसा शिष्य हो और ऐसा गुरु हो तभी सच्चे लक्ष्य की प्राप्ति मुमकिन है. दुनियाँ की किसी भी चीज़ की ख़्वाहिश रखने वाला, चाहे वो कितनी भी अनमोल क्यों न हो, भक्त नहीं है। गुरु में कितनी ही विद्या क्यों न हो, कितना ही ज्ञान क्यों न हो, कितनी ही शक्ति क्यों न हो, अगर उसने अपन आप को ईश्वर को समर्पण नहीं किया है और ख़ुदी (अहंपना) बाकी है तो वह सच्चा गुरु नहीं है. ऐसा अधिकारी शिष्य हो और ऐसा पूर्ण गुरु मिल जाये, तभी ईश्वर के दर्शन होते है. लेकिन शर्त यह है कि शिष्य पूर्ण श्रद्धा के साथ गुरु के बताये हुए रास्ते पर चले और दुनियाँ की बड़ी से बड़ी चीज़ को त्यागने में न हिचकिचाये, बल्कि ख़ुशी से त्याग दे । ऐसा संयोग होने से सफलता प्राप्ति होती है और आदमी क़ामयाब होता है. जितनी देर ऐसी हालत हासिल करने में लगती है उतनी ही देर लक्ष्य प्राप्ति में होती है।

दूसरे, इस रास्ते में हिम्मत की बड़ी ज़रुरत होती है. कभी घबराएँ नहीं। बराबर दुनियाँ से लड़ता रहे। दुनियाँ से लड़ना यह है कि दुनियाँ की ख़्वाहिशात और धोखे से अपने को अलहदा रखे। परमार्थ और दुनियाँ का हमेशा से बैर रहा है। बिना दुनियाँ को फ़तह किये परमार्थ नहीं मिलता ।इसलिए बराबर दुनियाँ से लड़ता रहे और ईश्वर की कृपा और अपनी कामयाबी का पूरा यक़ीन रखे। कोशिश करने पर भी जब कामयाबी नहीं होती तो यह उसका इम्तिहान है. इम्तिहान यह है कि देखा जाता है कि उसमें कितनी हिम्मत है, उसे अपने लक्ष्य से कितना प्यार है और उसके लिए वह कितनी क़ुर्बानी कर सकता है।

जितनी दुनियाँ की तक़लीफ़ें होती हैं और जितनी रुकावटें आती हैं और तुमसे दुनियाँ की चीज़ें छीनी जाती हैं, ये सब इम्तिहान हैं. तीसरे अगर ईश्वर से भी प्यार है और दुनियाँ से भी प्यार है तो तरक़्क़ी नहीं होती, वहीं का वहीं रहता है इसलिए ईश्वर के प्यार के साथ दुनियाँ के साथ तर्क (त्याग) भी ज़रूरी है। गुरुजन ईश्वर प्रेम और दया के सागर हैं. वे हर समय प्यार करते हैं लेकिन हमें उसका अनुभव उसी वक्त होता है जब भक्त कोशिश करके अपने हृदय को दुनियाँ की ख़्वाहिशात और नफ़रत से शुद्ध कर लेता है, इससे पहले नहीं. इसलिए घबराना नहीं चाहिए. बुद्धि, मन और इन्द्रियों का हर समय शोधन करते रहना चाहिए यानी :-

1) हर समय ख़्याल रखो कि ईश्वर तुम्हारे साथ है और वह तुम्हारा सच्चा बाप है। प्यार से उसका पवित्र नाम लेते रहो।

2) जिस हालत में भी उसने तुम्हें रखा है चाहे वो अच्छी है या बुरी, उसमें खुश रहो. दुःख और सुख की दुनियाँ से ऊपर उठ . जब तक ज़िन्दगी है, दुःख और सुख तो आते ही रहेंगे. उनका आना ज़रूरी है, लेकिन अपने मन को उससे ऊँचा उठाओ और जो ख़िदमत या फ़र्ज़ ईश्वर ने तुमको सुपुर्द किया है उसे ईमानदारी और सच्चे दिल से पूरा करो. हर समय ख्याल रखो कि यह दुनियाँ ईश्वर की है. हम सब ईश्वर के हैं. जो काम हो रहा है और हम कर रहे हैं, ईश्वर के लिए कर रहे हैं. हम वहीं से आये हैं , उसी की दुनियाँ में रह रहे हैं और हमें वहीं जाना है।

3) अपने ख्यालों को हमेशा शुद्ध करते जाओ .ख्यालों पर क़ाबू पाने की कोशिश करो । अपनी बुद्धि को दुनियांवी ख़यालों से हटाकर सन्तों की वाणी, शास्त्रों के उपदेश और परमात्मा के प्रेम में लगाओ। इन्द्रियों का आचार ठीक करो. कोशिश करो कि इन्द्रियाँ दुनियांवी ग़िलाजत देखने के बजाय हर जगह ईश्वर को देखें। यही रहनी-सहनी का ठीक करना है

4) जब-जब मौक़ा मिले सन्तों, गुरुजनों की सेवा करो, उनको ख़ुश करो, उनका सत्संग करो, उनके उपदेशों को हित-चित से सुनो और उन पर अमल करने की कोशिश करो। हमेशा पूरी कामयाबी होगी. कभी निराशा नहीं होगी।

यही सच्चा, सीधा और सहज रास्ता ईश्वर को प्राप्त करने का है।

राम सन्देश : जुलाई-अगस्त, 2008

एकता ही सत्य है

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

अपने सर्वस्व हृदय से प्रभु को प्रेम करो, सब फ़िज़ूल विचारों को छोड़ दो और अपने मन को ईश्वर के प्रेम में डुबो दो। जब तुम्हारा मन ईश्वर के प्रेम में रंग जायेगा तब तुम्हें सारी श्रष्टि राम का ही रूप दिखाई देगी। तुम अपने आप देखोगे कि तुम्हारा स्वभाव बिलकुल बदल जायेगा। इस श्रष्टि में जितने चराचर हैं, उन सबको तुम समान रूप से प्रेम करोगे। तुम्हें समदृष्टि प्राप्त हो जायेगी। इसी समदृष्टि के द्वारा तुम्हें अपार और अमिट आनन्द की प्राप्ति होगी। तुम सदा अपने आपको प्रेम के अथाह सागर में गोता लगाते पाओगे। यह स्थिति परमानन्द की स्थिति है। सबसे पहले प्रभु को प्रेम करो, सब वस्तुओं के प्रेम से वह प्रेम बाज़ी ले जाये। इसकी पहचान यह है कि तुम्हारे दिल में हर समय उसकी याद बनी रहेगी और जब यह याद ऐसी पारिपक्व हो जायेगी कि एक क्षण के लिए भी तुम उस प्रभु को न भुला सकोगे तो एक ऐसा मुबारिक दिन आयेगा कि तुम उस प्रभु में लय हो जाओगे। मित्र और शत्रु, भलाई और बुराई, दुःख और सुख, आदि द्वन्द अवस्थायें तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेंगी और तुम इन सबके प्रतिबिम्ब से ऊँचे उठ जाओगे। अब तुम स्वतंत्र हो, आज़ाद हो, मुक्त हो। अब तुम सबको प्रेम करते हो और किसी को भी प्रेम नहीं करते। तुम्हारे पास सब कुछ है और कुछ भी नहीं है। तुमने परम सत्य को जान लिया है और प्राप्त कर लिया है।

यह संसार तीन गुणों का खेल है - सत, रज और तम। जो कुछ भी हमारी आँखों से दिखाई देता है, वह इन तीन गुणों का ही फल है। इसलिए हमें इन तीन गुणों से, और जो कुछ भी उनके द्वारा दिखाई देता है, उससे ऊपर उठ जाना चाहिये। इन तीन गुणों का प्रभाव हमें अपने ऊपर से हटा देना चाहिये। यदि कुछ प्रभाव शेष रह भी जाये तो केवल उसकी याद के रूप में रह जाये कि इन तीन गुणों को नियंत्रण में रखने वाली वही एक पारब्रह्म

शक्ति है। एकता ही सत्य है, अनेकता मिथ्या है। अपने मन को सदा उस परमसत्य की दिशा में चलाये चलो और केवल उसी एक सत्य में ले जाकर उसे स्थित कर दो। कभी भी अपने मन को साँसारिक वस्तुओं में मत फँसाओ। कभी किसी की आलोचना मत करो। किसी के विषय में कोई निर्णय मत करो। मन को इधर-उधर भागने के बजाय, तरह-तरह की गुनावन उठाने की बजाय, एकाग्र बनाओ और उसे ऐसे अभ्यास में लगाओ जिससे वह अपना नाता उस परम-सत्य से जोड़े। यानि तुम यह अभ्यास करोगे तो एक दिन अनेकता की भावना एकता में लय हो जायेगी। वह शान्त हो जायेगा और परमानन्द जो सदा एक रस है और सदा रहने वाला तप, जो सत्य का स्वरुप है, वह तुम्हारे अन्तर में स्वयं प्रकाशित हो जायेगा।

ओ सन्यासी, सावधान। यह संसार एक चुम्बक शक्ति है, यह तुम्हें भुलावा देकर अपनी ओर खेंचता है। अगर तुम इसमें फंस जाओगे तो इस संसार के सागर में गोते लगाने लगोगे। उससे बच कर रहो, जैसे कमल का पत्ता जल के अन्दर पड़ा रहता है।

अपने मन को बलपूर्वक प्रभु के चरणों में लगाओ ओर दुनियाँ में काम करते रहो। ऐसी दशा में दुनियाँ तुम्हें नहीं लुभा सकेगी। संसार में इस तरह घूमों जैसे लालटेन, जो अपने प्रकाश को आंधी में भी सुरक्षित रखती है और अपनी लौ को डगमग नहीं होने देती।

संसार एक भंवर के समान है। जब प्रभु की प्रेरणा हो तब उसमें घुसो। उसमें घुसकर अपने चारों ओर शान्ति बिखेरते चलो। उसकी अवेहलना मत करो। उसमें दोष मत देखो। सबको प्रेम करो, और समान रूप से प्रेम करो। सबके प्रति दया और सहानुभूति का व्यवहार करो। स्तुति और निन्दा तुम्हारे लिए समान हो, दुःख और सुख का तुम्हारे ऊपर एक सा प्रभाव हो। प्रभु का निरन्तर नाम जपते हुए अपना सन्तुलन बनाये रखो। निर्भय हो जाओ। महाशक्तिशाली और अतुलित बल रखने वाला प्रभु तुम्हारे भीतर है। वही तुम्हें नियंत्रण में रखता है। वही तुम्हें रास्ता दिखाता है। वही तुम्हें संचालित रखता है। वही तुम्हारा नेतृत्व करता है। वही सच्चा बुद्धिमान और सच्चा प्रेमी है। जो कुछ वह करता है, वह तुम्हारे कल्याण के लिए करता है। अपने आपको उसके अर्पण कर दो और उसके शरणागत होकर रहो। संसार में एकता के साथ रहो और सबसे प्रेम करो। अनेकता में घृणा है, मृत्यु है। सब

जगह एकता की भावना से उस एक परमेश्वर के रूप का दर्शन करो। वही सत्य है और वही राम है जो सब जगह और सबमें व्याप्त है। अलग-अलग रूपों के हेर-फेर में मत पड़ो। लुभावने दृश्यों के बहकावे में मत आओ। अपने आप में स्थित रहो और ऐसे दृढ़ हो जाओ कि कभी डिगमिग न होने पाओ। अपने मन में शंका को स्थान मत दो। जो कुछ भी कर्म करो, उसे दृढ़तापूर्वक करो और उसमें ढ़िलमिल न होने पाये। प्रभु की अन्तरप्रेरणा सदा तुम्हें सन्मार्ग दिखाती रहेगी। शैतान तुम्हें बहकायेगा और साँसारिक सुखों के साधन जुटाने के लिए तुम्हें उकसायेगा। उससे सावधान रहना।

विनम्र बनो और सबकी सेवा के लिए सब समय तत्पर रहो। प्रेम स्वरुप हो जाओ। प्रभु की राह में सब कुछ न्यौछावर कर दो। लोभ लालच से ऊपर उठ जाओ। जो वस्तुएँ तुम्हें प्रभु से दूर हटाती हैं वे मानो ज़ंजीरों में जकड़कर तुम्हें स्वतंत्र होने से रोकती हैं। उन बन्धनों को तोड़ दो। सदा पवित्र और सदाचारमय जीवन व्यतीत करो।

ये सब बातें केवल उसी समय सम्भव हो सकेंगी जब तुम प्रभु में पूरा विश्वास ले आओगे और जो कुछ तुम्हारा कहने योग्य है, वह उसके चरणों में अर्पित कर दोगे। अपने आपको समर्पण करने की आवश्यकता है। अहंपना छोड़ दो। दुनियाँ दिखावा, जाति-पांति भेद-भाव, सामाजिक बन्धन, नाते-रिश्तेदारी, आदि की सीमाओं को तोड़ दो और इन सबसे मुक्त हो जाओ। सदा मुक्ति की स्वतंत्र वायु में साँस लो। राम के होकर रहो और राम में ही रहो।

संत वचन : भाग 2

कथनी, करनी, रहनी

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

हरेक जिज्ञासु के लिए तीन बातों पर अमल करना ज़रूरी है - (1) कथनी, (2) करनी, और (3) रहनी।

कथनी - जो लोग सच्चे और पूरे गुरु की तलाश में हैं अगर वे किसी महापुरुष के पास जाते हैं तो वहाँ जाकर अदब से उनके पास बैठ जाना चाहिए और उनकी बात ध्यान से सुनना चाहिए। वे जो कुछ कहें, उस पर ध्यान दें। यदि कोई बात समझ में न आवे तो उस पर उनसे वार्तालाप (discussion) करें और अपनी बुद्धि से सोचें, विचारें। जब तक दिल उस बात को न माने तब तक उसे स्वीकार न करें। इस काम में जल्दी नहीं करनी चाहिए। साल दो साल क्या अगर किसी सच्चे गुरु की तलाश में एक दो जन्म भी लग जायें तो कोई हर्ज़ नहीं।

करनी - कथनी के बाद आती है करनी। जब एक बार दिल इसको ख़ूब पक्की तरह क़बूल कर ले कि जो कुछ यह कह रहे हैं, वह सब सत्य है और यह दृढ़ विश्वास हो जाय कि यही हमारे पूरे हितेषी हैं, इनकी हर बात हमारी भलाई के लिए ही है, इसमें इनका कोई स्वार्थ नहीं है, इनकी रहनी-सहनी साधारण आदमियों की तरह नहीं है वरन एक आदर्श पुरुष की तरह है, जैसा कहते हैं वैसा ही अपना जीवन इन्होने बना लिया है, इनका हर काम दूसरों की भलाई के लिए ही होता है, तो उन पर पूरी तरह अपना ईमान ले आयें। वे जो कुछ आदेश दें उस पर विश्वास और परिश्रम के साथ व्यौहार प्रारम्भ कर दें। उनके बताये रास्ते को सदैव दुनियाँ के मुक़ाबले में मुख्य समझें। अपना तन, मन, धन सभी उन पर न्यौछावर कर दें। हर काम में उनकी बात को मुख्य रखें। दुनियाँ के सब काम करें लेकिन उनको एक कर्तव्य समझ कर करें। अपने को उनमें फँसने न दें। सदैव दुनियाँ से छुटकारा पाने के विचार को अपने सामने रखें।

रहनी - जब करनी करने लग जायें तब रहनी की तरफ़ ध्यान दें। जैसा आपने गुरु से सुना और समझा था, उसके अनुसार अपनी रहनी-सहनी बना लें। अपना चरित्र सुधारने और उसे उच्च बनाने के लिए जो बातें उन्होंने बताई हों उन पर व्यौहार करें। उनका उदाहरण सदैव अपने सामने रखें। उनके चरित्र, रहन-सहन तथा व्यौहार के अनुकूल ही अपने जीवन भी बना लें। नित्य के जीवन में वही काम करें, जिससे वह प्रसन्न होते हों। जैसे बच्चे के हाथ में खिलौना होता है, वह उसे चाहे कभी उठा ले, फेंके, तोड़े-फोड़े या सम्भाल कर रखे। खिलौना निर्जीव होता है, उसे कभी कोई एतराज़ (आपत्ति) नहीं होता, इसी प्रकार की अपनी ज़िन्दगी बना लें। जीते जी मुर्दा बन जाय और अपने आप को पूरी तरह गुरु के समर्पण कर दें। अपनी कोई इच्छा बाकी न रहे, जिस तरह गुरु चलायें, उसी तरह चलें। तब रहनी बनेगी। कबीर साहब ने कहा है -

करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी करै सो नाती।

रहनी रहै सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी ॥

जब तक परमात्मा के प्रेम को प्राप्त करने के लिए अपनी जान तक क़ुर्बान (न्यौछावर) नहीं कर देंगे, तब तक लक्ष्य की प्राप्ती नहीं होगी। जान का क़ुर्बान करना क्या है - जीते जी मर जाना। परमात्मा के प्रेम के अतिरिक्त अपने मन में कोई दूसरी इच्छा शेष न रखें। जब इन बातों पर अमल करेंगे तो सफलता मिलती जायेगी। मीरा कहती हैं -

" सूली ऊपर सेज पिया की, किस विधि मिलना होय "

सवाल यह उठता है कि यह कैसे मालूम हो कि सफलता हो रही है या नहीं ? इसकी पहचान है। सब मत-मतान्तरों और धर्मों का एक ही मत है - सच्चे ज्ञान की प्राप्ति, सच्चा आनन्द और मृत्यु पर विजय, यानी जन्म-मरण से छुटकारा। (Complete knowledge, all bliss and everlasting life) यह कब होगा ? जब परमात्मा के चरणों में सच्चा प्रेम होगा और एक-मात्र इच्छा होगी - परमात्मा से मिलने की, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की, सच्चे सुख की प्राप्ति की और जन्म-मरण के चक्र से छूटने की।

उन्नति की पहिचान यह है कि मन दुनियाँ से उपराम होता जाय, दुनियाँ की नाशवान वस्तुओं से, धन-सम्पत्ति और सगे सम्बन्धियों से प्रेम कम होता जाय और परमात्मा की ओर मन का खिंचाव होने लगे। यह एक दिन में नहीं होता, बहुत समय लगता है। मन की चाल को देखता चले। सच्चाई का विचार, भलाई का विचार, ईश्वर-प्राप्ति का विचार - यह सब परमार्थी चालें हैं। इनके अतिरिक्त जितने विचार मन उठाता है, वे सब संसारी हैं और बन्धन में डालने वाले हैं। ईर्ष्या, राग, द्वेष कम होते जाते हैं। सबसे मित्रता और प्यार का भाव उत्पन्न होता जाता है। धन-सम्पत्ति, मान-बड़ाई, इन्द्रिय-भोग आदि की ओर से ध्यान हटता जाता है। पहले जिन संसारी वस्तओं में बड़ा आनन्द आता था उनमें अब वह आनन्द नहीं आता। सुरत (attention) जो सब तरफ़ बटी हुई थी,सिमट-सिमट कर परमात्मा की ओर लगने लगती है। परमात्मा की इच्छा पर ही निर्भर रहता है यानी राज़ी-ब-रज़ा हो जाता है।

मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है - ईश्वर प्राप्ति, (solar system) तक पहुँचना, परमात्मा के लोक में पहुँचना और पुनः उसमें लय हो जाना। वहाँ तक पहुँचने के लिए मन के स्थान (mental plane) से गुज़रना पड़ता है। यह अथाह है और इसके तीन रूप हैं –

(1) तम, (2) रज , और (3) सत।

(1) तम अवस्था यानी आलस्य - खाना-पीना, इन्द्रिय-भोग और क्रोध। यह पशुओं की अवस्था है ? इससे छुटकारा पाने के लिए कर्म करना चाहिए। कर्म करने से आलस्य दूर होता है। जब तक काम और क्रोध का वेग है, समझ लो अभी तम के स्थान पर हो। काम से संयम (abstinence) करो, क्रोध कम हो जायेगा।

(2) रज - संसारी वस्तुओं की इच्छा करना, प्राप्त हो जाने पर और अधिक प्राप्त होने की लालसा करना, उनसे प्रेम या लगाव हो जाना और उनका अभिमान करना। लोभ, मोह, अहंकार, दुनियाँ की नाशवान वस्तुओं की इच्छा, उन्हें प्राप्त करने की प्रबल चाह, उनके मिल जाने पर थोड़ी देर का सुख और न मिलने पर दुःख। कभी मन में बुराई का ध्यान आना, कभी अच्छाई का। यह बीच का मुक़ाम है। इसमें लोच (elasticity) होती है। जब परमार्थी

यानी अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं तो मन सत की तरफ़ झुक जाता है और जब संसारी वस्तुओं का ध्यान आता है तो तम की ओर खिंचावट होती है। यह रज का रूप है। मन में जितना ही संसारी वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा उठती है उतना ही मन उसमें फँसता जाता है और लोभ, मोह और अहंकार पैदा होते जाते हैं।

किसी वस्तु को देख कर या उसका ध्यान करके उस ओर खिंचावट (attract) होना लोभ है। फिर उस वस्तु से लगाव हो जाना मोह है। बाद में उससे प्यार करना, अपने को उसका स्वामी समझना, यह अहंकार है। जब मनुष्य इसमें फँस जाता है तो छुटकारा कठिनाई से होता है। अधिकतर अभ्यासी यहीं अटके रहते हैं।

किसी संसारी वस्तु को भोगने में दोष नहीं है मगर धर्मशास्त्र के अनुसार चलना चाहिए और उसे अपना समझकर नहीं भोगना चाहिए। यदि हम उसे ईश्वर का समझ कर भोगें तो अहंकार (ego) नहीं होता।

(3) सत - यह मन का तीसरा और सबसे उत्तम रूप है। इस स्थान पर पहुँचकर मनुष्य के केवल तीन कर्तव्य रह जाते हैं :- (1) दान, (2) दया, और (3) दमन।

दान - मन अच्छे-अच्छे विचारों का गुनावन करता है। दान करने के विचार पैदा होते हैं। निर्धनों को दान देना, विद्यालय, अस्पताल खुलवाना, धर्मशाला, कुआँ आदि बनवाना, धन-दान में आते हैं। निर्धन बच्चों को पढ़ना, विद्या-दान करना है। भूखों को खिलाना, सदावर्त चलाना, अन्नदान कहलाता है।

दया - उसके मन में दया के अंकुर फूट निकलते हैं, दूसरों को दुखी नहीं देख सकता। मनुष्य हो या कोई जीव-जन्तु, उसे देखकर उसका मन द्रवित हो जाता है और वह रो पड़ता है। हाथ-पाँव से दुखियों की सेवा करता है। सभी प्रकार से अपने कर्तव्य पूर्ण रूप से पूरा करता है। माँ-बाप का ऋण उनकी सेवा करके और उन्हें प्रसन्न करके पूरा करता है। गुरु का ऋण उनकी सेवा द्वारा तथा उनके बताये हुए कर्मों को करके पूरा करता है। देश का ऋण, धरती का ऋण, मित्र का ऋण, स्त्री-बच्चों का ऋण, प्रत्येक के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन

करके उन्हें पूरा करता है। जो अपने इन कर्तव्यों को पूरा नहीं करता, उसकी मोक्ष नहीं होती ।

दमन - अपनी इन्द्रियों का दमन करता है। जिधर इन्द्री जाय उधर न जाने देना, इन्द्रिय-दमन कहलाता है। विषय-भोग से बचना या मन उधर को जाय तो समय नियत कर लेना, ऐसा न होने पर भूखा रहना जिससे मन पर चोट लगे। किसी वस्तु की इच्छा न करना, जिस वस्तु पर मन चले वह खाने को न देना, स्वादिष्ट और स्वाद-रहित खानों को एक ही तरह खाना - न स्वादिष्ट भोजन में विशेष रुचि और न स्वादरहित भोजन से अरुचि। परमात्मा का नाम अधिक से अधिक लेना - ये सब बातें इन्द्रिय दमन में आती हैं और इनसे मन कमज़ोर होता है।

जब मन की इस तरह गढ़त हो लेती है तब सही तौर पर वह सत के स्थान पर आता है और यहीं से असली परमार्थ प्रारम्भ होता है। इससे पहले जो कुछ करता है, सब धर्म है। परमार्थ प्रारम्भ होने पर उसको परमात्मा के चरणों के प्रेम की झलक मिलने लगती है, आत्मा के गुण प्रकट होने लगते हैं और वह अपने असली प्रीतम की ओर खिंचने लगती है।

अधिकतर मनुष्य रज अवस्था में होते हैं, चाहे वे कितने ही अच्छे और शुद्ध विचार वाले हों। जहाँ तक बुद्धि की पहुँच है वहाँ तक मन का ही पसारा है। इसका रूप बड़ा ही विशाल है, मन मारा नहीं जा सकता, परन्तु धीरे-धीरे समझाने से और सख़्ती से वश में आ जाता है। जैसे कि किसी बाप का बेटा बुरी आदतों में हठी हो जाता है ऐसे ही हमारी गलतियों से जो हमने अपने मन की हर इच्छा पूरी करके की हैं, यह हठी हो गया है और हमारी इच्छा न होने पर भी हमसे अपनी इच्छानुकूल कार्य करा लेता है। इसे वशीभूत करो। इसके लिए अपने मित्र, अपने परम हितेषी गुरु से मदद लो। समय थोड़ा है और हमें सीमित शक्ति (fixed energy) मिलती है जिसे हम दुनियाँ के कामों में ख़र्च कर देते हैं। वह शक्ति हमें मिलती तो है अपनी आत्मा के ऊपर से परदे उतारने के लिए, आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए, परन्तु वह ख़र्च होती है अन्य साँसारिक बातों में। गुरु से मदद माँगो, शक्ति माँगो, वे तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगे और परमात्मा (जो शक्ति का भण्डार हैं) से शक्ति लेकर तुम्हारी आत्मा

को बलबान बनायेंगे जिससे तुम अपने मन को अपने आधीन बना सकोगे। बिना गुरु की सहायता के, बिना उनसे अधिक शक्ति (extra energy) प्राप्त किये कोई बुरी आदत नहीं छूट सकती। लेकिन गुरु से शक्ति मिलती है केवल उनको जो उनकी इच्छानुसार कार्य करते हैं, जो उनके आदेशों पर चलते हैं।

संसार की हर वस्तु छूटनी ही है। सभी वस्तुएँ नाशवान हैं। सभी से विछोह होना है। जिस वस्तु से अधिक मन लगाओगे उसके छोड़ने में उतनी ही कठिनाई और कष्ट होगा। यदि स्वेच्छा से न छोड़ोगे तो मृत्यु के समय सभी स्वतः छूट जायेंगी और तब उस समय बहुत दुःख होगा। बच्चे को देखो, अगर वह किसी वस्तु के हठ को छोड़ देता है तो उस पर ध्यान भी नहीं देता। यही आदत सीखो और मन को इसी तरह समझाओ। मन त्रिकुटी का वासी है। वह भी ऊँचे यानी स्वर्ग का सुख चाहता है और दुनियाँ के सुखों में ज्यादा प्रसन्न नहीं रहता। परन्तु वह दुनियाँ के सुखों में फँस गया है। जब वह इन्द्रिय भोग से उकता जाता है तो स्वयं प्रसन्नता अनुभव करता है। दूसरे यह कि प्रारम्भ में वस्तुओं के छोड़ने में इसे दुःख होता है और इसके लिए परिश्रम करना पड़ता है। बाद में वह आसानी से भलाई की ओर झुकने लगता है और प्रसन्न रहता है। उसके प्रसन्न रहने से आत्मा भी शान्त रहती है। यह अवस्था उस समय प्राप्त होती है जब मन सत की अवस्था में आ जाता है।

संसार में हमारी पकड़ उतनी ही होनी चाहिए जितनी साँसारिक कार्यों को चलाने के लिए आवश्यक है। अधिक होने पर दुखदायी होगी। संसार की हर वस्तु बदलने वाली है, हमारी इच्छाएँ भी बदलने वाली हैं और ये दोनों ही नाशवान हैं। इनके छूटने पर दुःख होगा। इसी विचार का नाम विवेक है। सोचो, एक दिन सब छूटेंगे, अलहदगी (separation) होगी। इस तरह के विचार से दुनियाँ से लगाव कम होता है। जब किसी वस्तु से प्रेम पैदा हो, यह विचार करो कि यह भी छूटेगी। किसी से शत्रुता नहीं है, समझा समझकर मन को सीधे रास्ते पर लाओ। जब तक नौकरी पर रहते हो वहाँ की हर चीज़ से सम्बन्ध रहता है, अवकाश प्राप्त होने (retire) पर कोई सम्बन्ध नहीं। कारण यह है कि नौकरी के बीच में उसे अपना नहीं समझा इसलिए इसके छूटने पर कोई दुःख नहीं होता। इसी प्रकार संसार

की सभी वस्तुएँ तुम्हें भोगने के लिए मिली हैं, तुम्हारी हैं नहीं। यदि यह ध्यान रहेगा तो लगाव (attachment) नहीं होगा। प्रेम करना इन्सानी स्वभाव है, लेकिन उसमें फँसना नहीं चाहिए।

इसका साधन है गुरु का बताया हुआ अभ्यास और गुरु का सत्संग। इससे धीरे-धीरे निचली वासनाओं को छोड़ता चलता है और तम से रज और रज से सत पर आ जाता है। गुरु के संग और सत्संग से आत्मा को शक्ति मिलती है जिससे अन्दर से दुनियाँ को छूटने के लिए बेचैनी होती है, यही सुरत का जगाना है। फिर वह मन के फन्दे से निकलने के लिए प्रयत्न करती है, रोती-बिलखती है और परमात्मा से मदद माँगती है। परमात्मा की अथाह कृपा की लहरें उमड़ती हैं और मनुष्य रूप में गुरु रूप होकर उसको मदद करती हैं जिससे आत्मा मन के फन्दे से स्वतन्त्र हो जाती है और ईश्वर का प्रेम चमकने लगता है। दिल में एक दर्द बना रहता है जो उसको अपनी असल की ओर खींचता है, चाल को तेज़ कर देता है, रास्ता तय होने लगता है और आत्मा अपने प्रीतम, यानी परमात्मा से मिलकर एक हो जाती है। यही मोक्ष है और यही निर्वाण पद है। यही हालत ज़िन्दगी में होती है क्योंकि ज़िन्दगी कुरुक्षेत्र है। मौत के बाद भोग योनि है। जो कुछ करना है, इसी ज़िन्दगी में करना है और अभी करना है।

गुरुदेव सबको सही रास्ता दिखावें।

राम सन्देश : मार्च, 1971.

तत्वज्ञान और उसकी चाह

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

तत्वज्ञान - यानी परमात्मा तमाम दुनियाँ का मालिक है. उसी की तमाम दुनियाँ है. हम सब उसी से आये हैं और उसी में जाकर समायेंगे. तमाम जगत का कार्य उसी की इच्छा हो रहा है. हम सब उसके हाथ की कठपुतली हैं. वही सबका कर्त्ता है.

तत्वज्ञान और उसकी चाह हर जानदार के दिल में मौजूद है लेकिन उस पर माया के पर्दे पड़ जाते हैं। अगरचे यह मिट नहीं जाता, लेकिन माया की चाहों में दब जाता है. जानदारों, बनस्पति वगैरह में यह माया का पर्दा हटाया नहीं जा सकता, लेकिन इन्सानी ज़िन्दगी में बुद्धि और इच्छाशक्ति से यह पर्दा हटाया जा सकता है। ये ख़ास शक्तियाँ (इच्छाशक्ति और विवेक) केवल इन्सान में ही हैं। इसीलिए इन्सान परमात्मा का निज-पुत्र कहलाता है. जितना माया का पर्दा गहरा होता जाता है उतना इन्सान असली ज्ञान भूलता जाता है, और दुनियावी ज्ञान को ही असली ज्ञान समझता है. दुनियावी चीज़ों को हासिल करना और उन्हें भोगना ही उसे इन्सानी ज़िन्दगी का लक्ष्य मालूम पड़ता है। इसी से ज़्यादातर इन्सान दुनियावी पदार्थों के पाने और उन्हें भोगने में ही लगे रहते हैं जब धीरे-धीरे दुनियाँ के तजुर्बे होते जाते हैं, और ईश्वर की कृपा से सन्तों का समागम होता है, तो अज्ञान का पर्दा भी धीरे-धीरे हटता जाता है और तत्वज्ञान और उसके हासिल करने की चाह बढ़ती जाती है। लेकिन यह एक साथ नहीं होता. यह माया का पर्दा जन्म-जन्मान्तर से हमारे साथ लगा हुआ है, इसलिए एकसाथ नहीं हटाया जा सकता. सन्तों की सौहबत में जाते हैं, उनकी बानी को सुनते हैं तो थोड़ी देर के लिए पर्दा हट जाता है, लेकिन फिर आ जाता है. दुनियाँ के तजुर्बे से सबक मिलता है कि यहाँ स्वार्थ ही स्वार्थ है, कोई अपना नहीं है । थोड़ी देर के लिए वैराग्य होता है पर फिर उसमें फंस जाते हैं. जैसे दरिया के पानी के ऊपर काई जमी हुई है, थोड़ी देर के लिए हट जाती है, साफ़ पानी दिखाई देता है. पर फिर काई जम जाती है और साफ़ पानी

दिखाई नहीं देता। उसी तरह दुनियाँ के तजुर्बे और अभ्यास, व सन्तों की कृपा से थोड़ी देर के लिए पर्दा हट जाता है, फिर पर्दा आ जाता है और असली रूप छुप जाता है. यही मन्द-वैराग्य है. लेकिन आहिस्ता-आहिस्ता पानी की काई को रोज़ाना थोड़ी देर बाहर फेंकते जाएँ तो एक दिन मुमकिन है कि काई हमेशा के लिए हट जाये और तत्वज्ञान हमेशा के लिए प्रकाशित हो जावेगा और हमेशा क़ायम रहेगा। इसलिए ज़रूरी है कि अभ्यास और सन्तों की सौहबत के साथ बुद्धि की मदद से यह देखें कि कौन-२ सी चीज़ें हमें फिर इस दुनियाँ में फंसा देती हैं और आहिस्ता-आहिस्ता उन चीज़ों से अपने को अलहदा करते जाएँ. यही त्याग है। चाहे बाहरी रूप में उस चीज़ का त्याग नहीं लेकिन दिल से उसका त्याग बहुत ज़रूरी है। श्रीकृष्ण भगवान जैसे गुरु जो स्वयं ईश्वर थे और अर्जुन जैसा शिष्य जो अपने गुरु के सब प्रकार कहने में था, मोह के वश होकर अपना कर्तव्य करने से इन्कार कर देता है। कृष्ण भगवान हर तरह से समझते हैं और बड़ी मुश्किल से उसका अज्ञान दूर होता है और कहता है -" अब मेरी सब शंकाएँ दूर हो गयीं और फिर वह लड़ता है. लड़ाई बढ़ती जाती है, क्योंकि अर्जुन पूरी ताक़त से नहीं लड़ता है. उसमें मोह का अंग बहुत बाक़ी था. अभिमन्यु मारा जाता है, अर्जुन के मोह को बहुत धक्का पहुँचता है और अन्दर से मोह बाहर आ जाता है. अर्जुन पूरी ताक़त से लड़ता है और चार रोज़ में लड़ाई का ख़ात्मा हो जाता है।

हम गुरु की बात को सही मानकर ज्ञान हासिल करके अपने मन की इच्छाओं और बुद्धि से लड़ना शुरू करते हैं लेकिन पूरी ताक़त से नहीं. जितना दुनियाँ का मोह कम होता जाता है, उतनी तरक़्क़ी होती जाती है और जब पूर्ण रूप से मोह अन्दर से बाहर आ जाता है तब हमारे अन्दर महाभारत की लड़ाई का ख़ात्मा हो जाता है. तमाम फ़िसाद की जड़ मोह है. यह प्रकृति का शिशु है / इसके पैदा होते ही तमाम विकार ख़ुद ही आ जाते हैं. यह सबकी जड़ है. इसी को मारने के लिए सब जतन किये जाते हैं /

राम संदेश : अप्रैल, 1979.

दीन भाव

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

मन में तरंगें उठें तो सुमिरन व भजन करना चाहिये. सुरत को तीसरे तिल में मेटें. दोनों आँखों की रोशनी जहाँ मिलती है वहीं ध्यान करना चाहिय। वहाँ ध्यान जमाने से प्रकाश नज़र आयेगा। शब्द भी वहीं पर सुनाई पड़ता है, परन्तु यह अन्तर में सुनना चाहिये. गुरु का ध्यान करना स्थूल, व शब्द का सुनना अथवा प्रकाश का देखना सूक्ष्म है. गुरु ध्यान करते - करते जब प्रकाश दिखाई देने लगे अथवा शब्द सुनाई पड़ने लगे तो फिर ध्यान को छोड़कर उसी को करने लगना चाहिये। अगर प्रकाश देखने या शब्द सुनने के साथ - साथ गुरु का ध्यान भी करते रहें तो चित्त ठिकाने न रहेगा और दोनों में से कोई भी नहीं हो सकेगा। नियमित ढँग से साधन में जब पुष्टता आयेगी तभी शब्द और ध्यान दोनों चल सकते हैं। तसबीर को सामने रख कर या किसी मूर्ति आदि पर ध्यान नहीं करना चाहिये. अगर गुरु सामने मौजूद हों, तो भी उनकी ख़्याली शक़्ल का ही ध्यान करना चाहिये। हालाँकि यह ख़्याली शक़्ल का ध्यान भी स्थूल ही माना जाता है, पर शुरु - शुरु के अभ्यासियों को ऐसा करना कठिन होगा। चूँकि आत्मा के केन्द्र में ही परमात्मा है, अतः उसका अनुभव हाँसिल करने के लिए ऐसी हालत पर आना है जहाँ कोई ख़्याल न हो. ध्यान अन्तर में होवे, इसके लिये यह आवश्यक है कि हमारी सुरत (attention) जो अभी बाहरी पदार्थो में लगी हुई है - वहाँ से हटे और सिमट कर अन्तर में लौटे. मन की धार यानी संकल्प - विकल्प जब तक शान्त न होंगें तब तक ध्यान पक्का नहीं हो सकता। मन काल का अंश है। यह सुरत को दुनियाँ और दुनियांवी पदार्थों की तरफ़ बिखेरता रहता है. मन सबसे अधिक तीव्र गति वाला और महा चंचल है, कभी शान्त नहीं रह सकता। इसकी उपमा शान्त -प्रशान्त तालाब के जल से दी गई है। जैसे प्रशान्त जल में हवा चलने से या हलकी से हलकी चीज़ फेंकने पर छोटी - छोटी तरंगें उठने लगतीं हैं, वैसे ही इन्द्रियों के प्रभाव से या शरीर के ज़रा से हिलने मात्र से मन में संकल्प - बिकल्प उठने शुरु हो जाते हैं. योग, यज्ञ, तप, तीर्थ, व्रत , नियम,

पूजा आदि जो कुछ भी किए जाते हैं, पहले -पहल वे सब मन को शान्त करने के लिये ही किये जाते हैं. इन तरंगों की रोक -थाम सुमिरन व ध्यान से की जाती है. इसमें भींचा - भींचीं करनी पड़ती है. मन को वासनाओं से हटाना, भींचा - भींचीं कहलता है. इसके लिए कम खाना, कम सोना, कम बोलना, एकान्त सेवन और व्यादातर समय ध्यान में रत रहने की सलाह संत लोग देते हैं ।

सुःख प्राप्ति से मन मोटा होता है. सुःख साधना में महा बाधक होता है. परमात्मा की याद दुःख में ही आती है. इसलिए दुःखों को परमात्मा की नियामत समझा जाता है. कहा भी है :

" सुःख के माथे सिल परै, जो नाम हिए से जाय .बलिहारी वा दुःख की जो पल -पल नाम रटाय. "

मन और माया को कमज़ोर करने के लिए अपने आप को दीन समझें. जब तक दीनता नहीं आती, तब तक आपा नहीं मिटता । आपा मिटे वगैर आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता और न आत्मानुभव के बिना उद्धार ही होता है. स्वार्थ और परमार्थ साथ - साथ नहीं रह सकते । केवल एक ही रह सकेगा । ख़ुदा (ईश्वर) को पाने के लिए ख़ुदी (अहमपने) को निर्मूल करना पड़ेगा और वह तभी होगा जब दुनियाँ से सच्चा वैराग और गुरु चरणों में अनुराग होगा । वैराग का यह मतलब कदापि नहीं कि घर -बार, स्त्री, परिवार आदि को छोड़कर जँगल में चला जाय । जँगल में जाने से क्या कहीं वैराग हो सकता है ? शरीर और मन तो वहाँ भी रहेंगे और जब ये रहेंगे तो इनके व्यबहार भी करने ही पड़ेंगे । सच्चे मायने में वैराग का अर्थ वीतराग होना है, यानी किसी चीज़ में राग (आसक्ति) न हो । शरीर से सब कुछ भोगता हुआ भी किसी चीज़ से लगाव न रहे और न कहीं अटकाव हो । चरणों में अनुराग से मतलब है कि हर समय अपने को, अपनी सुरत को, परमात्मा के चरणों में लगाए रखें और उसकी मौज़ में अपने आप को लय कर दें । इस रास्ते में अनेकों कठिनाइयाँ आवेंगी, परन्तु उनसे घबरायें नहीं । धैर्य पूर्वक गुरु में पूर्ण प्रीति और प्रतीत के साथ उनका बताया हुआ साधन करते जाय । सहायता अवश्य मिलेगी । तन का सुःख, इन्द्रिय सुःख, मन का सुःख और बुद्धि का सुःख- इन सबको समता में लाकर इष्ट के अर्पण कर दें, अपने आप को पूर्ण रूप से उसके हवाले कर दें । इसके बाद कुछ करना धरना नहीं रहता. एक दीन भाव ही उसे निकाल ले जायेगा

राम संदेश : सितम्बर -अक्टूबर २००८

परमात्मा की दयालुता

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

ईश्वर की कृपा तथा अपने सँस्कार वश ही मनुष्य सत्संग में प्रवेश करता है। सत्संग में आकर बहुत से भाई यह चाहते हैं कि परमात्मा (श्री गुरुदेव) क्यों नहीं अपनी कृपा शक्ति के द्वारा हम लोगों का शीघ्र उद्धार कर देते ? मन और माया के बन्धन से आत्मा को शीघ्र क्यों नहीं निकाल देते ? यह एक समान्य प्रश्न है जो अक्सर सत्संगी भाईयों के हृदय में उठा करता है। सत्संग में प्रवेश करने पर जीव के हृदय में जगत और परमात्मा के बीच अन्तर्द्वन्द होने लगता है। जन्मोजन्म से वह जगत के बन्धनों, माया - मोह के जालों में फँसा है। सत्संग में आने के बाद प्रभु - प्रेम का आस्वादन उसे अच्छा लगने लगता है, किन्तु जगत के आकर्षण शीघ्र अपना प्रभाव नहीं छोड़ते। इस बीच की स्थिति में उसका हृदय मन्थन करता रहता है। धर्म और अधर्म, प्रेम और मोह, सत और असत का राम - रावण युद्ध निरन्तर चलता रहता है। सत्संगी अपने व्यवहार के प्रति जागरूक रहता है, किन्तु पुराने संस्कार एवं माया - मोह के आकर्षण उसे अपनी ओर भरपूर खींचते रहते हैं। उसे मालूम होता है कि अमुक जगह वह अधर्म और असत व्यवहार में फँस गया है। ऐसी दशा में वह चाहता है कि क्यों नहीं परमात्मा रूप श्री गुरुदेव हमारी सम्भाल कर लेते हैं और हमेशा - हमेशा के लिए हमें इस भव - बन्धन तथा माया मोह से मुक्त कर देते ?

बहुत से लोग जो सत्संगी नहीं हैं, दुनियाँदार हैं, वे भी ऐसी ही बातें करते हैं कि जब परमात्मा चाहेगा हमसे दुनियाँ छुड़ा देगा। मुझे अपनी ओर से इसकी कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिये। ऐसे लोगों का अहं बहुत ही पुष्ट होता है। माया - मोह का आकर्षण इन्हें कसकर घेरे रहता है। संतों की बातें उनके लिए बंजर भूमि में बीज डालने के समान है। फिर भी ईश्वर कृपा से उनके भी कभी न कभी शुभ संस्कार उत्पन्न होंगें। ऐसे सज्जनों और सत्संगी भाइयों के लिए यह बता देना आवश्यक है कि परमात्मा परम दयालु है। दयालुता का अर्थ है

कि जिससे जीव का सबसे उत्तम लाभ हो, सबसे अधिक कल्याण हो, वही परमात्मा दया वश उसके लिये करते हैं। वैसे परमात्मा तो सर्वशक्तिमान हैं ही और वह जब चाहें आत्मा को क्षण भर में मन और माया के जाल से मुक्त करा सकते हैं। लेकिन जीव इसे बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। जब तक मन सतदेश का वासी नहीं होगा अर्थात सतोगुणी नहीं होगा, तब तक आत्मा को उससे ज़बरदस्ती हटाने में तन और मन व्याकुल हो उठेंगें और उस पीड़ा को जीव कभी भी बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। इसलिए परमात्मा की यह असीम दयालुता है की वह किसी के साथ ज़ोर जुल्म नहीं करता, अपनी शक्ति का प्रदर्शन नहीं करता। आत्मा को ज़बरदस्ती ऊपर खींचने में जीव बेहोश हो जायेगा या उसे भारी बीमारी लग जायेगी। ऊँचे घाट का हल्का सा रस पाकर मन उसी में मस्त हो जावेगा और उसी मस्ती में पड़ा रहेगा। ऊपर का कार्य परमात्मा रूप है। इस स्थिति में मन पूर्णतः शान्त होकर आत्मा के आधीन हो जाता है। मन की यह दशा आत्मा को ज़बरदस्ती ऊपर खींचने से कदापि नहीं हो सकती। इसके अलावा परमात्मा का यह अटल नियम है कि जीव को अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा। यदि ऐसा विधान नहीं होता तो पाप - पुण्य की परख ही नहीं रह जाती। जीव को बुरे कर्मों से रोकने का कोई साधन ही नही रह जाता। बुरे कर्मों द्वारा जीव का स्वप्न में भी उद्धार नहीं हो सकता था। वह और नीचे ही गिरता जाता है। इसलिए ईश्वर - कृपा से यदि कोई सत्संग में प्रवेश करता है तो उसके पिछले बुरे संस्कार भी साथ रहते हैं। इसी कारण वह जाने - अनजाने नीचे की ओर गिरता रहता है। संत सतगुरु की शरण पकड़ने पर उसके पिछले संस्कारों के वेग में कमी आजाती है तथा उन्हीं की दया से उन संस्कारों के भोगने में उसे आसानी हो जाती है। अतः सच्चे भाव से संत -सदगुरु की शरण लेनी चाहिये। उन्हीं की कृपा से बुरे संस्कारों के फल आसानी से भोगे जा सकते हैं। भविष्य में चढ़ना साधकों के लिए स्वाभाविक है, इससे उन्हें घबराना नहीं चाहिये। जो गिरता नहीं है, वह ऊपर चढ़ने की सोचता कहाँ है ? लेकिन हर हालत में उसे श्री गुरुदेव में अपनी श्रद्धा अधिक मज़बूत करते जाना चाहिये और भविष्य के लिए बुरे कर्मों पर सच्चे दिल से पश्चात्ताप करना चाहिये तथा मन ही मन उन दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने श्री गुरुदेव से प्रार्थना करते रहना चाहिये। संत सदगुरु परमात्मा रूप होते हैं। वे जीव के अधिकार के

अनुसार उसकी आत्मा को विषयों से खींचते हैं। सुरत के साथ यदि मन को भी नहीं खींचा गया या उसे जगत के विषयों से उपराम नहीं कर लिया गया तो केवल आत्मा के खिंचने से वह पुनः शीघ्र ही नीचे गिर जायेगी। इसलिए परमात्मा या सतगुरु शीघ्रता नहीं करते हैं।

परमात्मा का काम मारना नहीं, जिलाना है। काल मारता है, परमात्मा जिलाते हैं। शरीर के नाश होने पर आत्मा के साथ मन मिला रहता है। मन जब तक अपनी इच्छाओं को नहीं भोग लेता तब तक वह आत्मा को नहीं छोड़ता। इच्छाओं को भोगने के लिए मनुष्य जीवन ही एकमात्र साधन है जिसे परमात्मा कृपा करके हमें प्रदान करते हैं। काल इसे पसन्द नहीं करता। इसलिए वह मृत्यु के द्वारा जीव को मारता रहता है जिससे जीव अपनी समस्त इच्छाओं को भोग कर काल के चंगुल से हमेशा - हमेशा के लिये निकल जावे। अतः जीव का यह धर्म है कि वह सत्संग में आकर इच्छाओं से उपराम हो जाये।

संत भी मन को मारने की बात बतलाते हैं, किन्तु उनका मारना काल की मौत से भिन्न है। संतो के मारने का मतलब यह है कि तन और मन से आसक्ति समाप्त हो जाये जिससे आत्मा स्वतः असली रूप का परिचय प्राप्त कर ले। इस प्रकार की शिक्षा दी जाती है कि वह इस शरीर में रहते हुए इससे अलग हो जाये। इसके अलावा मन जिन - जिन वासनाओं में लिप्त है उनकी असारता का अनुभव कर ले और उनसे उपराम हो जाये। जगत तथा जगत की वस्तुओं की असारता के स्वयँ अनुभव कर लेने पर वह पुनः उनमें न फँसेगा तथा उनसे उपरति ग्रहण कर लेगा। इस प्रकार वह अपने करमों के फल से वंचित हो जायेगा। जब उसकी यह दशा हो जायेगी तब वह आत्मा को जगत के भोग के लिए नहीं खींचेगा। इसके विपरीत वह शाँत हो जायेगा और ऊपर के अभ्यास में जहाँ तक उसकी पहुँच है उस सीमा तक आत्मा का साथ देगा। यही परमात्मा द्वारा तन और मन का मारना है। फिर आत्मा स्वतः अपने आनन्द का अनुभव करने लगेगी और उसे प्रभु -प्रेम का पान कराते रहते हैं। इसलिए परमार्थ शीघ्रता का कार्य नहीं है। इसमें जल्दबाजी नहीं की जा सकती। परमात्मा का यहीं वरदान है कि वह जीव को अधिकार भेद एवं संस्कार अनुसार परमात्मा प्राप्ति का अवसर देते हैं। इसी में जीव का सच्चा उद्धार है। यही परमात्मा की दयालुता है।

अमृत वेला

प्रभात के समय जब एक प्रहर रात्रि होती है , उस शुभ अवसर को ब्रह्ममहूर्त कहते हैं . संतों ने इसको ' अमृत वेला ' कहा है । इसी समय को प्राचीन काल से ऋषिओं तथा महापुरुषों ने ईश्वर भजन के लिए निर्धारित किया हैं।

भक्ति के लिए सब समय ठीक हैं , परन्तु प्रातःकाल का समय ईश्वर भक्ति में विशेष सहयोग देता है । इस समय ईश्वर की दया का प्रभाव अधिक पड़ता है । मनुष्य दिन में परिश्रम करता है . उसका शरीर थक जाता है , इसलिए पहली निद्रा में वह सो जाता है। जब वह जागता है तो उस समय प्रातः के तीन - चार बजे का समय होता है। तब वह अपने को स्वस्थ तथा उत्साहपूर्ण अनुभव करता है । रात्रि को नींद में आत्मा मस्तिष्क से उतर कर कण्ठ या नाभि में स्थित हो जाती है। जब मनुष्य जागता है तब वह पुनः अपने स्थान पर आ जाती है। प्रातःकाल करोबार और व्यवहार की कोई चिन्ता नहीं होती । यह मन को एकाग्र करने का उचित समय है । इस समय मन स्वच्छ होता है और वृत्तियाँ इधर - उधर नहीं भागती। इस ब्रह्म महूर्त के समय जीव ईश्वर के अधिक निकट होता है। इस समय की भक्ति तथा मन की एकाग्रता का प्रभाव दैनिक व्यवहार पर भी पड़ता है। मनुष्य एकाग्रचित्त होकर अपना कार्य करता है। सूर्य के उदय होने के पष्चात वृत्तियाँ बिखर जाती हैं तथा एकाग्रता भंग हो जाती है।

अभ्यास भोजन के तुरन्त बाद नहीं करना चाहिये । अभ्यास के लिए पेट जितना ख़ाली हो उतना ही लाभदायक है। ब्रह्म महूर्त के समय भोजन हज़म होकर पेट ख़ाली रहता है। ब्रह्म महूर्त को साधारण मनुष्य रात्रि जानकर गहरी निन्द्रा में सोता है , ईश्वर भक्त उस समय जागता है , और जिस समय को दिन समझकर दुनियादार जागता है , उसको भक्तजन रात्रि समझते हैं। ए मन , यदि तुम प्रियतम के मुख के नूर का अनुभव करना चाहता है तो तू ब्रह्म महूर्त में जाग तथा कोमल शैय्या को त्याग कर किसी अन्धेरे कोने में

बैठ। फरीद जी कहते हैं कि जो मनुष्य ब्रह्म बेला में सोता है वह इस परीतोष से वंचित रह जाता है। जिसको निन्द्रा से प्रीति है वह ईश्वर की प्रप्ति कैसे कर सकता है।

मौलाना रूम कहते हैं --"ऐ जिज्ञासु। अपनी निन्द्रा को भूल कर रात्रि को जागने वालों के कूंचे में जाओ तो तुम देखोगे कि वे मजनू के समान चारों ओर से अपनी सुरति को खींच कर ईश्वर के चरणों में लगा कर बैठते हैं। जैसे पतंगा दिये के प्रकाश पर अपने जीवन को न्यौछावर करने को तत्पर रहता है , ऐसे ही भक्तगण अपने आपको अर्पण कर देते हैं। ख़्वाजा कुतुबुद्दीन कहते हैं -" हे पुत्र, तू आधी रात नींद को त्याग कर इस प्रतीक्षा में रह कि प्यारा तेरी ओर नज़र करे ." ईश्वर रात्रि में ही प्रगट होते हैं। यदि कोई इस शुभ अवसर को खो देता है तो वह अपने से अन्याय करता है। दिन का समय कार्य -व्यवहार के लिये है परन्तु रात्रि का समय ईश्वर -भक्ति के लिए होता है। इसलिए पूरी रात्रि ईश्वर से बातें करने में व्यतीत करनी चाहिये। हे जिज्ञासु। अगर तू रात को न सोये तो तुझे सदैव के लिए अमर पदवी प्राप्त हो जाए तथा दिव्य - दृष्टि खुल जाए। तब तू दिव्य प्रकाश को देख सकेगा। तूने सहस्त्रों रात्रियाँ लोभ तथा लालसा की पूर्ति करने में खो दीं। यदि तू प्रियतम के लिए न सोये तो तेरा क्या बिगड़ता है ? भक्तजनों ने जो कुछ पाया वह रात में ही पाया। ऐसा भय मत कर कि न सोने से तू अस्वस्थ हो जाएगा। ईश्वर जीवन स्रोत है , उसके सम्पर्क में आने से तू निरन्तर स्वस्थ रहेगा तथा तेरी बुद्धि चेतनता प्राप्त करेगी। इस समय दिव्य - वाणी व प्रकाश का अनुभव होता है जिससे प्रायः सब दुःखों तथा पूर्व संस्कारों का नाश हो जाता है।" महापुरुषों का कथन है कि रात्रि के समय आत्मा का प्रियतम से मिलाप होता है और सब आशाओं की पूर्ति होती है। जिनको रात्रि के गुणों का अनुभव हो जाता है उनका हृदय प्रकाशित हो जाता है। रात्रि का समय एकांत , शान्त तथा मौन होता है। इस समय अन्तर की आवाज़ सरलता से सुनाई देती है। आकाश में सितारों का विचित्र दृश्य होता है। उसकी सुन्दरता को देखकर सन्त - जन ईश्वर की विशालता के गुण गाते हैं . ब्रह्म - महूर्त सात्त्विक होने के कारण सब ही सरलता से मन को शान्त तथा एकाग्र कर सकते हैं। परन्तु पहली रात्रि को निन्द्रा से मुक्त होना अति कठिन है। यह तम का समय होता है।

दिन में यदि मनुष्य सो जाए तो रात्रि को जागने का अभ्यास सरलता से हो जाता है। भक्तजन उस समय सोते हैं जब दुनियादार काम करता है। जब दुनियादार सोता है , भक्तजन उस समय भजन करते हैं। यदि रात्रि को न जगा जाए , तो ईश्वर का नाम लेते - लेते सोना चाहिये। ऐसा करने से बुरे स्वप्न नहीं आयेंगे तथा जब नींद खुलेगी तो मनुष्य अपने को भजन करता हुआ पायेगा।

आदिगुरु परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज , फतेहगढ़ी (पूज्य लालाजी) का "जीवन चरित्र " -- (रामाश्रम प्रकाशन) से चयनित अंश

सिद्धान्त व शिक्षा

सत्संगियों के लिए महात्मा जी की शिक्षा वास्तव में प्रेम की शिक्षा थी। प्रत्येक से प्रेम करना और प्रत्येक को प्रेम की डोर से बांधे रखना , यह उनका तरीक़ा था। महात्मा जी का कथन था कि यदि शिष्य गुरु से प्रेम करता है , उनका सत्संग करता है और उनके आदेश का पालन करता है तो इसी से उसकी अध्यात्मिक पूर्णता (तकमील) हो जायेगी। विशेष व्यक्तिओं को महात्मा जी ने कोई शिक्षा नही दी। केवल इतना था कि वे सत्संग में आते रहें और उनका उद्धार हो जाए परंतु यह तरीक़ा केवल उत्तम अधिकारियों के लिए था। आम तौर पर जैसी शिष्य की पात्रता होती थी उसी के अनुसार उसे शिक्षा देते थे। किसी को सुरत शब्द की शिक्षा देते तो किसी को दिल के जाप (ज़िक्र खफ़ी) की और किसी को वज़ीफ़ा और किसी को कुछ कर्म बतला देते थे। परंतु अधिकतर गुरु से तबज्जोह लेने , सत्संग करने और दिल के जाप करने पर ज़ोर देते थे। अपनी शक़्ल का ध्यान करने को बहुत ही कम बताते थे। महात्मा जी हृदय चक्र (क़ल्ब के मुक़ाम) पर ॐ शब्द का जाप कराते थे। उनके सत्संग के प्रताप से और तबज्जोह से चक्र (लतीफे) जागृत हो जाते थे , उनमें अनहद शब्द सुनाई देने लगता था। ऐसा होने पर आदेश देते थे कि इन्हीं को सुनते रहो और इतना अभ्यास करो कि उठतें -बैठते , सोते -जागते यहां तक कि एक सैकिण्ड के सांठवे हिस्से तक भी इससे ग़ाफ़िल मत रहो।

महात्मा जी का कथन था कि फ़क़ीरी की तीन शर्तें हैं -- १. इल्लत , यानी उसे कोई शारीरिक व्याधि होनी चाहिये। २. क़िल्लत , यानी उसे रुपए की कमी होनी चाहिये। ३.ज़िल्लत , यानी लोग उसकी निंदा करें। इनसे अहँकार दबा रहता है और घमंड नहीं होता।

जिसने अपने मन को मार लिया वह दुनियाँ का बादशाह है। इससे कठिन काम दुनियाँ में कोई नहीं है। सदाचार पर वह बहुत ज़ोर देते थे। उनका कहना था कि जब तक

सदाचार पूर्णतया ठीक नहीं हो जाता आत्मानुभव नहीं होता। ज़्यादा रियाज़त (अभ्यास) और बजायफ (वज़ीफ़ा पढ़ना) के पक्ष में बीच का रास्ता पसन्द करते थे। उनका कहना था कि दिल का अभ्यास सबसे ऊँचा है , इसका असर शरीर पर पड़ता है। दिल को क़ाबू में रखना और उसे तरतीब देते रहना वही असली अभ्यास है।

महात्मा जी का कथन था कि गुरु हर मनुष्य को करना चाहिये लेकिन गुरु बहुत देख -भाल कर करना चाहिये। एक बार गुरु धारण कर लेने पर अपने आप को पूरी तरह उसके आधीन कर देना चाहिये जिस तरह मुर्दा ज़िन्दे के हाथ में होता है।

नैमत (प्रभु की देन) का शुक्रिया यह है कि उसका उचित प्रयोग किया जाये और वह उचित प्रयोग यह है कि ऐसे कर्मों का त्याग करदो जिनसे प्रभु की देन में गिराबट आती हो और वह कर्म अपनाये जो इस नैमत को स्थायी बनाने में सहायक हों।

सत्संग ऐसे लोगों को अपनाना चाहिये जो वास्तव में पूर्ण सदाचर से अपना जीवन निर्वाह करते हों। ईश्वर प्रेम से उनका दिल सराबोर हो और दूसरों को प्रभावित कर सकते हों . सांसारिक बाधाएँ परमार्थ में ईश्वर की तरफ़ से देन होती हैं . वे मुबारिक हैं। नहीं मालूम कौन -कौन से भेद उनमें छिपे रहते हैं। बहुत से आँतरिक अनुभव इन पर निर्भर होते हैं।

जिस व्यक्ति की जितनी विवेक शक्ति तीव्र है उतनी ही उसकी आत्मा स्वच्छ है। स्वाध्याय की अपेक्षा महात्मा जी अभ्यास पर अधिक ज़ोर देते थे। कुछ दिन अभ्यास कराने के बाद उसी अभ्यास के विषय में या तो स्वयँ मौखिक बता दिया करते थे या किसी पुस्तक में से पढ़कर सुना देते थे। महात्मा जी का कथन था कि जब तक अभ्यास से मन शुद्ध न कर लिया जाये तब तक किताबों के पढ़ने से कोई अधिक लाभ नहीं होता बल्कि अधिकतर अभ्यासी रास्ते से दूर जा पड़ते हैं। उनको झूंठा अभिमान अपनी विद्या का हो जाता है।

अपने प्रेमी -जनों के लिए महात्मा जी का उपदेश था कि स्वामी (मख़दम) बनने से सदा बचना ,सेवक (ख़ादिम) बनकर दूसरों की सेवा करना। ऐसे वायदा कभी न करना कि इतने समय में अमुक अनुभव कराऊंगा। सदा निस्वार्थ सेवा करना। ये सब अहंकार की बातें हैं।

भोजन पेट भर मत करो . थोड़ी कमी रह जाए। इससे अभ्यास अच्छा बनता है। जो लोग धर्म की कमाई नहीं खाते उनका कश्फ़ (अनुभव) कभी सही नहीं होता।

राम सन्देश : सितम्बर-अक्टूबर, 2002.

परमार्थ पथ में पात्रता

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

मनुष्य गुरु-कृपा या ईश्वर-कृपा के लिए दुआ करता है लेकिन गुरुजनों का कहना है कि यह भूल है. गुरु-कृपा या ईश्वर-कृपा हर समय हो रही है, एक पल भी वह बन्द नहीं है. अगर वह बन्द हो जाय तो ज़िन्दगी नहीं रह सकती. फ़र्क़ सिर्फ़ महसूस औरग़ैर-महसूस (आभास, अनाभास) का है. जिसने अपना पात्र बना लिया है, वह ज़्यादा कृपा महसूस करता है और जिसका अभी अधिकार नहीं है, वह कृपा महसूस ही नहीं करता। कृपा का महसूस होना या न होना अधिकार या पात्रता पर निर्भर है. इसलिए कोशिश हमेशा अपने को पात्र बनाने की करनी चाहिए और उसी के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

गंगा बह रही है, लेकिन उसमें से मनुष्य उतना ही जल ले सकता है जितना उसके पास पात्र है. जिसके पास लोटा है वह लोटा भर पानी भर लेता है, जिसके पास घड़ा है वह घड़ा भर पानी भर लेता है. मतलब यह है कि जिसके पास जितना बड़ा बरतन है वह उतना है ज़्यादा पानी भर लेता है. सूरज चमक रहा है, सब पर गर्मी और रौशनी पड़ रही है, जितना जिसने अपने शरीर को रौशनी के लिए खोल रखा है वह उतनी ही रौशनी और गर्मी पा लेता है. जिसने जितने कपड़े पहने हैं, वह उतना ही उससे वंचित रहता है. आग जल रही है. हज़ारों ही चीज़ें पास रखी हैं, किसी में उसका कैसा असर पड़ता है और किसी में कैसा।

सब पात्रता और अधिकार पर निर्भर है. गुरु और ईश्वर की कृपा हरेक पर, हर समय, हो रही है लेकिन जिसने जितने कपड़े मन और माया के पहने हुए हैं, उसे उतनी ही कृपा कम अनुभव होती है. जिसने जितना अपने आपको पात्र बना लिया है यानी अपने को मोह और माया से अलहदा कर रखा है, वह उतनी ही कृपा ज़्यादा महसूस करता है. इसलिए पात्र बनाने की ज़रूरत है. अपनी आत्मा पर से मन और माया के परदे हटाने की ज़रूरत है।

पत्थर, वनस्पति, जानवर, मनुष्य, देवता, संत - सब पर उसकी कृपा एक सी हो रही है लेकिन अन्तर आभास और अनाभास का है. जिसके जितने ज़्यादा आवरण हटे हुए हैं, उतनी ही उसे ज़्यादा कृपा महसूस होती है। दूसरी बात यह है कि दुनियाँदार उसकी कृपा को समझते नहीं हैं. जब आदमी को दुनियाँ की चीज़ें मिलती हैं, उनमें वह खुश होता है और समझता है कि ईश्वर की बड़ी कृपा है. वास्तव में वह ईश्वर से दूर होता जाता है. उसके और ईश्वर के बीच माया आती जाती है. अगर उसकी दुनियाँ की चीज़ों पर आघात होता है, जिससे ईश्वर की नज़दीकी हासिल होती है, तो वह ऐसा समझता है कि मेरे ऊपर ईश्वर की कृपा नहीं हो रही है, हालाँकि मामला बिलकुल इसके विपरीत है।

जब दुनियाँ की किसी चीज़ से हमें तकलीफ़ पहुँचती या कोई चीज़ हमसे छीनी जाती है तो हमारे बुरे कर्मों की समाप्ति हो जाती है और जब दुनियाँ की कोई चीज़ हासिल होती है तो शुभ कर्मों के फल का नाश हो जाता है. जो अच्छे कर्म करता है उसको अच्छा फल मिलता है, जो बुरे कर्म करता है उसे बुरा फल मिलता है. बुरे कर्मों का फल भोग कर हम छुटकारा नहीं पा सकते. जब उसकी नज़दीकी हो जाती है, उसका प्रेम आ जाता है, बुरे कर्मों को छोड़ देते हैं तो बाकी सब कर्म ख़ुद ही नाश हो जाते हैं और वह ईश्वर सब माफ़ कर देता है. हमें दुनियाँ की चीज़ों के मिलने पर जो सुख मिलता है, अगर उसमें विशेष दया आये और दुनियाँ की चीज़ें और ज़्यादा मिलें, तो हम कभी दुनियाँ नहीं छोड़ सकते. इसलिए उसकी कृपा यह है कि माया के झगड़ों से छूटकर उससे नज़दीकी मिल जाय और हमेशा-हमेशा का सुख यानी आनन्द मिल जाय और दुखों से हमेशा के लिए मोक्ष मिल जाये।

लेकिन दुनियाँदार इसका उल्टा समझते हैं. वह मुक्ति के लिए ईश्वर से दुआ नहीं करते. दुनियाँ की चीज़ों को प्राप्त करने के लिए, और इस तरह यही फँसे रहने के लिए, दुआ करते रहते हैं. दुनियाँ का एक-एक ज़र्रा, मन की एक-एक ख़्वाहिश, हर वक्त हमारा विरोध करते हैं कि हमारा अपने असल (ईश्वर) से मिलन न हो. इसलिए जो आदमी दुनियाँ की इच्छाओं में फँसा हुआ है और हर वक़्त कोशिश करता रहता है कि ईश्वर की कृपा हम पर न हो, वह तो सच्ची कृपा चाहता ही नहीं बल्कि कृपा का मूल्य घटाया करता है. जब संतों की कृपा और अभ्यास से आत्मा का विकास होने लगता है तभी मालूम होने लगता है कि असली कृपा क्या है ? साँसारिक इच्छाओं से अपने पात्र को बचाना है और जितना यह साफ़ होता जाता है, उतनी ही उसकी कृपा अनुभव होती है. इसलिए हमरा कर्तव्य यह है कि अपने मन को हर समय दुनियाँ की इच्छाओं से आहिस्ता -आहिस्ता साफ़ करते रहें।

राम सन्देश : अगस्त 1993 .

परमार्थ में सफलता पाने के साधन

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

परमार्थ यानी अपनी आत्मा का अनुभव करने के लिये या ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिये या हमेशा का सुख हासिल करने के लिये, दुःख से निवृति पाने के लिये, दो चीज़ों की सख़्त ज़रूरत होती है. जितने हम काम करते हैं या तो दिल की ख़्वाहिश के मुताबिक (इच्छानुसार) या अपनी बुद्धि के सुझाव से करते हैं. इन दोनों का शुद्ध होना ज़रूरी है। जब तक ज़िन्दगी के ये दोनों पहिये सही तौर पर और साथ-साथ नहीं चलेंगे, ज़िन्दगी का सफ़र या तो मुश्क़िल से या बड़ी मुद्दत में तय होगा. और यह भी मुमकिन है कि जन्मों का चक्कर खाते रहें और कामयाबी हासिल न हो।

शुद्ध मन से मतलब है कि उसको ईश्वर से लगाव हो और तलाश करके उसको सद्गुरु मिल गया हो और उससे उसको प्रीति हो गयी हो. शुद्ध बुद्धि से मतलब है कि बुद्धि में दुनियाँ की नाशवानता देखकर सच्चाई यानी हमेशा रहने वाली चीज़ की तलाश हो और दुनियाँ से उपराम हो गया हो. जब तक ये दोनों चीज़ें न होंगी, इस दुनियाँ के प्रपंच से छूटना नामुमकिन है।

अगर हमको सच्चा गुरु मिल जाये और हमें उसमें सच्चा विश्वास हो जाये, और हम उसके आदेशों पर चलें, तो अपने लक्ष्य पर पहुँच जायेंगे। और अगर सच्चा गुरु मिल जाये मगर उसमें सच्चा विश्वास और प्रेम न हो तथा हम कर्म और रहनी-सहनी उसके कहने के मुताबिक न बनावें, तो कामयाबी नामुमकिन सी हो जाती है. अगर हम उस शुद्ध बुद्धि से दुनियाँ की नाशवानता पर ध्यान देकर, नाशवान चीज़ों को, जिनमें सुख सिर्फ़ ज़ाहिरदारी है, और दुःख भरा पड़ा है, छाँट-छाँट कर सच्चाई की तरफ़ नहीं चलते हैं तो भी कामयाबी नामुमकिन होगी, क्योंकि इस रास्ते में हर क़दम पर बड़े भयानक जानवर (काम, क्रोध, लोभ, अहंकार के रूप में) हर समय मुँह खोले निगलने को तैयार हैं।

इसीलिए रास्ते के जानने वाले (गुरु) की ज़रूरत है जो हमारी हिफाज़त करता जाय, वरना मुमकिन है कि किसी चक्कर में फँसकर यह जन्म व्यर्थ कर लें। इसीलिए जो मुतलाशी (जिज्ञासु) इस बात के हैं कि उनको हमेशा के लिये दुःख से निवृत्ति हो जाय और सुख मिले, उनको चाहिए कि जब तक सच्चा गुरु न मिले तब तक नाशवान चीज़ों से तबियत हटाकर - सच्चाई जो हमेशा रहने वाली चीज़ है, उसकी तरफ़ चलें और अपने मन से उन ख़्वाहिशों को धीरे-धीरे छोड़ते जायें। जिन चीज़ों को ज़िन्दगी में बिना रखे गुज़ारा न हो उनको साथ में रखें पर उनमें भी मन से न फँसें और जिन चीज़ों से वास्ता न हो, ग़ैर-ज़रूरी सी हैं, उनसे मन हटा लें, और सच्चे गुरु की तलाश में रहें।

जब सच्चा गुरु मिल जाय तब पूर्ण रूप से अपने आपको उसके आधीन कर दें और जैसा वह कहे वैसा ही करें. और अगर किसी को सच्चा गुरु मिल गया है तो उसके कहने के मुताबिक़ और शुद्ध बुद्धि से सोच विचार के, जो रास्ता वह बताये उस पर चलने की कोशिश करें। अगर किसी को गुरु में विश्वास भी है, और बुद्धि ने वगैर सोच विचार करे उसको अपनाया है और पूरा क़बूल नहीं किया है, तो गुरु के बताये रास्ते पर पूरी श्रद्धा और भक्ति के साथ नहीं चल पायेगा. जब तक दिल उसमें शामिल नहीं होगा, उसे कामयाबी नहीं होगी और आख़िर को रास्ते से भटक जायेगा और छोड़ देगा।

इसीलिए हर जिज्ञासु को अपनी कामयाबी के लिये ज़रूरी है कि सच्चे गुरु की शरण ले और विवेक से काम ले। जितनी तरक़्क़ी इन दोनों बातों में करता जायेगा, उतना ही उसका रास्ता जल्दी तय होता जायेगा और दो-तीन जन्मों में हमेशा-हमेशा के लिये इस आवागमन के प्रपंच से छूट जायेगा. बल्कि यह भी ज़रूरी नहीं है कि तीन-चार जन्म ही लगें. यह रास्ते की मुद्दत (अवधि) उसके अपने शौक़ पर मुनहसिर (निर्भर) है।

राम संदेश - मई , 1971

प्रेम और प्रीति

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

प्रेम और प्रीति दो वस्तुएँ हैं। प्रेम (इश्क़) हमेशा एक से होगा, परन्तु प्रीति, यानी मुहब्बत सबसे होगी। माशूक़ (प्रियतम) वह है जिससे इश्क़ करते हैं। उसी का हो जाना, अपनी तमाम ख़्वाहिशात उसी पर अर्पण कर देना, उसी के रूप को देखना, उससे प्रेम करना। ख़्वाहिश सिर्फ़ यह हो कि हम उससे मिल जायें। सच्चा आशिक़ वह है जो ख़ुद को उस पर न्योछावर कर दे और बदले में कुछ न चाहें। ऐसा प्रेमी हर दुःख और मुसीबत में अपने प्रियतम (प्रेम अंग वाले जिज्ञासुओं के लिए सतगुरु) का भला चाहता है और कहता है - "आप ख़ुश रहें " । तमोगुणी और रजोगुणी मन में प्रभु का दर्शन नहीं होता। असली गुरु (परमात्मा) का दर्शन, फिर अनामी का दर्शन, संत में ही होता है। यह भी सत्य है कि जब तक उसके दर्शन नहीं होते, पूर्ण प्रेम या इश्क़ पैदा नहीं होता। प्रेम के हृदय में जागने पर गुरु का स्थूल ध्यान जाता रहता है। संतमत में सिर्फ उसी एक परमेश्वर, वाहिद की पूजा होती है जो अनामी है, अरूपा है। उसके हुक्मों पर चलना ही एक-मात्र धर्म है। फ़क़ीर कुछ नहीं चाहता - न अर्थ, न धर्म, न काम, यहाँ तक कि निर्वाण की भी चाह नहीं रखता। उसकी एकमात्र चाह यही रहती है उस मालिक प्रभु की इच्छा पूर्ण हो। भक्त स्वयँ को भगवान का सेवक मानता है।

वेदान्तियों में प्रीति पूर्ण रूप से नहीं जागती। उनका यह कहना कि - ' जगत मिथ्या और ब्रह्म सत्य है ' मन व बुद्धि से कभी जानने योग्य नहीं है। यह तो साधना की एक ऊँची अवस्था है, पर यहीं अन्त हो, ऐसा नहीं है। जो कहने वाला है उसकी हस्ती को माना जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि जिसके बारे में वह कहता है उसकी भी हस्ती मौजूद है और दोनों के बीच का ज्ञान जो उसके क़यास (कल्पना) में आता है वह भी तो निमित्त रूप में मौजूद है। इसलिए यह साबित होता है कि ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीनों ही मौजूद हैं। कबीर साहब कहते

हैं - " एक कहूँ तो है नहीं ,दूजा कहूँ तो गार । जैसा का तैसा रहे, कहें कबीर विचार ।" असल तो एक ही है जो सबका होते हुए भी, ख़ुद निराधार है, जो श्रष्टि के आदि में भी था और अन्त में भी रहेगा । उस मालिक, निराधार ईश्वर को तो सिर्फ वही जान पाता है जिस पर वह स्वयँ अपने को प्रकट करता है । उसके दिव्य अलौकिक रूप को देखने के लिए दिव्य दृष्टि की आवश्यकता है । इन स्थूल आँखों में सामर्थ्य कहाँ जो उस दिव्य स्वरूप को देख सकें । जिस किसी पर भी उसने अपने आप को प्रकट किया उसे पहले दिव्य दृष्टि मिली, और तब उसका अनुभव हुआ ।

ईश्वर प्राप्ती के साधन हैं - विवेक, वैराग्य, षट-सम्पत्ति और मुमुक्षुता । पहले इन्द्रियों को विषयों से हटाओ, मन को वासनाओं से शुद्ध करो, बुद्धि तम और रज से निकल कर सत पर आ जाय और मन शान्त हो जाय, तभी आत्मा का प्रकाश दीखेगा । बुद्धि जब तक निर्मल होकर आत्मा की तरफ़ नहीं पलटेगी, तब तक खुला ज्ञान नहीं मिलेगा । और बिना सत ज्ञान के न तो आत्मा का अनुभव होगा, न प्रेम जागेगा और न परमात्मा मिलेगा । परमार्थ कमाने के लिये तन, मन, धन सब कुछ लगाते रहें और यह देखते रहें कि मन उनमें अटकने न पावे । हर समय अपनी निरख -परख करते रहो । मन का घाट जब तक न बदलेगा, परमार्थी चाल दुरुस्ती से नहीं बनेगी । गढ़त के लिए मौज के साथ मुआफ़िक़त करो । जो भी दुःख-तक़लीफ़ आवे उन्हें धीरज के साथ, उत्साह और उमंग के साथ बर्दाशत करो । तभी बन्धन ढ़ीला होगा । मालिक की दया की यही पहिचान है कि उल्टी -सुल्टी हालतें आवें, और इनके आने पर मालिक का शुक्रगुज़ार हों । कभी टालने की कोशिश मत करो । अगर बर्दाश्त के बाहर जान पड़े तो उसके सामने रोओ, गिड़गिड़ाओ और बर्दाश्त करने की शक्ति माँगो । उसके हर काम हमारी भलाई के लिए होते हैं। वह वाक़ई बड़ा दयालु है। निराश न हो। दिल में चाह और दर्द पैदा करो। वह कब तुमसे दूर है ? वह तो हर समय तुम्हें पुकार रहा है। ज़रा एक बार उसकी तरफ़ मुख़ातिब होकर तो देखो। कर्म, भाग्य, प्रारब्ध सब फँसाने वाले हैं और फुज्ला (विष्टा) हैं।

राम संदेश -अक्टूबर, १९६६

प्रेमी भाइयों के ध्यान योग्य सन्देश

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

परमार्थ पर चलने और उस पर क़ायम रहने का सिर्फ़ एक ही तरीक़ा है कि सन्तों के बताये हुए रास्ते पर सख़्ती से अमल करें और जहाँ तक हो सके उसे अपनायें और अपनी ज़िन्दगी का हिस्सा बनालें। लेकिन अफ़सोस है कि सत्संग में दाख़िल होकर भी हम उस पर अमल करने की कोशिश नहीं करते। यही वजह है कि बरसों गुज़र गये लेकिन जहाँ थे वहीं मौजूद हैं। कभी रास्ते पर शुबहा करते हैं और कभी अधिष्ठाता पर, लेकिन अपनी कमज़ोरियों को नहीं देखते। इसलिए प्रेमी भाइयों से प्रार्थना है कि संतों के बताए हुए रास्ते पर चलने की भरसक कोशिश करें।

१. सब कामों को वक़्त मिल जाता है लेकिन सुबह व शाम कोई न कोई बहाना करके संध्या को टाल देते हैं। यह उत्साह की कमी है। हर एक सत्संगी भाई का फर्ज़ है कि वक्त निकाल कर दोनों वक़्त संध्या ज़रूर करें।

२. जहाँ तक मुमकिन हो भण्डारे पर ज़रूर हाज़िर हों। भण्डारे के मौक़े पर कोई न कोई ज़रूरी काम निकल आता है और भण्डारे पर जाना मौक़ूफ़ (रद्द) हो जाता है। अगर किसी मजबूरी की वजह से न आ सकें तो किसी दूसरे वक़्त पर ज़रूर हाज़िरी दें।

३. ज़कात (दान) के लिए एक पैसा नहीं निकाला जाता, लेकिन मनोरंजन के लिए पैसा आ जाता है। यहाँ तक कि सालाना भेंट भण्डारा को भी नहीं दीं जाती। इतने बड़े सत्संग का काम बग़ैर हर सत्संगी की मदद के कैसे पूरा हो सकता है। कुछ लोग यहाँ तक किफ़ायतशारी करते हैं कि अपना ख़र्च तक पूरा नहीं करते। सत्संग के ख़र्च कुछ सत्संगी अपनी उदारता से पूरा करते हैं लेकिन हर सत्संगी भाई का फर्ज़ है कि उसमें हिस्सा लें।

अपनी आमदनी में से कम से कम जो आसानी से हिस्सा निकाल सकें ज़रूर निकालें और वक़्त भण्डारे पेश करें।

४. अपनी इन्द्रियों को जहाँ तक हो क़ाबू में रखें और दुनियाबी ख़्वाहिशात को कम करता जावें।

अगर कोई सत्संगी इन पर अमल नहीं करता तो वह दरअसल सत्संगी नहीं हैं और संतों की कृपा का मुस्तहक़ (पात्र) नहीं है और इस रास्ते पर कामयाब नहीं हो सकता।
जो सत्संगी भण्डारे पर नहीं आ सके उनको फिर वक़्त निकालकर आना चाहिये। संध्या वक़्त निकालकर दोनों वक़्त करते रहें। गुरुदेव कृपा करें।

राम सन्देश : मई-जून, 2001.

ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज का एक पत्र

सिकंदराबाद - 29-5-1960

प्रिय बाबू जी,

आपकी चिट्ठी मिली. मैं इलाहाबाद गया था, तीन रोज़ ठहरा. जून में गर्मी होगी, अगर परमात्मा ने चाहा तो जौलाई में बनारस पहुँचूँगा। उस वक्त मशविरा कर लेना। अगर आदमी दोपहर को मिल सके तो दोपहर को सत्संग करो लेकिन अपना काम वक्त पर करते रहो। बाबू इलाहबाद में मिले थे। अब आज-कल में मय घर के (पत्नी सहित) आ रहे हैं।

शुभ कर्म करना और परमात्मा की याद रखना यही असली परमार्थ है और उसी के लिए अभ्यास किया जाता है. अभ्यास ध्यान से शुरू करना चाहिए, इसके बाद शब्द सुनने की कोशिश करनी चाहिए. अगर सुनाई न दे तो फिर ध्यान करना चाहिए. जिस अभ्यास में तबियत ज़्यादा लगती हो, वही अभ्यास ज़्यादा करो - चाहे ध्यान या शब्द सुनना, जो भी हो /

आपका दूसरा ख़त 25-5-60 का लिखा भी मिला। मैंने दूसरे भाइयों से इसलिए कहा था ताकि आपको सौहबत (संग) मिल जाये और काम चलता रहे. और अगर आपको एक या दो आदमी अपने ख़्याल के मिल जाते हैं तो काफ़ी हैं. ज़्यादा परेशान न हों. अंदरूनी (आंतरिक) अभ्यास करने से मन पर ज़ोर पड़ता है. पुरानी आदतें छोड़नी पड़ती हैं। इसलिए इसके अधिकारी कम मिलते हैं. इसके अधिकारी वही हो सकते हैं जो आदमी दुनिया से उपराम हो चुके हैं या जिनमें परमात्मा का प्रेम कुदरती हो।

यह ख़्याल तुम्हारा ठीक है कि परदा कर जाने के बाद गुरु से फ़ायदा बहुत कम लोग हासिल कर पाते हैं. फ़ायदा वही हासिल कर सकते हैं जो गुरु की ज़िन्दगी में ही साक्षात्कार

कर चुके हैं. आत्मा का साक्षात्कार कम से कम तो एक जन्म में हो पाता है वरना कई जन्म लग जाते हैं. क्योंकि बग़ैर मन की ख़्वाहिश के समाप्त किये बिना बुद्धि की शुद्धि कई जन्मों में हो पाती है. लेकिन जो कुछ आदमी एक जन्म में हासिल कर लेता है वह नष्ट नहीं हो पाता है और दूसरे जन्मों में आगे से शुरू करता है। एक तरीक़ा ज़रूर ऐसा है जिसमें थोड़े ही दिनों में आरज़ी (अस्थायी) तौर पर आत्मा का अनुभव हो सकता है और इख़लाक़ (आचरण) की तकमील पूर्णता यानी मन की गढ़त और बुद्धि की शुद्धि बाद को होती रहती है. यह तरीक़ा ख़ास-ख़ास हालतों में ही काम में लिया जाता है। इसमें दो शर्तें ज़रूरी हैं। पहली यह कि गुरु मुक़म्मिल (पूर्ण) हो और दूसरी यह कि शिष्य फ़िदायी हो यानी परमात्मा के दर्शन के सिवाय और कोई चाह न हो और अपने को गुरु के लिए पूर्ण रूप से समर्पण कर चुका हो यानी गुरु के हुक्म के पालन के सिवाये उसे और कोई धुन न हो. जब यह दोनों हालतें मिलती हों तभी काम आसानी से बनता है. मैं हरचंद कोशिश में हूँ कि हरेक को ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा पहुँचे लेकिन कामयाबी किसी दूसरे के हाथ में है. परमात्मा हमको तौफ़ीक़ दे (इस योग्य बनाये) और अपनी दया करे।

मेरा इरादा जौलाई में उधर आने का है. अगर न आ सकूँ तो फिर आप तशरीफ़ ले आयें. सब उसके हाथ में है।

शुभचिंतक - श्रीकृष्ण

राम संदेश : सितम्बर, 1962

भक्ति के अनेक रूप

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

दुनियाँ में अनेक धर्म और मज़हब हैं और उनमें पूजा आदि के जो अलग - अलग तरीक़े हैं उन सबका मतलब यही है कि किसी तरह ईश्वर के चरणों में प्रेम हो जाय। बिना प्रेम के ईश्वर प्राप्ती नहीं हो सकती। ईश्वरीय प्रेम का बयान ज़बान से नहीं किया जा सकता। ख़्यालों में आदमी कितना ही ऊँचा उठ जाय पर उस मोहब्बत का जो ईश्वर के लिए होती है, वार -पार नहीं पा सकता, उसका कोई अन्त नहीं है। उसकी पूर्णता कहाँ है, इसका कोई पता नहीं। लेकिन हिन्दू धर्म में ईश्वर -प्रेमीयों ने उसे बयान करने की कोशिश की है और उसके लिये संसारी प्रेम की उपमा का सहारा लिया है। जो चीज़ें ईश्वरीय हैं उनको मनुष्य ने अपने तौर पर समझने की कोशिश की है। इस ईश्वर प्रेम को उन्होंने भक्ति' नाम दिया है।

सबसे नीचे दर्जे की भक्ति को 'शाँत' भाव कहा गया है। भक्त ईश्वर की उपासना तो करता है लेकिन प्रेम की आग उसके हृदय में नहीं धधकती, ईश्वर के लिये पागलपन और उन्मत्ता उसके मन में नहीं आती। इस तरह का प्रेम घटिया है, ठंडा है, धीमा है, उसमें गरमी और जोश नहीं है। वह शाँत है। रस्मी तौर पर ख़ाली पूजा कर लेना, फूल चढ़ा देना, दर्शन कर आना, पाठ कर लेना या ऐसी ही और ऊपरी बातों से ज़रूर यह शाँत भाव ऊँचा है, लेकिन तेज़ी न होने से इस निचले दर्ज़े के प्रेम को शाँत भाव कहा गया है। शाँत भक्त सीधा और चुपचाप रहने वाला होता है।

इससे कुछ ऊँचा और अगला दर्ज़ा प्रेम का 'दास्य ' भाव कहलाता है। यह भाव जब आता है तब भक्त अपने को सेवक और ईश्वर को अपना मालिक समझता है। उसके कर्म ईश्वर के प्रति ऐसे ही होते हैं जैसे एक वफ़ादार नौकर अपने मालिक के लिये करता है। उसकी सारी ज़िन्दगी अपने मालिक के लिये होती है। मगर यह भी घटिया भक्ति है, जैसा काम वैसा दाम। नौकर की पहुँच मालिक के घर के अन्दर तक है लेकिन वह उससे मिलकर एक नहीं हो

सकता। दो का ख़्याल हमेशा रहेगा। " तू मालिक है, मैं तेरा दास हूँ। " आधीनता तो पूर्ण होती है - मालिक जैसा देगा वैसा खाऊँगा, जैसा देगा वैसा पहनूँगा, जिस नाम से पुकारेगा वही मेरा नाम है - ऐसा भाव दास का मालिक की तरफ़ होता है। इससे मालिक ख़ुश होता है और क़भी - कभी ख़ुश होकर अपने नज़दीक बिठा लेता है। इससे ज़्यादा और कुछ नहीं। नज़दीक़ी हाँसिल हो गई मगर मिलकर एक नहीं हुए। नौकर का मालिक के ऊपर कोई ज़ोर नहीं होता। हनुमान जी का दास भाव था।

तीसरा दर्जा प्रेम का 'सख्य ' भाव कहलाता है। सखा मायने दोस्त। "Thou art my beloved friend" सख्य भाव में भक्त भगवान को अपने बराबर का, हमदर्द, हमराज़ और हमनशीं समझता है। ग़रीबी, अमीरी का कोई ख़्याल नहीं। जैसे कृष्ण और सुदामा का भाव। भक्त अपने ईश्वर को जब सख्य भाव से पूजता है तब उसे अपने नज़दीक समझता है। अपने जीवन की अच्छी -बुरी, दुःख - सुःख की, पोशीदा से पोशीदा सब भेद खुल कर कह देता है और उससे पूरी उम्मीद ही नहीं बल्कि ज़ोर के साथ उसका भरोसा करता है कि वह उसकी हिफाज़त करेगा, उसकी हमेशा मदद करेगा। वह ईश्वर को ऐसा समझता है जैसे बचपन के खेलने वाले साथी - ग्वाले और कृष्ण।

जो ऊपर चढ़ता है वह नीचे गिरता है, जो नीचे गिरता है, वह ऊपर भी चढ़ता है - यह उसूल है। जब इन्सानी आत्मा ऊपर चढ़ सकती है तो वह नीचे भी गिर सकती है। इसलिए आदमी को चाहिये कि अपनी ख़्वाहिशात को धर्म का सहारा लेकर पूरी करे लेकिन उसमें पूँजी, जो उसके पास निश्चित मात्रा में हैं, कम से कम लगाए और जो पूँजी छिपी हुई है, यानी जो शक्ति आत्मा की छिपी हुई है, उसको अभ्यास करके हासिल करे और इस पूँजी की मदद से, यानी अभ्यास और सत्संग करके, ऊपर की चढ़ाई करे ताकि उससे नज़दीक़ी हासिल हो सके। जब तक ईश्वरीय गुण हासिल नहीं होते, उसको क़ुरबत (समीप्य) नसीब नहीं होगा और जब तक क़ुरबत नसीब नहीं होती, आत्मा को चैन नहीं मिल सकता। इसलिए दुनियाँ के सब काम करते हुए, किसी न किसी तरीके से (जिसको मन पसन्द करता हो) उस ईश्वर को याद बराबर करते रहना चाहिये। यही सिर्फ़ एक ज़रिया है जिससे जीव हमेशा - हमेशा का सच्चा और अपार सुःख हासिल कर सकता हैं, जो हमारा असली परमार्थ है। यही उस परम पिता परमात्मा के दुनियाँ की रचना करने का मतलब है।

ईश्वर सबको ज्ञान दें।

मन, विचार-शक्ति और मुक्ति

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

यह तुम्हारा शरीर असल में तुम्हारे मन की धाराओं की घनी शक्ल है। जैसा तुम्हारा मन है, वैसा ही शरीर है। जैसे तुम्हारा मन बदलता जाता है, वैसे ही तुम्हारा शरीर भी बदलता जाता है। बिना पूछे लोग बतला सकेंगे कि तुम्हारे विचार कैसे हैं और तुम्हारा व्यवसाय क्या है। क्या चिड़ीमार को देखकर तुमको यह ख़्याल पैदा नहीं होता कि यह कोई निर्दयी आदमी है, या मछली पकड़ने वाले को देखकर उसके विचारों की दुर्गन्ध तुमको अनुभव नहीं होती ? क्या किसी संत को देखकर तुम्हारे हृदय में प्रेम की लहर ज़ोर नहीं मारने लगती और उसे आदर देने के लिए हाथ नहीं उठ जाते। जानवरों और बच्चों के दिल साफ़ होते हैं, इसलिए उन पर विचारों का ज़्यादा असर पड़ता है।

बच्चे को प्रेम से देखो, उसके लिए अगर तुम्हारे दिल में प्रेम है तो वह बिना बुलाये तुम्हारे पास चला आएगा, और अगर तुम्हारे दिल में नफ़रत है तो तुम्हारी सूरत देखकर भाग जायेगा, या रोने लगेगा और बुलाने पर पास नहीं आयेगा। मालिक के सच्चे भक्तों के दिल में हरेक प्राणी के लिए अथाह प्रेम होता है जिसके प्रभाव से भयंकर से भयंकर हिन्सक पशु भी उनके सम्पर्क में आकर अपना क्रूर स्वभाव छोड़ देते हैं। क्या तुम नहीं जानते कि शेर अपनी माँद में शेरनी का दूध लेते हुए भी पास चुपचाप आदरपूर्वक बैठ गया था ? साँप चुपचाप पड़ा रहता है। ऐसा क्यों है ? इसका कारण यह है कि उनके दिलों में प्रेम है, और दिल से प्रेम की धारें निकलकर उस प्राणी को घेरती हैं जिनके प्रभाव से सब उनसे प्रेम करने लगते हैं।

जैसा इन्सान का दिल होगा, उससे उसी प्रकार की धारें निकल- निकल कर वायुमण्डल में फैलेंगी, और जो कोई उस वायुमण्डल में आयेगा, उस पर असर करेंगी। छोटे बच्चे विषैले साँपों से खेलते रहते हैं, क्या इस पर विश्वास नहीं है ? अगर नहीं है तो अब परीक्षा कर लो।

अपने दिल से चिड़ियों से प्रेम करो, और देखो कि वह निडर होकर तुम्हारी थाली से अपनी ख़ुराक़ माँग ले जायेंगी। बिल्लियों से प्रेम करो, वह तुमको खाना खाना मुश्किल कर देंगी, और ज़बरदस्ती अपनी ख़ुराक़ ले लेंगी।

जानवर तुम पर इसलिए हमला करते हैं कि तुम्हारे हृदय में उनके लिए दुश्मनी है। तुम दुश्मनी की बजाय मौहब्बत करो, और वे तुम्हारे चारों तरफ़ पालतू कुत्ते की तरह फिरेंगे। असलियत तुम्हारे विचारों में है और तुम्हारा मन उन विचारों की मिलीजुली धारों का नाम है। शरीर उसका प्रतिबिम्ब है। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि शरीर की तरफ़ है, वह तुमको दिखाई दे रहा है। दिल की तरफ़ से तुमने आँखें बन्द कर रखी हैं, इसलिए दिल तुमको दिखाई नहीं देता, शरीर दिखाई देता है, और तुम सब कुछ उसी को समझ रहे हो।

एक बच्चा शीशे में अपना अक्स देखकर उसको दूसरा बच्चा ख़्याल करता है, और उससे खेल रहा है क्योंकि उसको अपने शरीर का ज्ञान नहीं है। जब उसको अपने शरीर का ज्ञान हो जायेगा, शीशे को एक तरफ़ फेंक देगा और अपने शरीर की देखभाल में लग जायेगा। यही हाल तुम्हारा है। तुमको अपने असली शरीर का ज्ञान नहीं है, इसलिए इसकी छाया से खेल रहे हो। जब तुमको अपनी असलियत का ज्ञान हो जायेगा, तो छाया को छोड़ दोगे और असल से खेलने लगोगे। दुनियाँ में दुःख का कारण यही है कि तुम असल को नक़ल और नक़ल को असल समझ रहे हो। किसी भेदी को साथ लो जिससे असली ज्ञान मिले।

अगर तुम चाहते हो कि तुमको असली आनन्द मिले तो किसी वक्त के पूरे संत सद्गुरु से सम्बन्ध जोड़ो और उससे 'असल' के जानने के भेद मालूम करो। आहिस्ता-आहिस्ता तुम्हारा भ्रम दूर हो जायेगा, असली ज्ञान प्राप्त होगा और हमेशा-हमेशा के लिए दुःख से निवृति हो जाएगी। यही मनुष्य जीवन का असली ध्येय है। तुम सोचो, तुम कौन हो ? तुम्हारी यहाँ आने की गरज़ क्या है ? क्या तुम्हें यहाँ बेग़रज़ भेजा गया है ? नहीं, कभी नहीं। इसमें बहुत बड़ी गरज़ छिपी हुई है। सोचो और फिर सोचो। अगर मालिक मेहरवान है तो तुमको ज़रूर असली ज्ञान प्राप्त होगा, फिर मालिक तो हमेशा ही मेहरवान है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि हम उसकी ओर झुकते ही नहीं हैं।

मुक्ति और निर्वाण, दोनों का मतलब क़रीब-क़रीब एक ही है। दोनों का मतलब आज़ादी का है। जिस्म पर निगाह है, इसी को सब कुछ समझ रखा है। अगर यह तन्दरुस्त है तो ख़ुशी है, अगर यह बीमार है तो तक़लीफ़ है और परेशान व दुखी है, लेकिन जिस्म से निगाह ऊँची हुई कि असलियत समझ में आती जाती है। दिल पर निगाह है कि दिल की बीमारी और तन्दरुस्ती अब इतनी परेशान नहीं करती। अब ख़ुशी का दारोमदार (निर्भरता) इन्द्रियों की ख़्वाहिशात (इच्छाएँ) पर है, पूरी होती हैं तो ख़ुशी है, अगर नहीं होती तो कोई ख़ास दुःख है।

परमात्मा ने रहम किया, असलियत खुली और ख़्वाहिशात पर आहिस्ता-आहिस्ता क़ाबू पाया। अब तमाम ख़्वाहिशात क़ाबू में हैं, और अब ख़ुशी का दारोमदार (निर्भरता) इन पर नहीं है। अब ख़्वाहिशात परेशान नहीं करतीं। राज़ी व रज़ा है (जो प्रभु की इच्छा है उसी में प्रसन्न हैं) हर हालत में खुश है, कोई परेशानी नहीं, तबियत में चैन है। एक अजब आनन्द हर वक्त मालूम होता है जिससे तबियत ख़ुश रहती है। अब मन से निगाह ऊँची हो गयी, इससे भी छुटकारा पाकर निगाह आनन्द पर है। जब आनन्द आना बन्द हो गया, तबियत भी परेशान हो जाती है।

और आगे बढ़े, अब बेक़ैफ़ी (उपशमता) की हालत है। इसमें न आनन्द है और न ग़ैर आनन्द। न किसी से प्यार है और न किसी से दुश्मनी, न किसी के पैदा होने पर ख़ुशी न किसी के मरने का रंज, न जिस्म से मतलब, न इन्द्रियों से ताल्लुक। न ख़्वाहिशात हैं, न आनन्द की इच्छा। अब किसी चीज़ से वास्ता नहीं, हर हालत में एक रस हैं। दुनियाँ रहे या जाये, ज़िन्दगी रहे या मौत आ जाये, दुनियाँ गुलज़ार रहे या आग बरसे, उनकी हालत में इन बातों से कोई फ़र्क़ नहीं आता। अब अपनी आत्मा (असलियत) में आप मग्न हैं, और सदा एक रस हैं। यही मुक्ति है और यही निर्वाण है। जहाँ अनानियत (अहंपना), ख़ुदी, मेरा-तेरा, वग़ैरा सबकी ज़ंजीरें टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं, ज़िन्दगी अपने आपको आला क़ानून के साथ कर देती है। इसकी तक़मील (पूर्णता) एक जन्म में भी हो सकती है और हज़ारों जन्मों में भी नहीं हो सकती।

जिनको यह हालत नसीब हो जाती है, उन्हीं को संत, औलिया, गुरु, वग़ैरा के नामों से पुकारते हैं। गेरुए कपड़े पहने, रामनामी चादर या कफ़नी पहनने वाले, तिलक लगाने वाले, धुआँधार व्याख्यान करने वाले संत नहीं होते। भेस बदल लेना आसान है लेकिन मन और इन्द्रियों को जीत लेना कोई बिरले ही कर सकते हैं। किसी शायर ने ख़ूब कहा है -

" किसी बेकस को ऐ बेदाद गर मारा तो क्या मारा,
जो ख़ुद ही मर रहा हो, उसको गर मारा तो क्या मारा।
बड़े मूजी को मारा नफ़्से अम्मारा गर मारा।
निहंगों, अज़दहाओं, शेरों नर मारा तो क्या मारा,
न मारा आपको जो ख़ाक हो अकसीर बन जाता,
अगर पारे को ऐ अकसीर गर मारा तो क्या मारा।
दिले बदख़्वाह में था मारना, या चश्मे बदबीं में,
फ़लक पर तीरे आह गर मारा तो क्या मारा।
गया शैतान मारा एक सिजदे के न करने में,
अगर लाखों बरस सिजदे में सर मारा तो क्या मारा।"

मुक्ति और निर्वाण को समझ लो। तर्क-वितर्क की ज़रूरत न रहेगी। जब तक इस सच्चाई की समझ नहीं आती तभी तक आदमी शब्दों के फेर में अटका रहता है।

राम सन्देश : सितम्बर-अक्टूबर, 2007.

मनुष्य का सर्वोच्च कर्तव्य क्या है ?

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

परमार्थ का मतलब यह है कि हमारी मौजूदा ज़िन्दगी ख़ुशी की ज़िन्दगी हो जाये, हमें आनन्द ही आनन्द हो और प्रेम ही प्रेम हो. इसका इलाज सन्तों के पास है. वे कहते हैं कि इस शरीर की मालकिन आत्मा है, जिसकी अधीनता में बुद्धि काम करती है. मन बुद्धि के अधीन है. आत्मा सबके ऊपर है. वह सबसे काम लेती है और सबको शक्ति देती है और उसी शक्ति से बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ संचालित हैं. लेकिन हो रहा है इसका उल्टा. इन्द्रियाँ अपनी मनमानी करती हैं और विषयों में घूमती हैं, मन का कहना नहीं मानती.

मन अपनी ख़्वाहिशात में मस्त रहता है और बुद्धि अपने विचार उठाया करती है. ये तीनों मिलकर आत्मा के ऊपर सवार हैं. उसी से शक्ति लेते हैं और उसी पर सवार हैं. उलटी गंगा बह रही है. अपने आपको मास्टर बनाओ. आत्मा को बुद्धि, मन और इन्द्रियों के फन्दों से निकालो, ज़िन्दगी सुखमय हो जायेगी. लेकिन जब तक हमारी बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ हमारे क़ाबू में नहीं हैं तब तक सुख कैसे प्राप्त होगा ? सन्तों का अभ्यास यह है कि हमारे अन्दर जो इस तरह की अनुशासनहीनता (indiscipline) हो रही है उसको अनुशासन (discipline) में ले आओ. सबको क़ाबू में करो. ज़िन्दगी शान्तिमय (peaceful) हो जायेगी. यही सारा साधन है.

सन्तों का तरीक़ा रूहानी (आत्मिक) है. जितने अभ्यास इनके हैं उन सब में आत्मा को मन, बुद्धि, और इन्द्रियों के फन्दे से न्यारा करते हैं. आत्मा आनन्द रूप है, प्रेम रूप है, उसको मन चूस रहा है, उससे उसको निकालना है. गुरु कौन है ? ईश्वर. गुरु जिस्म को नहीं कहते. जिस्म के अन्दर जो परमात्मा निवास करता है, वही गुरु है. जिस्म तो बाहरी स्वरुप है. लक्ष्य हमारी वह आदि शक्ति है जो विश्वात्मा (Universal soul) है. अपनी आत्मा को न्यारा करके उसे विश्वात्मा (Universal soul) में लय कर दो. कृष्ण भगवान कहते हैं - " हे अर्जुन ! सब

धर्मों को छोड़कर मुझको समर्पण (surrender) कर. मैं तुझे माया के सब प्रपंचों से निकालकर भवसागर से पार कर दूँगा." गुरु के मन से मन मिल जाये, जो गुरु के ख़्याल में आये, वह तुम्हारे ऊपर भी उतर जाये, जो गुरु चाहे, वही तुम करो, यही समर्पण

(surrender) है. सूफ़ियों में इसको 'निस्वत' कहते हैं. मन इन्द्रियों में बिलकुल शान्त नहीं होता, न दुनियाँ की वासनाओं में. जब सत पर आ जाता है और गुरु के चरणों में लग जाता है, तब शान्त होता है. जब यह समर्पण (surrender) पूर्ण हो जाता है तब मन शान्त होकर एक तरफ़ बैठ जाता है, आत्मा अपने प्रीतम परमात्मा का दर्शन करती है और सब जगह, सब वस्तुओं में, और सब प्राणियों में उसी प्रीतम का रूप निहारती है.

संतमत का लक्ष्य और तरीक़ा यह है कि अपने तमाम निर्धारित कर्तव्यों (duties) को पूरा करो. दुनियाँ का तजुर्बा करते हुए प्रेम अंग जागेगा.

मन के विकारों में सुरत की धारों का बिखेर होता है जिसके कारण प्रभु चरणों की अनवरत समूह नहीं बन पाता. महादेव जी के मन्दिर में पिण्डी के ऊपर जलहरी में जल भर कर रखते हैं और ऐसी व्यवस्था करते हैं कि जल की बूंदो का प्रवाह महादेव जी की पिण्डी पर निरन्तर बहे. इस भौतिक प्रयोग से साधक को यही समझाने की चेष्टा की गयी है कि तमाम साधना का तत्व यह है कि आपकी सुरत की धार मन के विकारों में अटके बिना उस आदि महादेव की ओर बढ़े तभी उनके दर्शन का विलास आपको प्राप्त होगा और आप कृतार्थ हो जायेंगे.

राम सन्देश : दिसम्बर, 1994

मनुष्य जीवन का आदर्श सच्चे आनन्द की प्राप्ति करना है

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

इन्सानी-ज़िन्दगी (मनुष्य जीवन) का आदर्श क्या है ? इन्सानी ज़िन्दगी पाना यानी मनुष्य जन्म मिलना एक बड़ी ख़ुशकिस्मती की बात है जिसका खास ध्येय यह है कि परमात्मा का अनुभव करें और दुनियावी प्रपंच से छुटकारा पायें। अगर यह क़ीमती ज़िन्दगी इस ध्येय की पूर्ती के लिए न लगाई गयी तो जानवर और इन्सान की ज़िन्दगी में कोई फ़र्क़ नहीं है। अगर हम सच्चे भक्त बन जाएँ तो हम कर्मों के जंजाल से छूट जायँ और इन्द्रियों के जाल से हमेशा-हमेशा का छुटकारा मिल सकता है।

जब तक हम दुनियावी बातों के बारे में सोचते रहते हैं और ख़्वाहिशात उठाते रहते हैं हम कभी खुश नहीं रह सकते। जब हमारा मन और बुद्धि ईश्वर की तरफ़ लग जाते हैं तभी हमें सच्ची ख़ुशी हासिल होती है। परमात्मा की तरफ़ तवज्जह (ध्यान) लगाने और हमेशा-हमेशा को इस प्रपंच से छूटने और सच्ची ख़ुशी हासिल करने का साधन यही है कि हम उससे मिलने के लिए अपनी ख़्वाहिश को जगायें और उसे हर समय याद रखें। ईश्वर हर समय और हमेशा हमारे दिल में रहता है लेकिन उसके दर्शन तभी हो सकते हैं जब हम अपने मन को वासनाओं से साफ़ कर लें। हमें उस तक पहुँचने के लिए ख़्वाहिश उठानी चाहिए। उसको हमेशा याद रखना चाहिए। उस तक पहुँचने का जतन करना चाहिए। उसी की बाबत सोचना चाहिए और आख़िर में पूर्ण रूप से अपने आप को उसके सुपुर्द कर देना चाहिए।

जब हम पूरे तौर से अपने आपको परमात्मा को समर्पण कर देते हैं तब हमें अपने अंतर में उसके दर्शन होते हैं और हमारी ख़ुदी, जो हमारे और उसके बीच में पर्दा है, और जिसकी वजह से उसका अपने घट में रहते हुए भी हम दर्शन नहीं कर सकते, हमेशा के लिए जाता रहता है। ऐसा आदमी ईश्वर का ही रूप है। उसको सिर्फ शांति और आनन्द ही नहीं

मिलता, बल्कि साथ ही साथ, वह ईश्वर के कामों का ज़रिया बन जाता है और इससे दुनियाँ का बड़ा उपकार होता है। वह पृथ्वी पर जिस्म में ईश्वर रूप होकर रहता है और उसकी पूजा भी ईश्वर के समान ही होती है।

ईश्वर अपने भक्तों की पूजा करता है। गीता में लिखा है कि वह भक्त जिसको ज्ञान हो गया है या जिसने मोक्ष हासिल कर ली है, सचमुच ईश्वर है। भगवतगीता में श्रीकृष्ण भगवान ने जो कि स्वयं ईश्वर के अवतार थे, दुनियाँ को दिखलाया है कि वह किस तरह उन भक्तों तक पहुँचे, उनकी कितनी इज़्ज़त की है। उनका एक दीन भक्त सुदामा उनके दर्शन को द्वारका गया। जैसे ही उन्होंने उसको देखा, बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया, उनको अपने सिंहासन पर बैठाया और उनकी पूजा की।

एक बार नारदजी द्वारका में श्रीकृष्ण भगवान के दर्शन करने को गये। महलों के दरवाज़े पर उन्हें रोक दिया गया। उनसे कहा गया कि इस समय भगवान् किसी से नहीं मिल सकते क्योंकि हमेशा की तरह वह इस समय पूजा कर रहे हैं। नारद को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि श्रीकृष्ण भगवान जो स्वयं ईश्वर के रूप हैं, किसकी पूजा कर रहे हैं। इस बात को जानने के लिए वह आहिस्ता से अन्दर गये और झरोकें में से देखने लगे जहाँ श्रीकृष्ण भगवान बैठे थे। उन्होंने देखा कि कृष्ण भगवान के सामने अम्ब्रीश, द्रोपदी, बाल्मीक, नारद, आदि बहुत से भक्तों की मूर्तियाँ रखी हैं. नारद अन्दर गये और श्रीकृष्ण भगवान् से पूँछा कि वे यह सब क्या कर रहे हैं। श्रीभगवान ने उत्तर दिया - मैं अपने भगवान की पूजा कर रहा हूँ और मेरे ईश्वर के स्वरूपों की मूर्तियाँ मेरे सामने रखी हैं।

सचमुच जब एक भक्त पूर्ण रूप से ईश्वर में समर्पण करके ईश्वर से मिलकर एक हो जाता है तो वह ईश्वर ही हो जाता है। दुनियाँ के अन्दर आदमी बाहरी चीज़ों को हासिल करते हैं। लेकिन ऐसे भक्तों ने पूर्ण रूप से अपने मन को जीत लिया है और अपनी ख़ुदी को ईश्वर में मिला दिया है और अपने अन्दर ईश्वर को पा लिया है। बाइबिल में लिखा है कि हज़रत ईसा मसीह ने एक जगह अपने शिष्य के पाँव धोये और उसकी पूजा की।

इन सभी ऊपर की बातों से पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि ईश्वर के भक्त सचमुच में ईश्वर के अवतार होते हैं। शिव के भक्त इन्सानी शक्ल में ख़ुद शिव हैं और इसी प्रकार से विष्णु के भक्त इन्सानी शक्ल में विष्णु हैं। बुद्ध भगवान जिन्होंने अपने मन को काबू में किया और अपने दिल की गहराई में गये, उन्होंने अन्त में निर्वाण हासिल किया। ऐसे ही भगवान महावीर स्वामी या ख़ुदा के बन्दे हज़रत मौहम्मद साहब - जिन्हें आज भी लाखों -करोड़ों लोग पूजते हैं, इसी तरह की आला -अज़ीम शख़्सियतों (श्रेष्ठ उच्च-कोटि के महामानवों) में हज़रत ईसा मसीह और हज़रत मूसा थे, जो ईश्वरीय प्रेम के नमूने थे। उनको भी करोड़ों आदमी पूजते हैं। इस पूजने का कारण यही है कि ईश्वरीय शक्ति, शान्ति, आनन्द इन महापुरुषों के दिल में ज़ाहिर हुए और उनके ज़रिये दुनियाँ को मिले।

ऐसी महान आत्मायें जगत के लिए एक बड़ी बरकत (वरदान) की चीज़ हैं . उन्होंने अपनी इस ज़िन्दगी को दूसरों के लिए ईश्वर प्राप्ति का एक साधन बना दिया जिसका सहारा लेकर मनुष्य उस महान शक्ति ईश्वर तक पहुँच सकता है। इसलिए इस इन्सानी ज़िन्दगी का लक्ष्य उस ईश्वर को, जो इसके अन्दर रहता है, उसको ज़ाहिर (प्रकट) करना है। हमको चाहिए कि हम आहिस्ता-आहिस्ता दुनियाँ की ज़िन्दगी से अपने मुँह को अन्दर की तरफ मोड़ें और उस ईश्वर को अपने ही अन्दर पायें, तभी हमको सच्ची ख़ुशी हासिल हो सकती है, और यही इन्सानी ज़िन्दगी का आदर्श होने चाहिये।

गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करें।

सन्देश : नवम्बर-दिसम्बर, 2010.

मार्ग दर्शन

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

लोगों में ईश्वर प्राप्ति की चाह तो है लेकिन तरीक़ा और रास्ता नहीं मालूम. इसी के लिए सन्त आते हैं, ईश्वर की तरफ़ से भेजे हुए, ईश्वर को पाने का रास्ता दिखाने और उस पर चलने का तरीक़ा बताने को. वे ईश्वर के निज पुत्र होते हैं. उन्हें दुनियाँ में आकर दोहरा काम करना पड़ता है. जैसी कोई प्रोफेसर हो और उसे कच्ची कक्षाओं को a,b,c, पढ़ाना पड़े तो पहले उसे उस स्तर पर आना होगा जिस पर उस कक्षा के बच्चे हैं, जिन्हें पढ़ना सीखना है. इसी प्रकार संतों को पहले उस स्तर पर आना पड़ता है जिस स्तर पर जीवन है. इस काम में माया की मदद लेते हैं, यानी अपने जीवन को दुनियाँदार का सा बना लेते हैं. इसमें उनकी गरज़ नहीं होती. उन्हें इन्द्रिय भोग की इच्छा नहीं होती. वे केवल जीवों के उद्धार की इच्छा लेकर आते हैं।

*** *** *** *** *** *** ***

नफ़रत के ख़्याल से किसी चीज़ को छोड़ देना भेंट नहीं कहलाती, जैसे कोई बैंगन, काशीफल वग़ैरा न पसन्द करता हो और उन्हें छोड़कर कहे कि मैंने यह देवता की भेंट कर दी है. भेंट सबसे प्यारी चीज़ की जाती है, जिससे मोह हो, लगाव हो और जो दुनियाँ में फँसाने वाली हो. जब सेठ धर्मदास कबीर साहब कि ख़िदमत में आये और गुरु दीक्षा चाही तो कबीर साहब ने कहा कि अपना सब रुपया ख़ैरात कर दो, तब आओ. धर्मदास जी बहुत बड़े सेठ थे, शायद उनके पास सत्तर करोड़ की दौलत थी. इससे उनको मोह था. एकदम नहीं छोड़ सकते थे. उन्होंने निवेदन किया कि हज़ूर, पहले आधा रुपया ख़ैरात करने का हुक्म हो. कबीर साहब ने इसे नामन्जूर कर दिया. कुछ दिनों बाद फिर ख़िदमत में आये. रईसी ठाट-बाट कुछ नहीं थे. मुँह पर दीनता थी और जिस्म पर एक कम्बल. फिर प्रार्थना की कि शरण में ले लिया जाये. पूछा गया कि क्या सब दौलत ख़ैरात कर दी ? निवेदन किया कि सब दौलत ख़ैरात

कर दी, अब जो कम्बल जिस्म पर है यही अपने कहने लायक है. कबीर साहब खुश हुए और उन्हें शरण दी.

आत्मा का आनन्द ऐसा आनन्द है कि जिसने एक बार उसका अनभुव कर लिया वह उसको कभी नहीं भूल सकता. यह ज़रूर है कि अपने-अपने संस्कारों के अनुसार अभ्यासी दुनियाँ की वासनाओं में फँस जाता है लेकिन यह आत्म-अनुभव और उसका आनन्द उसको ज़्यादा देर वहाँ ठहरने नहीं देता और भोगों का ज़ोर कम हो जाने पर फिर उसको याद सताती है और वह उस भोग को छोड़कर फिर अपने इष्ट की तरफ़ चलने लगता है इसी तरह आत्मा धीरे-धीरे सभी चीज़ों से उपराम होकर अपने प्रीतम के चरणों में पहुँच जाती है, और मन हमेशा के लिए शान्त हो जाता है. यह ज़रूर है कि जब तक मन जगत की इच्छाओं से उपराम नहीं होता है, आत्मा को परमात्मा की शरण नहीं मिलती और वह दुनियाँ के भोगों में फँसती रहती है. यह रास्ता बहुत सुगम और सफल है. लेकिन इसमें गुरु और शिष्य दोनों में ये दो बातें होना बहुत ज़रूरी है. गुरु में - (1) गुरु सच्चा हो यानी जिसने परमात्मा के चरणों में ठहरने के लिए जगह पा ली हो. (2) वह बेग़रज़ हो यानी शिष्य की आत्मिक उन्नति के सिवाय कुछ न चाहता हो. शिष्य में - (1) शिष्य को यह पक्का विश्वास हो कि जो कुछ गुरु कहता है उसी पर चलने में उसकी भलाई है. चाहे सख़्ती हो या नरमी, दोनों अवस्थाओं में गुरु में दृढ़ विश्वास रखे. (2) उसको गुरु से सच्ची प्रीत हो यानी उसके हृदय में सिवाय गुरु के प्रेम के कोई दूसरी चाह न हो, और यदि हो भी तो वह सिर्फ़ अपनी आत्मा के उद्धार की हो. गुरु में अपने आपको पूर्ण रूप से समर्पण और लय कर चुका हो.

जितनी कमी इन दोनों बातों में होगी उतनी ही देर आत्मा के साक्षात्कार में लगेगी. यह तरीक़ा है जो हमारे यहाँ बरता जाता है, जिसकी नींव कृपा कर हमारे बुज़ुर्गों ने डाली है. इसमें आत्मदर्शन पहले होता है और आचरण बाद में सुधरता है. फिर परमात्मा की नज़दीकी, सामीप्य हासिल करने के अतिरिक्त कोई कामना शेष नहीं रहती. इसलिए कहा गया है -

अब्बले माँ आख़िरे हर मुन्तहीमत /

आख़िरे माँ जब तमन्ना तहीस्त //

भावार्थ - हमारा प्रारम्भ वहाँ से होता है जहाँ औरों का अभ्यास समाप्त होता है. हमारा अन्त वहाँ है,जहाँ तमन्ना की जेब ख़ाली हो जाती है, मन में कोई इच्छा नहीं रहती।

मख्खी दो प्रकार की होती हैं. एक तो शहद की मख्खी होती है जो फूलों का रस चूसती हैं. दूसरी वह है जो गन्दगी और नापाक चीज़ों और बैठना पसन्द करती हैं. जिन मनुष्यों में परमात्मा का प्रेम है वे ईश्वर चर्चा के अलावा कोई दूसरी बात नहीं करते, लेकिन संसारी व्यक्ति धन-दौलत की ही चर्चा छेड़ते रहते हैं. अगर कोई उन्हें ईश्वर की चर्चा सुनाये तो वे बात काटकर संसार की ही चर्चा कर बैठते हैं।

दुनियाँ झूठी है. जगत मिथ्या है, चिल्लाते हैं. मेरा अनुभव यह है कि शक्ति ही प्रकृति है. इसमें प्रेम करने से मदद मिलती है और नफ़रत करने पर यह तोड़-फोड़ कर चीथड़े कर देती है. माया का निरादर न करो. वह हम सब की माँ है. माँ का सहारा लेकर बाप से नज़दीकी (सामीप्य) प्राप्त करो. माँ काली ने सदा श्री रामकृष्ण परमहंस की मदद की और आख़िर में हाथ में कटार लेकर आगे बढ़ने के लिए अपना सिर काट देने के लिए कहा. इसी प्रकार प्रकृति माता से सच्चा प्यार होने पर वह आगे बढ़ाती है. जहाँ वस्तु है वहाँ उसकी छाया भी है. जहाँ निराकार है, वहाँ साकार भी है. इसलिए इसके विवाद में मत पड़ो. नक़ल का सहारा लेकर असल तक पहुँच जाओ. इसी में कल्याण है।

राम सन्देश - सितम्बर-अक्टूबर , 2012 .

मोक्ष प्राप्ति के लिए अनिवार्य है - इच्छाओं का त्याग

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

इन्सान का मन एक बेजान चीज़ है. सुरत यानि आत्मा की धार चैतन्य और अजर-अमर है. मन अपनी जीवन शक्ति इसी आत्मा की धार से लेता है और दुनियाँ की चीज़ों का आनन्द इन्द्रियों द्वारा भोगता है. जैसे-जैसे वह सांसारिक वासनाओं के आनन्द में फँसता जाता है वैसे-वैसे उन भोगों की चाह बढ़ती जाती है. आत्मा मन की रूप धारण कर लेती है और मन के आधीन होकर जिधर वह ले जाता है उधर ही चलती है. मन दुनियाँ के सामान की तरफ़ दौड़ता है और आत्मा की शक्ति पाकर वासनाओं की तृप्ति करता है. एक वासना अनेक वासनाओं को जन्म देती है और इस तरह अनेकानेक वासनायें बनती जाती हैं, जिनकी तृप्ति इन्सान के इस छोटे से जीवन में नहीं होती.

जब अंत समय आता है तो मन और शरीर नाश को प्राप्त होते हैं और आत्मा, जो अविनाशी है, अपने वर्तमान जीवन की गठरी लिए हुए कर्मों के अनुसार दूसरा शरीर धारण करती है. जिस प्रकार की अतृप्त वासनाओं का भार ज़्यादा होता है, उसी प्रकार की योनि में जन्म मिलता है. अगर इन्द्रिय भोग की इच्छा प्रबल रही तो सूअर और कुत्ते जैसी योनियों में जन्म पाता है, धन की लालसा है तो सांप बनकर धन पर आ बैठता है. इसी प्रकार और भी योनियाँ ऐसी जगह मिलती हैं, जहाँ पर उसकी पिछली ख़्वाहिशें पूरी हों. उनसे निवृति पाकर आत्मा बाकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए दूसरी योनियों में शरीर धारण करती है और इस आवागमन का अंत नहीं होता.

यदि सौभाग्य से मनुष्य शरीर धारण करने पर जीव को कोई वक्त का पूरा गुरु मिल जाये जो सुरत को उलट कर अंतर या ऊपर की तरफ़ चढ़ाई का रास्ता समझा दे, यानी मन का घाट बदल दे, तो जीव का कल्याण हो जाता है और अगर मनुष्य उसके बताये हुए रास्ते पर क़ायम रहे तो कम से कम एक जन्म वरना ज़्यादा से ज़्यादा पाँच जन्मों में इस

आवागमन के चक्क़र से छूट सकता है. मन के घाट से मतलब यह है कि मन दुनियाँ की जिस चीज़ को चाहता है उसी के विषय में हर समय मन में ख़्यालात उठते रहते हैं. कंचन, कामिनी और अहंकार - ये तीनों चीज़ें मन को फँसाने के लिए ज़बरदस्त जाल हैं, उलट फेर कर किसी न किसी रूप में यही तीन चीज़ें मन में समायी रहती हैं और इन्सान इन्हीं के बारे में सोचा करता है. कंचन यानी धन से मतलब सिर्फ़ रुपये पैसे से ही नहीं है, संपत्ति से भी है, जैसे मकान, दुकान, नौकरी आदि. इसके अलावा और भी चीज़ें हैं जो रुपये पैसे से सम्बन्ध रखती हैं जैसे मान-बढ़ाई, इज़्ज़त, पद - ये सब अहंकार के अंग हैं और धन के दायरे में आते हैं. इसी तरह से स्त्री और उससे सम्बंधित विचार कामिनी के दायरे में आते हैं. सारा संसार ही इन तीनों के दायरे में नाच रहा है. अगर इन सबके या इनमें से किसी ख़ास चीज़ के ख़्याल आते हैं और मन हमेशा इन्हीं के बारे में उधेड़-बुन किया करता है तो उसने यहाँ अपना घाट बना लिया है. इस घाट को बदलना है अर्थात जहाँ- जहाँ और जिन-जिन साँसारिक विषयों में फँसा है उन स्थानों और वस्तुओं से ऊपर निकलना होगा. संत इसे ही घाट का बदलना कहते हैं. अगर यह घाट नहीं बदला गया तो मरते वक्त जब सुरत वापस लौटती है तो बड़ी तकलीफ़ होती है. इसलिए महापुरुष अपने जीवन काल में ही सुरत के उतर-चढ़ाव का इतना अभ्यास कर लेते हैं कि उन्हें मरते वक्त कोई तकलीफ़ नहीं होती.

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज कहा करते थे कि एक बार उन्हें यह जानने की इच्छा हुई कि दुनियाँदार की मौत किस तरह होती है और संतों की किस तरह. उन्होंने स्वप्न देखा कि उनके गुरुदेव आये हैं. लकड़ी के दो तख़्त जिन पर दो सफ़ेद चादरें बिछी हुई हैं, दिखाकर कहने लगे कि देखो, एक तख़्त पर जो चादर बिछी हुई है उसमें सैंकड़ों-हज़ारों छोटी-छोटी कीलें ठुकी हुई हैं और उनके ज़रिये वो तख़्त में जड़ी हैं. उसे खींच कर उठाया तो उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये. जहाँ-जहाँ वे कीलें जड़ी थीं वहीं-वहीं वे अटकीं और चीथड़े होकर वहाँ से उखड़ीं. यह दुनियाँदार की मौत है. सुरत सफ़ेद चादर है और कीलें उस दुनियाँदार की अगणित इच्छायें हैं जिनमें वह फँसी रहती हैं. मरते वक्त आसानी से उन इच्छाओं से इसी तरह नहीं निकलने पाती जिस तरह यह चादर इन कीलों से नहीं निकली. फिर उन्होंने दूसरे

तख़्त की तरफ़ इशारा किया. तख़्त में कीलों के ऊपर चादर थी. उस चादर की सब कीलें निकल चुकी थीं. उसे खींचा तो एकदम आसानी से बिना किसी रुकाबट के चादर साफ़ खींची चली आयी. उन्होंने फ़रमाया कि देखो संत अपनी ज़िन्दगी में ही समस्त इच्छाओं से इस तरह अपने आपको अलहदा (पृथक) कर लेता है जैसे यह चादर कीलों के ऊपर आ गयी. इसलिए मरते वक़्त उसे कोई तकलीफ़ नहीं हुई.

कहने का आशय यह है कि हमें अपनी सुरत को सारी इच्छाओं से पाक-साफ़ करना होगा. इसे निर्मल बनाना होगा. परमात्मा से मिलने के अतिरिक्त कोई ख़्वाहिश दिल में न रहे. यही मन को शांत करना है. लेकिन यह एकदम और ऐसी आसानी से नहीं हो जाता.

इसका तरीक़ा है - गुरु का सत्संग करना और गुरु की दया प्राप्त करना. वैराग्य सत्संग से पैदा होता है और आत्मा को शक्ति मिलती है. अभ्यास से मन का घाट बदलता है. वह तम से रज और रज से सत पर आ जाता है. सत्संग से मन का मैल बराबर धुलता रहता है. गुरु दर्शन से, उनके चरणों में बैठने से, उनके वचन सुनने और उन पर अमल करने से, मन का घाट बदलने लगता है. उनसे प्रीति करने से आहिस्ता-आहिस्ता वह ईश्वर की प्रीति में तब्दील हो जाती है. इसके लिए प्रीति की ज़रूरत है और साथ ही साथ प्रतीति की भी. प्रतीति यह है कि केवल गुरु ही हमारे सच्चे हितेषी और शुभ चिन्तक हैं. वह जो फ़रमाते हैं वह सब हमारे कल्याण के लिए ही है. उसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है. और यह कि वे अनुभवी पुरुष हैं, आत्मा का साक्षात्कार करा सकते हैं. प्रीति यह है कि उनकी हर एक बात को अपने हित की जानकर उस पर अमल करने की कोशिश करें. कोई भी ऐसा काम न करें जिससे वो नाख़ुश हों. अपना सब कुछ उन पर न्यौछावर कर दें. हर वक्त उनके स्वरुप यानी उनकी शक़्ल का या उनकी बताई हुई विधि का ध्यान करें. तभी मन का घाट बदला जा सकता है. सत्संग में आकर बैठ जाना, वचन सुन लेना और उन पर अमल न करना - समय को नष्ट करना है.

सद्गुरु अपनी दया, पहली कृपा दृष्टि में जीव के अन्दर प्रवेश करा देते हैं, और वह दया बराबर आती रहती है. उसकी पहचान यह है कि मन अगर संसार की किसी चीज़ में फंस भी

जाता है तो वहाँ उलझता नहीं है. उसे वहाँ सुख और शांति नहीं मिलती और जी में एक उथल-पुथल सी मची रहती है, और उस चीज़ में फंसने से बचा लेती है, और अपने असली आदर्श यानी परमात्मा, जो कि हमेशा के सुख और शान्ति का भण्डार है, उसकी तरफ़ मोड़ती है.

इसी ध्येय अर्थात जीवन-मरण के चक्र से निकलकर मोक्ष पाने के लिए ही अपनी सभी कामनाओं और अभिलाषाओं का त्याग करना ज़रूरी है. पर इस काम में मन को बड़ी मेहनत करनी पड़ती है. हर एक बन्धन ढ़ीला करना पड़ता है. ' इल्लत, क़िल्लत और ज़िल्लत "- यानि बीमारी, ग़रीबी और बेइज़्ज़ती - को नियामत समझ कर सहन करना पड़ता है. इससे मन पर चोट पड़ती है और वह ढ़ीला पड़ जाता है. यही तप है और सुरत शब्द का अभ्यास या जो भी विधि गुरु ने बतायी हो, वह जप है. इसी जप, तप से इच्छाओं को त्याग करते हुए इन्सान अपने असली लक्ष्य तक पहुँच सकता है.

व्यवहार

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

संतमत की विशेषता है कि वह बड़े सरल ढंग से साधक को साधना की प्रेरणा देता है. वह ज़बरदस्ती किसी से घर-बार नहीं छुड़ाता वरन जैसी परिस्थिति में जीव ने जन्म ग्रहण किया है उसी में बने रहकर कर्तव्य पालन की शिक्षा देता है. यही वजह है कि बिभिन्न धर्मों और जातियों की परम्परा में उत्पन्न हुए लोग यहाँ एक सूत्र में बंधे निर्धारित लक्ष्य की ओर मिलकर क़दम बढ़ाते हैं.

संतमत की साधना में गृहस्थी व निजी कारोबार छोड़ने की आवश्यकता नहीं बल्कि जो युक्ति अभ्यास की जिज्ञासु को बताई जावे वह अपने प्राकृत माहौल में रहकर बखूबी कर सकता है. अभ्यास प्रातः साँय, दोपहर या अधिक बार लगन व शौक के साथ करे. साधना के समय विषयों की तरंगों से मन को समेट-समेट कर सुमिरन, भजन व ध्यान में लगावे और अपने व्यवहार को मधुर से मधुरतम बनाने की चेष्टा में रहे ताकि प्रेम का घर में और बाहर विकास हो.

तुलसी मीठे वचन से सुख उपजत चहु ओर।

वशीकरण यह मन्त्र है, तज दे वचन कठोर॥

साधक को जिह्वा शुद्धि की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है. वाणी में कटुवचन तो होने ही नहीं चाहिए, इसके अतिरिक्त कथन से पूर्व सोच विचारकर, संयमित भाषा में अपने मन्तव्य को प्रकट करना चाहिए. इस प्रकार प्रत्येक सत्संगी भाई को अपने व्यवहार में प्रेम ओर आनन्द के विकास की ओर ध्यान देना चाहिए. उसके सम्बन्ध कुटुम्ब परिवार वालों के साथ मधुर होने चाहिए. यह तभी सम्भव है जब साधक में दीनता, सहिषुणता, आदि गुण उच्च स्थान प्राप्त करें और वह किसी की हक़तल्फ़ी न करे वरन संतमत का फ़ायदा उन्हें

खोलकर समझायें ओर जो सम्बन्धी ख़ुशी से संतमत की ख़ूबियों से प्रभावित होकर, इस मत के अनुसार अभ्यास में लगना चाहें उन्हें अपने साथ लगा लें और जो हठधर्मी या वाचक ज्ञान के अभिमान से कुसित होने के कारण विचारों से सहमत न हों उनसे विवाद में न फँसे बल्कि उन्हें उनके हाल पर छोड़ दें और साँसारिक व्यवहार का सम्बन्ध बनाये रखें.

यह अनुभव में आया है कि सत्संगी के कुटुम्बी व साथी अपनी ओछी व साँसारिक समझ के कारण खिल्ली उड़ाते हैं या बगुला भगत आदि कहकर ताने दिया करते हैं और परमार्थ में रोड़ा अटकाकर अपने हलके से बाहर नहीं होने देना चाहते. ऐसे अवसर पर उन्हें संतमत की महिमा समझाने का प्रयत्न करें. इसके बाबजूद भी यदि वे अपनी आदत के कारण बाज़ न आयें तो उन पर क्रोध न कर उपरामता ग्रहण करें और जहाँ तक सम्भव हो उनके प्रति साँसारिक दायित्व का पालन करते रहें.

प्रयत्न यह होना चाहिए कि आपके स्त्री, बच्चे, पिता, भ्राता, बहिन जो दिन रात आपके निकट सम्पर्क में रहते हैं आपके सम-विचार बन सकें और सत्संग में लगें. ऐसा होने से प्रत्येक घर में आनन्द का संचार होगा ही, दूसरे अन्त में सब लोग संत लोक में बासा पावेंगे. इस प्रकार स्वार्थ और परमार्थ दोनों में ही परस्पर सहयोग की पुष्टि होकर सबका कल्याण होगा. वास्तव में ऐसे सत्संगी सौभाग्यशाली हैं जिनका परिवार भी परमार्थ में उनके साथ हैं.

सत्संग के प्रभाव में आकर आप क्या बन गए हैं, यह बात आपके व्यवहार से प्रकट होनी चाहिए. यह प्रेम मार्ग है. परमपिता परमात्मा प्रेम के भण्डार हैं. उनकी उपासना से ईष्या व डाह की परिसमाप्ति होनी चाहिए. यह इस बात का प्रमाण है कि आप सही मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं.

तात्पर्य यह है कि बिरादरी व कुटुम्बजनों से विरोध व वैमनस्य का प्रसंग ही नहीं आना चाहिए. यदि संस्कारवश आपकी बात का उन पर असर नहीं होता तो न सही. उनके प्रति अपनी साँसारिक व्यवहार कुशलता में कमी न आने दें और जो रस्म रिवाज़ दुनियाँ के बुजुर्गों द्वारा चलाये जा रहे हैं उनमें सम्मिलित होकर सहयोग की भावना को बढ़ावा दें.

परिवार एक गुलदस्ते के समान है. जिस तरह से गुलदस्ते में तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूल होते हैं इसी प्रकार विभिन्न संस्कारों के जीव एक परिवार में दृष्टिगत होते हैं जो अपने पूर्वजन्मार्जित कर्मों के फल के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना में रुचि ग्रहण करते हैं. जब तक साधक में इतनी योग्यता नहीं आ जाती कि वह उन्हें सही मार्गदर्शन दे सके, उनकी टीका-टिप्पणी कर उनके आस्तिक भाव को ठेस नहीं पहुँचाना चाहिए. गीता में कृष्ण भगवान कहते हैं -

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।

जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्।।3.26।।

अर्थ - ।।3.26।।इस प्रकार लोकसंग्रह करनेकी इच्छावाले मुझ परमात्मा का या दूसरे आत्मज्ञानी का लोकसंग्रहको छोड़कर दूसरा कोई कर्तव्य नहीं रह गया है। अतः उस आत्मवेत्ताके लिये यह उपदेश किया जाता है बुद्धि को विचलित करने का नाम बुद्धिभेद है (ज्ञानीको चाहिये कि) कर्मोंमें आसक्तिवाले विवेकरहित अज्ञानियोंकी बुद्धिमें भेद उत्पन्न न करे अर्थात् मेरा यह कर्तव्य है इस कर्म का फल मुझे भोगना है इस प्रकार जो उनकी निश्चितरूपा बुद्धि बनी हुई है उसको विचलित करना बुद्धिभेद करना है सो न करे। तो फिर क्या करे समाहितचित्त विद्वान् स्वयं अज्ञानियोंके ही (सदृश) उन कर्मोंका (शास्त्रानुकूल) आचरण करता हुआ उनसे सब कर्म करावे.

संत - वाणी

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

सूफ़ीमत और संतमत एक ही हैं. यह राधास्वामी मत से कुछ-कुछ मिलते हैं, पूरी तरह नहीं मिलते. इसमें अवतारों और देवताओं की पूजा नहीं की जाती. इसमें निर्गुण ब्रह्म को पूजते हैं, और रास्ता सगुण का अख़्तियार करते हैं. जहाँ और मतों में देवताओं को पूजते हैं, वहाँ संतमत में ईश्वर के सगुण रूप की पूजा करते हैं. गुरु कौन है ? ऐसा इन्सान जिसमें ईश्वर का प्रेम ही प्रेम हो, उसके रोम-रोम से, वाणी से, एक ईश्वर का प्रेम ही प्रकट हो रहा हो, वह गुरु हैं. वही पूज्यनीय हैं. जिज्ञासु वह है जिसे दुनियाँ की सभी चीज़ें मिल जाने पर भी किसी ऐसी चीज़ की तलाश हो, अन्दर से कुरेद हो, जिससे उसको स्थायी शान्ति मिले, आनन्द मिले. वह चीज़ है ईश्वर का प्रेम जो गुरु से मिलता है. उसे चाहिए कि गुरु का वसीला (माध्यम) लेकर अपने आपको परमात्मा में लय कर दे. जो मालिक कुल है, हमेशा से है, हमेशा रहेगा, जिसे पाकर और कुछ बाकी नहीं रहता, जो प्रेम ही प्रेम है, आनन्द ही आनन्द है, जीवन ही जीवन है - वही एक परमेश्वर हमारा लक्ष्य है. इस लक्ष्य की प्राप्ति वगैर गुरु के नहीं होती.

गुरु दो तरह के होते हैं. एक तो वो मोक्ष आत्मायें होती हैं जो मानो किसी लोक की गवर्नर होती हैं, और अपनी शक्तियाँ लेकर दुनियाँ की बुराई दूर करने, जीवों का उद्धार करने और जिस देश से आयीं हैं वहाँ का भेद देने आती हैं. आते समय ब्रह्माण्ड की किसी ऐसी आत्मा जिसकी मोक्ष में बहुत थोड़ी कसर बाकी हो, को ले आते हैं. यही गुरुमुख या 'मुराद' कहलाते हैं.

इन गुरुमुख आत्माओं के ऊपर कोई झीना सा परदा रह जाता है, जिससे उनकी मोक्ष में रुकावट हो जाती है. उस परदे को गुरु की सौहबत में बैठकर साफ़ कर लेते हैं और मोक्ष पुरुष हो जाते हैं. यही लोग अपने गुरु का ख़लीफ़ा होते हैं और उनके शरीर त्यागने के बाद

उनका काम करते हैं. यह दूसरी तरह के गुरु कहलाते हैं. उन्हीं से आगे का सिलसिला चलता है.

जो अभ्यासी इनकी संगत में रहकर नीचे से तरक़्क़ी करते हैं, अपने गुरु से कशफ़ी तौर पर आत्मा का अनुभव प्राप्त करके कस्बी तौर पर आहिस्ता-आहिस्ता तक़मील (पूर्णता) की स्थिति को प्राप्त होते हैं. यह गुरु के जीवन में भी हो सकता है और बाद में भी.

उपरोक्त पहली श्रेणी के गुरु हज़ार-बारह सौ साल बाद आते हैं. अगर सौभाग्य से ऐसे गुरु मिल जायें तो बहुत अच्छा है. अन्यथा दूसरी श्रेणी के गुरु का सहारा लें. दरवाज़ा छोड़ कर कभी न जायें. दीनता, लगन और प्रेम भाव से श्रद्धापूर्वक उनके आश्रित हो जायें. कभी-कभी जिज्ञासु की आस्था परखने के लिए गुरुजन अनादर, फटकार, ताड़ना आदि भी कर देते हैं, कोई-कोई तो मार भी बैठते हैं. यह सब सहें पर द्वार न छोड़ें. जब देखेंगे कि आस्था पक्की है तब उनकी दया उमड़ेगी जो जिज्ञासु का कल्याण कर देगी.

" द्वार धनी के पड़ा रहे, धका धनी का खाय "

इस मत में अन्य बातों के अलावा जिज्ञासु के सदाचार पर बहुत ज़ोर दिया गया है. यदि सदाचार (इख़्लाक़) ठीक नहीं होगा तो ऊपर की चढ़ाई नहीं हो सकेगी. इख़्लाक़ की तक़मील (पूर्णता) की पहिचान यह है कि ऐसे व्यक्ति के पास बैठने से आन्तरिक चक्र स्वयं खुलने लगते हैं.

संतमत विगत सभी संत-महात्माओं, अवतारों तथा महापुरुषों की इज़्ज़त करता है, लेकिन यह नहीं मानता कि उनसे वर्तमान काल में जिज्ञासु को फ़ायदा हो सकता है. उसके लिए जीता जागता गुरु होना आवश्यक है. हक़ीम लुक़मान और धन्वन्तरि वैद्य जब जीवित थे उस समय रोगियों को उनसे फ़ायदा होता था, अब उनसे फ़ायदा कैसे मुमकिन है? अब तो मौजूदा वैद्य या हक़ीम से ही रोगी को फ़ायदा होगा.

मौजूदा गुरु की सौहबत में रहने से इख़्लाक़ आसानी से और जल्दी दुरुस्त हो जाता है. इसलिए जहाँ तक हो सके वक्त के पूरे सद्गुरु की शरण लो, वरना जो साध गुरु हैं और रास्ता चल रहे हैं, उनका सहारा लो.

संतमत में देवताओं की पूजा नहीं की जाती. इसमें गुरु की पूजा यानी साकार की पूजा की जाती है. लेकिन लक्ष्य निराकार पर पहुँचने का होता है. जो महापुरुष आत्म साक्षात्कार कर चुके हों और दूसरों को उस रास्ते पर चला रहे हों, उनके पास जाओ, एक साल या दो साल जब तक तुम्हें तसल्ली न हो, उनका सत्संग लाभ उठाओ. अगर फ़ायदा होता है तब 'दीक्षा' की बात करो. सूफ़ियों में इसे 'बैत' कहते हैं जिसके मायने हैं 'बेच देना'. बेचना क्या है ? अपने आपको गुरु के हवाले कर देना है. जब तक ऐसा गुरु न मिले जिससे तुम्हारी तस्सली न हो, गुरु धारण मत करो. जब मिल जाये तो अपने आपको उसके पूरी तरह हवाले कर दो. यही 'समर्पण' कहलाता है.

जब गुरु देखता है कि शिष्य की उन्नति नहीं हो रही है तो वह उससे सख़्ती से काम लेता है. जब बाप देखता है कि उसका बेटा

पढ़ाई में मन नहीं लगा रहा है और उसकी उन्नति रुक रही है तो उसे ताड़ता है, सख़्ती करता है. इसी तरह गुरु अपने शिष्यों के साथ करता है. लेकिन उसका व्यवहार सभी शिष्यों के साथ एक जैसा नहीं होता. जैसी जिसके लिए ज़रूरत होती है, वैसा किया जाता है. अधिकतर प्रेम से ही काम लिया जाता है, जब उससे काम नहीं चलता तब ताड़ना आदि का प्रयोग किया जाता है. ताड़ना के पीछे भी प्रेम और कल्याण ही छिपा होता है. बहुतेरे ऐसे शिष्य होते हैं जिनसे प्रेमपूर्वक कहो तो वे जान देने को तैयार हो जाते हैं. किन्तु बहुतेरे ऐसे होते हैं जिन पर डाँट फटकार करनी पड़ती है. कहने का मतलब यह है कि एक नुख़्से से सभी का काम नहीं चलता.

गुरु खोजने में बहुत समझ-बूझ से काम लेना चाहिए. अगर इस काम में एक जन्म भी लग जाये तो कोई हर्ज़ नहीं. जिस वक़्त पूरा गुरु मिल जाय तो समझ लो कि मोक्ष उसी

समय हो गयी. अपने आपको उसके हवाले करके उससे पूरी तरह प्रेम करो. किसी बाहिरी वातावरण की छाप से उस गुरु प्रेम को ढ़कने मत दो. दुनियाँ के लिए दृष्टा बन जाओ, जैसे सिनेमा देख रहे हो. अन्दर-अन्दर से लगन गुरु चरणों में लगी हो, दिल में मौहब्बत की और गुरु-प्रेम की आग धधकती हो.

गृहस्थ के लिए गृहस्थ गुरु ठीक रहता है और सन्यासी के लिए सन्यासी गुरु. एक दूसरे की हालत अच्छी तरह जानते हैं. गुरु की रहनी-सहनी को देखें. देखें कि गुरु अमुक काम क्यों करता है ? अगर तुम्हारे रुपये को लेता है और उसे ख़ैरात या किसी अच्छे काम में लगा देता है तो उससे तुम्हारे दो काम बन गए. एक तो वह रुपये से तुम्हारा attachment (लगाव) छुड़ा रहा है और दूसरा आगे के लिए पुण्य जमा कर रहा है. गुरु के ख़िलाफ़ सुनी सुनाई बात पर विश्वास न करो.

धर्म ग्रंथों में नवधा भक्ति का ज़िक्र है. उनमें से तीन तरीके अच्छे हैं. 1. सेवक सेव्य भाव, 2. पिता-पुत्र भाव, और. 3. पति-पत्नी भाव या मधुर भाव. शिष्य की बैठक जब इन्द्रिय चक्र पर होती है तब सेवक सेव्य भाव होता है. तरक़्क़ी करते-करते जब वह 'त्रिकुटी' के स्थान पर आता है तो पिता-पुत्र भाव होता है, और जब आत्मा के स्थान पर आता है तो मधुर-भाव होता है. दोनों मिलकर एक हो जाते हैं, कोई परदा बाकी नहीं रहता.

परमात्मा असल है और तुम उसकी जात अंश हो, तुम उसके बगैर रह नहीं सकते. जब आत्म-जागृति पैदा हो जाती है तब यह भाव आता है. फिर आत्मा (पत्नी) को सिवाय परमात्मा (पति) के किसी और का चिन्तन नहीं होता.

जिज्ञासु को चाहिए की शुरू में जब तक उसकी सुरत की स्थिति 'सत' के स्थान पर न हो तब तक अपने गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी साधु-सन्त के पास न जाये. पतिव्रता स्त्री की तरह रहना चाहिए. जब शादी होकर आती है तब

3-4 साल तक बहू को कहीं नहीं भेजते. हर समय उसका संरक्षण करते हैं, कहीं धर्म न खो बैठे. जब बच्चे हो जाते हैं, परिपक्व हो जाती है, तो फिर कोई

रोक-टोक नहीं करते. यही बात नए शिष्य के साथ होती है. जहाँ कहीं दूसरे सत्संग में जाता है तो हर तरफ़ ललचाई आँखों से देखता है. अगर किसी ने कोई बात उसके गुरु के खिलाफ़ कह दी, वह उसके दिल में पक्की हो जाती है, क्योंकि बुराई का अँकुर उसमें पहले से ही मौजूद है, अभी सफ़ाई नहीं हुई है. इससे उसका रास्ता रुक जाता है और बड़ा नुक़सान होता है. इसलिए जब तक हालत पुख़्ता न हो जाये, तकमील (पूर्णता) न हो जाये तब-तक ग़ैर सत्संग में नहीं जाना चाहिए. पिछले जितने महापुरुष हो चुके हैं, चाहे वे अवतार थे या अन्य मतों के आचार्य, तक़मील (परिवक्व) हो जाने पर सबको ही गुरु समान मानते हैं. तब भेद-भाव की दृष्टि चली जाती है.

दान देना, शुभ कर्म करना, परोपकार करना, बहुत अच्छा है, लेकिन सबसे बड़ा परोपकार है जीव को जन्म-जन्मान्तर के लिए भवजाल से छुड़ा देना, आत्मा का अनुभव करा देना. इससे बढ़कर शुभ-कर्म दुनियाँ में नहीं है. गुरु की सौहबत में बैठकर पहले स्वयं आत्मा का अनुभव करो और फिर दूसरों को भी आत्मा का अनुभव कराओ. एक समय में एक ही काम कर सकते हो. चाहे सामजिक काम करो, सभा सोसाइटियों का काम करो, और चाहे अपने उद्धार का काम करो. अपने उद्धार का काम मुख्य है, पहले उसे करो, फिर औरों का उद्धार करो.

संतमत के वर्तमान गुरु के अलावा विगत महापुरुषों से भी फ़ायदा होता है,चाहे वह ख़्याली हो, इसलिए हमें उनकी इज़्ज़त करनी चाहिए, और उनके लिए दुआ करनी चाहिए. वे तुम्हारे लिए भला करेंगे. इसमें धर्म का भेदभाव नहीं करना चाहिए।

अपना लक्ष्य याद रखो. तुम्हारा लक्ष्य है सम्पूर्ण आनन्द और सम्पूर्ण ज्ञान (Perfect Bliss. Perfect Knowledge) लेकिन अपने कर्तव्य को भी मत भूलो. जो विद्यार्थी हैं उनका पहला कर्तव्य है पढ़ना. जो गृहस्थ हैं, उनका कर्तव्य है धन कमाना और अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करना . हमारे यहाँ के नियमों में है कि घर छोड़ कर न जायें यानी सन्यास न लें. एक महीने में एकाध दिन के लिए एकान्त का सेवन करें. जितनी जल्दी हो सके गुरु-दर्शन का लाभ उठाते रहें.

इस तरह दुनियाँ के कर्तव्य पूरे करते हुए , ईश्वर चिन्तन करते हुए, रास्ते पर चलते रहोगे तो दुनियाँ से उपराम होते चले जाओगे. तब घर बाहर एकसा नज़र आने लगेगा।

राम सन्देश : जनवरी-फरवरी, 2001.

संत दर्शन ही सत का दर्शन है

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लालजी महाराज)

निर्गुण निराकार के दर्शन नहीं होते - एहसास (आभास) होता है. यह हरेक साधक के बस का नहीं है. सगुण के दर्शन सरलता से हो सकते हैं और हर एक साधक को इसके लिए आसानी है. संतों के हृदय में ईश्वर विराजता है. उनका शरीर ईश्वर का मन्दिर है. उस स्थूल शरीर को minus (ऋण) करके ईश्वर का दर्शन ही ईश्वर का दर्शन है. संत का संग ही ईश्वर का (या सत का) संग है. जो ईश्वर दर्शन के सच्चे प्रेमी हैं वे इस दर्शन और सत्संग में ही आनंदित रहते हैं. वे इसी में सदा सुखी रहते हैं. मोक्ष उनके लिए तुच्छ है. सूफियों में एक कहावत है -

" हम नशीनी ताअते बा औलिया,

बहतर अज़ सद्साल ताअत बेरिया // "

(भावार्थ - संत के एक क्षण के सत्संग से जो फ़ायदा होता है वह सैंकड़ों बरसों की तपस्या से कहीं ज़्यादा है.)

भगवान सदा अपने प्यारे भक्तों के पास रहते हैं. संतजन ईश्वर के अनन्य भक्त होते हैं. कबीर साहब ने कहा है -

मन मेरा पंछी भय, उड़कर चला अकास /

सत्तलोक खाली पड़ा, साहिब संतन पास //

राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय /

जो सुख साधू संग में, सो बैंकुण्ठ न होय //

जो सुख प्रेम में है वह लय होने में नहीं है. इसीलिए ईश्वर प्रेमी मोक्ष से बेपरवाह रहते हैं और ईश्वर की भक्ति माँगते हैं. तुलसी रामायण में इस प्रकार की भक्ति के अनेकों उदाहरण मिलते हैं.

आत्मा परमात्मा की अंश है. दोनों में आपस में प्राकृतिक प्रेम है और एक दूसरे से मिलकर एक होना चाहते हैं. लेकिन मन बीच में है. जब वह हट जाता है तब दर्शन होता है. आइना है, लेकिन उस पर जंगाल (मैल) चढ़ी हुई है, इसलिए मुखड़ा दिखाई नहीं देता. जब जंगाल छूटे तब मुखड़ा दीखे. यह दिल आईना है. इसी में प्रीतम के मुखड़े के दर्शन होते हैं. लेकिन मन रुपी जंगाल ने इसको ढ़क रखा है. जब मन साफ़ हो तब ईश्वर का दर्शन होगा.

यह मन आसानी से साफ़ नहीं होता - यह कुत्ते की दुम की तरह है जो सीधी नहीं होती. कोई-कोई संत कहते हैं कि यह रस्सी की तरह है - अगर जल भी जाये तो भी बल नहीं जाते. साधक में इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि वह ख़ुद अपने मन के मैल को दूर कर सके. इसका सहज उपाय एक ही है और वह है संतों का दर्शन, उनका सत्संग और उनके बताये हुए रास्ते का अनुगमन. संत की थोड़ी देर की सौंहबत से इतना फ़ायदा होता है जो सैंकड़ों साल की तपस्या से नहीं होता.

कबीर साहब जी ने कहा है –

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी से पुनि आध /

कबीर संगत साधु की, कटै कोटि अपराध //

संत की सेवा में जब भी जाओ, साफ़ दिल से जाओ - जो अंदर वही बाहर, दोहरापन (hypocrisy) न हो. संत की सौंहबत से तो इख़लाक़ (character) सुधरता है character formation (चरित्र निर्माण) होता है. इन्द्रियों, मन और बुद्धि पर अधिकार (control) होता है. अभी तक ये तुम्हारे ऊपर क़ाबू किये हैं फिर तुम इनके ऊपर क़ाबू करोगे, इनके मालिक बनोगे. और इस तरह जब आत्मा मन के फंदे से न्यारी हो जायेगी तब ईश्वर का दर्शन होगा.

बात यह है कि जो चीज़ें तुम अपनी समझते हो वो तुम्हारी नहीं हैं. तुम उनके हो. उनमें तुम्हारी आसक्ति है और वह ख़ुदी (अहं ego) की वजह से है. ख़ुदी (अहं) ही सबसे ज़बरदस्त पर्दा है. यह इस तरह समझो जैसे कि माला के दानों में सुमेर. सब बुराइयों और रुकाबटों का सरताज अहं (ख़ुदी) है. इस अहं के सुमेर में सब बुराइयाँ पिरोई हुई हैं. इसे तोड़ दो. सब दाने बिखर जायेंगे, सब बुराइयाँ दूर हो जावेंगी. यह हो कैसे ? इसका उपाय है कि असल को पहचानो. सच तो यह है कि दुनियाँ की सब चीज़ें न तुम्हारे साथ आई थीं और न साथ जावेंगी. यह दुनियाँ ईश्वर की है. उसी ने तुम्हें यहाँ के सामान दिए हैं तो यही ख़्याल करो कि यह मेरी नहीं है, उसकी है. खाना सामने रखा है, अचानक कोई भूखा आ गया, ख़ुद न खा कर उसको दे दो. देखोगे कि खाने में उतना आनन्द नहीं मिलता जितना दे देने में है.

हर शख़्स जो पैदा हुआ है ईश्वर के दर्शन पा सकता है. मनुष्य जन्म और गुरु दोनों संस्कार वश मिलते हैं, लेकिन इतने से काम नहीं चलता. मनुष्य चोला मिला है, गुरु भी मिले हैं, लेकिन चाल नहीं बढ़ती. तरक़्क़ी नहीं मालूम होती. इसका क्या कारण है. अधिकार नहीं बना. जब तक अधिकार नहीं बनेगा, ईश्वर नहीं मिलेगा. अधिकारी बनने के लिए पुरुषार्थ और तप करना पड़ता है. मन को क़ाबू में करो, चौबीसों घंटे उसकी चौकीदारी करो, इधर उधर मत जाने दो. गुरु रास्ता चल चुका है वह जानता है कि मन कैसे और कहाँ घुमाकर पटकता है. वह आगाह करता है कि देखो फलाँ काम मत करो. अगर उसके (गुरु के) कहने में चलते हो तो फ़ायदा उठाते हो वर्ना गुरु तो कह कर आगाह कर देता है, नुकसान तुम ख़ुद अपना करते हो.

आनन्द विषयों में नहीं है, मन में है. जब वह विषय के सम्पर्क में आता है तब आनन्द महसूस करता है. मसलन (उदाहरणार्थ) संगीत को लीजिये. किसी को शास्त्रीय संगीत पसन्द है तो किसी को हलके गाने. पाश्चात्य संगीत भारतीयों के लिए हूँ हल्लड़ के सिवाय और कुछ नहीं प्रतीत होता. अगर संगीत में आनन्द होता तो सबको एक जैसा प्रतीत होता. इसी तरह खाने -पीने की चीज़ों को ले लीजिये. किसी को मीठा पसन्द है, किसी को उससे नफ़रत है. कोई चटपटी चीज़ें पसन्द करता है तो कोई खट्टी. पसन्द होना या नफ़रत होना

व्यक्तिगत है और प्रत्येक की मन की दशा पर आधारित है. आनन्द विषयों में नहीं बल्कि मन में है. जितना मन शुद्ध होता चला जाता है हम शांत और आनन्दित होते हैं. जितना मन क़ाबू (control) करते जाओगे उतना रास्ता तय होता जायेगा. पहले इन्द्रियों पर क़ाबू करो, फिर मन की ख़्वाहिशात पर और फिर बुद्धि पर, तब सत पर आ पाओगे. यहाँ से परमार्थ का अधिकार शुरू होता है.

किसी के पास चाहे कितना भी पैसा-रुपया हो, कितनी ऊँची इज़्ज़त हो, चाहे कितनी सुन्दर उसकी स्त्री हो, औलाद भी अच्छी हो, क्या उसको शान्ति है ? नहीं. शान्ति इन चीज़ों में नहीं है क्योंकि ये सदा बदलनी वाली हैं, नाशवान हैं. जो चीज़ें हमेशा क़ायम नहीं रहने वाली हैं, उनमें शान्ति नहीं है. थोड़ी देर का मन का सुख है, मगर उससे ख़ुदी का पर्दा और मोटा होता है. मेरे पास इतना धन है, मेरी इतनी इज़्ज़त है, मेरे बीबी बच्चे इतना अच्छे हैं, इसका अहंकार हो जाता है.

इन चीज़ों से अपनी तवज्जह (attention) को हटाकर आत्मा में लगाओ. जिसने अपनी तवज्जह को आत्मा में स्थिर कर दिया वही दरअसल सुखी है. आत्मा उस अविनाशी एकाधार में लय हो जाती है. वही परम सुख है. यही जीवन का लक्ष्य है. अपनी तवज्जह को पलट दो, यानी कर्ता की दृष्टि से नहीं, द्रष्टा की दृष्टि से देखो. देखते रहो कि मन हमें कहाँ ले जा रहा है. अगर दुनियाँ की तरफ ले जा रहा है तो उसे उस तरफ़ से फेर दो.

इस तरह करने से आत्मा शक्तिशाली होती जाती है और मन क्षीण होने लगता है. एक दिन वह आएगा जब आत्मा ऊपर आ जायेगी, मन नीचे दब जायेगा. बुराई से अच्छाई पर, यानी असत से सत पर आ जाओगे. यह माया या प्रकृति माँ का पसारा है, माँ खेल खेल रही है. यह जगत उसका बाहरी रुप है. उसका खेल देखो मगर फँसो मत. माँ के अन्दर का रूप देखने की कोशिश करो. उसमें जो शक्ति काम कर रही है वही ईश्वर या शिव है, उसी ईश्वर का दर्शन करो. माँ के हर खेल में वह छुपे तौर से खेल रहा है.

कर्म तीन चीज़ों की मिली जुली कार्यवाही से होता है. पहले बुद्धि में विचार आता है, फिर मन में ख़्वाहिश होती है, तब इन्द्रियाँ उस कर्म को करने लगती हैं. मन ख़ाली बैठेगा तो सोचेगा, इसलिए उसे ख़ाली मत

बैठने दो. उसे राम नाम, सतनाम या कोई सा ईश्वर का नाम दे दो. चौबीस घंटे उससे रामनाम का जाप कराओ. मन से नाम लो ईशर का, जिससे अधिकार बने, और संगत करो गुरु की जिससे चाल चले ऊपर की. सदा उसकी कृपा का अवलम्बन लिए रहो. यह मन आख़िरी वक़्त तक धोखा दे सकता है. राम नाम कि नौका में बैठकर भाव-सागर से पार हो जाओगे. अन्तिम साँस तक राम नाम न छूटे. एक पैर ज़मीन पर और एक किश्ती में. समझते हैं कि दरिया पार हो गया. लेकिन मन यहाँ भी धोखा दे सकता है. यह आख़िरी वक़्त तक धोखा देता है. इसलिए राम नाम और गुरु कृपा का सहारा कभी मत छोड़ो.

जब जब मन धोखा दे, दुआ करो. मदद मिलेगी. दुआ में बड़ा असर है. जहाँ ईश्वर रहता है, वहीं पास में मन भी रहता है. जब तक ईश्वर की याद रहती है, मन दूर खड़ा रहता है. जब ईश्वर को भूल जाते हैं, मन फ़ौरन आकर दबा लेता है. इससे बचने का उपाय है - नाम का सतत उच्चारण. हमेशा नाम ही मन के हमले से बचा ले जायेगा.

गुरु का ध्यान मन में और राम का नाम बिना बोले (अजपा) अंतर में लेता रहे. राम जो सबमें रमा है. उसका चाहे कोई भी नाम ले लो, बात एक ही पर पहुँचती है. ॐ जो चारों जगत का मालिक है, 'हरि' जो दुःख का हरने वाला है, 'शिव' जो दुनियाँ का कल्याण करने वाला मालिक है. लेकिन यह सब शुरू में नहीं हो पाता. सब्र करो और बाधाओं से लड़ते हुए, नाम की धुन का सहारा पकडे हुए बढ़ते चलो.

सभी महापुरुषों ने नाम-जप और संतों के सत्संग की महिमा गायी है. यहाँ तक कहा है कि नामी से नाम बड़ा है. जहाँ उसका नाम लिया और वह तुम्हारे साथ है.

"समझो उसे वहीं पर, दिल है जहाँ हमारा "

भाव को स्वभाव में बदल दो. किताबों से भी भाव मिलता है, गुरु के वचनों से भी भाव मिलता है. दोनों से फ़ायदा उठाओ.

गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करेंगे.

राम सन्देश - फरवरी, 1994.

संसार को मन से छोड़ देने से संसार के स्वामी बन जाओगे

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महराज)

कुछ लोगों का यह विचार है कि भगवान बुद्ध ने चूँकि आत्मा-परमात्मा का ज़िक्र नहीं किया है अतः वे नास्तिक थे. यह बड़ी भूल है. आत्मा का साक्षात्कार या ईश्वर की प्राप्ति दोनों एक ही बात है. किन्तु इसके लिए किसी ख़ास महापुरुष के द्वारा काल और परिस्थिति के अनुसार जो भी शिक्षा तय की जाती है, कुछ वक्त बाद वह साधारण हो जाती है, और मनुष्य की रुचि उस ओर से हट जाती है. इस कारण, दूसरे महापुरुष जो बाद में आते हैं, उसी शिक्षा को दूसरी तरह से ज़ाहिर करते हैं, और जब वह शिक्षा भी समय के साथ आम (साधारण) हो जाती है, और जन-साधारण की रुचि उससे हट जाती है, तो और दूसरे महापुरुष आकर उस शिक्षा को अपने ढंग से ज़ाहिर करते हैं जिससे लोगों का रुझान उधर को बढ़े.

सभी की शिक्षा का मक़सद (आशय) यही है कि मनुष्य आत्म-तत्व या परम-सत्य की ओर चले, चाहे शब्दों का ऊपरी रूप जुदा-जुदा ही क्यों न हो, किन्तु असली तत्व सभी का एक ही होता है. चाहे वे संत हों, ऋषि हों, चाहे अवतारी पुरुष हों, हरेक ने एक दूसरे का समर्थन किया है, खण्डन या परिवर्तन नहीं किया. जो अनुभवी पुरुष हैं, वे उसको समझते हैं, और असलियत पर नज़र रखते हुए सब में सच्चाई देखते हैं, और किसी को अच्छा या बुरा नहीं कहते हैं.

भगवान व्यास के षट-सम्पत्ति साधन वही हैं जो भगवान पातञ्जलि ने यम नियम के रूप में ज़ाहिर किये हैं, और सूफ़ियों के साधन में भी यम-नियम वही हैं. बुद्ध भगवान के पंचशील साधन को ग्रहण करना, आदि भी ऊपर के साधनों का दूसरा रूप हैं. कोई नए साधन नहीं हैं. उन्होंने ईश्वर-प्राप्ति का एक ज़ाहिर रूप जो मौजूद है और जो आसानी से प्रयोग में आ सके, बताया है. उन्होंने आत्मा और ईश्वर का नाम न लेकर एक पूर्ण आनन्द

की अवस्था के रूप में बता दिया है जिसको हर आदमी आसानी से समझ सके. वास्तव में आत्म-तत्व और आनन्द में कोई भेद नहीं है.

दुनियाँ में आकर हर मनुष्य, जो ज़रा भी समझ रखता है, चाहता है कि जो चीज़ उसे अच्छी लगती है, यत्न करके हासिल करे और सुख भोगे. जो चीज़ दुःख या तकलीफ़ देती है और बुरी लगती है, उससे छुटकारा पाये. इस इच्छा को प्राप्त करने के लिए यत्न करना पड़ता है, इसी को कर्म कहते हैं. इससे अगर इच्छा पूरी हो जाती है तो सुख होता है और इच्छा पूरी नहीं होती तो दुःख मिलता है. एक इच्छा को पूरा करने में बहुत सी बाधाएँ पैदा होती हैं, उनको दूर करने के लिए और ज़्यादा यत्न करने पड़ते हैं, और ये यत्न या कर्म दुःख-रूप हैं.

इसी तरह एक इच्छा के बाद दूसरी फिर तीसरी इच्छाएँ निरन्तर पैदा होती जाती हैं और सुख प्राप्त करने के बदले मनुष्य दुःख के समुद्र में डूब जाता है. मन ही मन यह सोचता है कि कौन सा यत्न किया जाना चाहिए कि दुःख से छुटकारा मिले और सुख मिले. तब उसके अन्दर विचार पैदा होता है कि अगर मुझमें शक्ति अधिक हो जाये या धन मिल जावे, या मुझे और लोगों की सहायता मिल जावे, तो मैं अपने इरादे में सफल हो सकूँगा, और दुःख से निजात मिल जायेगी, और यह सोचकर इन चीज़ों के हासिल करने में लग जाता है. धन कमाता है, शारीरिक शक्ति बढ़ाता है, लोगों को अपने जैसे विचारों वाला बनाता है, ऊँची-ऊँची पदवी पाने का यत्न करता है. इन सबको पाने के लिए भी बड़े पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है.

परन्तु यही सब कुछ मिल जाने पर दुःख का कारण हो जाते हैं. इन सबके मिल जाने पर भी सुख नहीं मिलता है. शायरों की भाषा में इसी को 'आर्त' (या आढ़त) कहते हैं. जब धन-सम्पत्ति, मान-बढ़ाई, प्राप्त हो जाने पर भी सुख नहीं मिलता, और दुःख बढ़ जाता है, तब वह सोचता है कि इतने पर भी सुख नहीं मिला तो इसका कारण क्या है ? सोचते-सोचते वह इस नतीज़े पर पहुँचता है कि शायद जो कुछ मैंनें प्राप्त किया है वह वह दूसरों को दुःख या कष्ट देकर हासिल किया है, यदि मैं दूसरों को कष्ट नहीं देता तो मुझे भी दुःख नहीं होता. तब वह धर्म की तरफ़ लौटता है, सबको सुख पहुँचाता है, धर्म-विरुद्ध कोई काम नहीं करता.

लेकिन भूल यह हो जाती है कि अक्सर बजाय उन सब चीज़ों को धर्म की ओर ले जाने के, धर्म को इन चीज़ों के हासिल करने का ज़रिया (साधन) बना लेता है.

चाहिए तो यह था कि सब कर्म करता धर्म के लिए, औरों को सुख पहुँचाने के लिए, लेकिन अब वह इसके प्रतिकूल करने लगता है. धर्म पर इसलिए चलता है कि संसारी चीज़ें प्राप्त हों. चाहिए तो यह था कि धन-सम्पत्ति धर्म के लिए कमाये, रुपया कमाये उससे दूसरों को सुख पहुँचाये, धर्म के काम करे, किन्तु करने लगा उसके ख़िलाफ़ कि धन कमाकर ऐश्वर्य भोगे. ऐसे ही आदमियों को राजसी कहा गया है. रावण भी धर्म पर चला, उसने भी भगवान की पूजा की. उसने भी बड़ी शक्ति प्राप्त की, बड़े-बड़े काम किये, जिनसे उसको संसारी सुख मिले, सारी इच्छाएँ पूरी हुईं, लेकिन नतीज़ा इसके ख़िलाफ़ हुआ. उसकी ज़िन्दगी सुख की नहीं हुई. इसी तरह और भी बहुत से राजा-महाराजा हुए हैं.

यह ईश्वर का नियम है कि सब कुछ हासिल होने पर भी सुख नहीं मिलता. जिस चीज़ को हम प्यार करते हैं उसको हासिल करने के लिए हम धर्म का सहारा लेते हैं. चाहिए तो यह था कि धर्म को हासिल करने के लिए अपने प्रेम को उसमें लगा दें, करते हैं उल्टा. इससे दुःख से निज़ात (निवृति) के बदले दिन-दिन दुःख बढ़ता जाता है. अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए सम्पत्ति भी जमा की पर उससे भी काम नहीं बना. धर्म पर भी चला परन्तु उससे भी काम नहीं हुआ. दुःख बढ़ता ही गया. खूब सोच विचार करने पर उसकी समझ में आया है कि मैंनें ख्वाहिशें ख़त्म करने के लिए ख्वाहिश का सहारा लिया. इसी से सारे दुःख हैं. अब वह दूसरे रास्ते पर आता है, उसके भाव बदलते हैं, उसका ख्याल बदलता है. वह समझने लगता है कि दुःख की जड़ असल में ख्वाहिशात (इच्छाओं, कामनाओं) में ही है. जब तक कामनायें हैं दुःख रहेगा, जितनी ही ये बढ़ती जावेंगी, उतना ही दुःख बढ़ता जायेगा. इसलिए अब वह सही रास्ता पकड़ता है. बजाय ख्वाहिशात बढ़ाने के ख्वाहिशें घटाता है, और बजाय दुःख के सुख अनुभव करता है. जितनी ही वह ख्वाहिशात कम करता जाता है, सुख पाना बढ़ता जाता है.

अब उसे अनुभव होने लगता है कि यही सच्चा रास्ता है. यही देवताओं का रास्ता है. वह अपनी बुद्धि का शोधन करता है. बुद्धि से सांसारिक विचारों को हटाता है, और सच्चे सुख की भावना पैदा करता है, सुख का विचार करता है. मन का शोधन करता है. दुनियाँ के ख़्यालात धीरे-धीरे मिटाने लगता है और इसकी जगह सच्चे ख़्याल और सच्चाई का ख़्याल करता है. दृष्टि को शुद्ध करता है. बजाय दुनियाँ की चीज़ों में फँसाने के उसको सच्चा सुख पाने की तलाश में लगाता है. अपनी वाणी को शुद्ध करता है. बजाय दुनियाँ की बातचीत करने के सत्य की बातें करता है. अपनी श्रवण शक्ति को शुद्ध करता है. बजाय इधर-उधर की बातें और दुनियाँ की बुराई सुनने के वह सच्चाई की और दूसरों की भलाई की बातें सुनता है. बुरे कर्म जिनसे दूसरों को दुःख पहुँचे, छोड़ता है, और अपनी इन्द्रियों से शुभ कर्म करता है. मन से शुद्ध विचार करता है. अलावा ज्ञान चक्षु के उसके कर्म, मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाते हैं. यही धर्म पर चलना है. इसी को विश्व-प्रेम कहते हैं - यही मोक्ष या निर्वाण का सच्चा रास्ता है.

यह हालत होने पर सुख तो अवश्य बढ़ जाता है किन्तु दुःख फिर भी कुछ न कुछ बाकी रह जाता है. तब और गहरा सोचता है, और इस नतीज़े पर पहुँचता है कि हमें पूर्ण सुख प्राप्त करने के लिए 'सम्पूर्ण' का ध्यान करना चाहिए, 'पूर्ण रूप' होने के लिए. जिसमें 'पूर्ण आनन्द' है वही ईश्वर है. जिसमें पूर्ण ज्ञान है और सब का 'पूर्ण ज्ञान ' है, सबमें समाया हुआ है और सब उसमें समाये हुए हैं, लेकिन यह सब होते हुए भी वह सबसे न्यारा भी है, पूर्ण रूप से कर्त्ता होते हुए भी वह अकर्त्ता है, सकल वस्तुओं को अपने अन्दर रखता हुए भी सबसे अलग है, सबसे न्यारा है - तब वह उसका ध्यान करता है. सब कुछ उसके अर्पण कर देता है, सब कुछ उसके ध्यान में लय कर देता है. जितना वह उसमें लय होता जाता है, अपना रूप भूलता जाता है, उसके रूप में परिवर्तित होता जाता है, तब वह पूर्ण रूप से उसमें लय होने पर ईश्वर रूप हो जाता है. यही मानव योनि का आदर्श है. जिसने प्राप्त कर लिया उसका जन्म सफल हो गया, जिस काम या मक़सद के लिए वह इस संसार में आया था. वह अब सदा के लिए इस प्रपंच से छूट गया.

अभ्यासी ग़लती से समझने लगते हैं कि इस गति को हासिल करने के लिए संसार का त्याग करना होगा. यह उनका भ्रम है. दुनियाँ भी रहेगी, कर्म भी रहेंगे, यही माहौल (वातावरण) भी रहेगा, सिर्फ़ भाव को बदलना है - हासिल करना है. थोड़े से सुख को छोड़कर हमेशा-हमेशा का सुख हासिल होता जाता है. थोड़ी सी ज़िन्दगी को छोड़कर हमेशा-२ की ज़िन्दगी मिलती है. थोड़ी सी चीज़ें छोड़ने से दुनियाँ की सबसे बड़ी दौलत मिल जाती है. संसार को मन से छोड़ देने से संसार का स्वामी बन जाता है.

साक्षी बनकर देखना सीखो

गुरु का कोई काम दयालुता से ख़ाली नहीं होता. मन या अन्तःकरण का घाट माया का घाट है. यहाँ पर बैठे हुए अभ्यासी को आध्यात्म की बात लाख समझाओ, असर नहीं होता और जब घाट बदलकर छठे चक्र पर बैठक बनाता है तब हर बात समझ में आती है. वही कार्यवाही परमार्थ में दाख़िल है जिससे इस (काल) देश को छोड़कर निर्मल चेतन (दयाल) देश में जाता है. जिस तरह झाड़ू लगाना आवश्यक है, वरना कूड़ा इकठ्ठा हो जायेगा, उसी तरह देश-सुधार, देश-उन्नति, परोपकार वग़ैरा, जितने भी काम हैं सबके लिए, दिल ही में एतदाल (सन्तुलन) क़ायम रखना ज़रूरी है. मगर उसमें भी परमार्थ यानी निजी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा मक़सद हासिल नहीं होता.

सन्तों की परमार्थ की कार्यवाही और अभ्यास किये जाते हैं तीसरे तिल से, उससे ऊँचे नहीं, क्योंकि तीसरे तिल से नीचे पिण्ड में मन और माया प्रधान है और सुरत दबी हुई है. जहाँ से सुरत ग़ालिब होने (मन पर क़ाबू पाने) लगती है वहाँ से सन्तों का अभ्यास शुरू होता है और वह नेत्र मार्ग से है. सन्त दोनों नेत्रों में से दोनों धारों को खैंचने और उलटाने का अभ्यास कराते हैं जिसेउलट-धार कहा जाता है.

सुरत के जगने और तीसरे तिल पर उसका समूह बनते जाने से उसमें साक्षी होकर देखने और कार्यवाही करने की क़ाबिलियत (योग्यता) आयेगी और बिना साक्षी हुए न तो विकार घट सकते हैं और न ही सच्ची शरण ही ली जा सकती है. जैसे साक्षी होकर देखो की फ़लां (अमुक) काम और कार्यवाही जो मुझसे बन पड़ी है वह ग़लत (विकारयुक्त) है, वह मन करा रहा है. तभी तो उससे नफ़रत पैदा होगी और उसको छोड़ने के इरादे और यत्न करेगा. अगर साक्षी होकर नहीं देखेगा तो इतना होश ही कैसे आयेगा ? इसलिए साक्षी बन कर ख़ुदको देखना सीखो.

गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करें.

राम सन्देश : अक्टूबर-दिसम्बर, 2013.

सच्ची भेंट

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

भेंट तीन प्रकार की होती है - रुपये-पैसे या धन-दौलत की भेंट, मन की भेंट और आत्मा की भेंट.

धन की भेंट - रुपये पैसे की भेंट सबसे नीची समझी जाती है. गुरु को रुपया-पैसा और धन दौलत इसलिए भेंट नहीं की जाती की वह इनका भूँखा है. आपके धन की उसको ज़रूरत नहीं है. उसकी ज़रूरतें ईश्वर पूरी करता है. भेंट वह इसलिए लेता है कि उससे आपका उपकार हो और आपका पैसा जहाँ लगे उससे औरों का भला हो. दुनियाँ के जहाँ और पदार्थ मनुष्य के लिए बन्धन हैं वहाँ रुपया-पैसा भी एक बन्धन है और बन्धन टूटने ही चाहिए. यह दुनियाँ में फँसाने वाले हैं. इसे किसी शुभ कार्य में लगाना ईश्वर की भेंट है. इसे इस भावना से गुरु के अर्पण किया जाता है. इसके साथ-साथ बन्धन ढ़ीला होता है. भेंट देने वाला तो देकर ढ़ीला हो जाता है मगर लेने वाले पर उसका बोझ पड़ता है. वह या तो उसका मुआवज़ा दे (दुआ से या और किसी तरह से) या अपने शुभ कर्मों में से हिस्सा बाटे. अगर ऐसा नहीं करेगा तो उसकी गिरावट होगी. पिछले ज़माने में ब्राह्मण कितने ऊँचे थे. उनकी गिरावट का यही सबब (कारण) है कि उन्होंने भेंट का बदला नहीं दिया.

भेंट देने से गुरु चरणों में श्रद्धा बढ़ती है, मन शुद्ध होता है और ईश्वर प्रेम बढ़ता है. मन का शुद्ध होना ज़रूरी है, क्योंकि जब तक मन साफ़ नहीं होगा आत्मा के ऊपर से आवरण दूर नहीं होंगे और ईश्वर का प्रेम नहीं मिलेगा. मन का शुद्ध होना यही है कि ईश्वर का प्रेम जागे. ईश्वर का प्रेम आत्मा में क़ुदरती है, लेकिन मन की वासनायें, इन्द्रिय भोग की ख़्वाहिश (इच्छा), बुद्धि की चतुराई, अपनी ख़ुदी (अहंकार) यही चारों परदे उसको ढ़के रहते हैं. बजाय ईश्वर प्रेम के दुनियावी चीज़ों से प्रेम हो जाता है. जब अभ्यास, वैराग और सत्संग से

यह ख़्वाहिशात शान्त हो जाती हैं तो यही मन के परदों का हटना है और इनके हटने पर जो ईश्वरीय प्रेम क़ुदरती छिपा हुआ था, आहिस्ता-आहिस्ता उभरने लगता है.

मन की भेंट - रुपये के मुक़ाबले में मन की भेंट ज़्यादा अच्छी है. गुरु जो कहे उस पर यक़ीन (विश्वास) करना, अपने ख़्याल को उसके साथ शामिल कर देना और उसके कहे हुए को उसी शक्ल में क़बूल कर लेना, मन की भेंट है. इसके दो रूप हैं - एक, मज़बूरी से क़बूल करना और दूसरा, ख़ुशी से क़बूल करना. ख़ुशी से क़बूल करना यह है कि फलाँ (अमुक) काम गुरु का है, उसको लगन से, चाव से करना चाहिए. इसका नतीज़ा यह होता है कि मन का रूप बदल जाता है. उसके ख़्याल को ख़ुशी से क़बूल करना, यही मन को तोड़ देना है. जिसने मन को तोड़ दिया वही कामयाब (सफ़ल) है.

आप में जन्म-जन्मान्तर से दुनियाँ की ख़्वाहिशात थीं. उन्हें पूरा करने के लिए मालिक ने आपको दुनियाँ में भेजा. आपकी आत्मा ने मनुष्य शरीर धारण किया, उसके ऊपर ख़्वाहिशात का परदा था. ईश्वर की शक्ति से ही काल ने इस दुनियाँ को रचा. ईश्वर ने जीवों को यहाँ भेजा ताकि वे होश में आ जावें. इस दुनियाँ को भोग कर, उसका रस लेकर, ख़्वाहिशात को भोग कर उपराम हो जायें और अपने धाम को वापिस चले जायें, जो उसका असली ध्येय है. किसी न किसी तरकीब से उनमें जागृति आ जाये. यह दुनियाँ उसी का पसारा है.

लेकिन जो यहाँ आकर रस लेते-लेते फँस गए, ख़्वाहिशात दुनियाँ के रस और आनन्द की बढ़ने लगीं, आत्मा पर संस्कारों के गिलाफ़ बजाय कम होने के और चढ़ते गए और जीव जो पहले से बन्धन में जकड़े हुए थे और ज़्यादा बन्धन में जकड़े जाने लगे. दुनियाँ की यह हालत देखकर जीवों के उद्धार के लिए सन्त प्रकट हुए. उन्होंने दुनियाँ को उजाड़ा नहीं, क़ायम रखा क्योंकि दुनियाँ को उजाड़ कर तो असल मक़सद (उद्देश्य) पूरा नहीं हो सकता था. सन्त जीवों को दुनियाँ की ख़्वाहिशों से उपराम कराकर और दुनियाँ से वैराग तथा ईश्वर से अनुराग कराकर अपने धाम को वापस ले जाते हैं.

अवतारों और सन्तों में भेद है. अवतार जितने भी आये सब काल देश से आये. काल कभी यह नहीं चाहता कि दुनियाँ उजड़ जाये. लिहाज़ा (अतः) जब-जब दुनियाँ में बुराई और अधर्म बढ़ा, अवतारों ने आकर सन्तुलन ( ) क़ायम किया। बुराइयों को रोका और भलाई को बढ़ावा दिया ताकि दुनियाँ क़ायम रहे. जैसे कोई ज़मीदार है वह अपनी प्रजा को उजाड़ता नहीं, क़ायम रखता है. जब मैं डाक्टरी करता था, उस समय की एक बात मुझे यहाँ याद आ गयी. एक ज़मीदार थे, उनके गाँव में हैज़ा फैला. उन्होंने मुझसे कहा कि आप मेरे गाँव के मरीज़ों का इलाज कीजिये, जिनके पास पैसा नहीं होगा,उनका खर्च मैं बर्दाश्त करूँगा, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि मेरी रियाया मुझसे खुश रहे. इस तरह रचना को क़ायम रखने के लिए अवतार आते हैं. सन्त तलवार से काम नहीं लेते, प्रेम से काम लेते हैं, अधर्मी लोगों का नाश नहीं करते बल्कि अधर्म का नाश करके उन्हें परमार्थ-पथ पर चलना सिखाते हैं.

रचना होने से पहले आत्मायें अचेत अवस्था में थीं. जो प्रेम के आकर्षण में खिंच गयी वह दयाल देश बन गया. वे आत्मायें जिन पर वासनाओं का (मन का) पर्दा था, वह अचेत अवस्था में पडी रहीं और प्रेम के आकर्षण में नहीं आयीं. अगर वे वहीं रहती तो उसी अचेत अवस्था में रहतीं. उस दयाल शक्ति की कृपा से उनका उतार इस काल देश में हुआ जहाँ पर उनके मन की ख़्वाहिशात पूरी हो सकें. यहाँ आकर वे अचेत से चेत अवस्था में आ गयीं और मन की ख़्वाहिशात में फँस गयीं. अगरचे ज़ाहिरी तौर पर वह मन की वासनाओं में फँस गयीं और अपने असली ध्येय को भूल गयीं, लेकिन अन्तर के अन्तर में उनका ताल्लुक़ उस दयाल शक्ति से बराबर बना रहा और दुनियाँ के सब सुख भोगते हुए भी उनको यहाँ पर सच्चा सुख नहीं मिला.

ईश्वर के तीन रूप माने गए हैं. ब्रह्मा पैदा करने वाले, विष्णु पालन करने वाले और शिव संहार करने वाले. ये तीनों देवता श्रष्टि को क़ायम रखते हैं और जब-जब ख़राबी होती है तो विष्णु का अवतार आकर उस खराबी को दूर करता है. लेकिन सन्त मत में ईश्वर का चौथा रूप भी है जो सन्त या गुरु का है जो दुनियाँ से छुड़ाने के लिए आते हैं. जब जीव इस

आवागमन से तंग आ जाता है और छुटकारा पाने का ख़्वाहिशमन्द (इच्छुक) होता है तो ईश्वर का चौथा रूप (सन्त रूप) इन्सानी शक़्ल (मनुष्य रूप) इख़्तियार (धारण) करता है और जो लोग (अधिकारी) जीवन मुक्त होना चाहते हैं उनको अपनी सौहबत में सत-संगति से फ़ैज़याब (लाभान्वित) कराकर अपने धाम यानी दयाल देश को वापिस ले जाते हैं जहाँ जाकर वे फिर वापिस नहीं आते. इस तरह जीव हमेशा के लिए आवागमन से छूट जाता है. बाक़ी जो जीव उसका सौहबत में आते हैं, उन पर भी उसका असर पड़ता है और वे भी आगे चलकर अधिकारी जीवों की श्रेणी में आ जाते हैं.

यह दुनियाँ काल की रचना है. यहाँ पर जो क़र्ज़ लिया है वह चुकाना होगा, यानी जो कर्म किये हैं, अच्छे-बुरे, उनका एवज़ (बदला) मिलेगा. मन दुनियाँ में लगा है, आत्मा अपने देश को जाना चाहती है. मन का रुख़ (मुँह) नीचे की तरफ़ है और आत्मा का ऊपर की तरफ़. दोनों में जद्दो जहद (संघर्ष) होती है. जब मौत आती है तो जान हाथ-पैरों से खिंच कर ऊपर को सिमटती है. जब इन्द्री और गुदा से निकल जाती है तो पेशाब पाखाना छूट जाता है. हृदय से निकलने पर दिल की धड़कन बन्द हो जाती है, नब्ज़ छूट जाती है. गला घड़घड़ाने लगता है. वहाँ से निकलने पर आँखों की ज्योति जाती रहती है. उसके बाद भौंहों के बीच के हिस्से से ऊपर चढ़ती है. वहाँ एक टेढ़ी सी पहली नली है जिसे बकनाल कहते हैं. जब इसमें होकर गुज़रती है तो बड़ी तक़लीफ़ होती है. आत्मा ऊपर को खिंचती है और मन की गाँठ जो उसके साथ बंधी होती है वह उसमें से निकल नहीं पाती, टुकड़े-टुकड़े हो जाती है. आदमी हाथ-पाँव छटपटाता है, कुछ बोल नहीं सकता.

इस मुक़ाम पर बहुत अंधकार होता है. अब जो दुनियाँ में फँसे हैं उनको लेने के लिए यमदूत आते हैं और दूसरों के लिए सन्त. सन्त जब जाते हैं तो बातचीत करते जाते हैं, उन्हें तक़लीफ़ नहीं होती. लगता है जैसे सो रहे हों. जिस रास्ते मौत होती है उस रास्ते सन्त रोज़ गुज़रते हैं, रोज़ मरते-जीते हैं. अभ्यासियों ने अनुभव किया होगा कि ध्यान में जब सुरत ऊपर को चढ़ती है तो जिस्म (शरीर) का निचला हिस्सा सुन्न हो जाता है. मतलब यह है कि

आत्मा वहाँ से खिंचकर ऊपर की ओर चढ़ जाती है. दुनियाँ बनती है मन की शान्ति से, परमार्थ मिलता है - काल का कर्ज़ा देने से.

हम यहाँ पर अपनी ख़्वाहिशात की पूर्ति के लिए और उनसे उपराम होकर अपने धाम को वापस जाने के लिए आये हैं. यानी हमारे दो आदर्श हैं. पहला यह है कि अपनी ख़्वाहिशात को ज्ञान से ख़त्म करो या भोगकर ख़त्म करो. यही काल का कर्ज़ा अदा करना है. उनसे वैराग होने पर ईश्वर-प्रेम पैदा होगा और उनसे अनुराग पैदा होगा. यही ईश्वर प्राप्ति है. दुनियाँ को हासिल करो और फिर उसको छोड़ो और ईश्वर-प्रेम हासिल करो और उसमें अपने आपको लय कर दो. दुनियाँ को हासिल करना बहुत मुशिकल काम है. और यही दीन और दुनियाँ का बनना है. जो दुनियाँ हासिल नहीं कर सकता है वह दीन को क्या हासिल कर सकता है, यानी जिसने जिस चीज़ को हासिल नहीं किया वह छोड़ेगा क्या ?

दुनियाँ के जंजाल, मन के विचार, आदि सब शैतान का पसारा है. जब तक शैतान से नहीं लड़ोगे, क़ामयाब (सफल) नहीं होंगे. क़ामयाब होने पर सच्चा सुख, हमेशा क़ायम रहने वाला सुख, ऐसा सुख जिसके बाद किसी और सुख की तुम्हें इच्छा नहीं होगी, हासिल हो जायेगा. यही लक्ष्य है.

लेकिन यह एक जन्म का काम नहीं है. क़ुब्बते-इरादी (इच्छा शक्ति) मज़बूत करो. अगर औरों ने हासिल किया है तो हम क्यों नहीं हासिल कर सकते ? दुनियाँ की चीज़ों को देखो, भोगो और छोड़ो, उनसे उपराम हो जाओ. पहले वैराग फिर अनुराग. जब परमात्मा से सच्चा अनुराग होता है और उसका सच्चा प्रेम हासिल हो जाता है, यही मोक्ष है. सच्चा प्रेमी मोक्ष नहीं चाहता.

इसका साधन यह है कि तुम परमात्मा के अंश हो, और उसका प्रेम तुम्हारे अन्दर है, लेकिन तुमने उसे बाहर की चीज़ों में फैला रखा है. उसे बटोरो. मन की ख़्वाहिशात को पकड़ो, फिर बारीक-बारीक ख़्वाहिशों को. इस काम में हरदम परमात्मा की मदद चाहो, उसकी कृपा से तक़लीफ़ें आती हैं. रुपया, पैसा, दौलत माँगते हो तो और फँसते हो. तक़लीफ़ों

की शक्ल में जो उसकी कृपा होती है वह बन्धन छुड़ाने के लिए होती है. इसलिए फ़क़ीरों को तक़लीफ़ें ज़्यादा होती हैं. वह तक़लीफ़ें चाहता है ताकि संस्कार जल्दी कटें. यह कर्म का सिद्धान्त है.

जब तक मन मोटा रहेगा, दुनियाँ में फँसायेगा. इसे पतला करो. गिरना पाप नहीं है, गिर कर पड़े रहना पाप है. गिरो, फिर उठो

और कोशिश करो. बुराइयाँ अन्दर से निकलती हैं. दिल एक समुद्र के मानिन्द (समान) है जिसमें संस्कार भरे पड़े हैं. जब तक यह साफ़ नहीं हो जाता असली हीरा (यानी ईश्वरीय प्रेम) जो हमेशा का आनन्द है, वह नहीं मिलता. असली चीज़ परमात्मा का प्रेम है. सब कोशिशें उसी को हासिल करने के लिए होती हैं. वह तब मिलेगा जब सब संस्कार कट जायेंगे. यह मन की भेंट है. इसे जब तक गुरु को नहीं दोगे आसानी से रास्ता साफ़ नहीं होगा. इसी को समर्पण या ..... कहते हैं. गुरु के स्थूल शरीर के अन्दर ईश्वर की शक्ति काम करती है. वह तुम्हारे सामने जिस्म से मौजूद हैं. जब तुम मौजूदा (प्रत्यक्ष) चीज़ को नहीं दे सकते तो जो ग़ायबाना (अप्रत्यक्ष) है उसे कैसे दोगे ?

आत्मा की भेंट - रुपये-पैसे की भेंट बहुत लोग कर लेते हैं. मन की भेंट उससे कम लोग कर पाते हैं. लेकिन आत्मा की भेंट

कोई बिरला ही कर पाता है. जिसने सब समर्पण कर दिया, उसने सब कुछ पा लिया. ' तू हमारा हो लिया, हम तेरे हो गए '. ' यार हम, हम यार.' फ़ारसी में -

मन तो शुदम, तो मन शुदी,

मन तन शुदम, तो जां शुदी,

ताकस न गोयद बाद अजीं,

मन दीगरम तू दीगरी ।

अर्थ - मैं तू हुआ, तू मैं हुआ, मैं तन हुआ ,तू जां हुआ. ऐसी एकता हो गयी कि इसके बाद कोई नहीं कह सकता कि मैं और हूँ और तू और है.

यह आत्मा की भेंट है. यह ज़बानी नहीं होती. जिस रोज़ यह दे दी उसी रोज़ मुराद (मनोकामना) पूर्ण हो गयी. मोक्ष हो गयी. यह बात भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता के आख़ीर में बताई है. सारी गीता का यही सार है, यही उपसंहार है.

नफ़रत के ख़्याल से किसी चीज़ को छोड़ देना 'भेंट' नहीं कहलाती. जैसे कोई बेंगन, काशीफल वग़ैरा नापसन्द करता हो और उन्हें छोड़कर कहे कि यह मैंनें देवता को भेंट कर दी. भेंट सबसे प्यारी चीज़ की दी जाती है, जिससे मोह हो, लगाव हो और जो दुनियाँ में फँसाने वाली हो.

जब सेठ धर्मदास कबीर साहब की ख़िदमत (सेवा) में आये और गुरु-दीक्षा चाही तो कबीर साहब ने कहा कि पहले अपना सब रुपया ख़ैरात कर दो, तब आना. धर्मदास जी बहुत बड़े सेठ थे, शायद उनके पास सत्तर करोड़ रुपये की दौलत थी. इससे उनको मोह था. एकदम नहीं छोड़ सकते थे. उन्होंने निवेदन किया कि, "हज़ूर, पहले आधा रुपया ख़ैरात करने का हुक्म हो." कबीर साहब ने इसे नामन्जूर कर दिया.

कुछ दिनों बाद फिर ख़िदमत में आये. रईसी ठाटबाट कुछ नहीं थे. मुँह पर दीनता थी, और जिस्म पर एक कम्बल. फिर प्रार्थना की कि शरण में ले लिया जाय. पूछा गया कि क्या सब दौलत ख़ैरात कर दी ? निवेदन किया कि, " सब दौलत ख़ैरात कर दी, अब जो कम्बल जिस्म पर है वही अपना कहलाने लायक़ है." कबीर साहब खुश हुए और उन्हें शरण दी.

पैग़म्बर इब्राहिम साहब के ऊपर सोते में वही नाज़िल (आकाशवाणी) हुई कि, 'तू, मेरे लिए अपने लड़के की क़ुर्बानी कर." सोचते रहे. एक ही लड़का था और उनको उससे बहुत प्यार था. उसका मोह ही राहे-रब (ईश्वर के मार्ग) में एक रुकाबट थी. आख़िर कलेजे को मज़बूत करके लड़के को जंगल में ले गए. जैसे ही उस पर तलवार चलाने को हुए उनको

साक्षात्कार हो गया. कहने का मतलब यह है कि जो चीज़ सबसे प्यारी हो उसे ईश्वर की राह में क़ुर्बान कर दो.

जब संध्या में बैठो तो देखो कि किस चीज़ का ख़्याल आता है. जिन चीज़ों के ख़्याल आते हैं, आत्मा का प्रकाश पाकर वे स्थूल रूप धारण कर लेते हैं. संध्या में ज़िस्म का ग़िलाफ़ (आवरण) उतर जाता है, मन काम करता है. अगर मन का परदा टूट जाये तो ख़्याल में इतनी शक्ति आ जाती है कि आदमी ब्रह्माण्ड की रचना कर सकता है. आत्मा व परमात्मा के बीच चीज़ मन है. यह चीज़ हट जाये तो आत्मा वही असल है जो परमात्मा है. गंगा बह रही है और वहीं पर गढ्ढा है. दोनों का पानी अलग-अलग है. एक पवित्र है दूसरा अपवित्र. दोनों के बीच की मेढ़ तोड़ दो. दोनों एक हो गए. सब गंगाजल ही गंगाजल है.

जो ख्वाबात (स्वप्न) आयें उन पर ध्यान रखो. ख़्वाब मन का रूप दिखाता है. तुम ख़्वाब में शेर देखते हो. ख़ूँख्वारी की निशानी है. साँप देखते हो, कामशक्ति मौजूद है. सन्तों के दर्शन होते हैं तो जानो कि ख़्याल नेकी की तरफ जा रहे हैं. जिन ख़्यालात का आपने अपने mid brain (मध्य मस्तिष्क) के grey matter में impression ले रखा है, सोते में उसका अक्स आता है, वही ख़्वाब है.

जो चीज़ तुम्हें फँसाये हुए हैं उन्हें ख़्याली तौर पर क़ुर्बान करो. ख़्याली तौर पर उन्हें चरणों में रख दो - "हे मालिक, यह तेरी नज़र है, हमारा मोह का पर्दा दूर कर, हमें सच्ची रौशनी दिखा." जब-जब हम फँसे, हमने गुरुदेव से प्रार्थना की. उन्होंने हमेशा आगे बढ़ने की ताक़ीद (आदेश) की. फतेहगढ़ में जब मैं पढ़ता था और जब-जब मन बुराई की तरफ़ खिंचता था, मैं लालाजी (गुरुदेव) से निवेदन कर दिया करता था. अगर ज़बान से कहने में हिचकिचाहट होती थी तो लिख कर दे दिया करता था. एक बार की बात है कि एक आदत मुझसे छूटती नहीं थी. जब भी उनके सामने जाता, बुरे ख़्यालात उभर आते और बड़ी परेशानी होती थी. मैंनें जाना बन्द कर दिया. उसके बाद उस रास्ते से भी जाना बन्द कर दिया जिस रास्ते पर लालाजी का मकान था.

छह महीने गुज़र गए. मुझे बुलावा आया. डाक्टर चतुर्भुज सहाय जी बुलाने आये. मैं उनके साथ गया लेकिन दरवाज़े से अन्दर जाने की हिम्मत नहीं हुई, बाहर ही खड़ा रहा. डाक्टर साहब अकेले अन्दर गए. गुरुदेव ने उनसे पूछा - "श्रीकृष्ण नहीं आया" ? उन्होंने कहा, "बाहर खड़े हैं". उन्होंने हुक्म दिया - " इस तरह नहीं आयेगा, उसे आगे करके लाओ. " जैसे ही मैं घुसा लालाजी मुझे देखकर रोने लगे. फ़रमाया - " हमने क्या क़सूर किया था जो तुमने आना बन्द कर दिया." उस दिन के बाद मेरी वह आदत हमेशा के लिए छूट गयी. मेरा तो तजुर्बा है कि जो आदत मैंनें छिपाई वह रुक गयी और जो आगे रख दी वह जाती रही. यही समर्पण है, यही सच्ची भेंट है.

गुरुदेव सबका कल्याण करें.

राम संदेश - फरवरी 1962 के प्रवचन के अंश .

सच्चे आत्मदर्शी गुरु का सहारा लें

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ .श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

आत्मा उस आदि शक्ति से निकलकर जिसकी वह किरण है, ब्रम्हाण्ड में उतरी किन्तु यहाँ पर उसके ऊपर अंतःकरण (मन + बुद्धि +चित्त + अहंकार) यानी सूक्ष्म माया का पर्दा चढ़ा. जब वहाँ पर भी अपने संस्कारों की वजह से अचेत रही, तो इस पिण्ड देश में उतारी गई जो कि मलीन माया का रूपक है. यानी जहाँ इंद्रिय भोग का रस मिलता है ताकि वह अचेत आत्मा चेत अवस्था में आ जावे. यहाँ आकर वह अपने पिछले संस्कारों के बस चेत अवस्था में तो आगई, लेकिन इंद्रिय भोगों में फस गई, यानी अपने असली देश को भूल कर इस पिण्ड देश को अपना देश समझ बैठी और यहाँ के भोग विलास को अपना ध्येय समझ बैठी. जब तक ऊपर के परदे न हटें उसको अपने असली देश का ध्यान नहीं आ सकता और न अपने असल को ही समझ सकती है .

बुद्धि -- जिसकी वजह से यह आत्मा इस तमाम दुनियाँ की सारी योनियों में श्रेष्ठ मानी जाती है - और जो उसका असली साथी है --इस दुनियाँ की मलीन माया में फँस गयी - इसी को अपना लिया और जो भी वह सोचती है अपने स्वार्थ के लिए सोचती है. अतः बजाय छुटकारा पाने के वह दुनियाँ में फँसती जाती है और दुःख पर दुःख उठाती है. सुःख भी मिलता है परन्तु वह तो थोड़ी देर को मिलता है. अब अगर वह इस तरह फँसती ही रहे या फँसी पड़ी रहे , तो उसे (आत्मा को) कभी भी आपने वतन (निज देश) की याद न आवे और वह कभी भी छुटकारा न पावे .

परमात्मा के प्रेम से यह दुनियाँ पैदा हुई है. परमात्मा चाहता है कि जैसे मैं सदा- सदा आनन्दित या खुश हूँ, मेरे जैसे अनेक हो जावें. जब जीव दुनियाँ में इस तरह फँस जाता है,तो उसकी (परमात्मा की) दया और मोहब्बत की लहर में जोश आता है और तब संत, ऋषि,

औलिया, पैग़म्बर, अवतार वगैरह का जन्म होता है जो उस जीवात्मा को आनन्द की तरफ़ ले जाना चाहते हैं और उसके हित की बात बताते हैं.

जब तक जीव दुनियाँ की झूठी मुहब्बत में फँसा है, जो थोड़ी देर का सुःख देकर उमर भर को रुलातीं है और आवागमन में फँसाती है नहीं छूटता, तब तक उसको ज्ञान नहीं होता और अपने हित की बात नहीं सुनता. जीव का यह मोह - दुनियाँ की तकलीफों, दुनियाँ की बेबफ़ाई, यहाँ की नाशवान हालत को देखकर - बार -बार तकलीफें उठाकर कम होने लगता है. यही काल का क़र्ज़ा देना होता है. जब उसे अपने सँस्कार में तकलीफें उठा - उठा कर तजुर्बा हो जाता है कि दुनियाँ दुःखों का घर है और यहाँ पर असली सुःख मिलना मुश्किल ही नहीं बल्कि नामुमकिन हो जाता है, तभी वह जीव संतों की सोहबत (संग) क़बूल करता है. यह पहला सबक़ है .

संत-मत केवल एक ईश्वर में विश्वास करता है. सूक्ष्म रूप में वह 'शब्द ' है, प्रकाश है, प्रेम है, आनन्द है जिनकी वृत्ति बाहर की ओर है. वे उसे अन्तर्मुखी बनायें. सतगुरु से उसकी युक्ति जानकर आन्तरिक ध्यान करने का अभ्यास करें. ईश्वर तो सभी जगह मौजूद है. इधर- उधर भटक कर समय नष्ट न करे . उसे अपने अंतःकरण में देखे . इस काम में ऐसे महापुरुष का सहारा लें जिसने आत्मसाक्षात्कार कर लिया है. तभी फ़ायदा होगा. बिना गुरु के फ़ायदा नहीं होगा. गुरु की मदद से हम अपनी attention (ध्यान) को अंतःकरण पर केन्द्रित कर सकेंगे. जलता हुआ दीपक ही बुझे हुए दीपक को जला सकता है. इसलिए संतों ने बार -बार कहा है कि बिना आत्मदर्शी (गुरु) का सहारा लिए साधारण जिज्ञासु अपने अंतःकरण के पर्दों को साफ नहीं कर सकता. जब तक परदे साफ न हों, आवरण न हटें, तब तक प्रीतम के दर्शन कैसे हो सकते हैं ? जब तक आप दुनियाँ से बेज़ार (दुखी) न होंगें तब तक ईश्वर प्रेम (जो आप में प्राकृतिक रूप से मौजूद है, लेकिन आवरणों से दबा हुआ है) जागेगा नहीं. यदि कोई वास्तव में पूर्ण संत है तो उसकी सोहबत से आवरण साफ होने लगते हैं और ईश्वर प्रेम जागने लगता है. उसके पास बैठने से , बिना कुछ बोले, बिना कुछ पूंछे , आनन्द का, शीतलता का आभास होने लगता है, परन्तु यह स्थायी नहीं रहता. यदि आप

लगातार उनके पास जाते रहें, उनका सत्संग करते रहें, तो क्रमशः दुनियाँ से बेज़ार , उपरामता होने लगती हैं, हालाँकि पहले तो यह भी अस्थाई होती है परन्तु सत्संग और अभ्यास से इनमें मज़बूती आने लगती है.

हमारी आत्मा ईश्वर का अंश है, ईश्वर की बेटी है, और मन शैतान की औलाद है, शैतान का बेटा है. यदि हम गुरु के आश्रित नही रहेंगे तो शैतान हम पर हावी हो जायेगा और हमारी आत्मा का हनन कर लेग . सतगुरु सर्व विकार रहित होता है. वह काम -क्रोधादिक विकारों के भंवर जाल से ऊपर निकल चुका होता है, उसका रास्ता जाना हुआ होता है. अतः उसकी आज्ञानुसार चलना और उसके अनुकूल अपना आचरण बनाना चाहिए. यदि कोई ऐसा करेगा तो निःसंदेह वह काम -क्रोधादिक विकारों के भँवर जाल से निकलने में सफल हो सकेगा और शैतान उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा. इसलिए सच्चे गुरु की खोज करो.

जब आत्मा दयाल देश से उतरती हुई इस पिण्ड देश (मनुष्य शरीर) में आई तो जिस -जिस चक्र पर ठहरी वहाँ पर एक शब्द हुआ और एक एक प्रकाश . इस तरह अठारह चक्र बने. अब स्वाभाविक तरीक़ा यह है कि यह आत्मा जिस रास्ते से आयी उसी रास्ते वापस ऊपर को जावे . शब्द को सुनना या प्रकाश को देखना और अपनी सुरत (attention) को चक्रों पर ठहरा -ठहरा कर ऊपर चढ़ाते जाना ही संतों का सुरत -शब्द -योग है. तीन तरह से बहुधा हम दुनियाँ में फसते हैं - देखकर, सुनकर और सूंघक . अतः इनसे सम्बंधित इंद्रियों (आँख , कान, नाक) पर ताला लगा दो और इनका मुँह अन्दर की ओर फेर दो. अन्तर का शब्द सुनो और अन्तर का प्रकाश देखो. धीरे - धीरे अभ्यास करके प्रकाश और शब्द पर अपनी attention (तवज्जह, सुरत) को जमाओ लेकिन उनमें फँसो मत क्योंकि ये भी रास्तें की चीजें हैं. अपनी चढ़ाई जारी रखो जब तक कि धुर -धाम में न पहुँच जाओ . यदि सचमुच तुमने किसी सच्चे गुरु का सहारा पकड़ लिया है तो वह तुम्हें धुर -धाम में पहुँचा कर छोड़ेगा. ऐसे महापुरुष का तो केवल ध्यान करने से ही उसके सब गुण स्वतः ही तुममें उतरते चले आयेंगे और एक दिन तुम वही बन जाओगे जो वह स्वयँ है.

अगर कोई शिष्य सतगुरु में पूर्ण निष्ठा रखने वाला, पूर्ण आदर करने वाला है जो सतगुरु को हर क्षण हाज़िर -नाज़िर जाने और एक क्षण के लिए भी ग़ाफ़िल न हो, तो उसके लिए कुछ भी करने -धरने की ज़रूरत नहीं है. वह एक क्षण के गुरु प्रेम में ही सब कुछ पा लेता है .' शब्द ' क्या है ? शब्द वह आवाज़ है जो धुर धाम से आई है. शब्द से ही दुनियाँ पैदा हुई और शब्द में ही लय हो जाती है. जो मुँह से उच्चारण हो वह शब्द नहीं नाम है. संतों ने 'शब्द ' उसी को कहा है जो आपके ख़्याल आपकी सुरत को आकर्षित करके अंतःकरण की ओर ले जाये, ईश्वर के ध्यान में लीन करा दे, जहाँ आपको आनन्द ही आनन्द मिले .

सब क्रिया कर्म और अभ्यास का नतीज़ा यह है कि सब का सहारा छोड़ कर उस मालिक का सहारा लें जो प्रेम, आनन्द और ज्ञान का भंडार ह . तभी हमको सच्चा सुःख मिल सकता है और यही हमारा असली लक्ष्य है. यह मौका सिर्फ इन्सानी ज़िन्दगी में ही प्राप्त होता है. हर इन्सान का फर्ज़ है कि अपनी ख़्वाहिशात को पूरा करते हुए, यानी दुनियाँ में कर्म करते हुए, अपने असली लक्ष्य को न भूले . अगर वह ऐसा करेगा तो एक न एक दिन अपने असली लक्ष्य को पा जाएगा और पूर्ण ज्ञान , पूर्ण आनंद और ईश्वर का प्रेम हासिल कर लेगा. और अगर अपने असली लक्ष्य को छोड़ कर इंद्री भोग, मन की वासनाओं , बुद्धि की चतुराई और इन सब के अहंकार में फँसा रहेगा तो नीचे उतार होता जायेगा और न मालूम फिर कब उसको इस क़ैद से छूटने का मौक़ा मिल . यह ख़्याल कि आत्मा इन्सानी यौनी अख्त्यार करके फिर नीचे नहीं जा सकती, सरासर ग़लत है. जो ऊपर चढ़ता है वह नीचे गिरता है, जो नीचे गिरता है, वह ऊपर भी चढ़ता है - यह उसूल है. इसलिए आदमी को चाहिये कि अपनी ख़्वाहिशात को धर्म का सहारा लेकर पूरी करे लेकिन उसमें पूँजी, जो उसके पास मुकर्रिर मिक़दार में है, कम से कम लगाए और जो पूँजी छिपी हुई है, यानी जो शक्ति आत्मा की छिपी हुई है, उसको अभ्यास करके हासिल करे और इस पूँजी की मदद से, यानी अभ्यास और सत्संग करके, ऊपर की चढ़ाई करे ताकि ईश्वर से नज़दीक़ी हासिल हो सके. जब तक ईश्वरीय गुण हासिल नहीं होते उसको क़ुरबत (सामीप्य) नसीब नही होती, और जब तक क़ुरबत नसीब नहीं होती आत्मा को चैन नहीं मिल सकता. इसलिए दुनियाँ के सब काम करते हुए किसी न किसी तरीक़े से (जिसको आपका मन पसन्द करता हो) उस ईश्वर को याद बराबर करते रहना चाहिए. यही सिर्फ एक ज़रिया है जिससे जीव हमेशा -हमेशा का सच्चा और अपार सुःख हासिल कर सकता है. यही हमारा असली परमार्थ है और यही उस परम पिता परमात्मा का दुनिया की रचना करने का मतलब है . ईश्वर सबको ज्ञान दे .

म संदेश : दिसम्बर, 2003.

सच्चे आनन्द की प्राप्ति

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

इन्सानी ज़िन्दगी (मनुष्य जीवन) का आदर्श क्या है ? मनुष्य जीवन का मिलना एक बड़ी खुशकिस्मती की बात है जिसका ख़ास ध्येय यह है कि हम परमात्मा का अनुभव करें और दुनियावी प्रपंच से छुटकारा पावें. अगर यह क़ीमती ज़िन्दगी इस ध्येय की पूर्ति के लिए न लगाई गई तो इन्सान और जानवर की ज़िन्दगी में कोई फ़र्क नहीं. अगर हम सच्चे भक्त बन जायें तो हम कर्मों के जंजाल से छूट जायेंगे और हमें इंद्रियों के जंजाल से हमेशा -हमेशा के छुटकारा मिल सकता है.

हम दुनियावी मामलों के बारे में सोचते रहते हैं. जब तक हम ख़्वाहिशात उठाते रहेंगे, हम कभी ख़ुश नहीं रह सकते. जब हमारा मन और बुद्धि ईश्वर की तरफ़ लग जाती हैं तभी हमें सच्ची ख़ुशी हासिल होती है. परमात्मा की तरफ़ तब्ज्जह (attention -ध्यान) लगाने और हमेशा - हमेशा को इस प्रपंच से छूटने और सच्ची ख़ुशी प्राप्त करने का साधन यही है कि हम परमात्मा से मिलने की ख़्वाहिश जगायें और हर समय उसे याद रखें.

ईश्वर हर समय और हमेशा हमारे दिल में रहता है लेकिन हमें उसके दर्शन तभी हो सकते हैं जब हम अपने मन को वासनाओं से साफ़ कर लेंगे. हमें उस तक पहुँचने के लिए ख़्वाहिश उठानी चाहिये. उसको हमेशा याद रखना चाहिये. उस तक पहुँचने का जतन करना चाहिये. उसी की बात सोचना चाहिये और आख़िर में अपने आप को पूरी तरह उसके सुपुर्द कर देना चाहिय . जब हम पूरे तौर से अपने आप को उसको समर्पण कर देते हैं तब हमें अपने अन्तर में उसके दर्शन होते हैं और हमारी ख़ुदी, जो हमारे और उसके बीच में परदा है, और जिसकी वज़ह से हम उसका अपने घट में हर समय रहते हुए भी दर्शन नहीं कर पाते, हमेशा के लिए जाती रहती है. ऐसा आदमी ईश्वर का ही रूप हो जाता है. उसको सिर्फ़ शान्ति और आनन्द ही नहीं मिलता, बल्कि इसके साथ -साथ वह ईश्वर के कामों का ज़रिया बन

जाता है जिससे दुनियाँ का सबसे बड़ा उपकार होता है. वह पृथ्वी पर ज़िस्म में ईश्वर रूप होकर रहता है और उसकी पूजा भी ईश्वर के समान होती है .

ईश्वर अपने भक्तों की पूजा करता है. गीता में लिखा है कि वह भक्त जिसको ज्ञान हो गया है या जिसने मोक्ष प्राप्त कर ली है, सचमुच ईश्वर है. सचमुच जब एक भक्त पूर्ण रूप से ईश्वर में समर्पण करक , उससे मिलकर, एक हो जाता है तो वह ईश्वर हो जाता है. हम दुनियाँ के अन्दर बाहरी चीज़ों को हासिल करते हैं. लेकिन ऐसे भक्तों ने पूर्ण रूप से अपनी अपने मन को जीत लिया है और तब अपनी ख़ुदी को ईश्वर में मिला दिया है, ईश्वर को पा लिया है. ऐसी महान आत्मायें जगत के लिये वरदान हैं. उन्होंने अपनी ज़िन्दगी को दूसरों के लिए ईश्वर प्राप्ती का एक साधन बना दिया जिसका सहारा लेकर मनुष्य उस महान शक्ति ईश्वर तक पहुँच सकता ह . इसीलिये इस इन्सानी ज़िन्दगी का लक्ष्य उस ईश्वर को जो इसके अन्दर रहता है, प्रकट करना ह . हमको चाहिये कि हम आहिस्ता -आहिस्ता दुनियावी ज़िन्दगी से अपने मुँह को अन्दर की तरफ़ मोड़ें और उस ईश्वर को अपने ही अन्दर पायें. तभी हमको सच्ची ख़ुशी हासिल हो सकती है.

ईश्वर के नाम का जाप ईश्वर तक पहुँचाता है. साधारण मनुष्य के लिए जो दुनियाँ में फँसा हुआ है ईश्वर तक पहुँचने के लिये सबसे सरल उपाय यही है कि ईश्वर के नाम का उच्चारण बराबर किया जाये. उसके नाम का उच्चारण करने से वह उसे उस ईश्वर से मिला देता है जो उसके दिल में रहता है. जितना ही वह इस पवित्र नाम का उच्चारण करता जायेगा वह अपने अन्दर उस परमात्मा के नज़दीक पहुँचता जायेगा. अपने अन्दर की बुराइयों को निकालने, आनन्द और ईश्वर को हासिल करने का इससे आसान तरीक़ा और कोई नहीं है. नाम के उच्चारण से केवल मन ही शुद्ध नहीं होता बल्कि नाम भक्त को भगवान से मिला देता है .

मैं नाम की बरक़त जो आपको सुना रहा हूँ, यह अपना ही तज़र्बा नहीं है बल्कि दूनियाँ के सभी संतों का यही तज़र्बा है. इसीलिए मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि ईश्वर की सच्ची भक्ति कर . उसमें सच्चा विश्वास लाओ. तब सारे जगत में ही उस ईश्वर के दर्शन होंगें. ईश्वर का नाम लेने में कोई दिक़्क़त नहीं ह . उसके लिए कोई ख़र्च भी नहीं करना पड़ता, न कोई ख़ास तरीक़ा बैठने का है और न किसी चीज़ की ज़रूरत है.

तुम उसका नाम हर समय, हर जगह, ले सकते हो. इस अभ्यास से कुछ दिनों बाद खुद -व - ख़ुद तुमको अपने अन्दर शब्द सुनाई देगा. तुम्हारे अन्दर ईश्वर का प्यार ख़ुद - व -ख़ुद ही पैदा हो जायेगा और दिन -व - दिन उससे नज़दीक़ी होती जायेगी.

सत्संगी के लिए दिशा निर्देश

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

सत्संग में आकर नीचे लिखी पाँच बातें हर प्रेमी भाई - बहिन को समझ लेनी चाहिये :

पहली यह कि दुनीयाँ की सब चीज़ें और अपना शरीर नश्वर हैं । केवल आत्मा ही ऐसी चीज़ है जिसका नाश नहीं होता। अगर हमारे शरीर में से वे सब चीजें हटा दी जाएँ जो नश्वर हैं तो अंत में जो बचेगा वही एक - रस क़ायम रहने वाला है, उसी को आत्मा कहते हैं। वही हमारी जान व सुरत है।

दूसरी यह कि इस आत्मा का भी एक असल भण्डार है जहाँ से यह आई है और वह कुल जिसका यह अँश है, सच्चा मालिक (अंशी) है जिसे लोग परमेश्वर, सच्चिदानन्द, अल्लाह और अगणित नामों से पुकारते हैं।

तीसरी यह की आत्मा का गुण पानी की तरह है। जिस तरह हर कतरा यानी पानी की बूँद क़ुदरती तौर पर आपने असल भण्डार समुद्र की ओर वापिस जाना चाहती है, वैसे ही आत्मा का प्रकृत -प्रेम एवं लगाव अपने असल भण्डार यानी सच्चे मालिक की तरफ़ रहता है।

चौथी यह कि जैसे आत्मा की चाह अपने असल भण्डार में समा जाने की होती है, वैसे ही उस सच्चे मालिक को भी यह ख़्याल होता है कि समस्त आत्मायें उसकी गोद में आ जाएँ।

पाँचवी यह कि उस सच्चे मालिक परमेश्वर की ओर से यह प्रबन्ध है कि समय - समय पर उसमें से रूहानी धारें प्रकट होकर पृथ्वी लोक पर उतरती हैं, संत सतगुरु रूप धारण करके जीवों को निज भण्डार में समा जाने की राह बतलाती हैं और जो आत्मायें इच्छुक होती हैं , उन्हें अपने प्रीतम से मिलाने में पूरी - पूरी सहायता करती हैं। कुछ को साथ ले जाती हैं और बाकियों के लिए बीज छोड़ जाती हैं ताकि वे भी उस राह पर चल कर अपने लक्ष्य को पूरा करें। इन्ही को अवतार, पैगम्बर, सतगुरु, औलिया, आदि नामों से पुकारते हैं ।अगर किसी को भाग्य से ऐसे संत-सदगुरु मिल जाएँ तो उसे चाहिये कि उनकी शरण लेकर अपना काम बना लें।

संत प्रसादी -6

सद्गुणों को अपनाना सीखें

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. करतार सिंह जी महाराज)

परमार्थ के पथ पर चलने वाले व्यक्ति का आचार-व्यवहार सामान्य व्यक्ति से कुछ पृथक होना चाहिए. जो स्वयं को सत्संगी कहता है संसार उसको सर से पाँव तक देखता है - कोशिश करता है कि उसमें कोई कमी दीखे. कमी तो हम सब में हैं और सत्संगी स्वयं भी अनुभव करते हैं कि जैसा ऊँचा व्यवहार हमारा होना चाहिए वह होता नहीं है. बाबा फरीद जी कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति तुम्हारी पिटाई करे तो तुम उसके घर जाकर उसके हाथ-पाँव दबाओ, उसकी सेवा करो।

हम सब यही कहेंगे कि यह कैसे हो सकता है. हमें कोई मारे और हम उसके हाथ-पाँव दबायें. हमें कोई ऊँची आवाज़ में भी बोले तो हमें अच्छा नहीं लगता, फिर यह कैसे होगा ? हम उसके घर जाकर उसकी सेवा कैसे करेंगे ? परन्तु जो व्यक्ति फ़रीद जी के आदेश का पालन करते हैं, वे महान हैं, वे ईश्वर रूप हैं. यह सत्य है कि सामान्य व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता परन्तु जो सत्संग में सम्मिलित हुआ है, जिसने परमार्थ पथ पर चलने की शपथ खाई है, उसका व्यवहार सँसार से पृथक होना चाहिए, आदर्श होना चाहिए. वह आदर्श यह है कि जो गुण परमात्मा के हैं, सत्संगियों को उन गुणों को अपनाना होगा, उन्हें अपने व्यवहार में विकसित करना होगा ।

हज़रत ईसा भी कहते हैं कि बुराई का अवरोध नहीं करो. ठीक है, जो कुछ भी हो रहा है, ईश्वर की तरफ़ से हो रहा है. ऐसा समझ कर कोई तर्क न करो, उसे स्वीकार करो. हज़रत ईसा भी यही कहते हैं कि,'जो तुमसे बुराई करे उससे तुम मित्रता का व्यवहार करो'. उदाहरण देते हैं कि कचहरी में आपके ख़िलाफ़ डिग्री हो गयी है. आपने जो कोट पहना हुआ है वह डिग्री में ले लिया गया है. (ठन्डे देशों में एक कोट के ऊपर दूसरा गाउन पहनते हैं) हज़रत ईसा

कहते हैं कि कोट तो चला गया, यह ठीक है, कोट के ऊपर जो बड़ा कोट या चोगा पहने हो वो भी दे दो। हम ऐसा नहीं कर सकते।

ईसा मसीह ने आगे कहा है कि तुम दूसरों के ऐबों (बुराइयों) को छुपाना अर्थात उनकी आलोचना या निन्दा न करना. अगर तुमने ऐसा नहीं किया तो परमात्मा भी तुम्हारे ऐबों को क्षमा नहीं करेगा. तुम चाहते हो कि परमात्मा तुम्हें क्षमा कर दे, तो तुम्हारी भी यह सहजवृत्ति हो कि तुम्हारे विरुद्ध कोई कितना ही कहीं भी विरोध करे, तुम उसे क्षमा कर दो. यही आपकी सहजवृत्ति बन जाये. सामान्यतः हम कोई भी बात हो उसका तुरन्त उतना ही विरोध कर देते हैं, क्षमा करना तो दूर रहा।

ऐसी अनेक बातें हैं जो एक सत्संगी को अपनानी चाहिए. परन्तु उनमें से ये दो बातें महत्वपूर्ण हैं - प्रतिक्रिया न करना तथा क्षमा की भावना. इन पर सभी को ध्यान देना चाहिए. ये बातें पारिवारिक जीवन में, सामजिक जीवन में, दफ्तर, दुकान, आदि हर जगह काम आती हैं. परिवार में कई लोग शिकायत करते हैं कि हमारे सम्बन्धी हमसे सहयोग नहीं करते, हमारी आशा के विरुद्ध व्यवहार करते हैं. यदि कोई व्यक्ति किसी संत या महापुरुषों के आदेशों का पालन करेगा तो यह बात उसके मुख से निकलेगी ही नहीं. उस परिवार में जिसमें सभी सदस्य दीक्षित हों यदि उनमें आपस में तनाव रहे तो यह बात तो शोभनीय नहीं है।

यदि हम इन दो बातों को अपनाते हैं तो हमारा निजी जीवन, आन्तरिक जीवन. बड़ा शान्तिमय रहेगा. परिवार में, समाज में, हमारा व्यवहार बड़ा सुन्दर होगा. यह बड़ा कठिन है कि कोई हमारी निन्दा करे, बुराई करे, हमें गालियाँ दे. और हम उसे क्षमा कर दें. बुराई का बदला नेकी में दें, यह तो सम्भव होता ही नहीं. बुद्धि तो इसे स्वीकार करती ही नहीं. परन्तु जो लोग इन बातों को मानने को तैयार नहीं हैं वो परमार्थ से दूर हैं. परमार्थ में जो लचक होती है, वह दीनता के रूप में प्रकट होती है. प्रभु को दीनता बहुत प्रिय है।

सत्संगी को इस रास्ते का पन्थाई कहते हैं, तभी तो कहते हैं कि दीन बनना है. इस रास्ते पर जो चले अपना सर हथेली पर रख कर चले. यहाँ तर्क काम नहीं देगा. वैसे समझाया जा

सकता है कि बुराई का बदला नेकी में दें. परन्तु जो व्यक्ति अधिक तर्क करते हैं वे ऐसा नहीं मानते. लेकिन वो भी कोशिश तो करें. यह बात गलत नहीं है कि हमसे कोई बुराई करे और हम उसकी बुराई का बदला नेकी में दें. पर ऐसा कौन कर सकता है ? मनोबल वाला, कमज़ोर व्यक्ति नहीं. कमज़ोर व्यक्ति थोड़ी सी बात में तुरन्त उत्तेजित हो जाता है. साधक भले ही शरीर से दुर्बल हो परन्तु मानसिक शक्ति उसमें बहुत होती है क्योंकि उसके साथ आत्मिक शक्ति होती है. यदि कोई व्यक्ति ऐसा करेगा तो अपने आप में बड़ा प्रसन्न रहेगा. क्योंकि यदि क्रोध आता है, हमारे मन में किसी के प्रति विपरीत भावना रहती है, तो हम कैसे आशा करें कि हमारे चित्त में शान्ति रहेगी, कभी नहीं।

तो इन गुणों को हमें अपनाना होगा. तर्क से इसका खंडन नहीं करें. खूब विचार करें, इस पर मनन करें. अगर आपको शान्ति की इच्छा है तो कम से कम अपने परिवार में तो इसे अपनायें. परिवार के बाहर न सही, सत्संग भी एक परिवार है, उसमें तो अपनायें. हमारे व्यवहार में दीनता होनी चाहिए. दीनता यह नहीं कि किसी से काम निकालने के लिए हम थोड़ी देर उससे मीठे शब्दों का प्रयोग करें. यह दीनता नहीं है. दीनता तो एक सहज अवस्था है. यह कुदरती प्रकट होती है. कोई हमसे उलटी-सीधी बात कहता है तो हमें बर्दाश्त नहीं होती या कोई हमारी आशा के विपरीत बात कहता है तो हमें अच्छी नहीं लगती. या कोई ताने या क्रोध के शब्दों में बोलता है तो अगर वह बात किसी बड़े ने की तो तो हम उसे स्वीकार तो कर लेते हैं परन्तु मन में बुरा लगता है, पर जिसको हम अपने से छोटा समझते हैं वह यदि ऐसी बात कहता है तो हमें बड़ा ही बुरा लगता है।

लोग बाग कहते हैं कि पूजा में मन नहीं लगता. हमें पहले अपने मन को साधना है उसे योग्य बनाना है. मन योग्य होगा तो ईश्वर के चरणों में इसका ध्यान अवश्य जायेगा. लोग कहते हैं कि साधना में बैठते हैं तो मन स्थिर नहीं होता / मन तो प्रेम से लगेगा, प्यार से ही लगेगा. ईश्वर के साथ हमारा साधारण प्यार भी नहीं है. लोग टी.वी. देखने में व अन्य बातों में बड़े मस्त हो जाते हैं. उसके साथ हम स्नेह नहीं कर सकते, बातचीत नहीं कर सकते. प्रभु के साथ हमारा इतना भी लगाव क्यों नहीं है कि हम उसका ध्यान भी तो करें /

दूसरे, हमारा व्यवहार शुद्ध नहीं है. योग्य व्यवहार नहीं है इसलिए योग्य विचार नहीं उठते. जो विचार उठते हैं उनसे सत्संगी दुखी होता है. साधारण व्यक्ति भी यदि ऐसे विचार उठाये तो उसे भी दुख होता है. सत्संगी कहता है कि मैंने दीक्षा ली है, पूजा में बैठता हूँ, तब भी ऐसे विचार क्यों आते हैं ? गुरुदेव फ़रमाया करते थे कि केवल दीक्षा से ही काम नहीं चलेगा। इसके लिए तो तप करना होगा।

सब भाइयों को चाहिए कि अपने भीतर टटोलें कि आपके विचार और व्यवहार पूज्य गुरु महाराज के, उनके बुजुर्ग पूर्वजों के जीवन के रहन-सहन के अनुसार हैं या नहीं. पूज्य गुरु महाराज की जीवनी है, उनके पत्र हैं ,उन्हें पढ़ें, मनन करें। विशेषकर उनके जो पत्र हैं, कुछ पत्रों में इतना गहरा सबक लिखा है, इतनी गहराई में गए हैं, कि यदि आप पढ़ेंगे और मनन करेंगे तो आप देखेंगे कि अभी हमारी मन्ज़िल की यात्रा तो शुरू ही नहीं हुई है।

किसी को क्या दोष दिया जाये. इसके लिए साधक को तप करना पड़ता है. पूज्य दादागुरु के शब्दों में - " यह ऐसा नहीं है कि जैसे हम किसी क्लब में मनोरंजन के लिए जाते हैं." यहाँ भी लोग मनोरंजन के लिए आते हैं ऐसा तो नहीं है. पर यहाँ आकर जीवन में एक परिवर्तन आना चाहिए, 'ट्रांसफॉर्मेशन' होना चाहिए. परिवर्तन कैसा हो ? जो ईश्वर के गुण हैं, हमारा जीवन उन गुणों को अपनाये. वे गुण हमारे व्यवहार में रम जाएँ। हमें जीवन बार-बार नहीं मिलता है. वास्तविकता यही है कि जैसा जीवन हमारे दादा गुरु या गुरु महाराज चाहते थे वैसा किसी का नहीं बना. हमारे जितने भी शास्त्र हैं उनके यम-नियमों के अनुसार नहीं बना. वो सत्संगी को एक आदर्श पुरुष कहलाना चाहते थे।

मनुष्य स्त्री व पुरुष दोनों को ही कहा जाता है परन्तु पुरुष एक विशेष शब्द है. पुरुष परमात्मा के लिए और स्त्री माया के लिए प्रयोग होता है. महापुरुष चाहते हैं कि हमारा आदर्श, हमारा व्यवहार और हमारा जीवन भी उस अकाल पुरुष परमपिता परमात्मा की तरह हो. चाहे साधना करने वाला स्त्री हो या पुरुष, सबको ईश्वरमय बनना है. इसमें जल्दी नहीं करनी चाहिए. मन्ज़िल कहाँ है, किसी ने नहीं जाना. चलते चलिए. गुरु महाराज कहते हैं कि

इस रास्ते पर थकना नहीं चाहिए. मन्ज़िल कहाँ है, कोई नहीं जानता, ईश्वर जानता है, चलते चलो. परन्तु संसार के प्रति जितनी जल्दी थकावट आ जावे उतना ही अच्छा है।

लोग कहते हैं कि शरीर छोड़ने के बाद व्यक्ति का परलोक में उद्धार होगा. वो तो देखा जायेगा. परन्तु हम अभी ही अपने जीवन में, परिवार में, समाज में, क्यों न परलोक या स्वर्ग बनायें. अरविन्द जी के कितने ऊँचे विचार हैं ? वो कहते हैं कि मोक्ष चाहे न मिले, हम मोक्ष की लालसा नहीं करेंगे. वो सारे विश्व की, पशु-पक्षी व वनस्पति हेतु मोक्ष का विचार और साधना-प्रार्थना करते थे। उन्होंने एक रसायनशाला में बुद्ध भगवान के अनुरूप मनन किया। वे एकान्त में मनन करते रहे कि समस्त विश्व का कल्याण कैसे हो ? किस प्रकार सारे विश्व का कल्याण हो ? किस प्रकार से वे सारे विश्व को स्वतंत्र करें ? परन्तु परमात्मा की इच्छा कुछ और ही थी. उन्हें दीर्घायु नहीं मिली सो इस विषय को अधूरा छोड़ गए. अपने जीवन में पूरा नहीं कर पाए।

सोचने की बात है कि हम कैसे स्वार्थी हैं, अपने लिए ही सोचते हैं. अपने शरीर, मन, बुद्धि के लिए या अधिक से अधिक अपने परिवार के सुख की ही बात सोचते हैं. हमने कभी अपने पड़ोसी के लिए सोचा ही नहीं. यह सारा विश्व हमारा पड़ोसी ही तो है. हज़रत ईसा कहते हैं कि पड़ोसी से प्रेम, व्यवहार और सेवा उसी प्रकार करो जैसी अपनी चाहते हो। पड़ोसी का अर्थ सारा समाज है, विश्व है. उसमें मित्र भी आ जाते हैं, शत्रु भी।

ऐसे महापुरुषों की साधना कितनी ऊँची है। करते तो सभी हैं परन्तु कितनी ऊँची है अरविन्द जी की साधना कि सभी को मोक्ष मिले, सभी का कल्याण हो। उन्होंने लिखा है कि रूस में जब क्रान्ति आयी तो उन्होंने तीन साल तक एक प्रकार के विचार का गूढ़ चिन्तन या गंभीर मुआयना लगातार किया कि किस प्रकार से उस वक्त के बादशाह ज़ार से (जो बहुत ही ज़ालिम था) उसके राज्य से, जनता को मुक्ति मिले। हालाँकि संत को भले बुरे को नहीं देखना चाहिए। परन्तु वो उस समय एक मुक्तिदाता के स्तर पर थे कि किस प्रकार मानव को सुख पहुँचे, उनका उद्धार हो. उन्होंने लिखा है कि वे तीन साल तक वहाँ शक्तिपात करते रहे, आत्मिक शक्ति देते रहे. उस वक्त लेनिन था। उन्होंने बतया नहीं किसी को लेकिन

वह तीन साल तक शक्तिपात करते रहे - अपने देश के लिए नहीं, रशिया के लिए। और वह क्रान्ति सफल हुई। यह इनका योगदान था. बाकी बातें और भी थीं जिनके कारण यह क्रान्ति सफल हुई।

ये देखें कि उनका सोचने का ढंग क्या था. वैसे तो सभी कहते हैं कि - "सबका भला करो भगवान" । यह कहना तो ठीक है परन्तु हमारे हाथ-पाँव भी तो ऐसा करके दिखाएँ, हमारा मन और बुद्धि भी तो ऐसा काम करे। भगवान कैसे करेगा दया ? वो हम सब के द्वारा ही तो दया करेगा. तो देखना यह है कि क्या हमारी वृत्ति में दया आ गयी है, सहज ही करुणा आ गयी है. यदि नहीं, तब तो वह रोज़-रोज़ की प्रार्थना करना मात्र ही है।

जब प्रार्थना करें तो यह सोचें कि हम जो कह रहे हैं वो हम अपने आपको सम्बोधन कर रहे हैं. प्रत्येक व्यक्ति के पास शक्ति है कि वह दूसरों में अपने गुणों को रमा सकता है। हम केवल वाचक कहलाने या नाम मात्र के लिए सत्संगी नहीं बनें। वास्तव में सत्संगी बनें। संत का संग जो अपनाता है, तभी वह सत्संगी कहलाता है. सत्संगी तो वह है जो सत का, ईश्वर के गुणों का, संग करे, उन्हें अपनाये तथा अपने व्यवहार में व्यक्त करे।

मेरा आपसे यही आग्रह है कि क्षमा करना, निन्दा न करना, दीनता और परोपकार जैसे कुछ ईश्वरीय गुण अपना लें और सचमुच उन्हें अपने व्यवहार में लायें, तो परमार्थ में उन्नति ज़रूर होगी।

राम सन्देश : अक्टूबर, 1966.

सद्गुरु प्रसाद

(सिकन्दराबाद भण्डारे में 20-10-66 को परमसन्त सद्गुरु डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज का प्रवचन)

" ॐ राम श्री राम जय राम, जय जय राम " - इस वक्त थोड़े देर के लिए आप सब इस मंत्र का उच्चारण कीजिये. 'ॐ' यानी आदि शक्ति जो सब का आधार है. 'श्री' यानी माता। 'राम' जो ब्रह्माण्ड का मालिक है और जो सब में रमा हुआ है. 'जय राम ' इन सबों की स्तुति है और 'जय जय राम' में आत्म समर्पण है।

यह श्रष्टि माता का पसारा है. विभिन्न रूपों में एक वही है जो खेल, खेल रही है. उस माँ की मातहती में तीन शक्तियाँ यानी तीन देवता हैं जो तीन गुणों के मालिक हैं - ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ब्रह्मा उत्पत्तिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता और शिव संहारकर्ता. ब्रह्मा रज के, विष्णु सत के और शिव तम के रूपक हैं. सन्तों में देवताओं की पूजा नहीं करते। वे केवल उस एक आदिशक्ति को पूजते हैं. मगर माँ की इज्ज़त करते हैं. जब तक माँ मदद नहीं करती जीव इस भवजाल से नहीं निकलता। इसलिए सन्तमत में हमेशा उसका सहारा लेकर चलते हैं. विरोध नहीं करते बल्कि co-operate (सहयोग) करते हैं. जिस हाल में माँ ने रखा है, उसी में खुश रहते हैं. 'राज़ी-ब-रज़ा' रहते हैं।

माँ का दिल कोमल होता है. लेकिन जितना वह कोमल होता है उतना ही सख़्त भी होता है. वह आजमाइश करती है कि मेरा बेटा जो मेरे पति (ईश्वर) को पाना चाहता है उसमें कितनी मज़बूती है. नकल करने वाले और दिखावटी लोग उस इम्तहान में रह जाते हैं और जो लगे रहते हैं, माँ से मिलकर चलते हैं, मुक़ाबले पर नहीं आते बल्कि नम्रता से काम लेते हैं और आदिशक्ति अपने पिता की पूजा करते हैं, वे माँ के इम्तहान में पास होते हैं. और तब माँ खुश होकर उनकर रास्ते की रुकावटों को दूर कर देती है, रास्ता साफ़ करके अपने पिता के पास जाने की इज़ाज़त दे देती है. वह मक़बूल (ईश्वर जिसे क़बूल करले) बन जाते हैं.

इसलिए स्तुति करते रहो, नम्र बन कर माँ के साथ co-operate(सहयोग) करो और परमपिता परमेश्वर में समर्पण करते चलो. धीरे-धीरे रास्ता साफ़ हो जायेगा।

समर्पण के लिए वैराग और अनुराग से काम लेना चाहिए। अकसर इसमें लोग गलती करते हैं कि दुनियाँ को छोड़कर जंगल में चले जाते हैं और इसी को वैराग कहते हैं। धर्मशास्त्र के अनुसार रहनी-सहनी बनाना और ऐसे काम करना जो ईश्वर-प्राप्ति में सहायक हों, और एक ईश्वर को ही प्यार करना अनुराग है. इसके विपरीत दुनियाँ के सामान और विषयों से इन्द्रियों को हटाना वैराग है. यह अनुराग और वैराग आहिस्ता-आहिस्ता होता है। दुनियाँ की चीज़ों से जब आप ऊँचे उठते हैं तो step by step(क्रम से) नीचे की चीज़ों को छोड़कर उससे ऊपर की चीज़ को पकड़ते हैं. नीचे की चीज़ को छोड़ना वैराग और ऊपर की को पकड़ना अनुराग है. इस तरह एक को छोड़ते और दूसरे को पकड़ते-पकड़ते आख़िर में एक आधार महज़ ईश्वर रह जाता है. जिस किसी कर्म से किसी को दुःख हो उसे छोड़ना और कोई अच्छा कर्म करना, जैसे दान देना, किसी की जान बचाना, ज़रूरतमन्द की मदद करना, आदि, इनसे सुख होता है और ऐसे कर्म अनुराग की तरफ़ ले जाते हैं।

सन्तमत में प्रेम मार्ग को लेते हैं और किसी ऐसे महापुरुष को, जिसने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया हो, गुरु धारण करते हैं. इन स्थूल आँखों ने जिसे कभी देखा नहीं, बुद्धि जिसे समझती नहीं, जन्म-जन्मान्तर से जिसे स्थूल का ही ख़्याल करने की आदत है, वह निर्गुण का ध्यान कैसे करे ? जब तक हम ईश्वर गति पर न पहुँचें, उससे प्रीत कैसे करें ? इसलिए पहले ऐसे महापुरुष से प्रेम करते हैं जो ईश्वर के दर्शन प्राप्त कर चुका हो और जिस्म (शरीर) रखता हो। 'गुरु' शब्द का अर्थ है जो अँधेरे से निकाल कर रोशनी में ले जाये. शरीर से वह साँसारिक व्यवहार करता है और आत्मा से वह ईश्वर में लय है। जिस्म से हम उससे बोल और बातचीत कर सकते हैं. इस तरह से उससे सत्संग करते हुए और उससे प्रेम करते हुए हम अन्धकार से रौशनी की तरफ़ चलते हैं।

पहले-पहल तो गुरु से प्रेम एक साथ नहीं होता, धीरे-धीरे बढ़ता है. जहाँ हम अपने पिता, भाई वग़ैरा रिश्तेदारों को प्यार करते हैं उतना ही प्यार हम शुरू-शुरू में गुरु से करें. फिर

धीरे-धीरे जब हम गुरु की महिमा को समझने लगते हैं, उनसे प्रीति और प्रतीत होने लगती है, आहिस्ता-आहिस्ता अपना विश्वास ख़ुद ही बढ़ता जाता है. इसी को ----- (आत्म-जागृति) कहते हैं. जैसे-जैसे यह बढ़ती जाती है, मन ज़्यादा शुद्ध (refine) होने लगता है. तब और तरक़्क़ी होती जाती है. मन बुराई से हटने लगता है और भलाई पर आने लगता है। इस तरह वह धीरे-धीरे शुद्ध होता जाता है. असली दाता तो प्रेम के गुरु ही हैं, लेकिन शिष्य का जितना surrender (समर्पण) होता जाता है उतना ही अधिक प्रेम वह अपने अन्दर महसूस करने लगता है. इस तरह जब गुरु से प्रेम पूरी तरह बढ़ जाता है तो जिस निर्गुण को कभी नहीं देखा उससे प्रेम होने लगता है और गुरु एक ज़रिया मालूम होने लगता है. फिर गुरु पुश्तेपनाही यानी पीछे से मदद करने वाला हो जाता है।

एक बार का ज़िक्र है कि मैं अपने गुरुदेव के साथ देहली की एक सराय में ठहरा हुआ था और रात को उनके नज़दीक सोया था। मैंने एक ख्वाब देखा कि एक नूर (प्रकश) का दरिया (नदी) है जिसका कोई किनारा ही नज़र नहीं आता। मैं उसमें तैर रहा हूँ. कभी नूर के नीचे गोता लगाता हूँ, कभी उसके ऊपर तैरने लगता हूँ. उसमें एक अजीब आनन्द व शान्ति का अनुभव हो रहा था. सवेरे उठने पर मैंने ख़्वाब की हालत लालाजी से अर्ज़ कर दी. उसी सवेरे संध्या करते वक्त एक और अजीब हालत गुज़री. चारों तरफ़ नूर ही नूर यानी प्रेम का समुन्द्र लहलहा रहा था जो मुझको बड़ी तेज़ी से अपनी तरफ़ खींच रहा था और मैं उसमें समा जाने के लिए बेचैन था, प्रेम का आवेश था और एक अजीब आनन्द आ रहा था। तबियत यह चाहती थी कि जिस्म टूट जाय और मेरी आत्मा इस प्रकाश में समा जाय. उसी वक्त यह भी ख़्याल हुआ कि मेरा असली प्रीतम तो यही है. मैं तो लालाजी से झूँठी मौहब्बत करता हूँ. असलियत में प्रेम तो मुझे उस नूर से है और उसे हासिल करने के लिए मैंनें लालाजी को एक ज़रिया बनाया है। आनन्द और सरूर की एक ऐसी हालत थी जो बयान में नहीं आती।

गुरुदेव ने पूछा - क्या देख रहे हो ?

मैंने अपनी हालत निवेदन करदी.

उन्होंने कहा - " यही तुम्हारा असली प्रीतम है, इसमें अपने आपको पूरी तरह फ़ना (लय) करदो. यही असल है और यही तुम्हारा इष्ट है. मैं तो मददगार और पुश्तेपनाही (पीछे रहकर सहायता करने वाला) हूँ।

सबसे पहले स्थूल से स्थूल को यानी शिष्य को गुरु के वग़ैरा बाहरी जिस्म से प्रेम होता है और वह स्थूल सेवा पसन्द करता है जैसे पाँव दबाना, नहलाना धुलाना, कपड़े साफ़ करना वग़ैरा -2. इससे उसका मन शुद्ध होने लगता है और वह सूक्ष्म हालत पर आने लगता है, यानी गुरु से हम-ख़्याल होंने लगता है. जो गुरु ख़्याल करते हैं उसे शिष्य क़बूल करने लगता है. यह मन का प्रेम है. यह प्रेम जब और बढ़ने लगता है तब गुरु और शिष्य एक जान दो क़ालिब हो जाते हैं यानी शरीर तो दो अलग दिखाई देते हैं लेकिन अन्दर से वे दोनों एक होते हैं. यहाँ शिष्य की बुद्धि गुरु में लय हो जाती है. यह बुद्धि का प्रेम है. इसके बाद शिष्य को कारण यानी ईश्वर से प्रेम होने लगता है. वह उसी को अपना सब कुछ मानता है लेकिन दुई बाकी रहती है. इसके बाद जब प्रेम और बढ़ता है तो वह आत्मा का प्रेम कहलाता है. यही प्रेम की इन्तिहा है. वह सब चीज़ों में चाहे वे जानदार हों या बेजान अपनी ही आत्मा देखता है. सबको समान रूप से प्रेम करता है. यही वह हालत है जहाँ ईसा मसीह ने कहा था - " Love Thy neighbour as Thyself " (अपने पड़ोसी को अपनी तरह प्रेम करो.) Thyself का मतलब उस अमर आत्मा से है जो तुम्हारे अन्दर है और सब में है. किसी को दुःख तक़लीफ़ हो तो ऐसा मनुष्य सबके लिए रोता है. पहले इन्सान को दुःख में देखकर दुखी होता है. उसके बाद जानवरों, जीव-जन्तु और फिर वनस्पति को उसी तरह देखता है. अगर किसी दरख़्त पर कुल्हाड़ा चल रहा है तो वह ऐसे महसूस करता है जैसे उसी के जिस्म पर चल रहा हो. उसकी आत्मा Universal Soul (विश्वात्मा) में लय हो जाती है। सब में एक ही आत्मा (अपना ही रूप) देखता है. दुई मिट जाती है. जीवन मुक्त हो जाता है. असली मोक्ष की दशा यही है. जब तक यह दशा हासिल नहीं होती तब तक ideal (लक्ष्य) हासिल नहीं होता। यह बहुत मुश्क़िल है लेकिन गुरु-कृपा का सहारा लेने और रास्ते पर चलते रहने से आहिस्ता-आहिस्ता यह हालत नसीब हो जाती है।

प्रेम और त्याग, शुरू में दो रास्ते हैं. सन्त मत में प्रेम को लेते हैं, अन्य मतों में त्याग को. असल में दोनों आगे चलकर एक ही हैं। प्रेम से त्याग ख़ुद-ब-ख़ुद हो जाता है. अगर आपको हमसे प्यार है तो जो चीज़ हमें पसन्द नहीं है वह आप ख़ुद छोड़ देंगे। प्रेम में आनन्द है और ज्यों -ज्यों प्रेम बढ़ता जाता है, आनन्द भी उतना बढ़ता जाता है. जब ऊँचा आनन्द मिलता है, नीचा आनन्द छूटता जाता है।

एक और तरीक़ा है - बुद्धि का, जिसे ज्ञान मार्ग कहते हैं. पहले बुद्धि को शुद्ध करते हैं. जब बुद्धि सोच-विचार करने लगती है. मनन करती है, यह विवेक की हालत है. Right thinking (सत विचार) से जिन चीज़ों में उसे बुराई नज़र आती है उन्हें छोड़ती जाती है और जिन चीज़ों से ईश्वर प्राप्ती में सहायता मिलती है उन्हें अच्छा जानकर ग्रहण करती जाती है. एक को त्यागना और दूसरे को पकड़ना, वैराग और अनुराग, क्रमशः चलता रहता है. विवेक से वैराग और वैराग से मुमुक्षता आती है. यह ख़्याली चीज़ नहीं है. इसके लिए षट सम्पति के साधन की ज़रूरत है. (1) शम, (2) दम, (3) उपरति, (4) तितिक्षा, (5) श्रध्दा, और (6) समाधान. यह छै षट्सम्पत्तियाँ कहलाती हैं. यहाँ इनका खुलासा करने की ज़रूरत नहीं है. मुख़्तसिर तौर पर 'शम' कहते हैं तस्कीने क़ल्ब को यानी दिल का ठहराव हो जावे, इधर-उधर न बहके । ज़ब्तेहवास यानी इन्द्रिय-दमन को 'दम ' कहते हैं. तीसरी सम्पत्ति उपरति का मतलब है उपराम या सेरी हो जाना, यानी मन की ऐसी हालत हो जाती है कि लोक और परलोक की कोई तमन्ना नहीं रहती. दुनियाँ की चीज़ों को भोगकर उनसे तृप्ति हो जाती है और उन्हें दिल लगाने लायक न समझ कर छोड़ देते हैं. चौथी सम्पत्ति 'तितिक्षा' यानी राग-द्वेष, मान-अपमान द्वन्दों से ऊपर हो जाना है. सूफ़ियों में इसे 'तहम्मुल' कहा है। 'श्रद्धा' - गुरु और शास्त्रों में विश्वास होना पाँचवी सम्पात्ति है. छटी सम्पत्ति 'समाधान' यानी यकसुई है. इसमें आनन्द और ग़ैर-आनन्द की तरफ़ कोई दिलचस्पी बाक़ी नहीं रहती. राज़ी-ब-रज़ा की हालत हो जाती है।

लेकिन यह बुद्धि का मार्ग हर एक के लिए नहीं है. इसमें egoism (अहंकार) होने का डर रहता है जिससे गिरावट आती है. जो लोग बुध्दि के स्थान पर हैं वे शास्त्रों व गुरु की

शिक्षा का आधार लेकर चलते हैं. वे गुरु की अहमियत इतनी ही रखते हैं कि बुद्धि शुद्ध हो जाये. बाकी सब बातों में अपनी कोशिश पर भरोसा रखते हैं. ऐसे लोग आम तौर पर सन्यासियों और वैरागियों में पाए जाते हैं। भक्ति और प्रेम मार्ग पर चलने वालों को ज्ञानमार्ग के मुक़ाबले में सहूलियत ज़्यादा है और गिरावट का डर किसी कदर कम. इसलिए पहले गुरु से प्यार करो फिर अपने आप को उसके समर्पण कर दो और फिर उसमें लय हो जाओ।

दया एवं कृपा जो सब पर बराबर होती रहती है वह 'दया' कहलाती है, लेकिन जो ईश्वर से प्रेम करते हैं और उसके रास्ते पर चलते हैं, यह उसकी कृपा है. जब मनुष्य इन्द्रियों के भोग, बुद्धि की चतुराई और मन के फंदे से निकल कर ईश्वर की भक्ति में लग जाता है, उस पर कृपा होने लगती है, यानी ईश्वर खुद उसे अपनी ओर खींचता है. और फिर वह ईश्वर की राह पर इतनी तेज़ी से चलता है जैसे परिन्दा उड़ान कर रहा हो. इसी को सन्तों ने विहंगम चाल कहा है. बन्दर का बच्चा अपने बल-बूते पर माँ के पेट से चिपटा रहता है. इसीलिए वह कभी-कभी छूट कर गिर जाता है. मगर बिल्ली का बच्चा माँ के भरोसे रहता है यानी उसे बिल्ली अपने मुँह में लटका कर उठाये फिरती है। इसलिए वह गिरता नहीं। जब तक हम साधक अवस्था में रहते हैं, तब तक हमारी बन्दर के बच्चे की सी हालत है. और जब हम इन्द्रियों पर काबू पाकर, बुद्धि की चतुराई छोड़कर, एक ईश्वर पर भरोसा करने लगते हैं, तब हमारी हालत बिल्ली के बच्चे की तरह हो जाती है. तब ईश्वर खुद हमारी संभाल करता है।

जिसका जैसा संस्कार हो उसी के मुताबिक़ उस पर कृपा होती रहती है. पिछले कई जन्मों से अगर कोई कमाई करता चला आ रहा है तो उस पर अधिक कृपा होती है. इसलिए गुरु की तवज्जह अगर उसकी तरफ़ औरों के मुक़ाबले में ज़्यादा हो तो यह क़ुदरती बात है. जितना जिसका पिछला संस्कार होता है उतनी ही उसकी क़ुरबानी और समर्पण भी औरों से ज़्यादा होते हैं. समर्थ गुरु रामदास अपने शिष्यों में महाराज शिवाजी पर विशेष कृपा रखते थे क्योंकि वह जानते थे कि शिवाजी के बराबर दूसरा ऐसा कोई नहीं है जो क़ुरबानी कर सके। अपने और शिष्यों की तसल्ली के लिए उन्होंने एक रचना रची. उन्होंने तक़लीफ़ से कराहना

शुरू कर दिया. आवाज़ सुनकर शिवाजी दौड़े आये. हाथ छोड़कर पूछा - "भगवन, कौन सी तक़लीफ़ हैं ? कैसे यह दूर हो ? सेवक हाज़िर हैं. आज्ञा दीजिये।"

गुरुदेव बोले - "शिवा, मुझे बहुत तक़लीफ़ हैं. यह एक ही दवा से दूर होगी और वह मिलना बहुत मुश्किल हैं।"

शिवाजी ने पूछा - " भगवन, बताइये वह क्या चीज़ हैं, सेवक हर मुमकिन कोशिश उसके लाने की करेगा।"

गुरुदेव ने कहा - " यह तकलीफ़ शेरनी के ताज़े दूध पीने से ही दूर हो सकेगी।"

शिवाजी ने कहा - " भगवन, सेवक शेरनी का ताज़ा दूध लेकर अभी हाज़िर होता हैं। सेवक को आपकी कृपा का भरोसा हैं कि दूध ज़रूर मिलेगा।"

यह कहकर शिवाजी फ़ौरन पहले राजमहल में गए और सोने का कटोरा लिया क्योंकि दूसरे बर्तन में शेरनी का दूध ख़राब हो जाता हैं, और फिर जंगल को चल दिए जहाँ शेर रहते थे. बहुत सी गुफ़ाओं को देखने के बाद एक गुफ़ा में शेर के बच्चे दिखाई दिए. उन्हें उम्मीद हो गयी कि यहाँ शेरनी अपने बच्चों को दूध पिलाने ज़रूर आती होगी. वे निडर होकर गुफ़ा में कूद गए. शेरनी मौजूद न थी। वे शेरनी के बच्चों के साथ खेलने लगे. थोड़ी देर में शेरनी आयी. शिवाजी को देखकर गुर्राने लगी. वे धीरे से उसके पास गए और निवेदन करने लगे - " माँ, गुरुदेव के लिए आपका दूध चाहिए।" गुरुदेव में पक्का विश्वास, क़ुरबानी और समर्पण से भरे हुए शिवाजी के निवेदन का शेरनी पर असर हुआ और वह गाय की तरह चुपचाप खड़ी हो गयी. शिवाजी ने दूध निकाला और शेरनी को प्रणाम करके गुरुदेव की सेवा में हाज़िर हुए और दूध पेश किया।

कितनी ज़बरदस्त ख़्याल की मज़बूती हैं कि गुरुदेव के लिए दूध की ज़रूरत हैं इसलिए शेरनी भी मना नहीं करेगी. ऐसे ही संस्कारी लोग होते हैं जो भक्ति का नमूना पेश करते हैं. यही गुरु-भक्त कहलाते हैं। वे एक ही जन्म में भवसागर पार कर जाते हैं. दुनियाँ में कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसे वे ईश्वर की राह में क़ुर्बान नहीं कर सकते हों।

एक बार की बात है कि नारद मुनि को अपनी भक्ति पर कुछ गर्व हो गया. भगवान विष्णु समझ गए और नारद को चेताना चाहा. उन्होंने कहा - " नारद जी, मेरे दिल में बड़ा दर्द है. इसकी एक ही दवा है. अगर कोई सच्चा भक्त हो और वह अपने दिल का खून मेरे लिए दे सके तो यह दर्द दूर हो." नारद मुनि सोचते रहे और कुछ देर बाद चल पड़े. ' कौन ऐसा होगा जो अपने दिल का ख़ून देगा। इससे तो उसकी मौत हो जाएगी।" ऐसा अविश्वास उनके मन में उठा. कुछ दूर जाकर एक साधु के दर्शन हुए। उन्हें भक्त समझ कर नारद ने अपनी मुश्क़िल उनके सामने रखी. विष्णु भगवान के दिल में दर्द और उसके इलाज के लिए किसी भक्त के दिल का खून चाहिए, यह सुनते ही वह साधु बेचैन हो उठा. वह बोला, "नारद, मेरा सारा दिल ही ले जाइये, न जाने दिल के कौन से हिस्से का खून दरकार हो, धन्य हैं मेरे भाग्य जो मेरा दिल भगवान के काम आये।' यह कह कर एक एक तेज़ औज़ार से उसने अपना दिल चाक करके नारद को दे दिया और बोला -"भगवन, जल्दी जाइये, विष्णु भगवान का कष्ट अभी दूर होना चाहिए।"

नारद जी विष्णु भगवान के सामने उस साधु का दिल लेकर आये. भगवान के दर्द तो था ही नहीं. उन्होंने नारद से कहा कि तुम भक्त होने का दावा तो करते हो लेकिन अपने इष्ट के लिए क़ुर्बानी नहीं कर सकते. तुम्हारे पास भी तो दिल था, कहीं और जाने की क्या ज़रूरत थी? नारद जी सुनकर लज्जित हुए और उनका अहंकार चूर हो गया।

भक्तों की शान ही निराली होती है. वे तैयार बैठे रहते हैं और अपने प्रीतम के लिए किसी वक्त भी क़ुरबान हो जाते हैं. यही मरने से पहले मरना है. जब सारी ख़्वाहिशात ख़त्म हो जाती हैं, तभी भक्त इस हालत को पहुँचता है. मीराबाई कहती थीं - "सूली ऊपर सेज पिया की, केहि विधि मिलना होय." सारी ख्वाहिशात को मार देना ही सूली चढ़ना है. जो सूली चढ़ जाता है वही पिया को पाता है। यह त्रिकुटी का मुक़ाम है जो दोनों भौंहों के बीच माथे में एक इंच पीछे है. यहीं पर आत्मा का ठहराव है. इसी को 'शिवनेत्र' कहते हैं। यही शिवजी का धनुष है जो रामचन्द्र जी ने तोड़ा था और सीताजी को व्याहा था. सीता शक्ति का रूप है. हज़रत मौहम्मद सफ़ेद घोड़े पर चाँद को गए। वह यही 'त्रिकुटी' या 'शिवनेत्र' का

स्थान है. इसकी शकल गोल अर्धचन्द्राकार होती है. धनुष भी अर्धचन्द्राकार होता है. इस मुक़ाम को पार किये बिना प्रीतम को कोई नहीं पा सकता. ईसा का सलीब भी यही मुक़ाम है । वे नमूना पेश करते हैं भक्ति का, प्रीतम पर किस तरह फ़िदा हुआ जाता है. जो मर जाता है वही असली ज़िन्दगी पाता है. वग़ैर ख्वाहिशात ख़त्म किये Kingdom of Heaven (स्वर्ग का राज्य) नहीं मिलता । Worldly life (सांसारिक जीवन) को ऐसा बदलो कि वह ख़ुशी की ज़िन्दगी बन जाये और जब एक बार वह ख़ुशी मिल गयी तो हर हालत में ख़ुशी ही ख़ुशी होगी ।

अगर ऐसे भक्त शिष्य न हों तो गुरु को पहचाने कौन ?

काल का प्रभाव और उससे बचाव

काल मन का मालिक है. ऐसा ख़्याल मन में डालता है कि रास्ते से हटा देता है. विश्वास ढ़िलमिल होने लगता है. इससे बचाव की एक तरक़ीब है और वह हम सबों को याद रखनी चाहिए. जब ऐसा विघ्न आवे तो फ़ौरन गुरु के सामने आजाये. और अगर अपनी अक़्ल के चक्कर में पड़ गया तो गया. हमारे ऊपर भी कई बार ऐसी क़ैफ़ियत गुज़री. एक बार हमारे मन में बहुत गन्दे ख़्याल आने लगे. हमने गुरुदेव को लिख कर दिया. उन्होंने कहा -"जाते रहेंगे." लेकिन मन को धोखा हुआ. काल किसी वक्त बड़ा ऊंचा धोखा देता है. मैंने सोचा - "ऐसे गन्दे ख़्यालात लेकर गुरु के सामने जाओगे ?" और गुरुदेव के पास जाना बन्द कर दिया. कहाँ तो उनसे मिले बिना हमें चैन नहीं था, पर अब उस रास्ते गुज़रना भी छोड़ दिया. कई महीने गुज़र गए. बहुतेरी कोशिश की पर गन्दे ख़्यालात दूर नहीं हुए. तबिययत में यह था कि जब तक बुरी आदतें नहीं छूट जाएँगी, गुरुदेव के सामने नहीं जायेंगे. नतीजा यह कि गुरुदेव से दूर हो गए. सत्संग और भण्डारों में जाना बन्द कर दिया. दूर से गुज़र जाते थे. बुद्धि के चक्कर में आगये. एक दिन हमारे गुरुभाई चतुर्भुज सहाय जी लालाजी के दर्शनों के लिए आये. उन्होंने मुझे न देखकर मेरे बारे में पूछा. लाला जी ने फ़रमाया -" वह मुझसे नाराज़ है इसलिए नहीं आता." डाक्टर साहब मेरे पास आये और मुहसे चलने के लिए कहा. पहले तो मैंने मना किया, फिर उनके अनुरोध करने पर चल दिया. दोनों लालाजी के घर

पहुंचे. डाक्टर साहब अन्दर चले गए लेकिन मैं बाहर ही रहा. लालाजी ने डाक्टर साहब से पूछा - "श्रीकृष्ण नहीं आया." उन्होंने कहा कि आये तो हैं मगर अन्दर नहीं आते. लालाजी ने फ़रमाया - "इस तरह नहीं आयेगा, उसे अपने आगे करके लाओ." डाक्टर साहब बाहर आये और मुझे अपने आगे करके अन्दर ले गए. लालाजी पलंग पर विराजमान थे. मुझे देखते ही फूट-फूट कर रो पड़े. बोले - "हमने क्या क़सूर किया है जो नाराज़ हो." और उस दिन के बाद वे सारे गन्दे ख़्यालात काफ़ूर हो गए. पर्दा ख़त्म हो गया. कहने का मतलब यह है कि जब भी मन पर काल का प्रभाव हो, ख़्यालात ख़राब हों, हालत डिगमिग हो, गुरु के सामने ज़रूर जाता रहे. अगर ऐसा न हो सके तो ख़त में अपनी हालत लिख कर भेज दे. अपनी अक़्ल पर भरोसा न करे वर्ना धोखा खायेगा।

सन्त दयाल का रूप होते हैं. काल यानी शैतान दुनियाँ देता है और सन्त दुनियाँ से छुड़ाते हैं। जीव का उद्धार करते हैं. सन्तों की ऐसी महिमा है कि जब कोई सन्त दुनियाँ में प्रकट होते हैं तो हरेक जीव by nature (क़ुदरतन) एक दर्ज़े ऊपर उठ जाता है. जो सन्त गुफाओं में पड़े रहते हैं क्या उनका प्रभाव दुनियाँ पर नहीं पड़ता ? उनका प्रभाव बराबर दुनियाँ पर पड़ता रहता है और जीवों का कल्याण होता रहता है।

इस कलियुग में सन्तों की मौज़ है इसलिए सन्तमत की तालीम आम है. क्या इससे पहले सन्त नहीं थे ? थे ज़रूर, मगर यह विद्या गुप्त थी। एक दो को बताई और अपने साथ ले गए। हरेक आदमी की पहुँच न उन तक थी और न हरेक को उनकी पहचान। इसलिए और वक्तों में जीव के उद्धार की सहूलियत उतनी नहीं थी जितनी कलियुग में है। पिछले युगों में इस बात पर ज़ोर देते थे कि पहले दुनियाँ छोड़ो तब परमार्थ कमाने चलो. यह हरेक के बस का नहीं था। इस युग में यह सहूलियत सन्तमत ने कर दी है कि दुनियाँ भी भोगो और परमार्थ का रास्ता भी चलते चलो।

लेकिन याद रखो कि हरेक का इम्तहान ज़रूर होता है. बग़ैर इम्तहान पास किये किसी को कामयाबी का सेहरा नहीं मिलता. जो पढता है, मेहनत करता है, वही पास होता है. जो सन्तों के, गुरु के, बताये रास्ते पर चलेगा वही इम्तहान भी पास करेगा, और जो चलेगा नहीं वह इम्तहान क्या पास होगा।

ईश्वर आप सबको सच्चे रास्ते पर क़ायम रखे.

राम सन्देश : फरवरी, 1973 .

सन्त वाणी

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ.श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

लोगों में ईश्वर-प्राप्ति की चाह तो है, लेकिन तरीक़ा और रास्ता नहीं मालूम. इसीलिए सन्त आते हैं, ईश्वर की तरफ़ से भेजे हुए, ईश्वर को पाने का रास्ता दिखाने और उस पर चलने का तरीक़ा बतलाने को. उनका काम स्वयं कुछ (ईश्वर) प्राप्त करना नहीं होता. उन्हें सब कुछ प्राप्त होता है क्योंकि वे ईश्वर के निज-पुत्र होते हैं. उन्हें दुनियाँ में आकर दुहरा काम करना पड़ता है. जैसे कोई प्रोफेसर हो और उसे a, b, c, कच्ची पक्की कक्षाओं को पढ़ाना पड़े तो पहले उसे उस stage (स्तर) पर आना पड़ेगा जिस पर उस कक्षा के बच्चे हैं और जिन्हें पढ़ना सीखना है. इसी तरह संतों को पहले उस stage (स्तर) पर आना पड़ता है जिस पर जीव है. इस काम में वे माया की मदद लेते हैं यानी अपने जीवन को वे दुनियाँदारों का सा बना लेते हैं. इसमें उनकी अपनी गरज़ (स्वार्थ) नहीं होती. उन्हें इन्द्रिय-भोग की इच्छा नहीं होती, वे केवल जीवों के उद्धार की इच्छा लेकर आते हैं.

* * * * * * * *

नफ़रत के ख़याल से किसी चीज़ को छोड़ देना 'भेंट' नहीं कहलाती, जैसे कोई बैंगन, काशीफल वग़ैरह न पसन्द करता हो और उन्हें छोड़ कर कहे कि मैंने यह देवता को भेंट कर दी. भेंट सबसे प्यारी चीज़ की जाती है, जिससे मोह हो, लगाव हो और जो दुनियाँ में फसाने वाली हो. जब सेठ धर्मदास कबीर साहब की ख़िदमत (सेवा) में आये और गुरु दीक्षा चाही तो कबीर साहब ने कहा अपना सब रुपया ख़ैरात (दान) कर दो, तब आना. धर्मदास जी बहुत बड़े सेठ थे, शायद उनके पास सत्तर करोड़ रूपये की दौलत थी. इससे उनको मोह था. एकदम नहीं छोड़ सकते थे. उन्होंने निवेदन किया कि हुज़ूर पहले आधा रुपया ख़ैरात करने का हुक्म हो. कबीर साहब ने इसे नामंज़ूर कर दिया. कुछ दिनों बाद फिर ख़िदमत में आये । रईसी थाट बाट कुछ नहीं थे । मुँह पर दीनता थी और जिस्म पर एक कम्बल. फिर निवेदन

किया कि शरण में ले लिया जाय. पूछा गया कि क्या सब दौलत ख़ैरात कर दी ? निवेदन किया कि सब दौलत ख़ैरात कर दी, अब जो कम्बल जिस्म पर है वही अपना कहने लायक है. कबीर साहब ख़ुश हुए और उन्हें शरण दी।

* * * * * * * *

आत्मा का आनन्द ऐसा आनन्द है कि जिसने एक बार उसका अनुभव कर लिया वह उसको कभी भी नहीं भूल सकता. यह ज़रूर है कि अपने- अपने संस्कारों के अनुसार अभ्यासी दुनियाँ की वासनाओं में फंस जाता है, लेकिन यह आत्म-अनुभव और उसका आनन्द उसको ज़्यादे देर वहाँ ठहरने नहीं देता और भोगों का ज़ोर कम हो जाने पर फिर उसको याद सताती है और वह उस भोग को छोड़कर फिर अपने इष्ट की तरफ़ चलने लगता है. इस तरह आत्मा धीरे-धीरे सभी चीज़ों से उपराम हो कर अपने प्रीतम के चरणों में पहुँच जाती है और मन हमेशा के लिए शान्त हो जाता है. यह ज़रूर है कि जब तक मन जगत की इच्छाओं से उपराम नहीं होता है आत्मा को परमात्मा की शरण नहीं मिलती और यह दुनियाँ के भोगों में फंसती रहती है. यह रास्ता बहुत ही सुगम और सफ़ल है. लेकिन इसमें गुरु और शिष्य दोनों में दो बातों का होना बहुत ज़रूरी है. गुरु में –

(1) गुरु सच्चा हो यानी जिसने परमात्मा के चरणों में हमेशा के लिए जगह पा ली हो,

(2) वह बे-गरज़ हो यानी शिष्य की आत्मिक उन्नति के सिवाय और कुछ न चाहता हो शिष्य में –

(1) शिष्य को यह पक्का विश्वास हो कि जो कुछ गुरु कहता है उसी के ऊपर चलने में उसकी भलाई है, चाहे सख़्ती हो या नरमी, दोनों अवस्थाओं में गुरु में दृढ़ विश्वास रखे।

(2) उसको गुरु से सच्ची प्रीत हो यानी उसके हृदय में सिवाय गुरु के प्रेम के कोई दूसरी चाह न हो और यदि हो भी तो सिर्फ़ अपनी आत्मा के उद्धार की। गुरु में अपने आप को पूर्ण रूप से समर्पण और लय कर चुका हो।

जितनी कमी इन दोनों बातों में होगी उतनी ही देर आत्मा के साक्षात्कार में लगेगी। यह तरीक़ा है जो हमारे यहाँ बरता जाता है। जिसकी नीव कृपा करके हमारे बुजुर्गों ने डाली है। इसमें आत्म-दर्शन पहले होता है और आचरण बाद में सुधरता है. फिर परमात्मा की नज़दीकी (सामीप्य) हासिल करने के अतिरिक्त और कोई कामना शेष नहीं रहती। इसीलिए कहा गया है कि हमारा प्रारम्भ वहाँ से होता है, जहाँ औरों का अभ्यास समाप्त होता है. हमारा अन्त वहाँ है जहाँ तमन्ना की जेब ख़ाली हो जाती है, मन में कोई इच्छा नहीं रहती।

* * * * * * * *

मक्खी दो प्रकार की होती है. एक तो शहद की मक्खी है जो फूलों का रस चूसती है, दूसरी वह है जो गन्दगी और नापाक (अपवित्र) चीज़ों पर बैठना पसन्द करती है। जिन मनुष्यों में परमात्मा का प्रेम है, वे ईश्वर की चर्चा के अलावा कोई दूसरी बात नहीं करते, लेकिन संसारी व्यक्ति धन-दौलत की ही चर्चा छेड़ते रहेंगे। अगर कोई उन्हें ईश्वर चर्चा सुनावे भी तो बात काट कर संसार की ही चर्चा ले बैठेंगे।

* * * * * * * *

वे लोग धोखे में हैं जो 'दुनियाँ झूंठी है', 'जगत मिथ्या है' चिल्लाते है. मेरा अनुभव यह है कि शक्ति ही प्रकृति भी है और इससे प्रेम करने से मदद मिलती है और नफ़रत करने पर यह तोड़ फ़ोड़ कर चिथड़े कर देती है. माया का निरादर मत करो। वह हम सब की माँ है। माँ का सहारा लेकर बाप से नज़दीकी (सामीप्य) प्राप्त करो। माँ काली ने सदा श्री रामकृष्ण परमहंस की मदद की और आख़िर में हाथ में कटार देकर आगे बढ़ने के लिए अपना सिर काट देने को कहा। इसी प्रकार प्रकृति माता से सच्चा प्यार होने पर वह आगे बढ़ाती है। जहाँ वस्तु है वहाँ उसकी छाया भी है। जहाँ निराकार है वहाँ साकार भी है. इसलिए इसके विवाद में मत पड़ो. जहाँ असल है वहाँ नक़ल भी है। नक़ल का सहारा लेकर असल तक पहुँच जाओ। इसी में कल्याण है।

संत-वचन भाग 3

सन्तों का निर्मल परमार्थ व आत्मा की आज़ादी

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

परमार्थ-पथ पर चलने वालों को धीरे-धीरे मन्ज़िल तय करनी चाहिए। इससे स्थिरता आ जाती है. तेज़ी से न तो हरेक चल सकता है और न ही उसमें मज़बूती आती है। जो जितना तेज़ चलेगा उतना ही उसे गिरने का भी डर रहेगा. पहले अपने को तम से सत पर ले जाओ. तुम रज के स्थान पर हो, कभी तम की तरफ़ जाते हो, कभी सत की तरफ़। जब मन बुरी आदतों की तरफ़ जाता है, बुरे काम करता है और बुराई सोचता है, तब वह तम की तरफ़ जाता है। उसे वहाँ से हटाकर अच्छी बातों में लगाओ। नेक सोचो, नेक करो और नेक बनो - यानी मन और वचन से नेकी का ही व्यवहार हो, तब तुम सत पर आ सकोगे। मगर जिस तरह तम में बन्धन है, उसी तरह सत में भी बन्धन है। एक लोहे की ज़न्जीर है तो दूसरी सोने की. जहाँ अच्छाई मौजूद है वहाँ बुराई का ख़्याल पहले मौजूद है. अच्छाई और बुराई एक ही तस्बीर के दो पहलू हैं। इसलिए सत पर आने के बाद उसे भी छोड़ दो, उससे ऊपर आ जाओ। यानी काम तो नेक करो लेकिन अपने को उसका कर्ता मत समझो। स्वभाव ही ऐसा बन जाय कि सब काम ख़ुद- ब - ख़ुद अच्छे होने लगें। जहाँ बुराई का काम करने से बुरा संस्कार बनता है, वहाँ अच्छाई का काम करने से अच्छा संस्कार बनता है। दोनों में ही बन्धन है। बुरे को बुरा भोगना पड़ेगा और अच्छे को अच्छा. मोक्ष कहाँ हुई ? इसलिए अच्छाई के ख़्याल से भी ख़ुद को हटा लो। स्वभाववश सब काम अच्छे हों, सब सोचना अच्छा हो और व्यवहार भी अच्छा हो. सत्कर्म, सतविचार और सद्व्यवहार। जब ऐसे बन जाओगे तब चित्त की निरोधावस्था पैदा होगी, यानी चित्त अपनी कलाबाज़ियाँ करना बन्द कर देगा। इसके बाद आत्मा मन के दबाब से छुटकारा पाने लगती है, और यहीं से परमार्थ का रास्ता खुलता है।

परम + अर्थ = परमार्थ। जिसका जो परम धर्म है, जिसने जो अपना लक्ष्य बना रखा है, वही उसके लिए परमार्थ है। लेकिन वह परमार्थ व्यक्तिगत है। लोग इसी जन्म में या अगले जन्म में जिस चीज़ को पाने के लिए यत्न करते हैं और उसी में लगे रहते हैं, वही उनका परमार्थ है. कोई देवताओं और अवतारों के दर्शन करते हैं, वह उनका परमार्थ है। लेकिन सन्तों का परमार्थ इन सबसे ऊँचा और सबसे न्यारा है. औरों के परमार्थ में कोई-न-कोई ख़्वाहिश लिपटी हुई होती है । सन्तों के परमार्थ में कोई ख़्वाहिश बाक़ी नहीं रहती. ख़्वाहिश उठाने वाली चीज़ तो मन है। यहाँ उसे शान्त कर देते हैं, तोड़कर रख देते हैं।

" तर्के दुनियाँ, तर्के उक़बा, तर्के माँला, तर्के तर्क "

(दुनियाँ के भोगों के ख्यालों को छोड़ो, स्वर्ग के ख़्याल को भी छोड़ो, ईश्वर को भी छोड़ो - यानी उससे मिलकर एक हो जाओ, दुई न रहे और फिर छोड़ने के ख़्याल को भी छोड़ो)

मन के फंदे से न्यारी होकर आत्मा जब ईश्वर के चरणों में लगे, यही सन्तों का परमार्थ है. सूफ़ियों ने कहा है -

"अव्वले मां आख़िरे हर मुनतहीस्त ।

आख़िरे मां जेबे तमन्ना तिहीस्त ॥"

(भावार्थ - मेरी शुरुआत वहाँ से होती है जहाँ अन्य पन्थाइयों का आख़ीर होता है और मेरा आख़ीर वहाँ होता है जहाँ तमन्ना की जेबें ख़ाली होती हैं, यानी कोई इच्छा बाक़ी नहीं रहती।)

अगले जन्म की बात क्यों सोचते हो ? जो कुछ करना है वह इसी जन्म में कर लो। आगे न जाने कौन सा जन्म हो। अगले जन्म में ख़वास (आदत, स्वभाव) के मुताबिक जानवर और पत्थर भी बन सकते हो और देवताओं की योनि की भी प्राप्ति हो सकती है। यह सब भोग योनियाँ हैं. कर्म केवल मनुष्य चोले ही में बन सकता है, यानी मनुष्य चोला ही एक ऐसा चोला है जिसमें परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है और यह चोला बार-बार नहीं

मिल सकता। जो कुछ यत्न करना हो, इसी जन्म में करो। सब बातों से ध्यान हटाकर ऐसी बात में लगाओ जिससे परमार्थ का रास्ता खुले। एक बार रास्ते पर पड़ जाओगे तो वह कमाई बेकार नहीं जायेगी. आवरण पड़ सकते हैं लेकिन वे आवरण हटाये जा सकते हैं. हीरा मिटटी में दब जाये तो उसका कुछ नहीं बिगड़ता। मिटटी हटा दो, फिर हीरे की चमक वैसी-की वैसी रहेगी. दुनियाँ की चाहों को ख़त्म कर दो। यहाँ की चाहों को चाहना व्यर्थ है और इस दुनियाँ से परे की चीज़ को चाहना परमार्थ है।

जो अज्ञानी हैं वे बिना सोचे -समझे काम करते हैं, उनमें पूर्ण अज्ञानता भरी है. जो ज्ञानी हैं वे भी बिना सोचे-समझे करते हैं, उनमें पूर्ण ज्ञान है. जो सोच-समझकर करते हैं उन्हीं में कमी है. ज्ञानी मालिक से मिलकर एक हो चुके हैं और मालिक अक़्ले कुल (all wisdom) है, उसको सोच-विचार की ज़रूरत नहीं। जो उसमें रँगे हुए हैं उन्हें भी सोच-विचार की ज़रूरत नहीं पड़ती, उनके सब काम स्वाभाविक रूप से होते रहते हैं. जो सोचते रहते हैं - यह करें या वह करें - यह बीच वालों की हालत है. यही कश्मकश है, सन्घर्ष (struggle) है. इसी को देवासुर संग्राम भी कहा गया है. अच्छी और बुरी वासनाओं में युद्ध, आत्मा और मन में युद्ध, यही कहलाता है. मन को लालच है दुनियाँ का, और आत्मा को लौ लगी है अपने प्रीतम के चरणों में लिपट कर एक हो जाने की. दोनों अपनी-अपनी तरफ़ खींचते हैं और यही कश्मकश होती रहती है. जो इसमें सफल हो गया, यानी जिसने मन के चंगुल से अपनी आत्मा को न्यारा कर लिया, उसने समझो हीरा पा लिया. इसके लिए जद्दोजहद (सन्घर्ष, प्रयत्न) करनी पड़ेगी। बिना इसके किये यह मिल नहीं सकता।

तुमको बुद्धि इसलिए दी गयी है की सदविचार (right discrimination) करते हुए पहले अपनी दुनियाँ बनाओ. यहाँ की चीज़ों को धर्मशास्त्र के अनुसार भोगो और जब यह देख लो कि यहाँ कुछ नहीं है तो फिर उस तरफ़ से उपराम हो जाओ और आत्मा की तरफ़ चलो. हर क़दम पर देखो कि तुम्हारे अन्दर क्या नुक़्स (कमी) है, उन्हें दूर करते चलो - कुछ को विवेक से और बाकियों को भोगकर. अपने लक्ष्य, यानी परमात्मा को, हमेशा अपने सामने रखो और महापुरुषों के बताये हुए रास्ते पर चलकर मन्ज़िल तय करते चलो.

रास्ते में कठिनाइयाँ आती हैं और हम यह जानते हुए भी कि परमात्मा की प्राप्ति इसी जन्म में हो सकती है, सब-कुछ भूल जाते हैं और दुनियाँ में फँस जाते हैं. यह क्यों होता है ? इसका जबाब यह है कि दो ज़िन्दगियाँ हैं - एक मन की ज़िन्दगी और दूसरी आत्मा की. दोनों ही स्वाभाविक या प्राकृतिक हैं. आत्मा का स्वभाव है कि वह ईश्वर से मिल जाना चाहती है, और उसका रास्ता ऊपर को या अन्तर में को है. मन का स्वभाव है कि वह दुनियाँ चाहता है, उसका रास्ता नीचे को या बाहर को है. इस लोक में आकर आत्मा मन से दब गयी है, यानी मन आत्मा पर ग़ालिब (दबोचे हुए) है. इसलिए वह इसे दुनियाँ की तरफ़ ही ले जाता है. यहाँ द्वन्द अवस्था पैदा हो जाती है, तेरा-मेरा, अच्छा-बुरा, उजाला-अँधेरा, सुख-दुःख - गरज़े कि हर चीज़ के दो पहलू दिखाई देते हैं. यह ज़िन्दगी सतह पर की मन की ज़िन्दगी है. सतह को साफ़ करो. उसके नीचे दूसरी ज़िन्दगी है, यानी मन को आत्मा के ऊपर से हटाओ. तब आत्मा की ज़िन्दगी नमूदार होगी. उसके लिए यत्न करना पड़ेगा. दुनियाँ की चीज़ों के लिए यत्न करना बहादुरी नहीं है, वह तो तुम्हारे लिए पहले से निश्चित हैं, तुम्हें मिलेंगी ही. जो उनसे उपराम हो गए हैं उनके लिए ही सन्त-मत है. सन्त उनसे कहते हैं - " आओ हम तुम्हें रास्ता बतायें, हम तुम्हारी मदद करेंगे और ईश्वर भी तुम्हारी मदद करेगा. मगर पुरुषार्थ तो तुम्हें करना ही पड़ेगा. आत्मा का रूप समझने के लिए जिस्म (शरीर), मन, बुद्धि और अहंकार का पर्दा हटाना ही पड़ेगा. तब आत्मा का दर्शन होगा क्योंकि आत्मा इन सबसे दबी हुई है. "

सन्तमत कभी यह नहीं बतलाता कि दुनियाँ छोड़ो. गुरुदेव, परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज, ने एक जगह लिखा है - <u>" बाक़ई है कि मेरी तालीम दुनियाँदारी सिखाती है. अगर इन्सान मुकम्मिल इन्सान नहीं बन सकता तो वह ख़ुदा को नहीं देख सकता और न ही अपनी समझ उसको आ सकती है. अगर मुक़म्मिल दुनियाँदार बन गया तो वह इस क़ाबिल हो सकता है कि अपने आपको देख सके और ख़ुदा को देख सके.</u> "

जब मनुष्य दुनियाँ की चीज़ों को आहिस्ता-आहिस्ता भोग कर देख लेता है कि इनमें असली सुख नहीं है, यह दुनियाँ रहने की जगह नहीं है. तब वह तम से हट कर सत की तरफ़

मुड़ता है. तुम भी सत पर आ जाओ. उस मालिक पर विश्वास करो, उसकी शक्ति के साथ एवं इस प्रकृति माता के साथ सहयोग करो. घर के लोगों को, जिनको खिलाने-पिलाने, पढ़ाने और दुनियाँ के फ़रायज़ (कर्तव्य) पूरा करने का काम तुम्हें सौंपा गया है, उसे उसकी सेवा समझ कर करो. उनके ऊपर हुकूमत मत करो. हुकूमत तो सिर्फ़ मालिक की होती है, और मालिक सिर्फ़ एक ही है और वह है परमात्मा. तुम्हें तो यहाँ सेवा के लिए भेजा गया है, तुम अपने को मालिक कैसे समझते हो ? अपने घरवालों की ख़्वाहिशात की मातहती में मत पड़ो. मगर उन्हें गुनाह करने से रोको. कोई तुम्हारे काम नहीं आयेगा, कोई तुम्हारे मतलब का नहीं हो सकता. किसी को बिना माँगे अपनी सलाह मत दो. अगर कोई तुंम्हारी सलाह माँगे तो वक्त और मौके के मुताबिक़ जो ठीक समझो, उसे बता दो. ऊपर- ऊपर सबसे ताल्लुक़ रखो मगर अन्दर से अपने को सबसे अलहदा रखो. इस तरह तुम अपने को बनाते चलोगे तो उसका असर वातावरण पर पड़ेगा. अपने बच्चों और जिन औरों के सम्पर्क में आओगे, उन पर असर पड़ेगा. सन्त कि छह पुश्तें (पीढ़ियाँ) अपने आप तर जाती हैं. दुनियाँ में जितने उनके निकट सम्बन्धी हैं, उनका उसे ख़्याल आता है. ऊपर के वंश में वह बाप और दादा तक सोचता है और नीचे के वंश में बेटे और पोते तक. ख़ुद वह परमात्मा में लीन रहता है, इसलिए जिसका भी वह ख़्याल करता है, उस पर असर ज़रूर पड़ता है. शिष्य अगर गुरु का ध्यान करे तो जिस स्थान पर गुरु की बैठक उस समय होती है, वहाँ तक फ़ायदा शिष्य को आप से आप हो जाता है.

सिकन्दर दुनियाँ का बादशाह था. मरते वक्त उसने वसीयत की कि मरने के वक़्त मेरे हाथ क़फ़न के बाहर निकाल देना जिससे दुनियाँ देखे कि सिकन्दर महान, जिसके पास सारी दुनियाँ की बादशाहत, धन-दौलत और सारे साज़ो-सामान थे, इस दुनियाँ से ख़ाली हाथ जा रहा है. जो कुछ दुनियाँ का है, दुनियाँ में ही रह जायेगा. तुम्हारे ऐमाल (शुभाशुभ कर्म), तुम्हारी परमार्थ की कमाई ही तुम्हारे साथ जायेगी. तुम्हें ईश्वर ने सब कुछ दिया है, फिर भी तुम सन्तुष्ट नहीं हो ? फिर क्यों तुम उसमें फँसते हो ?

आदमी चार तरह के होते हैं - (1) दुनियाँदार - जिनका काम खाना-पीना, सोना, मैथुन कर लेना और दुनियाँ की अपनी ज़रुरियात पूरी करने में लगे रहना. वे ईश्वर से बेख़बर हैं. ऐसे लोग सत्संग में नहीं आते. (2) दूसरे मुक्त पुरुष होते हैं. वे तक़मील पा चुके होते हैं - सम्पूर्ण हैं. (3) तीसरे वे हैं जिनके पास सब सुख हैं, और अगर कमी है तो इस बात की कि उन्होंने कोई गुरु नहीं किया है, या कोई मज़हबी बात उनकी ज़िन्दगी में नहीं हुई है. वे सोचते हैं कि लाओ, इसे भी कर लें ताकि यह कमी भी पूरी हो जाय. (4) चौथे वे लोग हैं जिन्होंने दुनियाँ भुगत कर उसमें कुछ सार नहीं पाया और परमार्थ को मुक़द्दम (मुख्य) समझा है. पिछली ज़िन्दगियों में दुनियाँ भुगत कर औरों से कुछ पग आगे हैं. उनके संस्कार उसी हालत में मौजूद हैं, उन्हें जगाना है. परमात्मा ने मनुष्य चोला देकर उन्हें मौक़ा दिया है कि वे अपनी तरक्की करें. जो बीज ईश्वर प्रेम का एक बार पड़ गया वह जाता तो है नहीं, मगर बढ़ता है सिर्फ़ इन्सानी चोले ही में. अगर कोई जवाहर पाख़ाने में गिर जाय तो वह दब ज़रूर जायेगा, मगर पानी डालो, फिर साफ़ हो जायगा. उसका क्या बिगड़ा ? इसी तरह परमात्मा के प्रेम को बढ़ाना चाहिए. इसकी दो तरक़ीबें हैं - एक तो गुरु से पूछ कर इस तरह की किताबें पढ़ना जो इस रास्ते से ताल्लुक़ रखती हों और उन पर अमल करते चलो. दूसरी, तम और रज से निकलकर सत पर आ जाना, यानी अपने इख़लाक़ को सुधारना (character formation) और सन्तों की सौहबत करना (सत्संग). अपनी बुद्धि से काम लो, सोचो-विचारो और जो चीज़ें तुम्हें दुःख देती हैं उन्हें छोड़ दो. दिन प्रति दिन निखरते चलोगे, आत्मा साफ़ होती चलेगी. आत्मा और किसी के साथ नहीं ब्याही जा सकती, उसका पति परमेश्वर है. जब तक यह मन के चंगुल में है, दबी हुई है, उसे होश नहीं है. जब सत पर आ जाओगे, तो होश आ जायेगा कि मेरा एक ही स्वामी है. असली आज़ादी मन के बन्धन की है. जब यह रुकावट हट जाती है तब वह आज़ाद हो जाती है. जो हर बाधा से टक्कर लेता हुआ चला जाय, जो उन सबको ठोकर मार कर आगे बढ़ता जाय, वही सच्चा परमार्थी है। उसे किसी की परवाह नहीं, वह अपनी आज़ादी चाहता है।

रहना तो इसी दुनियाँ में पड़ेगा. दुनियाँ नहीं छोड़ सकते. पहाड़ों पर जाने से, घर बार छोड़ देने से, दुनियाँ नहीं छूटती, दुनियाँ की कुछ चीज़ें भले ही छूट जायें। मन से दुनियाँ को छोड़ो। सब काम इसी तरह होते रहेंगे जैसे होते हैं, लेकिन सिर्फ़ भाव बदलना पड़ेगा। हर काम को परमात्मा का काम समझकर उसकी सेवा करो और इस भाव को स्थायी बना लो। लगातार यही ख़्याल रहे की जो काम तुम कर रहे हो वह ईश्वर की सेवा है। यह दुनियाँ ईश्वर की है, सभी ईश्वर के हैं. जो काम हम कर रहे हैं, ईश्वर की सेवा कर रहे हैं.मन समुन्द्र की तरह है, इसमें अथाह दुनियाँ भरी पड़ी है। धीरे-धीरे उसमें परमात्मा का भाव भरो, उसका नाम भरो। जैसे-जैसे वह भरता जायेगा, दुनियाँ उसमें से बाहर निकलती जायेगी। अगर मन में न भरे तो उसमें ज़बरदस्ती ठूँस-ठूँस कर भरो। प्यार तो आप अब भी करते हैं - स्त्री को स्त्री की तरह, पुत्र को पुत्र की तरह और दूसरों को अपनी अपनी हैसियत के मुताबिक़। लेकिन इसका भाव बदलो। भाव बदलने पर प्यार तो वही रहेगा, लेकिन फ़र्क़ इतना हो जायगा कि तब तुम सबको ईश्वर का समझ कर प्यार करोगे। अभी अपना समझ कर प्यार करते हो, इसमें बन्धन होता है, उसमें मोक्ष होती है। अपना अहं (ego) ख़त्म करके ईश्वर के अहं (divine ego) से काम लो। आनन्द ही आनन्द रहेगा। दुनियाँ ख़ुशी का घर नज़र आयेगी।

जहाँ वासना मौजूद है, किसी स्वार्थ को लेकर किसी से प्यार, वह बदलने वाला है. अगर उसे परमात्मा के प्रेम से सरोबोर कर दो, ईश्वर की भक्ति में उसे रंग दो, तो वह बढ़ता जाता है, न बदलता है और न घटता है. इसमें दोनों का भला है। जिससे प्यार करोगे उसका भला है और अपना भी भला है. अगर ख़ुदी (मेरे पन) के साथ प्यार करोगे तो उसका भी नाश और अपना भी. पहले अपने प्रेम को परमात्मा के प्रेम की आग में तपा लो, फिर उसकी मैल छूट जायगी और वह प्रेम अनन्त बन जायेगा।

सन्देश : सितम्बर- अक्टूबर, 2004

साधक की उन्नति के लक्षणों की पहचान स्व-निरीक्षण से मुमकिन है

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

सत्संगी भाइयों को यह जानने की अक्सर इच्छा होती है कि सत्संग में आकर हमने कुछ तरक़्क़ी की है या नहीं, और यदि की है तो किस हद तक ? लोगों की यह शिकायत होती है कि हमें सत्संग में शामिल हुए बरसों बीत गए लेकिन हम जहाँ से चले थे, आज भी वहीं हैं। यह बात सच भी है क्योंकि उन्होंने सच्चे मायने में अपने अन्दर परिवर्तन करने की कभी कोशिश नहीं की। अपने बुरे कर्मों पर परदा डालने की आदत पड़ गयी है। अगर कोई गुनाह उनसे हो जाता है और उनकी आत्मा उन्हें गुनाह करने से रोकती है तो वे अपने आप को झूँठ -सच बतला कर ये कोशिश करते हैं कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह हालात (परिस्थितियों) के अनुसार ठीक हुआ है ।

यह उनका भ्रम है कि गुनाह को भी गुनाह न समझ कर उसे सही समझते हैं. अगर सत्संगी भाई अपने दिलों पर हाथ रख कर देखें तो पता चलेगा कि वो अभी तक तरक़्क़ी की राह पर खड़े होने लायक़ भी नहीं हुए हैं। नियत समय पर संध्या- पूजा कर लेना ही काफी नहीं है, बल्कि इसमें तो दुनियाँ की लेश-मात्र चाह भी गुरु को अर्पण करनी होगी. हममें से कितने ऐसे हैं जिन्होंने दुनियावी इच्छाओं को त्याग दिया है ? शायद एक भी नहीं। लेकिन उन्नति सब चाहते हैं। नीचे लिखी कुछ बातें अगर ध्यान में रखी जाएँ तो हमें अपनी सही हालत का पता लग जायेगा।

(1) गुरु में श्रद्धा और विश्वास पहले से कुछ घटा या बढ़ा - अगर घटा है तो उसका सबब सोचने की कोशिश करें। अगर अपने में दोष दीखें तो भगवान से प्रार्थना करें, रोयें और गिडगिडाएँ ताकि वो दोष दूर हो। अगर गुरु में दोष दीखने लगे तो उन्हें अपने मन का ही ऐब समझो। परमात्मा गुण-दोषों से रहित है और गुरु उसका ज़ाहिरी (प्रकट) रूप है इसलिए वह भी गुण- दोषों से रहित है। सत्संग में आकर पूर्ण विश्वास के साथ गुरु धारण

करने के बाद दोष निकालने का हक़ अब आपको नहीं है। गुरु के बारे में बहस (वितर्क) मन से, ध्यान से निकालनी होगी और गुरु की आज्ञा में चलना होगा। बुज़ुर्गान का कहना है कि अगर गुरु को कोई भगवान से अलग समझता है तो वह 'काफिर' (नास्तिक) है।

(2) यह देखना चाहिए कि अपने स्वभाव में कुछ फ़र्क़ आया है या नहीं - स्वभाव में पहले जितनी खराबियाँ थीं वो कुछ दूर हुई या नहीं. अच्छे स्वभाव के मायने ख़ुशामद के नहीं बल्कि सरल, शुद्ध बरताव के हैं. स्वभाव बहुत ही मीठा होना चाहिए. अगर कोई कड़वी या सख़्त बात कहनी हो तो बहुत तहज़ीब और सरलता से कहनी चाहिए, जिससे दूसरों के दिल पर चोट न लगे। बाज़ लोगों का विचार है कि चूँकि हम सच्ची और खरी बात कहते हैं इसलिए हम साफ़-साफ़ और अकड़ कर कह सकते हैं, चाहे किसी को वह बुरी लगे या भली. यह अज्ञान है. सच बोलने वालों में कुछ घमण्ड सा आ जाता है जो कि सच्चे परमार्थी को बिलकुल भी नहीं होना चाहिए। अच्छे स्वभाव की दूसरी पहिचान यह है कि ऐसे आदमी को पड़ोसी प्यार करने लगते हैं। अगर हमको पड़ोसी नफ़रत की निगाह से देखते हैं तो सोचकर देखें कि कहीं खोट अपना तो नहीं है और उसको दूर करने की कोशिश करना चाहिए।

(3) वाणी वश में हो रही है कि नहीं - हमारी बोलने की इच्छा भी कम हो रही है या नहीं। ऐसा आदमी जो अध्यात्म विद्या में उन्नति कर रहा हो कभी भी बेलगाम नहीं बोलेगा। मौक़ा और माहौल देखकर, अपने पर क़ाबू करके बोलेगा। फ़िज़ूल बातें करके कभी भी अपने साथ बैठने वालों का वक़्त ख़राब नहीं करेगा, जो बात कहेगा तौल कर कहेगा और कहने से पहले यह देख लेगा कि इससे किसी का दिल तो नहीं दुखेगा। अगर तरक़्क़ी हुई है तो पता चल जायेगा।

(4) अभ्यासी तरक़्क़ी के रास्ते पर है तो दूसरे के ऐबों (दुर्गुणों) पर हमेशा पर्दा डालेगा और अपने ही दोषों पर नज़र रखेगा - अगर दूसरों के कुछ ऐब उसे नज़र भी आते हैं तो उन्हें नज़रअंदाज़ कर देता है या ऐसा बन जाता है जैसे उसे कुछ पता ही नहीं।

(5) उसकी ज़रूरियात (आवश्यकताओं) में कमी आती चली जाती है- ऐय्याश (ऐश्वर्य) और आडम्बर के सामान को वह फ़िज़ूल समझकर त्यागने लग जाता है, उनसे उसे दिलचस्पी नहीं रहती । अपने पास उन्हीं चीज़ों को रखता है जिन्हें वह निहायत ज़रूरी समझता है. बहुत सादा मिज़ाज़ हो जाता है. दुनियाँ के लोग उसे कन्जूस भले ही कहें लेकिन वह ऐसा होता नहीं है।

(6) उसे झूँठ से नफ़रत और सच्चाई से प्रेम होता जाता है - धीरे-धीरे वह सच्चाई मुजस्सिम (साक्षात) बन जाता है । उससे झूँठ इस तरह डरकर भागता है जैसे शेर को देखकर लोग घरों में छिप जाते हैं. उसके रहन-सहन, आचार-विचार और व्यवहार में सच्चाई का ही प्रदर्शन होता है। झूँठे लोग उसके पास जाते हुए दहशत मानते हैं, घबराते हैं।

यह मानना पड़ेगा कि सच्चाई की ज़िन्दगी बसर करना आसान खेल नहीं है. इस उसूल पर चलने वालों से दोस्त, पड़ोसी, सम्बन्धी, द्वेष रखने लगते हैं, लेकिन जो तरक़्क़ी की राह पर जा रहा है वह इसकी परवाह न करते हुए सच्चाई की राह पर बढ़ता चला जाता है । उसमें आत्मबल बढ़ जाता है और वह लतीफ़ (कोमल) हो जाता है. सच्चाई पर चलने वाले को बे-इन्तहा (असीम) मुसीबतों का सामना करना पड़ता है, लेकिन उन्हें बर्दाश्त करते-करते उसकी आत्मिक शक्ति इतनी मज़बूत हो जाती है कि जिससे उसे फ़ायदा ही फ़ायदा होता है।

(7) ऐसा आदमी कभी फ़िज़ूल ख़र्च नहीं होता - वह धन जोड़ना पसन्द ही नहीं करता. अपने ख़र्च लायक रख कर बाकी धन अच्छे कर्मों में ख़र्च कर देता है, जैसे मोहताज़ों को दान देना, ग़रीब लड़के-लड़कियों को पढ़ाई के लिए खर्च देना वगैरा।

(8) उसे नींद कम आने लगती है - अगर पहले वह 8 या 10 घण्टे सोता था तो तरक़्क़ी करने पर 5 या 6 घण्टे से ज़्यादा नहीं सोता. हर समय उसका ध्यान भजन में ही लगा रहता है. काम के निश्चित समय के अलावा समय में उसका ध्यान ज़्यादा समय के लिए अपने गुरु के बताये शग़ल (साधन -अभ्यास) में, धार्मिक किताबें पढ़ने या ईश्वर चर्चा करने में ही

लगता है। जिनका ध्यान इन बातों में नहीं लगता वे तरक़्क़ी से दूर हैं और उनकी दुनियावी चाहें अभी ज़बर (प्रबल) हैं। उन्हें चाहिए कि अपनी दुनियावी चाहों को कम करते जाएँ।

(९) क्रोध में कमी आ जाती है - पहले अगर थोड़ी सी बात पर क्रोध आ जाता था, अब उतनी ज़ल्दी नहीं आता और अगर आता भी है तो ज़ल्दी चला जाता है. कहीं ज़रूरत पड़े भी तो क्रोध दिखावटी और काम चलाने भर के लिए करता है, अपने मन पर उसका प्रभाव नहीं होने देता।

(10) पराई बहू-बेटियों की तरफ ध्यान भी नहीं जाता - अगर पहले जाता भी था तो धीरे-धीरे कम हो जाता है और एक हालत ऐसी आ जाती है कि सामने आने पर पहचानता भी नहीं। स्त्रीयों की मौहब्बत तो दरकिनार, उनकी सोहबत तक से हमेशा बचता है और विषय-भोगों में भी बेरुखी (उपेक्षा) आ जाती है।

(11) दूसरों को हमेशा अच्छी राय देता है - ऐसा करते वक़्त अपना स्वार्थ उसमें कभी शामिल नहीं करता।

(12) प्रेम की भावना बढ़ती जाती है - यह प्रेम का मार्ग है. ईश्वर प्रेम है और गुरु प्रेम-स्वरुप हैं. उनमें अपने को लय करके उसका स्वभाव प्रेममय हो जाता है। उसमें कोई गरज़ शामिल नहीं रहती। स्वार्थ से किया हुआ प्रेम झूँठा प्रेम होता है। प्रेम किसी से भी हो हमेशा बेलाग होना चाहिए।

(13) दुःख, मुसीबतें और तक़लीफें ज़्यादा आने लगती हैं - वह उन्हें ख़ुशी से बर्दाश्त करता है. यह तरक़्क़ी की निशानी है. ये चीज़ें भक्त को ईश्वर की तरफ़ से नियामत में मिलती हैं. दुनियाँ में ख़ुशहाल नहीं रहने पाता. दुःख-मुसीबतें तो पल-पल पर भगवान की याद को ताज़ा करती रहती हैं. जिस हाल में परमात्मा रखता है, उसी में ख़ुश रहता है, कभी शिक़वा -शिक़ायत नहीं करता और परमात्मा का शुकराना अदा करता रहता है।

(14) अपनी निन्दा उसे बुरी नहीं लगती - वह निन्दक को अपना मित्र और हितैषी समझता है क्योंकि उसके ज़रिये उसे अपने दोष दिखाई पड़ते हैं , जिन्हे वह दूर करने की

कोशिश करता है. अगर कोई उसकी झूँठी निन्दा करता है तो भी उसका बुरा नहीं चाहता बल्कि उनके सुधार के लिए दुआ माँगता है।

(15) आलस्य में कमी आती जाती है - कभी बेकार बैठना पसन्द नहीं करता। अगर दुनियाँ का कोई काम करने को नहीं भी होता तो भगवत -भजन में ही अपने आप को लगाये रखता है।

(16) एकान्त सेवन की इच्छा रखता है - ज़्यादा भीड़-भाड़ से उसकी तबियत घबराती है. इसकी वज़ह यह है कि ध्यान एकान्त में अच्छा जमता है, इसीलिए उसे एकान्त सेवन अच्छा लगता है।

(17) निष्पक्ष विचारों की आदत बढ़ती जाती है - हरेक से समानता का व्यवहार होने लगता है, किसी का पक्ष-विपक्ष नहीं करता. अपना निर्णय देने में अपने सम्बन्धों का भी लिहाज़ नहीं करता।

(18) हमेशा नेक, धर्म और मेहनत की कमाई से गुज़ारा करता है - कुछ लोगों की धारणा है कि यदि वेतन कम है और घूँस या रिश्वत गुज़ारा करने के लिए ले ली जाये तो कुछ बुरी बात नहीं है। कोई-कोई इस विचार के होते हैं कि ठेके वग़ैरह में पाँच-फ़ीसदी लेना तो हमारा जायज़ हक़ है. कोई-कोई चोरी -छिपे रिश्वत लेते हैं, उसे ज़ाहिर नहीं करना चाहते। ये सब बातें गलत हैं।

नौकर- पेशा लोगों को अपनी तनख़्वाह के अलावा कुछ भी लेना, चाहे वह नक़द हो या किसी चीज़ की शक्ल में हो या सेवा की शक़्ल में, हर तरह ग़लत है। यहाँ तक कि ये भी नेक कमाई नहीं कही जा सकती। सत्संग में शामिल होने पर अगर रिश्वत लेना छूट जाय या आदत में कमी आने लगे तो समझना चाहिए कि तरक़्क़ी की तरफ बढ़ रहे हैं। लेकिन उसका ग़रूर नहीं होना चाहिए। सत्संग में तरक़्क़ी और पूजा में ध्यान लगने के लिए हक़ और हलाल की कमाई निहायत ज़रुरी है।

(19) बहुत सी बातें बग़ैर पढ़े ही समझ में आने लगती हैं - अगर एकाग्र चित्त होकर बैठ सकते हों और शब्द और प्रकाश में ध्यान जमने लगा हो और चढ़ाई कर रहा हो तो बहुत से ग़ैबी इल्म (परा-ज्ञान) उसको ऊपर से मिलते हैं. बहुत सी बातें उसको अपने आप मालूम हो जाती हैं जिसकी पुष्टि होती है - धार्मिक किताबों से ।

(20) गुरु या परमात्मा में विश्वास निहायत पक्का हो जाता है - यहाँ तक कि भोजन, वस्त्र या दूसरी ज़रुरी चीज़ों की उसको चिन्ता ही नहीं रहती. रोज़ - ब -रोज़ इसकी चिन्ता कम होती जाती है।

(21) दीन या दुखी, मोंहताज़, धर्मात्मा और भले लोगों से हमेशा मित्रता करता है - द्वेष किसी से नहीं करता. ऐसे मनुष्य की दुश्मन भी ईमानदारी और सच्चाई से तारीफ़ करते हैं।

ये बातें जो ऊपर लिखी हैं, उनसे अपनी हालत का ख़ुद मिलान कर ले. अपनी हालत को जाँचने में अपने आप को धोखा देने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अगर दूसरे को धोखा दिया जाये तो उसका काट हो सकता है, लेकिन ख़ुद को धोखा देने वाले इन्सान की उन्नति कभी मुमकिन नहीं है।

राम संदेश – फरवरी, 1962.

साधना में सच्चे गुरु का सहारा लें

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

आत्मा उस आदि शक्ति से निकलकर, जिसकी वह किरण है, ब्रम्हाण्ड में उतरी किन्तु यहाँ पर उसके ऊपर अंतःकरण (मन + बुद्धि +चित्त + अहंकार) यानी सूक्ष्म माया का पर्दा चढ़ा . जब वहाँ पर भी अपने संस्कारों की वजह से अचेत रही, तो इस पिण्ड देश में उतारी गई जो कि मलीन माया का रूपक है. यानी जहाँ इंद्रिय भोग का रस मिलता है ताकि वह अचेत आत्मा चेत अवस्था में आ जावे . यहाँ आकर वह अपने पिछले संस्कारों के बस चेत अवस्था में तो आगई, लेकिन इंद्रिय भोगों मैं फस गई , यानी अपने असली देश को भूल कर इस पिण्ड देश को अपना देश समझ बैठी और यहाँ के भोग विलास को अपना ध्येय समझ बैठी. जब तक ऊपर के परदे न हटें उसको अपने असली देश का ध्यान नहीं आ सकता और न अपने असल को ही समझ सकती है ।

बुद्धि -- जिसकी वजह से यह आत्मा इस तमाम दुनियाँ की सारी योनियों में श्रेष्ठ मानी जाती है - और जो उसका असली साथी है -इस दुनियाँ की मलीन माया में फँस गयी - इसी को अपना लिया और जो भी वह सोचती है अपने स्वार्थ के लिए सोचती हैं -- अतः बजाय छुटकारा पाने के वह दुनियाँ में फसती जाती है और दुःख पर दुःख उठाती है. सुःख भी मिलता है परन्तु वह तो थोड़ी देर को मिलता है। अब अगर वह इस तरह फँसती ही रहे या फँसी पड़ी रहे, तो उसे (आत्मा को) कभी भी आपने वतन (निज देश) की याद न आवे और वह कभी भी छुटकारा न पावे ।

परमात्मा के प्रेम से यह दुनियाँ पैदा हुई है. परमात्मा चाहता है कि जैसे मैं सदा- सदा आनन्दित या खुश हूँ, मेरे जैसे अनेक हो जावें. जब जीव दुनियाँ में इस तरह फँस जाता है,तो उसकी (परमात्मा की) दया और मोहब्बत की लहर में जोश आता है और तब संत, ऋषि,

औलिया, पैग़म्बर, अवतार वगैरह का जन्म होता है जो उस जीवात्मा को आनन्द की तरफ़ ले जाना चाहते हैं और उसके हित की बात बताते हैं ।

जब तक जीव दुनियाँ की झूठी मुहब्बत में फँसा है, जो थोड़ी देर का सुःख देकर उमर भर को रुलाती हैं और आवागमन में फँसाती है नहीं छूटत , तब तक उसको ज्ञान नहीं होता और अपने हित की बात नहीं सुनता. जीव का यह मोह - दुनियाँ की तक़लीफ़ों, दुनियाँ की बेबफ़ाई, यहाँ की नाशवान हालत को देखकर - बार -बार तकलीफें उठाकर । कम होने लगता है। यही काल का क़र्ज़ा देना होता है. जब उसे अपने सँस्कार में तकलीफें उठा - उठा कर तजुर्बा हो जाता है कि दुनियाँ दुःखों का घर है और यहां पर असली सुःख मिलना मुश्किल ही नहीं बल्कि नामुमकिन हो जाता है, तभी वह जीव संतों की सोहबत (संग) क़बूल करता है। यह पहला सबक़ है।

संत-मत केवल एक ईश्वर में विश्वास करता है. सूक्ष्म रूप में वह 'शब्द ' है, प्रकाश है, प्रेम है, आनन्द है. जिनकी वृत्ति बाहर की ओर है, वे उसे अन्तर्मुखी बनायें । सतगुरु से उसकी युक्ति जानकर आँतरिक ध्यान करने का अभ्यास करें। ईश्वर तो सभी जगह मौजूद है । इधर- उधर भटक कर समय नष्ट न करें। उसे अपने अंतःकरण में देखें। इस काम में ऐसे महापुरुष का सहारा लें जिसने आत्मसाक्षात्कार कर लिया है. तभी फ़ायदा होगा। बिना गुरु के फ़ायदा नहीं होगा। गुरु की मदद से हम अपनी attention (ध्यान) को अंतःकरण पर केन्द्रित कर सकेंगे। जलता हुआ दीपक ही बुझे हुए दीपक को जला सकता ह . इसलिए संतों ने बार -बार कहा है कि बिना आत्मदर्शी (गुरु) का सहारा लिए साधारण जिज्ञासु अपने अंतःकरण के पर्दों को साफ नहीं कर सकता. जब तक परदे साफ न हों, आवरण न हटें तब तक प्रीतम के दर्शन कैसे हो सकते हैं ? जब तक आप दुनियाँ से बेज़ार (दुखी) न होंगें तब तक ईश्वर प्रेम (जो आप में प्राकृतिक रूप से मौजूद है लेकिन आवरणों से दबा हुआ है) जागेगा नहीं । यदि कोई वास्तव में पूर्ण संत है तो उसकी सोहबत से आवरण साफ होने लगते हैं और ईश्वर प्रेम जागने लगता है. उसके पास बैठने से, बिना कुछ बोले, बिना कुछ पूछे , आनन्द का, शीतलता का आभास होने लगता है, परन्तु यह स्थायी नहीं रहता. यदि

आप लगातार उनके पास जाते रहें, उनका सत्संग करते रहें तो क्रमशः दुनियाँ से बेज़ारी, उपरामता होने लगतीं हैं । हालाँकि पहले तो यह भी अस्थाई होती है परन्तु सत्संग और अभ्यास से इनमें मज़बूती आने लगती है।

हमारी आत्मा ईश्वर का अंश है, ईश्वर की बेटी है, और मन शैतान की औलाद है, शैतान का बेटा है । यदि हम गुरु के आश्रित नहीं रहेंगे तो शैतान हम पर हावी हो जायेगा और हमारी आत्मा का हनन कर लेगा। सतगुरु सर्व विकार रहित होता है. वह काम -क्रोधादिक विकारों के भंवरजाल से ऊपर निकल चुका होता है, उसका रास्ता जाना हुआ होता है. अतः उसकी आज्ञानुसार चलना और उसके अनुकूल अपना आचरण बनाना चाहिए। यदि कोई ऐसा करेगा तो निःसन्देह वह काम -क्रोधादि विकारों के भँवरजाल से निकलने में सफल हो सकेगा और शैतान उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। इसलिए सच्चे गुरु की खोज करो।

जब आत्मा दयाल देश से उतरती हुई इस पिण्ड देश (मनुष्य शरीर) में आई तो जिस -जिस चक्र पर ठहरी वहाँ पर एक शब्द हुआ और एक एक प्रकाश । इस तरह अठारह चक्र बने। अब स्वाभाविक तरीक़ा यह है कि यह आत्मा जिस रास्ते से आयी उसी रास्ते वापस ऊपर को जावे. शब्द को सुनना या प्रकाश को देखना और अपनी सुरत (attention) को चक्रों पर ठहरा -ठहरा कर ऊपर चढ़ाते जाना ही संतों का सुरत -शब्द -योग है । तीन तरह से बहुधा हम दुनियाँ में फसते हैं - देखकर , सुनकर और सूंघकर. अतः इनसे सम्बंधित इंद्रियों (आँख , कान नाक) पर ताला लगा दो और इनका मुँह अन्दर की ओर फेर दो. अन्तर का शब्द सुनो और अन्तर का प्रकाश देखो । धीरे - धीरे अभ्यास करके प्रकाश और शब्द पर अपनी attention (तवज्जह, सुरत) को जमाओ लेकिन उनमें फँसो मत क्योंकि ये भी रास्तें की चीजें हैं । अपनी चढ़ाई जारी रखो जब तक कि धुर -धाम में न पहुँच जाओ । यदि सचमुच तुमने किसी सच्चे गुरु का सहारा पकड़ लिया है तो वह तुम्हें धुर -धाम में पहुँचा कर छोड़ेगा। ऐसे महापुरुष का तो केवल ध्यान करने से ही उसके सब गुण स्वतः ही तुममें उतरते चले आयेंगे और एक दिन तुम वही बन जाओगे जो वह स्वयँ है ।

अगर कोई शिष्य सतगुरु में पूर्ण निष्ठा रखने वाला, पूर्ण आदर करने वाला है, जो सतगुरु को हर क्षण हाज़िर नाज़िर जाने और एक क्षण के लिए भी ग़ाफ़िल न हो, तो उसके लिए कुछ भी करने -धरने की ज़रूरत नहीं ह . वह एक क्षण के गुरु प्रेम में ही सब कुछ पा लेता है । 'शब्द' क्या है ? 'शब्द' वह आवाज़ है जो धुर धाम से आई है. 'शब्द' से ही दुनियाँ पैदा हुई और 'शब्द' में ही लय हो जाती है। जो मुँह से उच्चारण हो वह 'शब्द' नहीं 'नाम' है। संतों ने 'शब्द' उसी को कहा है जो आपके ख़्याल आपकी सुरत को आकर्षित करके अंतःकरण की ओर ले जाय , ईश्वर के ध्यान में लीन करा दे, जहाँ आपको आनन्द ही आनन्द मिले ।

सब क्रिया कर्म और अभ्यास का नतीज़ा यह है कि सब का सहारा छोड़ कर उस मालिक का सहारा लें जो प्रेम, आनन्द और ज्ञान का भंडार है. तभी हमको सच्चा सुःख मिल सकता है और यही हमारा असली लक्ष्य है । यह मौका सिर्फ इन्सानी ज़िन्दगी में ही प्राप्त होता है। हर इन्सान का फर्ज़ है कि अपनी ख़्वाहिशात को पूरा करते हुए, यानी दुनियाँ में कर्म करते हुए, अपने असली लक्ष्य को न भूले। अगर वह ऐसा करेगा तो एक न एक दिन अपने असली लक्ष्य को पा जाएगा और पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द और ईश्वर का प्रेम हासिल कर लेगा. और अगर अपने असली लक्ष्य को छोड़ कर इंद्री भोग, मन की वासनाओं, बुद्धि की चतुराई और इन सब के अहंकार में फँसा रहेगा तो नीचे उतार होता जायेगा और न मालूम फिर कब उसको इस क़ैद से छूटने का मौक़ा मिले. यह ख़्याल कि आत्मा इन्सानी यौनी अख़्त्यार करके फिर नीचे नहीं जा सकती, सरासर ग़लत है. जो ऊपर चढ़ता है वह नीचे गिरता है, जो नीचे गिरता है वह ऊपर भी चढ़ता है - यह उसूल है. इसलिए आदमी को चाहिये कि अपनी ख़्वाहिशात को धर्म का सहारा लेकर पूरी करे लेकिन उसमें पूँजी, जो उसके पास मुकर्रिर मिक़दार में है, कम से कम लगाए और जो पूँजी छिपी हुई है, यानी जो शक्ति आत्मा की छिपी हुई है, उसको अभ्यास करके हासिल करे और इस पूँजी की मदद से, यानी अभ्यास और सत्संग करके, ऊपर की चढ़ाई करे ताकि ईश्वर से नज़दीक़ी हासिल हो सके । जब तक ईश्वरीय गुण हासिल नहीं होते उसको क़ुरबत (सामीप्य) नसीब नही होती, और जब तक क़ुरबत नसीब नहीं होती। आत्मा को चैन नहीं मिल सकता। इसलिए दुनियाँ के सब काम करते हुए किसी न किसी तरीक़े से (जिसको आपका मन पसन्द करता हो) उस ईश्वर को याद बराबर करते रहना चाहिये. यही सिर्फ एक ज़रिया है जिससे जीव हमेशा -हमेशा का सच्चा और अपार सुःख हासिल कर सकता है । यही हमारा असली परमार्थ है और यही उस परम पिता परमात्मा का दुनिया की रचना करने का मतलब है . ईश्वर सबको ज्ञान दे ।

राम सन्देश : अप्रैल-जून : 2003.

हमारे दुखों का कारण

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

आदमी तकिये के गिलाफ़ की तरह है. एक गिलाफ़ का रंग लाल है. दूसरे का काला, तीसरे का नीला और चौथे का हरा. मगर रुई सबके अन्दर भरी हुई है. यही हालत आदमी की है. एक सुन्दर है, दूसरा बदसूरत (कुरूप), तीसरा भक्त है, चौथा बेईमान, किन्तु परमात्मा सबके अन्दर बसता है.

आमतौर पर जीव दो तरह के नज़र आते हैं. एक तो वह जिनकी विशेषता छाज की सी है और दूसरे वह जो छलनी की विशेषता रखते हैं. छाज फ़िज़ूल अनाज, भूसी वगैरह को बाहर फेंक देता है और अच्छे अनाज को अपने अन्दर रख लेता है। बिलकुल उसी तरह इस प्रकार के लोग बुरी बातों को सुनकर भुला देते हैं और अच्छी बातें अपने अन्दर रख लेते हैं। छलनी इसके बिलकुल विपरीत काम करती है। आटे का जो असली तत्व है, छान कर बाहर निकाल देती है और भूसी को अपने अन्दर रख लेती है. इस तरह के आदमी दूसरों की अच्छी बातें तो भूल जाते हैं लेकिन बुरी बातें अन्दर रख लेते हैं. यह हालत आम है।

यूरोपियन यानी पश्चिमी सभ्यता की बुराइयों को हम अपने अन्दर भर लेते हैं लेकिन अच्छाइयों को भुला देते हैं. परमात्मा को छोड़कर माया के प्रेमी बन गए हैं. लेकिन उनकी सभ्यता के कुछ ख़ास गुण जैसे - समय की पाबन्दी, स्वदेश प्रेम, परिश्रम और दुःख में भी अपने आप को सम्भाल कर रखना तथा मुसीबतों का दृढ़ता से सामना करना आदि, की तरफ़ ध्यान नहीं देते. यही हमारे पतन का कारण है।

संसारी मनुष्यों का दिल गोबर के कीड़े (गुबरीला) के समान है. यह कीड़ा जब रहेगा गोबर में ही रहेगा, दूसरी जगह रहना पसन्द नहीं करेगा। अगर तुम उसको कमल के अन्दर रखना चाहो तो वह बहुत परेशान हो जायेगा. इसी प्रकार संसारी जीव सांसारिक बातों के सिवाय और किसी बात को सुनना पसन्द नहीं करता. जहाँ ईश्वर -चर्चा होती है वहाँ ये कभी

नहीं जायेंगे और जहाँ गपशप या तफ़रीह की बातें हो रही हैं वहाँ इन्हें मज़ा और आनन्द मिलता है।

इसी तरह का एक और उदाहरण है. मक्खी दो तरह की होती है - एक तो शहद की मक्खी है जो फूलों का रस चूसती है, दूसरी वह है जो गन्दगी और नापाक (अपवित्र) चीज़ों पर बैठना पसन्द करती है. जिन मनुष्यों में परमात्मा का प्रेम है, वे ईश्वर चर्चा के अलावा कोई दूसरी बात नहीं करते, लेकिन संसारी व्यक्ति धन-दौलत की ही चर्चा करेंगे. अगर कोई उन्हें ईश्वर-चर्चा सुनावे भी तो वे बात काटकर संसार की ही चर्चा ले बैठेंगे.

संसारी व्यक्ति को चेताना महा-कठिन काम है. वे हर तरह के दुःख और कष्ट संसार में भोगते रहते हैं किन्तु फिर भी सावधान नहीं होते. ऊँट की हालत को सोचो. वह काँटों और कटीली झाड़ियों को खाने का प्रेमी होता है. काँटों से मुँह फटता है, खून निकलता है, लेकिन वह काँटे खाना नहीं छोड़ता. इसी प्रकार संसारी व्यक्ति दुःख उठाते हैं, नित्य मनुष्यों को दुःख दर्द और परेशानियों से मरते देखते हैं लेकिन वह यह कभी नहीं सोचते और न ही चेतते हैं कि इन दुखों से बचने का उपाय निकालें. वे ये भूल जाते हैं कि उनको भी एक दिन मरना है.

<u>दुनियाँ से उपराम होना</u>

आत्मा ऊपर से इन्द्रियों, मन, बुद्धि और खुदी (अहंकार) के परदे हटाने के लिए, इस दुनियाँ में भेजी गयी ताकि वह इन परदों को अपने ऊपर से अलहदा करके और इनसे उपराम होकर बिलकुल नंगी हो जाय और अपने असली जौहर (मूल तव, परमेश्वर) में समा जाय. यही उसके जीवन का लक्ष्य है. इसके लिए आत्मा को शरीर से मिला दिया गया है और अंतःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) इन दोनों (शरीर व आत्मा) को मिलाये रहता है. इन्द्रियों से भोग कर और बुद्धि से समझकर मनुष्य तमाम दुनियाँ की वस्तुओं और मनुष्यों से प्रेम करता रहता है और जब उनमें सार नहीं पाता, बल्कि क्षणभंगुर पाता है, तो दुनियाँ से आहिस्ता-आहिस्ता अलहदा होकर उपराम हो जाता है. अपने असली जौहर

(ईश्वर) का ही भरोसा रखता है, उसी की याद में मग्न रहता है. यही दुनियाँ से उपराम हो जाना है।

ऐसा वह अपनी शक्ति से नहीं कर सकता क्योंकि उसकी आत्मा में वापसी की शक्ति नहीं रही। इसके लिए उसको अपनी बिखरी हुई शक्तियों को इकठ्ठा करना होगा और छुपी हुई आत्मिक शक्तियों को जगाना होगा। यह ऐसे शख़्स की सहायता के बिना नहीं हो सकता जिसने मन और आत्मा की शक्तियों को जगा लिया है, और परमात्मा में लीन हो गया है. इसी का नाम गुरु है।

गुरु की मदद से वह इन परदों को अपनी आत्मा के ऊपर से हटाकर अपना असली रूप अनुभव करता है और फिर अपने असली जौहर (परमेश्वर) में मिल जाता है. इसलिए गुरु की बहुत ज़रूरत है / वगैर सतगुरु के इस रास्ते में कामयाबी नहीं होती - संतों का ऐसा कहना और अनुभव है /

इस तरह से आत्मा इस हालत पर पहुँच कर अगर पूर्ण-रूप से उसमें लय हो जाय तो शरीर नहीं रहता और न उसके पिछले जन्म के संस्कार बाकी रह जाते हैं. दूसरे, अगर सत्पुरुष दुनियाँ में न रहें तो ईश्वर का असली मक़सद दुनियाँ पैदा करने का ' एकोअहं बहुस्यामि ' (जैसा मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ) पूरा न हो. इसलिए ऐसे संतों-महापुरुषों को विशेष रूप से लय होते हुए भी मन के मुक़ाम पर उतरना पड़ता है जिससे और जीवों का कल्याण हो, और अगर उसके और संस्कार बाकी हैं तो वे भी पूरे हो जाएँ. इसलिए संत निर्विकल्प समाधि का अनुभव करने के बाद भी अपने सगुण ईश्वर (यानी गुरु के ध्यान) के स्थान पर उतर आते हैं यानी परमात्मा का अनुभव करने के बाद भी उस स्थान से नीचे उतर कर ईश्वर का अनुभव अपने गुरु-रूप में करते हैं और गुरु को ईश्वर रूप मानते हैं. गुरु मूर्ति ही उनके लिए परमात्मा का सगुण रूप है. इसी जगह गुरु की अहमियत (महानता) का पता चलता है और असली श्रद्धा आती है. ऐसे लोग कभी ईश्वर के निराकार रूप में लय होकर उसके निराकार रूप का अनुभव करते हैं और दुनियावी काम के लिए जो वगैर मन की सहायता के नहीं हो सकता, ईश्वर के साकार रूप यानी गुरु के प्रेम का आनन्द लेते हैं.

राम सन्देश : जनवरी-फरवरी, 2008 .

अपने आपको पहचानो

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

अपने चरित्र का निर्माण करो. इन्द्रिय-भोग को सन्तुलित करो. महापुरुषों ने कहा है कि इन्द्रिय भोग (sex) मनुष्य को जितना नीचे धकेलता है उतना और कोई कर्म नहीं ढकेलता। मनुष्य जब कोई काम करता है तो उतनी देर के लिए उसके मन की स्थिति वहाँ हो जाती है। उसकी तवज्जह (attention) वहीं रहती है। जब वह काम करना बन्द कर देता है और उसकी तवज्जह वहाँ से हटती है तो उसका कुछ न कुछ हिस्सा वहाँ रह जाता है. बार-बार वही कर्म करते रहने से और अपने विचारों को उसी स्थान पर लगाने से मनुष्य लगातार नीचे होता जाता है और जब आधे से ज़्यादा तवज्जह वहाँ रह जाती है तब वह एक क़दम (step) नीचे गिर जाता है और आख़िरकार जानवरों की दशा में उतर जाता है। अगले जनम में वह जानवर ही बनता है। जब हम गुरु या परमात्मा का ध्यान करते हैं तो हमारी तवज्जह ऊँची उठ जाती है. जब हम अपनी तवज्जह को वहाँ से हटाते हैं तो उसका कुछ न कुछ हिस्सा वहाँ रह जाता है। इस तरह बराबर अभ्यास करते रहने से जब तवज्जह का आधे से ज़्यादा हिस्सा वहाँ रहने लगता है तब हम एक क़दम (step) ऊपर उठ जाते हैं. यदि गुरु या परमात्मा का ध्यान लगातार करते रहें तो हम ऊँचे उठते जायेंगे और एक न एक दिन उसकी नज़दीकी हासिल कर लेंगे।

मन को शान्त कर लेना ही सारा अभ्यास है. मनुष्य के शरीर में दो चीज़ें मिलकर काम कर रही हैं. एक मन व माया, दूसरी आत्मा। आत्मा अन्दर है, मन उसके ऊपर है और उसके ऊपर माया है. मन और माया बेजान हैं। लेकिन उनको शक्ति आत्मा से मिलती है. दूसरे शब्दों में यों समझिये कि आत्मा के ऊपर जन्म-जन्मान्तर से ख़्वाहिशात के जो गिलाफ़ चढ़े हुए हैं उन्हीं का दूसरा नाम मन और माया है। आत्मा से प्रकाश पाकर वे नमूदार (प्रकट) होने लगते हैं। अगर यह आवरण हट जायें तो आत्मा शुद्ध और निर्लेप होकर स्वयं प्रकाशित

हो जावेगी. इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि मन और माया से आत्मा को साफ़ करो। आत्मा का आनन्द और सरूर (bliss) महसूस होने लगेगा। आत्मा का आनन्द एक ऐसा अद्भुत आनन्द है कि उसे पाने के बाद किसी और आनन्द की ज़रूरत नहीं होती, उस आनन्द से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता। जिस आनन्द से मनुष्य की तृप्ति न हो और ख़्वाहिशात बनी रहे , वह मन का आनन्द है. मन के आनन्द में एक आनन्द के बाद दूसरे आनन्द की ज़रूरत होती है। ऐसा आनन्द अस्थायी (temporary) होता है और स्वतंत्र (independent) नहीं होता. इसका आधार किसी दूसरी वस्तु पर होता है. आत्मा स्वयं आनन्द है. उसका आनन्द स्थायी (permanent) और सदा क़ायम रहने वाला (ever lasting) होता है। उसका आधार किसी दूसरी वस्तु पर नहीं होता. वह आनन्द इतना ऊँचा होता है कि उसके मुक़ाबले में दूसरा आनन्द कोई मायने नहीं रखता। अगर तकलीफ़ हो रही हो और वहाँ से तवज्जह हटाकर आत्मा के आनन्द में लगा दी जाय तो तकलीफ़ का ख़्याल भी नहीं आता।

अपना रूप समझो। आत्मा को मन से हटाओ, वासनाओं से रहित हो जाओ। जब आत्मा के ऊपर का परदा हट जायेगा फिर तुम अपना असली रूप देख सकोगे कि तुम कौन हो ? तुम तो ईश्वर ख़ुद हो। जब तुम अपने आपको पहिचान जाओगे तब किसकी पूजा करोगे ? तुम स्वयं आनन्द हो, आनन्द की तलाश कहाँ करते हो ? यह मन ही है जो हमारी आस्तीन का साँप बना बैठा है। दोस्त बनकर वही हमको खा रहा है. यह कहता रहता है कि दुनियाँ में अपना अपना धर्म पूरा करो, ऊँचा ले जाकर मारता है। लेकिन याद रखो, सबसे अव्वल धर्म यह है कि अपनी आत्मा का साक्षात्कार करो। बाकी सब धर्म गौण (secondary) हैं। जीवन का लक्ष्य यही है। माया ने ऐसा फँसाया है कि निकलने नहीं देती। अगर निकलने की कोशिश करते हैं तो फिर फाँस देती है, कोई न कोई बहाना लगा ही देती है। मन कहता है तुम्हारी स्त्री है, बच्चे हैं, धन-सम्पत्ति, आदर है। जहाँ इधर ख़्याल गया और फँस गए। जो ऊँचे अभ्यासी हैं उन्हें मन दूसरी तरह मारता है। अगर भाइयों की सेवा का काम सुपुर्द कर दिया गया तो समझने लगे - 'मैं गुरु हूँ, पैर पुज रहे हैं , मन आनन्द ले रहा है। यह क्या

किया तुमने ? अहंकार में फँस गए । अधम योनियों में गए, जिसने अपने आपको गुरु समझ लिया। गुरु तो केवल एक हैं – परमेश्वर। वही असली गुरु हैं।

दुनियाँ से सिर्फ उतना ही ताल्लुक़ रखो जितने से काम चल जाये, ज़्यादा मत फँसो। मेरे गुरुदेव लाला जी महाराज कहा करते थे कि तुम्हें खुश रहने का गुर बतायें। वह गुर यह है कि अगर एक जूता मौजूद है तो दूसरा खरीदने मत जाओ। कहने का मतलब यह है कि जब एक चीज़ से काम चल सकता है तो दुहैरी-तिहैरी चीज़े मत खरीदो। जितने उनमें लिप्त (attach) रहोगे, उतने फँसोगे। लेकिन सब कर्म करते हुए भी अपने सर्व-प्रथम कर्तव्य (foremost duty) को मत भूलो। अपने असली रूप को पहिचानो. नकली रूप जो बना रखा है, उसे उतारकर फेंक दो।

अहं (ego) तो सब में है और रहना भी चाहिए. जिसमें अहं नहीं रहेगा, वह ज़िन्दा कैसे रहेगा ? मगर झूँठा अहं निकाल दो। " मैं ऐसा खूबसूरत हूँ, मेरी स्त्री इतनी सुन्दर है, मैं धनवान हूँ, इत्यादि." यह सब झूँठा अहं है, नकली है, कभी स्थायी नहीं रहता। रूप गया, स्त्री मर गयी, धन चला गया, अहं जाता रहा। जो अहं हमेशा रहे उसे क़ायम रखो. जैसे 'अहं ब्रह्मास्मि ' में दीनता का अभाव है। इसीलिए इस स्थिति पर आकर भी संत 'अहं ब्रह्मास्मि ' नहीं कहता, वह कहता है कि जो कुछ है वह ईश्वर से है. सूफ़ियों ने इसे 'हमा-अज़ोस्त' कहा है। इस झूँठे अहं को या तो ईश्वर प्रेम के द्वारा समाप्त कर दो या इसे ज्ञान से दूर करो। ख़्याल करो कि मैं नहीं हूँ, जो कुछ है ईश्वर है। मन और माया को ख़त्म कर दो। मन और माया से रहित जो बचेगा वही 'तुम ' हो।

अपने आपको सबका सेवक समझ कर, गुरु में ईश्वर का रूप देखकर, सब चीज़ों को गुरु से मिला समझ कर, चलते जाओ। मन से पूछते चलो 'यह कैसे हुआ' और जबाब देते जाओ 'गुरु कृपा से ऐसा हुआ ।' रास्ता सुगम हो जायेगा' Guru is not the body. God manifests through the body. यानी गुरु का स्थूल शरीर गुरु नहीं है, ईश्वर उस स्थूल शरीर के द्वारा प्रकट हो रहा है। उसमें अपने आपको लय कर दो. जब सम्पूर्ण लय हो जाओगे तो अपने आपको पहचान जाओगे कि तुम कौन हो ?

राम सन्देश : नवम्बर-दिसम्बर, 2008

अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय - प्रथम चरण

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

संतमत के अभ्यासियों को बहुधा यह शिकायत करते सुना गया है कि जो आन्तरिक अभ्यास करने को उन्हें बतलाया गया है, यदि उसको सत्संग में बैठकर करें तब तो मन लगता है और यदि उसी अभ्यास को अकेले में बैठकर करें तो मन नहीं लगता है। न उन्हें अन्तर में कोई ऐसा परिचय मिलता है, जैसे प्रकाश दिखाई देना या शब्द सुनाई देना। होता यह है कि बजाय ईश्वर की तरफ़ ध्यान जाने के, मन संसार की बातों को सोचने में उलझ जाता है और सांसारिक बातों का ही ध्यान आने लगता है। जो समय (आधा या एक घण्टा) अभ्यास के लिए निश्चित किया जाता है वह सोचने में ही व्यतीत हो जाता है।

यह बात निश्चित है कि अभ्यास के समय यदि संसार के कामों तथा व्यवहार का विचार आवेगा तो उस समय मन और सुरत का प्रवाह अन्तर्मुखी न होकर उस इन्द्रिय की तरफ़ होगा जिसके द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता है। जैसे यदि किसी स्वादिष्ट पदार्थ का ध्यान आता है तो मन और सुरत की धार स्वादेन्द्रिय यानी रसना या जीभ की ओर होगी। यदि किसी सुन्दर दृश्य का ध्यान आता है तो मन ओर सुरत की धार नेत्रों की ओर होगी। इसी तरह कान ओर अन्य इन्द्रियों का भी यही हाल है। यह इन्द्रियाँ मनुष्य की वृत्तियों को बहिर्मुखी बनाती हैं और उसके ध्यान या सुरत (attention) को बाहर की ओर यानी दुनियाँ की तरफ़ ले जाती हैं। यह भी बात निश्चित है कि मन के द्वारा एक समय में एक ही काम हो सकता है, या तो वह अपने अन्तर में धंस कर ईश्वर का चिन्तन करे, प्रकाश रूप का दर्शन करे, या शब्द का श्रवण करे। और यदि वह संसार की बातों को सोचता है तो फिर उसका बहाव उधर ही को हो जायेगा। जब तक वह ध्यान में लगकर अपनी सुरत के द्वारा ऊपर की चढ़ाई नहीं करता तब तक उसका मेल चैतन्य की उस धार से नहीं होता जो ऊपर यानी परमात्मा से

आ रही है और जब तक उस धार से मेल न हो तब तक भजन और ध्यान या अभ्यास में रस कैसे आये, कैसे तबियत लगे और अन्दर के परिचय किस प्रकार मिलें ?

अभ्यास या पूजा में बठते समय सिवाय ईश्वर के ख़्याल के और कोई ख़्याल सामने न हो। यदि कोई संसारी काम या उसका ख़्याल करके अभ्यास में बैठते हैं तो उसका मन और सुरत दोनों उस समय उस संसारी काम या उसके विचार से परिपूर्ण है, उस समय उनका प्रवाह नीचे की ओर हो रहा है और उसी नीचे की ओर (सांसारिक) प्रवाह में वह बहा जा रहा है। ऐसी स्थिति में मन ध्यान में नहीं लगेगा। मन को प्रभु के रंग और ईश्वर चिन्तन के गहरे चाव के रंग में रंगना चाहिए, तब वह संसार की बातों से हटकर अभ्यास में लगेगा। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि कोई ऐसा भजन, ग़ज़ल या प्रार्थना जिसमें ईश्वर प्रेम या विरह भरा हुआ हो, दिल से तन्मय होकर गायें और उसके साथ ही साथ अपने संसारी विचारों की ओर प्रवाहित होने से रोककर अन्तर्मुखी बनायें। जैसे ढ़ोलक या किसी और बाजे की ताल पर नाचता हुआ नट रस्से पर चढ़ता हुआ चला जाता है और उसी तरह से भक्ति-भाव और प्रेम भरे उस भजन की तान पर मन और सुरत थिरकते हुए अन्तर में ऊपर की ओर चढ़ाई करने लगते हैं और इस प्रकार अभ्यास में कुछ रस और आनन्द मिलने लगता है ।

अनावश्यक आतुरता

किसी-किसी अभ्यासी का यह हाल होता है कि वह जब अभ्यास में बैठता है तो यह चाहता है कि आन्तरिक चक्रों का जो हाल उसने संत -मत की पुस्तकों में पढ़ा है उनमें से पहला चक्र अभ्यास में बैठते ही खुल जाये। प्रथम तो यह बिना अधिकार बने सम्भव नहीं है और मान लो कि यदि गुरुकृपा से ऐसा हो भी जाय तो फिर उनकी इच्छा होती है कि उसकी झलक बराबर उनके सामने खड़ी रहे। इसी प्रकार गुरुकृपा से यदि कोई आन्तरिक शब्द उन्हें सुनाई दे चुका है तो उस शब्द को भी निरन्तर सुनते रहना चाहते हैं। किन्तु यह झलक या शब्द उनकी अपनी इख़लाक़ी कमज़ोरी (सदाचार की अपूर्णता) के कारण टिकाऊ नहीं रहता। इसका दूसरा कारण यह भी है कि उसकी जो क़दर होनी चाहिये, वे नहीं करते। इसके

कारण अभ्यास में रूखापन और फ़ीकापन पैदा हो जाता है। अभ्यासियों को यह मालूम होना चाहिये कि आन्तरिक चक्रों की झलक दिखाई देना या शब्द सुनाई देना कोई साधारण बात नहीं है और उन स्थानों में स्थिति पाना बहुत ही कठिन है। जब तक अभ्यास के साथ-साथ सदाचार में पूर्णता न आ जाये तब तक स्थिरता आ जाना बहुत कठिन है। किन्तु यदाकदा इन चक्रों के आन्तरिक शब्द, जैसे घंटे की आवाज़ सुनाई देना, यह भी बड़े सौभाग्य की बात है। यदि इसी पर concentrate किया जाये (ध्यान जमाया जाये) तो शनैः -शनैः शब्द की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देने लगेगी। ऐसा लगने लगेगा कि वह ध्वनि निकट आती जा रही है। सबसे आवश्यक बात यह है कि गुरुचरणों में प्रीति और प्रतीति के साथ अभ्यास करता रहे। संतमत में अभ्यास से अभिप्राय यह है कि आत्मा और मन जिसकी ग्रंथि इस स्थूल यानी पिण्ड शरीर में बंधी हुई है, वह खुलने लगे, आत्मा मन के फन्दे से न्यारी होकर उसकी चाल ब्रह्माण्ड की ओर हो और फिर चढ़ाई करके संतों के देश, दयाल देश तक पहुँचे।

अभ्यास करते समय ध्यान में यदि कोई अभ्यासी अपने मन और सुरत को पहले या दूसरे चक्र पर जमावे और कुछ देर के लिए अपनी स्थिति वहीं रखे तो सम्भवतः कोई शब्द न भी सुनाई दे या किसी स्वरुप का दर्शन न भी हो, परन्तु इतना तो अवश्य होगा की मन ने दुनियाँ की तरफ़ से सिमटकर ऊपर की ओर जो चढ़ाई की है, उसका रस अवश्य मिलेगा। इसी प्रकार अभ्यास करते-करते जब शब्द सुनाई देने लगेगा और अपने ध्यान को जोड़ेगा तो धीरे-धीरे उस शब्द के आनन्द और आकर्षण में खिंचा हुआ उस स्थान तक पहुँच जायेगा जहाँ पर वह शब्द हो रहा है। इस बात के लिए यह आवश्यक है कि जब अभ्यास करने बैठें तो अपने आपको दुनियाँ के सब ख़यालों से अलग कर ले और अपने मन और सुरत को उस स्थान पर जमाये जहाँ से गुरु ने अभ्यास शुरू कराया हो। उसके लिए वही स्थान पहला है। संतमत में अभ्यासियों को बहुधा हृदय-चक्र या आज्ञा-चक्र से अभ्यास शुरू कराते हैं। यदि ध्यान नीचे को उतर आये यानी दुनियाँ की तरफ़ चला जाये तो बार-बार उसे मोड़कर उसी स्थान पर लगाये और शब्द सुने या प्रकाश देखने की कोशिश करें।

संतमत के जिज्ञासुओं को आन्तरिक अभ्यास के मामले में जल्दी नहीं करनी चाहिए। धैर्य से काम लेकर रास्ता धीरे-धीरे चलना चाहिये। दुनियाँ के काम भी जल्दी नहीं बनते, फिर वह तो परमार्थ है, इसमें जल्दबाज़ी कैसी ? हाँ, लगन में कमी न आने पाये। विद्या सीखने में भी विद्यार्थी चाहे कितनी भी दिन-रात पढ़ाई करे उसके अठारह -बीस वर्ष इसी में बीत जाते हैं। वह अपना सारा समय पढ़ने में ही लगा देता है, यहाँ तक कि घर छोड़कर छात्रावास में रहना भी स्वीकार करता है, उसे लगन होती है और वह सफ़ल होता है। जिन्हें लगन नहीं होती वे सफ़ल नहीं होते। जिज्ञासु का काम तो परमार्थ पथ पर चलकर उस विद्या की प्राप्ति करना है जो संसार भर की सब विद्याओं की मूल है। यदि इस काम में एक या दो घण्टे नित्य लगाता है और शेष सारा समय संसार के कामकाज में व्यतीत करता है तो वह विद्या जल्दी कैसे प्राप्त हो सकती है ? यह तो बड़ी भारी दया संत-सतगुरु या परमपिता परमेश्वर की समझनी चाहिये कि वे इतनी थोड़ी मेहनत पर भी अपनी कृपा का बल देते हैं और यदि अभ्यासी अपनी लगन में सच्चा है, तो उसे अन्तर में थोड़ा बहुत सहारा भी देते हैं।

संतमत का अभ्यास बहुत सरल है परन्तु मन का बहाव संसार की तरफ़ होने के कारण अभ्यासी इसमें कठिनाई का अनुभव करता है। अभ्यासी को चाहिये कि सच्चे मन से अपनी इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाये और जो लगन संसार की तरफ़ लगी है उसे शनैः-शनैः छोड़ता जाये। इस काम में सदा सतर्कता के साथ अपने मन की चौकसी करता रहे और यह देखता रहे कि मन क्या-क्या तरंगे उठाता है। जो तरंगें संसार तथा विषयों की तरफ़ ले जाती हैं और जो परमार्थ पथ में बाधक हैं, उन्हें रोके, बढ़ावा न दे और जो तरंगें परमार्थी विचारों को बढ़ावा दे, उन्हें प्रोत्साहन दे।

मन की तरंगो पर रोक

अब यह प्रश्न उठता है कि मन को संसारी तरंगों से कैसे रोका जाये ? मन की तो यह आदत जन्म-जन्मान्तर से पडी हुई है कि हर समय विषय -चिन्तन में लगा रहता है, संसारी बातें ही सोचा करता है। सोते-जागते वह अपनी यही चाल चलता रहता है। यहाँ पर यह सोचना चाहिये कि यह स्थिति उन लोगों की है जो निपट संसारी हैं। इसके विपरीत जिन्होंने

सतगुरु के श्री चरणों में आशय ग्रहण किया है और उनसे नाम लिया है, यानी दीक्षा ली है, उनमें और निपट संसारियों में कुछ भेद अवश्य है। सतगुरु के सत्संग से और नाम के सुमिरन तथा अन्तर में ध्यान करने से अभ्यासी में ऐसी योग्यता स्वतः आ जाती है कि वह अपने मन की चाल पर निगाह रख सके। इस काम में सतगुरु से सहायता माँगें। लगन सच्ची होने पर सहायता अवश्य मिलती है। जब-जब सांसारिक हिलोरें मन में उठती हुई दिखाई पड़ें, जब-जब मन की चाल बहिर्मुखी हो, तुरन्त चौंकन्ना हो जायें और अपनी सुरत और ध्यान को ऊपर की तरफ़ जोड़ दें, अर्थात जिस स्वरुप का ध्यान करने को बताया गया है वही ध्यान करने लगें या जिस नाम का सुमिरन करने को बताया गया है वह ध्यान करने लगें। ऐसा करने से उनके मन की धार का प्रवाह इन्द्रियों की ओर न जाकर ऊपर की ओर जुड़ जायेगा और प्रभु-प्रेम का रस पाकर (चाहे वह किनकी मात्र ही क्यों न हो) मन का बहाव संसार की ओर होने से बच जायेगा।

नाम के स्मरण का रस तथा स्वरुप के ध्यान का रस जिस विधि से गुरु ने बताया हो, अभ्यास करके प्राप्त करना चाहिए। आन्तरिक शब्द का रस (चाहे वह सहस्दल कँवल का हो, त्रिकुटी का या अन्य किसी ऊँचे स्थान का) इतना आकर्षण रखता है कि यदि ध्यान उधर लगा दिया जाये तो वह मन की धार को संसार की ओर से हटाकर अपनी ओर खींच लेगा। अभ्यासी को चाहिये कि शब्द की धार को पकड़ने का प्रयत्न करें। जैसे-जैसे शब्द का रस अधिक मिलेगा तो वह धार इसी तरफ़ को बढ़ती जायेगी और जितनी देर वह धार इस स्थान पर ठहरेगी, जहाँ वह शब्द हो रहा है उतनी देर वह ख़ूब रस देगी। इस तरह अभ्यास करने से मन की चाल दुनियाँ की तरफ़ को तथा इन्द्रियों की ओर को कम होती जायेगी और ऊपर की चढ़ाई करने में आसानी होगी।

अभ्यास के लिए समय निश्चित करो - मन को अन्तर्मुखी करने का उपाय

संतमत के अभ्यासियों को चाहिये कि अभ्यास के लिये विशेष समय निश्चित कर लें। उस समय के लिये कोई काम उठाकर न रखें। जब अभ्यास करने बैठें तो उस समय संसार तथा उसके पदार्थों का ख़्याल मन में न आने दें। अपना ध्यान गुरु के बताये हुए अभ्यास में

लगावें या गुरु के चरणों में लगावें। ऐसा करने से ध्यान और भजन में कुछ रस अवश्य मिलेगा अन्यथा मन दुनियाँ के ख़यालों में लगा रहेगा और अभ्यास का कोई लाभ नहीं होगा। ऐसा तो सम्भव नहीं है कि मन, जो जन्म-जन्मान्तर से दुनियाँ और उसके विषयों के सुख का अभ्यस्त है, अपना काम एकदम बन्द कर दे या एकदम उधर से हटकर ईश्वरोन्मुख हो जाये। आदत के वश वह संसारी भोगों की तरंगें भजन के समय भी उठायेगा, किन्तु अभ्यासियों को चाहिए कि उसी समय उसको रोकें। उसको संसारी ख़्यालों से ऊँचा आनन्द दें जिससे वह संसारी विचारों के घटिया आनन्द को छोड़ देगा। इसका आशय यह है कि उसे गुरु स्वरुप के ध्यान में या शब्द या प्रकाश के ध्यान में (जैसा जिसको बताया गया हो) लगा दें, जिसका प्रभाव यह होगा कि ध्यान लगाने में आसानी हो जायेगी। जब दुनियाँ का ख़्याल पैदा हो और ध्यान के समय भी दुनियाँ की गुनावन दूर न हो तो ध्यान के साथ-साथ नाम का सुमिरन भी करें। यदि यह युक्ति भी काम न दे तो कोई भजन इत्यादि जिसमें प्रभु का प्रेम विरह भरा हुआ हो और जो मन को बहुत प्यारा लगता हो, उसे मन ही मन गाकर पाठ करें और अभ्यास में लग जायें। जब मन इस काम में लग जायेगा तो दुनियाँ की गुनावन छोड़ देगा। जब मन में थोड़ा बहुत प्रभु प्रेम का प्रवाह होने लगेगा, उस समय शब्द की ध्वनि भी स्पष्ट होती जायेगी और अभ्यास में रस मिलने लगेगा।

मन एक समय में एक ही काम कर सकता है, यदि वह भजन में न लगे तो ध्यान में लगावें और यदि ध्यान में भी न लगे तो प्रेम या विरह से परिपूर्ण भजन गाने में लगायें और यदि ऐसा करने पर भी दुनियाँ के ख़्याल को न छोड़े तो फिर सुमिरन करें। सुमिरन के लिए जो नाम गुरु ने दिया हो, उसी को पकड़ना अच्छा है। वैसे तो अनेकों नाम हैं, जैसे 'ॐ' राम, सतनाम, अल्लाह, राधास्वामी, आदि परन्तु उस नाम विशेष का उच्चारण इस तरह करें कि उसे हृदय चक्र से उठावें और कंठ चक्र, सहस्दल कँवल से गुजारता हुए त्रिकुटी पर ख़त्म करें। (नोट - इसकी विधि संत सतगुरु से मालूम करके तब इस अभ्यास को करना चाहिए।)

जैसा कि ऊपर कहा गया है, मन पूजा, ध्यान और भजन के समय संसारी तरंगें उठाया करता है और उसमें विघ्न पैदा करता है क्योंकि उसकी यह आदत पड़ी हुई है। उसी आदत के वश वह पूजा के समय के अतिरिक्त भी संसारी तरंगों में झूमता रहता है। यह सब तरंगें अनुचित और बेफ़ायदा हैं क्योंकि इनमें कोई

परमार्थी लाभ नहीं होता। ऐसे वक़्त में भी, यानी पूजा के अलावा और समय में भी, मन की सांसारिक तरंगों पर चौकसी रखें और उन्हें रोकने के लिए अन्दर गुरु-स्वरुप का ख़्याल करें। अपनी सुरत को उन संसारी विचारों और तरंगों से ऊपर उठाकर ऊँचे चक्रों (सहसदल कँवल या त्रिकुटी) की ओर फेरें। ऐसा करने से वे हिलोरें या तो बन्द हो जायेंगी या उनका वेग कम हो जायेगा। किन्तु यह आवश्यक है कि अभ्यासी का प्रेम (चाहे थोड़ा बहुत ही हो) गुरु चरणों में तथा उनके स्वरुप में हो, या अन्तर में ऊपर की ओर सुरत को फेरने में रस आता हो। यह रस कुछ दिन अभ्यास करने की आदत डालने से आता है।

यदि किसी अभ्यासी का गुरु स्वरुप में प्यार ओर भाव कम है या नहीं है, और न उसे आन्तरिक शब्द का कोई रस मिला है, तो उसके लिए यह उपाय है कि जब कोई ख़राब तरंग मन में उठे तो उसे नर्क का भय दिखायें, चौरासी लाख योनियों का डर दिखावें और यह समझायें कि ऐसी तरंगों के उठाने से भजन और ध्यान की हानि होती है। यदि उसे संत महात्माओं के वचनों में श्रद्धा और विश्वास है और थोड़ी भी प्रीति है तो मन और इन्द्रियाँ भयभीत होकर रुक जावेंगी और तरंग हट जायेंगी।

राम सन्देश : अप्रैल-जून, 2019.

आप अपनी किस्मत ख़ुद बदल सकते हैं

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. कृष्ण लाल जी महाराज)

सन्त का हृदय आलोकित होता है. वह अपने आत्मिक प्रकाश को शिष्य के ऊपर डालता है जिससे शिष्य का चित्त भी आलोकित होने लगता है. सन्तों की संगति से सत, चित और आनन्द प्राप्त होता है. जो लाभ हज़ार बरसों की तपस्या से नहीं मिलता वह सन्त की थोड़ी सी संगति से प्राप्त हो जाता है। पहले पहल वह आनन्द अस्थायी (temporary) होता है क्योंकि जिस वक्त इन्द्रियों के भोग का आनन्द मिलता है तो वह फिर दब जाता है. लेकिन फिर बार-बार सन्त की सोहबत में जाने से वह ठहरने लगता है। इसलिए सन्त मत में सत्संग और गुरु की सोहबत पर बहुत ज़ोर दिया गया है. यहाँ सत्संग से मतलब है की हम सम विचार धारा के सत्संगी भाई-बहनों के साथ जहाँ कहीं भी सत्संग होता हो उसमें शामिल होना और वहाँ जो ईश्वर की कृपा की धार (grace) आ रही है उसको अपने अंतःकरण में समाहित करना मुख्य है. दूसरा, गुरु का सत्संग (सोहबत) का मतलब है कि बार-बार गुरु के दर्शनों के लिए जाना, उनसे अपनी हालत, अच्छी या बुरी, साँसारिक या आध्यात्मिक, नम्रता पूर्वक निवेदन कर देना और अपनी कोई इच्छा उनके सामने न रखना, उनके आधीन हो जाना।

गुरु वह है जिसने अपने आपको पूरी तरह ईश्वर में लय कर दिया है और अन्दर से उसी से लगन लगी है. बाहर से (स्थूल देह) संसार के काम स्वतः होते रहते हैं. साधारण व्यक्तियों की स्थूल देह और आत्मा के बीच मन होता है. गुरु या सन्त के दो ही चीज़ें होती हैं - आत्मा और स्थूल देह, उनका मन नहीं होता।

सच्चे गुरु की पहचान यह है कि उसकी सोहबत (संगति) में बैठकर मन शान्त हो जाये और आत्मिक आनन्द आने लगे। ऐसे ही लोग सन्त होते हैं। ईश्वर ने दुनियाँ तकलीफ़ के लिए नहीं पैदा की है दुःख तकलीफ़ इसलिए आते हैं कि यहाँ की चीज़ों को भोग कर उनसे

बेज़ार हो जायें (ऊब जायें) और सच्चे सुख की तलाश करें। अगर कोई शख़्स दुनियाँदार (निपट संसारी) है तो एक दिन वह भी दीनदार (परमार्थी) हो जायेगा। रुपया, मान, बढ़ाई, स्त्री, सबका भोग किया तो जो आनन्द मिला वह दायमी (स्थायी) नहीं पाया। सच्ची शान्ति नहीं मिली. लेकिन जो बेवक़ूफ़ होगा वह उसी को सच्चा आनन्द समझेगा और जो अक्लमंद होगा वो उसमें न फँसकर अपने अन्दर आत्मा की तरफ घुसता जायेगा। दुनियाँ की चीज़ों का आनन्द छोड़कर उससे ऊँचे आनन्द यानी आत्मा के आनन्द और आख़ीर में आनन्द महज़ (आनन्द ही आनन्द) यानी ईश्वर को पा लेता है जो आनन्द का सागर है. आनन्द तुम्हारे अन्दर है, बाहर की चीज़ों में नहीं है।

जब आत्मा आवरणों में दबी रहती है तो तम अवस्था में होती है जिसमें अन्धकार ही अन्धकार है, आलस ही आलस है. यह पशुओं की सी अवस्था है. तमोगुणी वृत्ति के मनुष्य उदर-पोषण, मैथुन और निन्द्रा - इन तीन बातों में ही अपनी ज़िन्दगी गुज़ार देते हैं। इनमें से जब किसी को जागृति हो जाती है तब वे 'रज' के स्थान पर आ जाते हैं, जिसमें द्वन्द की अवस्था होती है यानी कभी अच्छी और कभी बुराई में व्यवहार करते हैं. कभी दैवी वृत्तियाँ होती हैं और कभी आसुरी। इन्हीं में लिप्त रहने को देवासुर संग्राम कहते हैं. जब मनुष्य इनसे स्वतंत्र (liberate) हो जाता है तब उसकी आत्मा ईश्वर-रूप हो जाती है। यह हालत 'सालोक्य' की है। यानी सारे गुण ईश्वर के होते हैं, फर्क़ सिर्फ़ यह होता है कि एक के (ईश्वर के) शक्ल नहीं होती और दूसरे के शक्ल है।

ईश्वर का नियम है कि जब किसी का फ़ायदा करना होगा (उद्धार करना होगा) तब वह मनुष्य रूप धर कर आयेगा। हमजिन्स को हमजिन्स से ही फ़ायदा होगा। (यानी एक प्रकार के जीवधारी को दूसरे वैसे ही जीवधारी से फ़ायदा होगा - तुलसीदास जी के शब्दों में - "खग जाने खग ही की भाषा") या तो हम इतने ऊँचे उठ जायें यानी हमारी आत्मा इतनी निर्मल हो जाये कि ईश्वर तक पहुँच जाये या वह इतना नीचे उतर आये कि हमारी हो जाये, तब फ़ायदा होगा. निगुण का ध्यान नहीं हो सकता. गुरु ही एक ऐसी हस्ती है जी मनुष्य रूप में परमेश्वर है.हमारे आपके तरह शरीर धारी है, उसी का ध्यान किया जा सकता है. वह सगुण

रूप में परमेश्वर हैं. उसका ध्यान करने में आसानी होती है, उससे बातचीत करके समझा जा सकता है.

कोई ख्वाहिश तेरे बजुज़ (सिवाय) बाक़ी न रहे (यानि तू ही तू रहे) तेरी मर्ज़ी पूरी हो (तेरी इच्छा पूर्ण हो) हमें कुछ नहीं चाहिए - न आनन्द, न ज्ञान. न शान्ति।

सर बरहनः नेस्तम दारम कलाहे चार तर्क /

तर्के-दुनियाँ, तर्के उक़बा, तर्के मौला, तर्के तर्क //

यानी पहले दुनियाँ को छोड़ो, फिर गुरु के ख़्याल को छोड़ो, फिर छोड़ने के ख़्याल को भी छोड़ दो।

जो शौक़ ज़िन्दगी में है वही मरने के बाद करोगे. डाक्टरी, रुपया पैदा करना, गुरु बनना, आध्यात्म का प्रचार करना, आदि इच्छाओं के अन्तर्गत आता है। मरने के बाद कहाँ जाओगे, यह किसी फ़क़ीर से पूछने की ज़रूरत नहीं है. डाक्टर बनना चाहते हो तो उस तरह के वंश में और सन्त बनना चाहते हो तो सन्त के घर जन्म मिलेगा. एक शख़्स कमज़ोर पैदा होता है और उसके माता-पिता भी कमज़ोर हैं तो उसकी तन्दरुस्ती अपनी कोशिश से ठीक कर सकता है और आगे चलकर तन्दरुस्त हो जाता है. वह अपनी कोशिश से बना यह दुनियाँ की बात है. दीनी (परमार्थी) बातों में इरादा पक्का और आचरण (character) का मज़बूत हो. मन को बुराइयों से हटाकर एक ऐसे केंद्र (centre) पर ले आयें जहाँ अच्छाई उसका स्वभाव बन जाये।

यह रास्ता कमज़ोरों के लिए नहीं है. सरदार जी (पूज्य डॉ. करतारसिंह जी) पहले इनकम टैक्स में पी.ए. थे। अपनी हिम्मत और मेहनत से पढ़ाई की, इनकम टैक्स इंस्पैक्टर बने, और अपनी हिम्मत और मज़बूत इरादे से नौकरी छोड़कर बिज़नैस लाइन (व्यवसाय) में आ गए. इस तरह अपनी साँसारिक उन्नति की. इसी तरह हर शख़्स अपनी किस्मत पलट सकता है.

हमारे पिछले कर्म एक तरफ़ को ले जा रहे हैं और हमारी कोशिश दूसरे रास्ते पर जाने की है. जब दोनों टक्कर खायेंगे तो क्या रास्ता नहीं बन जायेगा ?

ज़िन्दगी (अमर जीवन) आपके अन्दर है, ज्ञान आपके अन्दर है, लेकिन इनके ऊपर पर्दा पड़ गया है. इन्द्रयों के भोग, मन की वासनाओं और बुद्धि की चतुराई ने यह पर्दा डाल रखा है. इसे उतार फेंको. आत्मा का असली रूप खुल जायेगा. यही आत्मा का साक्षात्कार है और यही आज़ादी (मोक्ष) है.

चार तरह के खतरे होते हैं -

(1) ईश्वरीय - जैसे बुद्ध भगवान को हुआ था. इस सँसार में मनुष्य जन्म लेकर आया था और क्या करने लगा. यह ख़तरा (caution) हमेशा चेताता है, बार-बार आता रहता है और भाव सागर से निकालकर ही छोड़ता है.

(2) ख़ैरात (दान पुण्य) - मनुष्य के अन्दर जो आत्मा है वह उसे भलाई और नेक काम (शुभ कर्म) के लिए प्रेरित करती रहती है. यदि प्रेरणा मिलते ही तुरन्त उसे कार्यान्वित कर दिया जाये तो ख़ैरात या दान-पुण्य, सत्य की तरफ़ ले जाता है, जिससे आत्मा के साक्षात्कार में मदद मिलती है. अगर इस तरह की चेतावनी मिलने पर आदमी सोच-विचार करने लग जाये तो फिर कुछ काम नहीं बन पाता.

(3) तीसरा ख़तरा मन का है - मन दुनियाँ में फँसाता है और तरह-तरह की इच्छायें उठाता रहता है. एक इच्छा की पूर्ति होती है तो उसके साथ बहुत सी और इच्छायें पैदा हो जाती हैं. मिसाल के तौर पर मकान बन रहा है तो उसमें ऐसा हो वैसा हो, यानी शेख-चिल्लिओं की सी बातें सोचकर उन्हें व्यावहारिक रूप देना चाहता है. भगवान से प्रार्थना करता है कि अच्छे किराये पर चढ़ जाये और जब किरायेदार तंग करता है तब परेशान होता है कि न तो किराया देता है और न मकान ख़ाली करता है, किस आफ़त में फँस गए ? यह ख़तरा एक ही तरह का होता है.

(4) चौथा ख़तरा माया (शैतान) का है - जब संध्या में बैठते हैं तो दुनियाँ भर के ख़्याल जाने कहाँ से आ जाते हैं और पूजा में मन नहीं लगने देते. अपने इष्ट का ख़्याल जाता रहता है और दुनियाँ तथा उसके सामान आदि के विचार ही उठते रहते हैं.

पहले दो ख़तरे अच्छे होते हैं और ईश्वर की तरफ़ ले जाते हैं. बाक़ी दोनों ख़तरे मनुष्य को गिराने वाले होते हैं और ईश्वर से दूर कर देते हैं. उनसे सावधान रहना चाहिए.

राम सन्देश : जनवरी-फ़रवरी, 2012 .

ईश्वर की दूरी और नज़दीकी

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

ओउम के मायने शास्त्रों में उस शक्ति से हैं जो चारों जगत - पिण्ड, ब्रह्माण्ड, पारब्रह्म और दयाल देश, की स्वामी है, जिसमें उस आदि शक्ति के तीनों गुण - पैदा करने वाला, पालन करने वाला, प्यार करने और आनन्द देने वाला, हैं. यह शब्द सब सिफ़ात का मजमां (गुणों का भण्डार) है. जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति,और तुरीया हर हालत में मौजूद हैं. इस शब्द के अन्दर भी सभी शक्तियाँ मौजूद हैं. इसके उच्चारण करने का मतलब यही है कि उस शक्ति का होना हम अपने घट में महसूस करें, हमको ज्ञान हो और आहिस्ता-आहिस्ता उससे मिलकर एक हो जायें. यह परमात्मा में मिल जाने का महामंत्र है.

ऋषियों का कहना है कि ईश्वर सबसे परे है. इतना दूर जितना हम ख़्याल भी नहीं कर सकते. इतना महान जिसका हम अन्दाज़ा भी नहीं लगा सकते. इतना फ़ैला हुआ जो ख़्याल में भी नहीं आ सकता. उसके और हमारे बीच में इतना फ़ासला है जो ध्यान में भी नहीं आ सकता. उसकी इस महानता का, इस दूरी का, इस फ़ैलाव का ख़्याल करने से जीव घबरा जाता है. तमाम जगत, ब्रह्माण्ड, पारब्रह्म से परे वह है इसलिए दुनियाँ की सब चीज़ों को, सब ख़्वाहिशों और वासनाओं को, सब इन्द्री भोगों को छोड़कर उसका पाना अत्यंत कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव सा है.

लेकिन सन्तों ने दया करके उसको पाना बहुत ही सरल कर दिया है. वे कहते हैं कि वह सबसे परे है, यह ठीक है, लेकिन वह सबसे नज़दीक भी है. इतना समीप है जिसका तुमको ख़्याल भी नहीं हो सकता. वह बहुत सहल है. जितनी मेहनत तुमको दुनियाँ की चीज़ों को हासिल करने में लगती है, उससे भी कम मेहनत से वह हासिल हो जाता है, मगर शर्त यह है कि तुम्हें उससे प्यार हो. हमारी आत्मा में उससे प्यार क़ुदरती तौर पर है, मगर सोया हुआ है

और दुनियाँ की और चीज़ों को पाने की कोशिश करने के कारण सच्चे रूप में ज़ाहिर नहीं हो रहा है. सन्तों की सेवा में जाकर उसको जगाओ.

जिस चीज़ को मन प्यार करता है उसको अपने पास ले आता है, खींच लेता है. जिस आदमी को हम प्यार करते हैं, चाहे वह जिस्मानियत के लिहाज़ से हज़ार मील की दूरी पर हो, लेकिन प्यार की वजह से वह हर समय दिल में मौजूद रहता है. जिससे मुहब्बत होती है उसका ध्यान करने में कोई तकलीफ़ नहीं होती, बल्कि आनन्द आता है. जिससे प्यार होता है उसके ऊपर कितनी ही बड़ी चीज़ क्यों न हो, कुर्बान करने में आनन्द आता है, दुःख नहीं होता.

इसलिए सबसे आसान रास्ता उस तक पहुँचने का यह है कि बजाय इसके कि यह ख़्याल करो कि वह दूर है, यकीन करो कि वह तुम्हारे नज़दीक से नज़दीक है. हर समय उसकी याद रखो, उसका ध्यान करो. सोचो, वह तुम्हारा हमेशा का साथी है और उसी के पास आकर तुम्हे आनन्द मिलेगा. दुनियाँ की जो चीज़े उसी ने तुमको दी हैं वो थोड़े दिन के लिए हैं. उन थोड़े दिनों रहने वाली चीज़ों के लिए अपने असली प्रीतम को मत भूलो. जो चीज़ें उसने दी हैं उनको अपना मत समझो. जब तक वे चीज़ें मौजूद हैं, और उसने दे रखी हैं, उनकी सेवा में लगे रहो और जब वह वापस माँगे, उसे ख़ुशी से वापस कर दो.

इस तरह अपने मन के अन्तर में उससे लौ लगाए रहो. अपनी वृत्ति को बाहर से हटाकर उसी ईश्वर में लगा दो. हर समय उसका ध्यान करो. सब दुनियांवी चीज़ों का जो ज़ाहिरा सहारा है उसको छोड़कर उसी मालिक का सहारा लो. उसी का असली सहारा है. सब चीज़ों को देने वाला वही है, लेकिन बाहरी रूप दूसरा है जो धोखा है. जितना तुम दिल से उसके समीप होते जाओगे, इतना लम्बा चौड़ा रास्ता मिनटों में तय होता जायेगा. वह हमेशा-हमेशा से तुम्हारे साथ था, लेकिन और जन्मों में तुम्हारे अख्तियार (वश) में नहीं था कि तुम इस ख़ुदी के परदे को हटाकर तुम उससे एक हो जाओ. लेकिन इस इन्सानी ज़िन्दगी में उसने ऐसा मौक़ा उसने तुम्हें दिया है कि तुम अपनी ख़ुदी को मिटाकर उससे एक हो जाओ.

यह कहना कि वह हमको इतने जन्मों में मिलेगा बेकार है. यह सब तुम्हारे प्रेम पर मुनस्सिर (निर्भर) है, और तुम्हारे हाथों में है. अगर तुम सब कुछ, अपनी सब ख़्वाहिशात को, अपने और उसके बीच से हटा दो तो इसी जन्म में, बल्कि इसी वक्त, वह तुम्हें मिल सकता है. सब अपने प्रेम की गहराई पर निर्भर है. ऊपरी तौर पर हम अपना सब कुछ उसको देते हैं, लेकिन वास्तव में कुछ नहीं देते.

आत्मा की वापसी

इन्सान एक उल्टा दरख़्त है जिसकी जड़ सच-खण्ड में है और इसका फैलाव इस दुनियाँ में है, और इस दुनियाँ में रोज़ -रोज़ फैलता जाता है. आत्मा में तीन ख़्वाहिशें (इच्छाएँ) छिपी हुई हैं - (1) जिन्दा रहने की ख़्वाहिश, (2) ज्ञान प्राप्त करने की ख़्वाहिश, और (3) आनन्द प्राप्त करने की ख़्वाहिश. इन्हीं ख़्वाहिशों को पूरा करने के लिये मनुष्य दुनियाँ की हर चीज़ में फँसता है, उनको अपनाता है और जिनसे वह चीज़ें हासिल होती हैं उनको अपना समझ कर रखने की कोशिश करता है.

यह चीज़ें ख़ुद आत्मा के अन्दर मौजूद हैं. लेकिन किसी वजह से आत्मा अज्ञान के वश में होकर अपने असली रूप को भूल गयी है. उसको चेताने के लिये कुछ ख़ास हस्तियाँ (आत्मायें) इस देश में भेजी जाती हैं. जैसे आदमी ख़ुद अपना अक्स नहीं देख सकता बल्कि अपना रूप देखने के लिये उसे शीशे, पानी, या किसी ऐसी चीज़ की ज़रूरत है जिसमें उसका अक्स पड़े और वह उसको देखे. इसी वास्ते वह हस्तियाँ यहाँ भेजी गयी हैं. अगर वे यहाँ न भेजी जाती तो उसे कभी अपना ज्ञान न होता और वह हमेशा अज्ञान की हालत में पड़ा रहता.

लेकिन चैतन्य कभी अज्ञान की अवस्था में नहीं रह सकता, इसलिए उसको यहाँ आना ज़रूरी था. यहाँ आकर चीज़ों में उसका अक्स पड़ता है और वह अज्ञानवश अपने स्वरुप को उसमें देखकर इन चीज़ों में उनका रूप समझता है और उनको अपनाता है. लेकिन दुनियाँ की सभी चीज़ें नाशवान हैं, एक हालत पर सदा क़ायम नहीं रहतीं, हमेशा बदलती रहती हैं.

एक की होकर नहीं रहती, जब वह उससे छिन जाती हैं, दूसरे की हो जाती हैं, या उनका रूप बदल जाता है, तब दुःख का होना ज़रूरी है.

इस तरह से हालांकि एक मतलब हल हो गया कि सुरत या आत्मा सोते से जाग्रत अवस्था में आ गयी, लेकिन अज्ञान अभी दूर नहीं हुआ. दुःख पर दुःख उठाती हैं. कुछ समझ आती है लेकिन मन और माया अपने जाल में उसे बार-बार फांस लेते हैं. इस तरह से सैंकड़ों जन्म गुज़र जाते हैं. सैंकड़ों वर्षों के तजुर्बे के बाद उसको ज्ञान होने लगता है कि जिस चीज़ की उसको तलाश है वह तो उसका मेरा ही स्वरुप है. दुःख तो मेरे अज्ञान के कारण है. असलियत को समझ कर वह मन और माया से वास्ता सिर्फ़ काम निकालने तक रखती है और सुख, शान्ति, ज्ञान और आनन्द के लिये अपने अन्दर की तरफ़ मुड़ती है.

जितना अन्तर में घुसती जाती है उतनी ही ये तीन चीज़ें बढ़ती जाती हैं और उनका विश्वास पुख़्ता होता जाता है,और जितना विश्वास पुख़्ता होता है उतनी और भीतर में घुसती जाती हैं और बाहरी वस्तुओं से कार्य मात्र के लिये ताल्लुक़ रखती हैं. इस तरह धीरे-धीरे पूर्ण रूप से एक दिन अपने अन्दर स्थिति कर लेती हैं और बाहरी वस्तुओं से ताल्लुक़ तोड़ लेती हैं. यही मनुष्य की ज़िन्दगी का मक़सद (ध्येय) है. इस मक़सद को हासिल करने के लिये यह ज़रूरी है कि इन्सान किसी की हिदायत (आदेश) में अपनी ज़िन्दगी गुज़ारे क्योंकि जब इन्सान किसी भोग में फँस जाता है तब अव्वल तो वह उसको बुरा नहीं समझता जब तक कि कोई उसके नुक़्सों से उसको आगाह (दोषों से परिचित) न करे और आगाह हो जाने पर भी उसकी इच्छा शक्ति इतनी कमज़ोर हो जाती है कि बुराइयों को जानने पर भी, उनकी तकलीफ़ें देखते हुए भी, वह अपने आपको निकाल नहीं सकता.

इसलिए ऐसे शख़्स की ज़रूरत है जो इस रास्ते पर चला हो और जिसने अपनी आत्मा को इस प्रपंच से निकाल लिया हो, जो हमारा हमदर्द हो, जिसकी इच्छा शक्ति इतनी प्रबल हो कि हमको मदद दे सके. ऐसे आदमी के मिल जाने के बाद यह ज़रूरी है कि हम अपनी कठिनाइयों को उसके सामने रखें. उससे कोई बात पोशीदा (छिपाकर) न रखें. जो राय वह

दे उस पर अमल करें और अपने हाल से उसको सूचित करते रहें. समय-समय पर उसके सत्संग से लाभ उठाते रहें.

आवश्यक चेतावनी

परमार्थ पर चलने और उस पर क़ायम रहने का सिर्फ़ एक ही तरीक़ा है कि संतों के बताये हुए रास्ते पर सख़्ती से अमल (पालन) करें और जहाँ तक हो सके उसे अपनायें और उसे अपनी ज़िन्दगी का हिस्सा बना लें. लेकिन अफ़सोस कि हम सत्संग में दाख़िल होकर भी उस पर अमल करने की कोशिश नहीं करते.

बरसों गुज़र गए लेकिन जहाँ थे वहीं मौजूद हैं. कभी रास्ते पर शुबहा (शंका) करते हैं और कभी मुर्शिद (अधिष्ठाता) पर, लेकिन अपनी कमज़ोरियाँ नहीं देखते. इसलिए संतों के बताये हुए मार्ग पर मज़बूती से चलने की भरसक कोशिश करनी चाहिए.

हरेक सत्संगी का कर्तव्य है कि वक्त निकालकर दोनों वक्त संध्या ज़रूर करे. सुबह और शाम की संध्या को किसी बहाने टाल देना, उत्साह की कमी ज़ाहिर करता है. यह रास्ते की रुकावट का कारण है. जहाँ तक मुमकिन हो, भण्डारे में ज़रूर हाज़िर हों. भण्डारे के दिनों में कोई न कोई ज़रूरी काम निकल आता है और भण्डारे पर जाना रद्द हो जाता है. अगर किसी मजबूरी की वजह स न जा सकें तो किसी दूसरे वक्त इज़ाज़त लेकर पहुँचें और अपनी हाज़िरी ज़रूर दें.

अपनी इन्द्रियों को जहाँ तक हो सके, क़ाबू में रखें, और दुनियाबी ख़्वाहिशात (सांसारिक इच्छाओं) को कम करते जायें. ग़लती न करने की अपेक्षा ग़लती करके उसे सुधार लेना ज़्यादा अच्छा है. जिस तरह खेत में उपजे हुए खरपात को उखाड़ कर उसी में सड़ने के लिये छोड़ देने से उसकी उपज शक्ति बढ़ती है, उसी प्रकार गलती सुधारने से हृदय बलबान बन जाता है.

गुरुदेव सबका कल्याण करें, अबको ज्ञान दें.

राम संदेश : अक्टूबर , 1982.

ईश्वर से सहयोग करें - जिस हाल में उसने हमें रखा है उसमें खुश रहें

(महात्मा डॉ . श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

" बादये वस्ल चूं शबद नज़दीक,आतिशे शौक़ तेज तर गरदद ." जितनी माशूक़ (प्रियतम) के मिलने की घड़ी नज़दीक आती जाती है उतना ही मिलने का शौक़ तेज़ होता जाता है. यानी जितनी मौत की घड़ी नज़दीक आती जाती है, उतना ही आनन्द आता जाता है और बड़ी ख़ुशी होती है कि कब मरूँ और कब प्रियतम में समां जाऊँ. मगर यह किसकी हालत है ? जिसने अपनी आत्मा को ईश्वर में मिला दिया है और दुनियाँ भोग रहा है. बुद्धि से उसका लगाव (attachment) ईश्वर से है. वह अपने संस्कार भी भोग लेता है और परमार्थ भी उसका बन जाता है. मरते वक़्त रोता हुआ नहीं जाता है और फिर लौट कर भी नहीं आता क्योंकि यहाँ उसका किसी से लगाव ही नहीं है.

अपने स्थूल शरीर पर जो दुःख -सुःख का अनुभव होता है वह अपनी सुरत (attention) के द्वारा होता है. चोट लगी, बड़ा दुःख हुआ. लेकिन यदि आपको सुरत का अभ्यास आता है, यानी आपने अपनी सुरत को नीचे से ऊपर ले जाने का अभ्यास कर रखा है, तो आप उस समय मन के स्थान (mental plane) पर आ जाइए, यानी स्थूल शरीर (physical plane) से ऊपर उठा लीजिये तो वह कष्ट अनुभव नहीं होगा. इसे करके देख लीजिये.

आप का जिस चीज़ में आनन्द मिलता है जैसे ताश, शतरंज या किसी दोस्त की सोहबत, उसमें अपनी सुरत जोड़ दीजिये. जब आपका ध्यान पूरी तरह से उस खेल या दोस्त में लग जायेगा तो चोट का दर्द नहीं मालुम होगा या बहुत कम मालुम होगा. दर्द कहाँ मालुम होता है, जहाँ आपकी सुरत (attention) होती है . तो दरअसल जो ऊँचे अभ्यासी हैं वे कष्ट भोगते तो हैं लेकिन उसका अनुभव अपने शरीर और मन पर उतना नहीं होने देते जितना साधारण मनुष्य को होता है. इसी तरह के अभ्यास से मनुष्य दुनियाँ के दुःखों से भी बच

जाता है. उसे चाहे शारीरिक कष्ट हो या मानसिक कष्ट, इस अभ्यास के द्वारा वह दुःखी और विचलित नहीं होता.

हमारे जो पिछले कर्म हैं उनमें से कुछ हिस्सा हमें इस जीवन में मिलता है वही तक़दीर (fate) कहलाता है. उसे हम यहाँ भोगते हैं और जो शेष रह जाते हैं, उन्हें संचित कर्म कहते हैं जो हमें भविष्य में भुगतने हैं, क्योंकि एक ही जीवन में हमारे सब के सब पिछले कर्म तय नहीं हो पाते. जितने कर्म कटते हैं, कट जाते हैं, शेष अगले जन्मों के लिए रह जाते हैं. कोई सन्त मिल जाय और मेहरबान हो जाय तो उसकी दुआ से कर्म भार हलका हो जाता है और आसानी से कट जाता है.

हम सब दुनियाँ में फँसे हुए हैं इसलिए इस हालत में जो दुआ की जाती है उसका ज़्यादा असर नहीं होता. दुनियाँ से अपने मन को साफ़ करके जो दुआ की जाती है उसका असर ज़्यादा होता है. जो लोग इंद्रियों में फँसे हैं और दिखाने के लिए ईश्वर से दुआ कर रहे हैं तो उस दुआ का ज़्यादा असर नहीं होता. दूसरी बात है कि जिन चीज़ों के लिए हम दुआ कर रहे हैं, वे दुनियाँ के पदार्थ हैं तो वे आपको उतने ही मिलेंगे जितनी आपकी पिछले जन्मों की कमाई है. इससे ज़्यादा नहीं मिलेंगें. और अगर ईश्वर की दया उमड़े भी और वे चीज़ें (जैसे धन दौलत, किसी सांसारिक व्यक्ति का प्रेम, कीर्ति, आदि) आपको मिल जाएँ तो क्या यह आपके ऊपर ईश्वर की कृपा होगी या उसका आपके ऊपर जुल्म होगा ? क्योंकि जितनी ज़्यादा दुनियाँ की चीज़ें वह आपको बख्शता है उतनी ही आपकी इच्छाएँ मोटी होती हैं, उतना ही ज़्यादा आप उनमें फँसते हैं. फिर एक इच्छा के बाद दूसरी इच्छाओं का अम्बार लग जाता है. मन कहता है कि " यह और मिल

जाये ". इस तरह से तो आपका कभी भी छुटकारा नहीं होगा. तो ईश्वर ऐसी दुकभी नहीं सुनता. हाँ , जब आप अपनी दुनियावी निचली इच्छाओं को छोडकर, उसके प्रेम के लिए, ऊँची दुआ करते हैं तो वह उसको सुनता है. आपकी जो कठिनाइयाँ और मुश्किलें उसके रास्ते में होतीं हैं उन्हें वह दूर कर देता है.

ईश्वर तो सच्चा बाप है, दयालु बाप है. वह तो ऐसा प्यारा बाप है कि अगर उससे आप ऐसी चीजें माँगे जिनसे आपका भविष्य ख़राब हो तो वह आपको नहीं देगा . हम अज्ञान में फँसे हुए हैं. नहीं जानते कि हमारा भविष्य किस तरह सुखमय होग . जो चीज़ हमको अच्छी लगती है, हम उसीकी इच्छा करते हैं , चाहें उससे हमारा भविष्य बिलकुल सत्यानाश हो जाय . गुरु कृपा और सत्संग से जब हमारी बुद्धि शुद्ध होने लगती है और होश आने लगता है, यानी जब हमारा अज्ञान दूर होने लगता है, तब हम पछताते हैं कि हाय में कैसी बुरी हालत में था. हम ख़ुद ही सोचने लगते हैं कि जो चीज़ हम परमात्मा से माँग रहे थे, उससे तो हमारा ढ़ेर हो जाता, अच्छा हुआ यह चीज़ हमको नहीं मिली.

ईश्वर सब जानता है कि हमारे पिछले कर्म कैसे हैं और आगे के लिये वह हमें क्या दें जिससे हमारी हांनि न हो और हमारा भविष्य उज्जवल हो. इसी वास्ते सन्त कहते हैं कि तुम्हारी जो बुद्धि है, वह मलिन बुद्धि है. तुम जिस चीज़ में फँसे हो उसी में अपना फ़ायदा समझते हो हालाँकि वह तुम्हें नुकसान देने वाली है. ईश्वर इसको ख़ूब समझता है. वह ऐसी कार्यवाही करता है जिसके करने स , और उसने हमें ऐसी जगह रखा है जहाँ रहने से, हमारे पिछले संस्कार भी कट जायें और आगे भी हमारा भविष्य अच्छा होता चला जाय. सुःख के धाम की तरफ़, जहाँ आनन्द ही आनन्द है, हमारा रुख़ (झुकाव) हो जाय और हम उस रास्ते पर चलने लगें. इसीलिये सन्त कहते हैं कि जिस हालत में भी हमें ईश्वर ने रखा हैं उसी में सहयोग (cooperate) करो. (यथा लाभ सन्तोष या राज़ी -ब -रज़ा). इसी में तुम्हारा सबसे ज़्यादा फ़ायदा है. जब मनुष्य की ऐसी धारणा बन जाती है तो उसे मन की शान्ति (peace of mind) मिलने लगतीं हैं .

दुनियाँ में तो आपको पिछले संस्कारों के मुताबिक चीज़ें मिलेंगी. हमें परेशानी इसलिए होती हैं कि हमें ईश्वर ने जिस हालत में रखा है उसको oppose (विरोध) करते हैं और उसको curse करते (दोष देते) हैं कि हम को इस हालत में रखा है. दूसरी बात यह है कि हम संसार और अपने रिश्तेदारों, लड़कों वगैरा के जीवन को अपनी इच्छा के अनुसार बदलना चाहते हैं. यानी हम ख़ुद ख़ुदा बनना चाहते हैं. आप यह समझते हैं कि हमारे से

ज़्यादा बुद्धि किसी की नहीं है. यहाँ तक कि ईश्वर जिसने हमें बनाया और इस संसार में रखा है, उसकी भी हम आलोचना करते हैं. अपने को उससे भी ज़्यादा अक़्लमन्द समझते हैं. ऐसा तो नामुमकिन है . ऐसा तो हो ही नहीं सकता. इसी वास्ते हम miserable (दुर्दशा में) हैं. हमारी भलाई इसी में है कि हम ईश्वर से सहयोग करने लगें और जिस हाल में उसने हमें रखा हैं हम उसी में खुश रहें और यह समझें कि दरअसल वह हमारा सच्चा बाप है.

जब मन की शान्ति मिलेगी तब ही आपका मन अभ्यास में ऊपर की तरफ़ चलेगा. जिस वातावरण में हम इस समय रह रहे हैं, अगर हम उसी में फँसे रहेंगे तो हम कभी भी इस माया जाल से नहीं निकल सकते. इसलिए जो सत्संगी भाई तरक्की करना चाहते हैं उनको यह चाहिये कि उन्हें जिस हालत में भी ईश्वर ने रखा है, उसी में ख़ुश रहें .

पहली चीज़ यह है कि contentment (संतोष) हो. जिस हालत में हो, उसी में ख़ुश रहो - इसी में तुम्हारा भला है. अगर तरक्की करना चाहते हो और दूसरों को देखकर तुम्हारी भी तबियत करती है कि तुम भी रुपया पैसा, शौहरत पैदा करो, तरक्की करो, तो कोशिश करो. मगर सहारा ईश्वर का लो. अगर कामयाबी मिल जाती है, तो उसको धन्यवाद दो - ' हे ईश्वर / तेरी बड़ी कृपा है ' और अगर कामयाबी नहीं होती, तो भी उसको धन्यवाद दो - 'हे ईश्वर / बड़ी कृपा है, न मालूम इस जगह पर पहुँच कर मुझे कितनी मुसीबत उठानी पड़ती . आपने बड़ी कृपा की जो मुझे सफलता नहीं दी.' इस तरह से कितनी संतुष्टि आपको हो जायेग . लेकिन हम अपने को कर्ता समझ कर जब कामयाबी नहीं होती है तो अपने को, या तक़दीर को, या ईश्वर को, दोष देते हैं. जिस आदमी के मन में असंतोष है क्या वह कभी सुखी रह सकेगा ? कभी नहीं. कितने ही हालात बदल जायें , दुनियाँ की कितनी ही चीज़ें उसे मिल जायें, उसकी कभी भी तृप्ति नहीं होगी. तृप्ति दुनियाँ की चीज़ों में नहीं है, वह तो अपने दिल में है. मन की इस बीमारी को दूर करो. जिस हालत में ईश्वर ने रखा है, उसमें खुश रहो. तभी कुछ तरक्की कर सकते हो, मन के स्थान से उठकर आत्मा के स्थान पर आ सकते हो.

जो व्यक्ति इन्द्रिय भोग में फँसा है, हर वक्त उसी के सोच -विचार में फँसा है, हर वक्त उसी की जुगाली करता है, क्या वह कभी विद्वान बन सकता है ? कभी नहीं. उसकी सुरत तो

निचली वासनाओं में जकड़ी हुई है. वह दिन -रात उसी की सोचता है, विषय भोग का आनन्द लेता है. ऐसा आदमी तो मनुष्य की हैसियत से पशु रूप में गिर जाता है. अगर मनुष्य जीवन में उसकी यह हविस पूरी नहीं हुई और निचली वासनाओं में फँसता गया, तो ख़्वाहिश तो उसकी पूरी होगी लेकिन किसी निकृष्ट योनी में. वहाँ जाओ और भोगो. वहाँ से जब उसकी तृप्ति हो चुकेगी तब फिर मनुष्य चोला मिलेगा .

इसी तरह मन की चाहों में बहने वालों का हाल है. अनावश्यक ख़र्च किया और फिर रोते हैं कि हाय, हमारा ख़र्च पूरा नहीं होता. इसका ज़िम्मेदार क्या ईश्वर है ? इसके ज़िम्मेदार तो तुम ख़ुद हो. हमारे गुरुदेव एक दिन कहने लगे -

" श्रीकृष्ण, देखो तुम्हें एक गुर बताते हैं. अगर तुम दुनियाँ में खुश रहना चाहते हो तो अपनी इच्छाओं को कम करते चले जाओ. अगर एक या दो जोड़ी जूते मौजूद हैं, तो तीसरा कभी मत खरीदो. अगर दो तीन सूट मौजूद हैं तो चौथा- पाँचवां कभी मत बनवाओ. तुम ख़ुद भी खुश रहोगे और दूसरों की भी मदद करते रहोगे. और जो तुमने अपनी इच्छाओं को बढ़ा कर अपनी ज़िन्दगी ख़र्चीली बना ली तो ख़ुद भी दुःखी रहोगे और सारे परिवार को भी दुःखी रखोगे - उनकी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते." दूसरी नसीहत उन्होंने यह दी कि जो व्यक्ति तुमसे नसीहत न माँगे, कभी उसको नसीहत मत दो. जाहिरदारी में यह गलत सा मालूम देता है.

शेख सादी कहते हैं - "अगर बीनम कि नाबीना व चाह अस्त, वगर ख़ामोश बिनशीनम गुनाह अस्त." अर्थात अगर देखें कि अंधा जा रहा है और सामने कुआँ है तो चुप रहना और रास्ता न बताना पाप है. मगर गुरुदेव (आचार्य दिगन्त महात्मा रामचंद्र जी महाराज) ने इसके विपरीत कहा. हमने उसको आज़माया और बिलकुल ठीक पाया. आप ज़बरदस्ती किसी की भलाई के लिए कुछ कहिये तो वह उसे नहीं मानेगा बल्कि उसके खिलाफ चलेगा और अपना नुकसान करेगा. जब वह आपसे राय माँगे और तब आप उसे राय देंगे तब वह उसे मानेगा और उसकी क़दर करेगा. चाहें बेटा भी हो, इशारा दे दें, कभी force (जब्र) न करें.

आजकल मंहगाई बहुत है और हर आदमी उससे तंग है. क्या हम भी इसके ज़िम्मेदार नहीं हैं ? हमने भी अपने जीवन को खर्चीला बना लिया है. हमें जिन चीज़ों की ज़रूरत नहीं है , घर में मौजूद हैं , उनका भी अम्बार लगा रहे हैं. जहाँ यह हाल है वहाँ महंगाई तो बढ़ेगी ही. अपनी आँख का तिल तो नहीं दखता और दूसरे की आँख में गिरा हुआ छोटे से छोटा तिनका भी दिख जाता हे. अपना नुक्स किसी को नहीं दिखत , दूसरे का छोटा सा दोष भी फ़ौरन दिख जाता है. यह मनुष्य का स्वभाव है. ईश्वर में भी दोष देखते हैं. उसे अन्यायी बताते हैं. कैसे आश्चर्य की बात है ? ईश्वर तो सम्पूर्ण न्याय है. यही नहीं, वह तो बड़ा प्यारा बाप है, बड़ा दयालु है. अगर हमारे कर्मों को देखकर, कि हम क्या कुकर्म कर रहे हैं, वह हमें सज़ा दे , तो क्या हम दुनियाँ में रहने लायक़ हैं ? न जाने हमारी क्या दुर्दशा हो. वह माफ़ करता चला जाता है और हम हैं कि उसी को दोषी ठहराते चले जाते हैं. ख़ुद को और ख़ुद के कर्मों को दोषी नहीं ठहराते . यह miserable (हीन) हालत सब तुम्हारे कर्मों का नतीज़ा है. कोई चीज़ इस दुनियाँ में ऐसी नहीं है जो बिना क़ीमत के मिल जाय. जितनी क़ीमत देते जाओगे, उतनी चीज़ मिलती जायेगी. क़ीमत तो देना नहीं चाहते और चाहो कि सारी दुनियाँ तुमको मिल जाय. ऐसा तो नहीं होता. वह (ईश्वर) तो मुन्सिफ़ (just) है. जितना तुमने किया है, उतना तुम्हें मिल रहा है. अच्छे या बुरे, यह सब तुम्हारे ही कर्मो का फल है उसको हमें सब्र से बर्दाश्त करना चाहिये. तभी आपका मन मुक्त होने लगेगा और आत्मा का अनुभव कर सकेगा.

माया ने यह शरीर बनाया, इन्द्रियाँ व मन बना दिया. ये सब मिट्टी की बनी हुई हैं. जितनी भी भौतिक चीज़ें हैं वे भी मिट्टी की बनी हैं. उन पर मुल्लम्मा चढ़ा है. (वे आकर्षक हैं)और उन्हीं की वासनायें हमारे अन्दर भर दीं हैं. उन वासनाओं को पूरा करने के लिए हम उन चीज़ों से attach(संलग्न) हो जाते हैं. यही मन और माया का जाल है. आत्मा का किसी को पता भी नहीं. वह अन्दर दबी पड़ी है. इसलिए अगर हमें सब भौतिक चीज़ें मिल भी जायें फिर भी हम सुखी नहीं रह सकते क्योंकि हमारी आत्मा अशान्त है. उसको जगाओ. वासनाओं को उतना भोगो जितना ज़रूरी है. यह नहीं कि उनको छोड़ दो, क्योंकि जब तक

नहीं भोगोगे तब तक मन वहीं लगा रहेगा. लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं कि उसी में फँसे रहो -- उन्हें धर्म शास्त्र के मुताबिक़ भोगो. इस तरह भोगने में आप भोग भी लेंगे और इंद्रियों की तृप्ति भी हो जायेगी. मन जिस चीज़ को ज़्यादा भोगता है उससे वहाँ उसकी जड़ मजबूत होती चली जाती है. अधर्म से भोगने में वह उस चीज़ का ऐसा आदी हो जायेगा कि जानवर की दशा में चला जायेगा. धर्म के अनुसार भोगने से आप उस भोग से उपराम हो जायेंगे और उपराम होने पर आपकी सुरत नीचे से मुक्त हो जायेगी. तब आप मन के स्थान से उठकर आत्मा के स्थान पर आ सकते हैं .

ईश्वर आपका कल्याण करें .

कथनी, करनी, रहनी

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

हरेक जिज्ञासु के लिए तीन बातों पर अमल करना ज़रूरी है - (1) कथनी, (2) करनी, और (3) रहनी।

कथनी - जो लोग सच्चे और पूरे गुरु की तलाश में हैं अगर वे किसी महापुरुष के पास जाते हैं तो वहाँ जाकर अदब से उनके पास बैठ जाना चाहिए और उनकी बात ध्यान से सुनना चाहिए। वे जो कुछ कहें, उस पर ध्यान दें। यदि कोई बात समझ में न आवे तो उस पर उनसे वार्तालाप (discussion) करें और अपनी बुद्धि से सोचें, विचारें। जब तक दिल उस बात को न माने तब तक उसे स्वीकार न करें। इस काम में जल्दी नहीं करनी चाहिए। साल दो साल क्या अगर किसी सच्चे गुरु की तलाश में एक दो जन्म भी लग जायें तो कोई हर्ज़ नहीं।

करनी - कथनी के बाद आती है करनी। जब एक बार दिल इसको ख़ूब पक्की तरह क़बूल कर ले कि जो कुछ यह कह रहे हैं, वह सब सत्य है और यह दृढ़ विश्वास हो जाय कि यही हमारे पूरे हितेषी हैं, इनकी हर बात हमारी भलाई के लिए ही है, इसमें इनका कोई स्वार्थ नहीं है, इनकी रहनी-सहनी साधारण आदमियों की तरह नहीं है वरन एक आदर्श पुरुष की तरह है, जैसा कहते हैं वैसा ही अपना जीवन इन्होने बना लिया है, इनका हर काम दूसरों की भलाई के लिए ही होता है, तो उन पर पूरी तरह अपना ईमान ले आयें। वे जो कुछ आदेश दें उस पर विश्वास और परिश्रम के साथ व्यौहार प्रारम्भ कर दें। उनके बताये रास्ते को सदैव दुनियाँ के मुक़ाबले में मुख्य समझें। अपना तन, मन, धन सभी उन पर न्यौछावर कर दें। हर काम में उनकी बात को मुख्य रखें। दुनियाँ के सब काम करें लेकिन उनको एक कर्तव्य समझ कर करें। अपने को उनमें फँसने न दें। सदैव दुनियाँ से छुटकारा पाने के विचार को अपने सामने रखें।

रहनी - जब करनी करने लग जायें तब रहनी की तरफ़ ध्यान दें। जैसा आपने गुरु से सुना और समझा था, उसके अनुसार अपनी रहनी-सहनी बना लें। अपना चरित्र सुधारने और उसे उच्च बनाने के लिए जो बातें उन्होंने बताई हों उन पर व्यौहार करें। उनका उदाहरण सदैव अपने सामने रखें। उनके चरित्र, रहन-सहन तथा व्यौहार के अनुकूल ही अपने जीवन भी बना लें। नित्य के जीवन में वही काम करें, जिससे वह प्रसन्न होते हों। जैसे बच्चे के हाथ में खिलौना होता है, वह उसे चाहे कभी उठा ले, फेंके, तोड़े-फोड़े या सम्भाल कर रखे। खिलौना निर्जीव होता है, उसे कभी कोई एतराज़ (आपत्ति) नहीं होता, इसी प्रकार की अपनी ज़िन्दगी बना लें। जीते जी मुर्दा बन जाय और अपने आप को पूरी तरह गुरु के समर्पण कर दें। अपनी कोई इच्छा बाकी न रहे, जिस तरह गुरु चलायें, उसी तरह चलें। तब रहनी बनेगी। कबीर साहब ने कहा है -

करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी करै सो नाती।

रहनी रहै सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी ॥

जब तक परमात्मा के प्रेम को प्राप्त करने के लिए अपनी जान तक क़ुर्बान (न्यौछावर) नहीं कर देंगे, तब तक लक्ष्य की प्राप्ती नहीं होगी। जान का क़ुर्बान करना क्या है - जीते जी मर जाना। परमात्मा के प्रेम के अतिरिक्त अपने मन में कोई दूसरी इच्छा शेष न रखें। जब इन बातों पर अमल करेंगे तो सफलता मिलती जायेगी। मीरा कहती हैं -

" सूली ऊपर सेज पिया की, किस विधि मिलना होय "

सवाल यह उठता है कि यह कैसे मालूम हो कि सफलता हो रही है या नहीं ? इसकी पहचान है। सब मत-मतान्तरों और धर्मों का एक ही मत है - सच्चे ज्ञान की प्राप्ति, सच्चा आनन्द और मृत्यु पर विजय, यानी जन्म-मरण से छुटकारा। Complete knowledge, all bliss and everlasting life) यह कब होगा ? जब परमात्मा के चरणों में सच्चा प्रेम होगा और एक-मात्र इच्छा होगी - परमात्मा से मिलने की, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की, सच्चे सुख की प्राप्ति की और जन्म-मरण के चक्र से छूटने की।

उन्नति की पहिचान यह है कि मन दुनियाँ से उपराम होता जाय, दुनियाँ की नाशवान वस्तुओं से, धन-सम्पत्ति और सगे सम्बन्धियों से प्रेम कम होता जाय और परमात्मा की ओर मन का खिंचाव होने लगे। यह एक दिन में नहीं होता, बहुत समय लगता है। मन की चाल को देखता चले। सच्चाई का विचार, भलाई का विचार, ईश्वर-प्राप्ति का विचार - यह सब परमार्थी चालें हैं। इनके अतिरिक्त जितने विचार मन उठाता है, वे सब संसारी हैं और बन्धन में डालने वाले हैं। ईर्ष्या, राग, द्वेष कम होते जाते हैं। सबसे मित्रता और प्यार का भाव उत्पन्न होता जाता है। धन-सम्पत्ति, मान-बड़ाई, इन्द्रिय-भोग आदि की ओर से ध्यान हटता जाता है। पहले जिन संसारी वस्तओं में बड़ा आनन्द आता था उनमें अब वह आनन्द नहीं आता। सुरत (attention) जो सब तरफ़ बटी हुई थी,सिमट-सिमट कर परमात्मा की ओर लगने लगती है। परमात्मा की इच्छा पर ही निर्भर रहता है यानी राज़ी-ब-रज़ा हो जाता है।

मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है - ईश्वर प्राप्ति, (solar system) तक पहुँचना, परमात्मा के लोक में पहुँचना और पुनः उसमें लय हो जाना। वहाँ तक पहुँचने के लिए मन के स्थान (mental plane) से गुज़रना पड़ता है। यह अथाह है और इसके तीन रूप हैं - (1) तम, (2) रज , और (3) सत।

(1) तम अवस्था यानी आलस्य - खाना-पीना, इन्द्रिय-भोग और क्रोध। यह पशुओं की अवस्था है ? इससे छुटकारा पाने के लिए कर्म करना चाहिए। कर्म करने से आलस्य दूर होता है। जब तक काम और क्रोध का वेग है, समझ लो अभी तम के स्थान पर हो। काम से संयम (abstinence) करो, क्रोध कम हो जायेगा।

(2) रज - संसारी वस्तुओं की इच्छा करना, प्राप्त हो जाने पर और अधिक प्राप्त होने की लालसा करना, उनसे प्रेम या लगाव हो जाना और उनका अभिमान करना। लोभ, मोह, अहंकार, दुनियाँ की नाशवान वस्तुओं की इच्छा, उन्हें प्राप्त करने की प्रबल चाह, उनके मिल जाने पर थोड़ी देर का सुख और न मिलने पर दुःख। कभी मन में बुराई का ध्यान आना, कभी अच्छाई का। यह बीच का मुक़ाम है। इसमें लोच (elasticity) होती है। जब परमार्थी यानी अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं तो मन सत की तरफ़ झुक जाता है और जब संसारी

वस्तुओं का ध्यान आता है तो तम की ओर खिंचावट होती है। यह रज का रूप है। मन में जितना ही संसारी वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा उठती है उतना ही मन उसमें फँसता जाता है और लोभ, मोह और अहंकार पैदा होते जाते हैं।

किसी वस्तु को देख कर या उसका ध्यान करके उस ओर खिंचावट (attract) होना लोभ है। फिर उस वस्तु से लगाव हो जाना मोह है। बाद में उससे प्यार करना, अपने को उसका स्वामी समझना, यह अहंकार है। जब मनुष्य इसमें फँस जाता है तो छुटकारा कठिनाई से होता है। अधिकतर अभ्यासी यहीं अटके रहते हैं।

किसी संसारी वस्तु को भोगने में दोष नहीं है मगर धर्मशास्त्र के अनुसार चलना चाहिए और उसे अपना समझकर नहीं भोगना चाहिए। यदि हम उसे ईश्वर का समझ कर भोगें तो अहंकार (ego) नहीं होता।

(3) सत - यह मन का तीसरा और सबसे उत्तम रूप है। इस स्थान पर पहुँचकर मनुष्य के केवल तीन कर्तव्य रह जाते हैं :- (1) दान, (2) दया, और (3) दमन।

दान - मन अच्छे-अच्छे विचारों का गुनावन करता है। दान करने के विचार पैदा होते हैं। निर्धनों को दान देना, विद्यालय, अस्पताल खुलवाना, धर्मशाला, कुआँ आदि बनवाना, धन-दान में आते हैं। निर्धन बच्चों को पढ़ना, विद्या-दान करना है। भूखों को खिलाना, सदावर्त चलाना, अन्नदान कहलाता है।

दया - उसके मन में दया के अंकुर फूट निकलते हैं, दूसरों को दुखी नहीं देख सकता। मनुष्य हो या कोई जीव-जन्तु, उसे देखकर उसका मन द्रवित हो जाता है और वह रो पड़ता है। हाथ-पाँव से दुखियों की सेवा करता है। सभी प्रकार से अपने कर्तव्य पूर्ण रूप से पूरा करता है। माँ-बाप का ऋण उनकी सेवा करके और उन्हें प्रसन्न करके पूरा करता है। गुरु का ऋण उनकी सेवा द्वारा तथा उनके बताये हुए कर्मों को करके पूरा करता है। देश का ऋण, धरती का ऋण, मित्र का ऋण, स्त्री-बच्चों का ऋण, प्रत्येक के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन

करके उन्हें पूरा करता है। जो अपने इन कर्तव्यों को पूरा नहीं करता, उसकी मोक्ष नहीं होती ।

दमन - अपनी इन्द्रियों का दमन करता है। जिधर इन्द्री जाय उधर न जाने देना, इन्द्रिय-दमन कहलाता है। विषय-भोग से बचना या मन उधर को जाय तो समय नियत कर लेना, ऐसा न होने पर भूखा रहना जिससे मन पर चोट लगे। किसी वस्तु की इच्छा न करना, जिस वस्तु पर मन चले वह खाने को न देना, स्वादिष्ट और स्वाद-रहित खानों को एक ही तरह खाना - न स्वादिष्ट भोजन में विशेष रुचि और न स्वादरहित भोजन से अरुचि। परमात्मा का नाम अधिक से अधिक लेना - ये सब बातें इन्द्रिय दमन में आती हैं और इनसे मन कमज़ोर होता है।

जब मन की इस तरह गढ़त हो लेती है तब सही तौर पर वह सत के स्थान पर आता है और यहीं से असली परमार्थ प्रारम्भ होता है। इससे पहले जो कुछ करता है, सब धर्म है। परमार्थ प्रारम्भ होने पर उसको परमात्मा के चरणों के प्रेम की झलक मिलने लगती है, आत्मा के गुण प्रकट होने लगते हैं और वह अपने असली प्रीतम की ओर खिंचने लगती है।

अधिकतर मनुष्य रज अवस्था में होते हैं, चाहे वे कितने ही अच्छे और शुद्ध विचार वाले हों। जहाँ तक बुद्धि की पहुँच है वहाँ तक मन का ही पसारा है। इसका रूप बड़ा ही विशाल है, मन मारा नहीं जा सकता, परन्तु धीरे-धीरे समझाने से और सख़्ती से वश में आ जाता है। जैसे कि किसी बाप का बेटा बुरी आदतों में हठी हो जाता है ऐसे ही हमारी गलतियों से जो हमने अपने मन की हर इच्छा पूरी करके की हैं, यह हठी हो गया है और हमारी इच्छा न होने पर भी हमसे अपनी इच्छानुकूल कार्य करा लेता है। इसे वशीभूत करो। इसके लिए अपने मित्र, अपने परम हितेषी गुरु से मदद लो। समय थोड़ा है और हमें सीमित शक्ति (fixed energy) मिलती है जिसे हम दुनियाँ के कामों में ख़र्च कर देते हैं। वह शक्ति हमें मिलती तो है अपनी आत्मा के ऊपर से परदे उतारने के लिए, आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए, परन्तु वह ख़र्च होती है अन्य साँसारिक बातों में। गुरु से मदद माँगो, शक्ति माँगो, वे तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगे और परमात्मा (जो शक्ति का भण्डार हैं) से शक्ति लेकर तुम्हारी आत्मा

को बलबान बनायेंगे जिससे तुम अपने मन को अपने आधीन बना सकोगे। बिना गुरु की सहायता के, बिना उनसे अधिक शक्ति (extra energy) प्राप्त किये कोई बुरी आदत नहीं छूट सकती। लेकिन गुरु से शक्ति मिलती है केवल उनको जो उनकी इच्छानुसार कार्य करते हैं, जो उनके आदेशों पर चलते हैं।

संसार की हर वस्तु छूटनी ही है। सभी वस्तुएँ नाशवान हैं। सभी से विछोह होना है। जिस वस्तु से अधिक मन लगाओगे उसके छोड़ने में उतनी ही कठिनाई और कष्ट होगा। यदि स्वेच्छा से न छोड़ोगे तो मृत्यु के समय सभी स्वतः छूट जायेंगी और तब उस समय बहुत दुःख होगा। बच्चे को देखो, अगर वह किसी वस्तु के हठ को छोड़ देता है तो उस पर ध्यान भी नहीं देता। यही आदत सीखो और मन को इसी तरह समझाओ। मन त्रिकुटी का वासी है। वह भी ऊँचे यानी स्वर्ग का सुख चाहता है और दुनियाँ के सुखों में ज्यादा प्रसन्न नहीं रहता। परन्तु वह दुनियाँ के सुखों में फँस गया है। जब वह इन्द्रिय भोग से उकता जाता है तो स्वयं प्रसन्नता अनुभव करता है। दूसरे यह कि प्रारम्भ में वस्तुओं के छोड़ने में इसे दुःख होता है और इसके लिए परिश्रम करना पड़ता है। बाद में वह आसानी से भलाई की ओर झुकने लगता है और प्रसन्न रहता है। उसके प्रसन्न रहने से आत्मा भी शान्त रहती है। यह अवस्था उस समय प्राप्त होती है जब मन सत की अवस्था में आ जाता है।

संसार में हमारी पकड़ उतनी ही होनी चाहिए जितनी साँसारिक कार्यों को चलाने के लिए आवश्यक है। अधिक होने पर दुखदायी होगी। संसार की हर वस्तु बदलने वाली है, हमारी इच्छाएँ भी बदलने वाली हैं और ये दोनों ही नाशवान

हैं। इनके छूटने पर दुःख होगा। इसी विचार का नाम विवेक है। सोचो, एक दिन सब छूटेंगे, अलहदगी (separation) होगी। इस तरह के विचार से दुनियाँ से लगाव कम होता है। जब किसी वस्तु से प्रेम पैदा हो, यह विचार करो कि यह भी छूटेगी। किसी से शत्रुता नहीं है, समझा समझकर मन को सीधे रास्ते पर लाओ। जब तक नौकरी पर रहते हो वहाँ की हर चीज़ से सम्बन्ध रहता है, अवकाश प्राप्त होने (retire) पर कोई सम्बन्ध नहीं। कारण यह है कि नौकरी के बीच में उसे अपना नहीं समझा इसलिए इसके छूटने पर कोई दुःख नहीं होता

। इसी प्रकार संसार की सभी वस्तुएँ तुम्हें भोगने के लिए मिली हैं, तुम्हारी हैं नहीं। यदि यह ध्यान रहेगा तो लगाव (attachment) नहीं होगा। प्रेम करना इन्सानी स्वभाव है, लेकिन उसमें फँसना नहीं चाहिए।

इसका साधन है गुरु का बताया हुआ अभ्यास और गुरु का सत्संग। इससे धीरे-धीरे निचली वासनाओं को छोड़ता चलता है और तम से रज और रज से सत पर आ जाता है। गुरु के संग और सत्संग से आत्मा को शक्ति मिलती है जिससे अन्दर से दुनियाँ को छूटने के लिए बेचैनी होती है, यही सुरत का जगाना है। फिर वह मन के फन्दे से निकलने के लिए प्रयत्न करती है, रोती-बिलखती है और परमात्मा से मदद माँगती है। परमात्मा की अथाह कृपा की लहरें उमड़ती हैं और मनुष्य रूप में गुरु रूप होकर उसको मदद करती हैं जिससे आत्मा मन के फन्दे से स्वतन्त्र हो जाती है और ईश्वर का प्रेम चमकने लगता है। दिल में एक दर्द बना रहता है जो उसको अपनी असल की ओर खींचता है, चाल को तेज़ कर देता है, रास्ता तय होने लगता है और आत्मा अपने प्रीतम, यानी परमात्मा से मिलकर एक हो जाती है। यही मोक्ष है और यही निर्वाण पद है। यही हालत ज़िन्दगी में होती है क्योंकि ज़िन्दगी कुरुक्षेत्र है। मौत के बाद भोग योनि है। जो कुछ करना है, इसी ज़िन्दगी में करना है और अभी करना है।

गुरुदेव सबको सही रास्ता दिखावें।

राम संदेश : जून, 1995.

गुरु का प्रेम पाने के लिए शिष्य क्या करे ?

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जब मनुष्य दुनियाँ की परेशानियों से तंग आकर ईश्वर के दरबार में प्रार्थना करता हैं और इन साँसारिक झगडों से निकलना चाहता है और अगर उसकी दुआ सच्चे और शुद्ध हृदय से होती हैं तो उसकी पहुँच ईश्वर तक हो जाती हैं. मालिक की मोहब्बत जोश में आती है और इसका असर उन लोगों के दिलों पर पड़ता हैं जो अपने दिल की इच्छाओं को मेंट कर उससे लौ लगाए बैठे हैं और इस काम के लिए मुक्क़र्रिर होते हैं. वे ऐसे शख़्स के पास पहुँच जाते हैं और उससे प्रेम करने लगते हैं. जितना वे अपने आप को उसमें लीन करते हैं उतनी ही मुहब्बत इच्छुक को उनसे बढ़ती जाती हैं यानी जितनी मौंहब्बत गुरु को शिष्य से होती हैं उतना ही ज़्यादा असर शिष्य के दिल पर पड़ता हैं जिसके प्रभाव से वह गुरु प्रेम में मस्त हो जाता हैं . एक मुराद होता हैं (जिसको गुरु स्वयँ प्यार करे) और दूसरा फ़िदायी हैं (जो गुरु को प्रेम करे, उस पर न्यौंछावर हो). आगे मुराद और मुरीद दोनों मिलकर एक हो जाते हैं. यह आपके सिलसिले (वंश) की बरकत हैं. इस सिलसिले की निस्बत (आत्मिक सम्बन्ध) माशूक़ाना हैं. इसमें पहले मुरशिद को प्रेम पैंदा होता हैं और फिर मुरीद को. फिर बाद में दोनों मिलकर एक हो जाते हैं. यही असली तालीम हैं, यही प्रेम मार्ग ह . जितना उसमें कमी रहती हैं उतनी ही कमी तालिब में रह जाती हैं. अगर दोनों मिलकर एक हो जायें तो सिर्फ नाम के लिए फ़र्क़ रह जाता हैं - इसी को निस्बत की मज़बूती कहते हैं. यही सच्चा प्रेम मार्ग हैं. यह बहुत सीधा मगर नाजुक़ रास्ता हैं . इसमें अपनी हस्ती बिलकुल मिटा दी जाती हैं और यह हालत हो जाती हैं जैंसे मुर्दा ज़िन्दे के हाथ में होता हैं. सिर्फ अन्तर यह हैं कि मुरदे के सामने कोई लक्ष्य नहीं रहता और ऐसे मुरीद (शिष्य) के सामने अपने इष्ट का लक्ष्य होता हैं. मुरीद के असली मायने मुर्दा के हैं .ऐसी हालत के पैंदा करने के लिए बराबर कोशिश करते

रहना चाहिये. अगर वग़ैर ख़्याल किए खुद - ब - खुद ऐसी हालत होने लगे कि तबियत एक सी रहे, आनन्द आता रहे, दुनियाँ के अन्दर बरतते हुए ऊपर उठते हुए मालुम देवें, प्रेम और मस्ती की हालत पैदा हो जाये और दिल में बराबर दर्द उठे, तो समझना चाहिये कि वह मुरीद नहीं बल्कि मुराद बन गया है . " दिल को आज़ारे मोह्ब्बत के मज़े आने लगे, उसके मैं क़ुर्बान जिसने दर्द पैदा कर दिया ."

मुरीद उस वक्त रहता है जब तक परमात्मा के दरबार में सुनवाई नहीं हुई थी. अब उसकी सुनवाई हो गई, उसकी दुआ क़बूल हो गई. वह क़बूल कर लिया गया और अब वह मुराद है. ऐसी हालत में उसको चाहिये कि वह अपने आप को सराहे . कोशिश करो कि ऐसी दशा ज़्यादा से ज़्यादा रहे और स्थायी हो जाये. ऐसा कोई काम न करो कि जिससे यह हालत जाती रहे. इसके दो उपाय हैं. अपनी सब ख़्वाहिशों को एक ख़्वाहिश में लगा दो, यानी सिर्फ एक इच्छा रखो और अपना इख़्लाक़ (रहनी -सहनी या आचरण) बेहतर बनाने की कोशिश में रहो. जितनी इच्छायें मिटती जायेंगी उसी क़दर मज़बूती निस्बत में आयेंगी और अपनी हस्ती गुम होकर उसी में समा जायेगी जो सबका आधार है. यही मोक्ष, निर्वाण पद, इत्यादि नामों से पुकारा जाता है. इसी को सूफ़ियों और संतों की भाषा में राज़ी -ब -रज़ा कहते हैं. यानी हर हालत में, चाहें कैसी भी हालत क्यों न हो, ख़ुश रहना चाहिये. यहाँ पर बुराई - भलाई से निज़ात मिल जाती है. आगे भविष्य के लिए सँस्कार मिट जाते हैं. कोई इच्छा शेष नहीं रह जाती है. यहाँ तक कि आख़िर में परमात्मा से भी बेनियाज़ हो जाता है. यही गीता का चौथा पद है . " तर्के दुनियाँ, तर्के उक़्बा, तर्के मौला, तर्के तर्क. "

परमात्मा आप पर अपना फ़ज़्ल (कृपा) करें और बतुफैल पीराने उज़्ज़ाम (वंश के महापुरुषों की कृपा से) अपनी इनायत और करम फरमायें. जब जब आदमी किसी से प्रेम करता है तो वह उसकी मोह्ब्बत हर वक़्त चाहता है. हर समय चाहता है कि उसके पास बैठे और देखता रहे. फिर धीरे - धीरे उसकी शक़्ल अपने हृदय में रख लेता है और उसी को देखता रहता है. जिस्मानियत से आगे बढ़ता है. प्रीतम की आदतें उसमें आ जायें और

जिस्मानियत और इख़्लाक़ियत (प्रकट रूप और व्यबहार) से वही बन जाये और उसी ज़ब्बे में पुकार उठे –

" मन तो शुदम तो मन शुदी , मन तन शुदम तो जाँ शुदी .

ता कस न गोयद बाद अज़ी , मन दीगरम तो दी गरी ."

यानी - " मैं तू हो जाऊँ, तू मैं हो जा, मैं जिस्म बन जाऊँ और तू मेरी जान बन जाये ताकि फिर कोई यह न कह सके कि तू और है और मैं और हूँ ." कभी -कभी शरीर भी एक सी शक़्ल इख़्तियार (धारण) कर लेता है. इसके बाद इख़्लाक़ (आचरण) में तब्दीली शुरु होती है . जिस्म की शक़्ल अब ख़्याल में नहीं आती बल्कि एक इख़लाक़ी शक़्ल सामने रहती है. पहले इन्द्रिय आनन्द का मज़ा था, अब मानसिक आनन्द है. मानसिक आनन्द कहीं अधिक, कहीं ज़्यादा लतीफ (अधिक सूक्ष्म) और देरपा (देर तक रहने वाला) और ख़ास ख़सूसियत (विशेषता) रखता है. इसी हालत को मजज़ूबियत या अवधूत गति कहते हैं. इसमें अजीब आनन्द होता है जिसके लिए इन्सान सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार रहता है. जब इख़्लाक़ मुक्कमिल (सम्पूर्ण) हो जाता है, यानी दोनों की वासनायें एक हो जाती हैं, तो क़दम और आगे को बढ़ता है. आत्मा की नज़दीकी हासिल होनी शुरु हो जाती है. गुरु का ख़्याल ग़ायब हो जाता है , सिर्फ एक ख़्याल क़ायम रहता है. अजीब मस्ती सी छाई रहती है जो अपनी मिसाल नहीं रखती और दायमी (स्थायी) होती है. और फिर वह मुबारिक दिन आ जाता है जब उसे अपनी आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है और वह निहाल हो जाता है. जिसने इसका अनुभव कर लिया है उसकी तमाम इच्छायें ख़त्म हो गईं. अब न कुछ जानने को रह जाता है, न हासिल करने को. यह हालत कश्फी भी गुज़रती है और कस्बी भी. अब प्राण, मन, बुद्धि और आत्मा का ग़िलाफ़ आत्मा पर से उतर जाता है और आत्मा अपनी असली हालत में ज़ाहिर हो जाती है. इसका ज़बान से वर्णन नहीं हो सकता बल्कि शुद्ध बुद्धि ही उसका अनुभव कर सकती है. इस बयान से आपको तस्सली हो गई होगी और समझ में आ गया होगा कि इस प्रेम की इब्तदा (आरम्भ) और इन्तहा (अन्त) कहाँ तक है.

बढ़े चल. एक ख़्याल सामने रखो. और सब ओर से आँखें मीच लो. अपनी हस्ती ख़त्म कर द , कोई इच्छा बाक़ी न रह जाये सिवाय एक ख़्वाहिश के - उसके आगे परमात्मा को भी भुला दो , सिर्फ़ वही रह जाये. एक सन्त ने अपने मुरीद से पूछा " तू मुझे क्या समझता है "? उसने उत्तर दिया - बराय खुदास्त (ख़ुदा की जगह). फ़रमाया - " कुफ्र अस्त " (यह पाप है) . "बराय ख़ुदा न भी दानम" (मुझे ख़ुदा क्यों नहीं समझता) गुरु को ख़ुदा की जगह समझना शिर्क (नास्तिकता) है. सबको मिला कर एक कर लो और उसी में अपने आप को लय करो और आख़िर को वह भी छोड़ दो. जो असल है वही शेष रहेगा, बाक़ी सब ग़ायब हो जायेंगे. परमात्मा ने तुम्हें पैदा करके अपने आपको पोशीदा (अव्यक्त) और तुमको ज़ाहिर (प्रकट) कर दो .

राम सन्देश : मई-जून, 2007.

गुरु कृपा कैसे प्राप्त हो ?

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

श्रीमदभगवत गीता में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि निर्गुण ब्रह्म की उपासना महाकठिन है. रामायण में भी इसी बात को दोहराया गया है, और सब संत-महात्माओं का भी यही मत है. अतः भगवान के किसी न किसी रूप को इष्ट मानकर सगुण की भक्ति और उपासना करनी चाहिये. यदि भक्ति सच्ची है, तो भगवान के जिस रूप का ध्यान किया जायेगा, उसी रूप में दर्शन होंगे. भक्ति के लिए मन निर्मल होना चाहिये. किन्तु मन में दो बड़े-बड़े दोष हैं - एक है विक्षेप और दूसरा मल. विक्षेप कहते हैं चंचल या अस्थिर स्वभाव को और मल का सीधा-साधा अर्थ है मलीनता. जब मन निमल हो जाता है, तब ईश्वर कृपा करके हमें किसी रहबर या पथ-प्रदर्शक के पास भेज देता है जिसे हम गुरु या सद्गुरु कहते हैं. वास्तव में गुरु और कुछ नहीं नर रूप में नारायण है. जिज्ञासु के लिये गुरु की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि मोक्ष देने का अधिकार केवल गुरु को ही है. मन का अन्धकार और अज्ञान बिना गुरु के दूर नहीं होता. यह गुरु ही हैं जो मनुष्य को आत्मा और परमात्मा का परिचय कराते जाते हैं. जब हम उनकी शरण में शुद्ध हृदय और निर्मल मन से जाते हैं तो वे जो कुछ भी उपदेश हमें देते हैं, उसकी छाप हमारे मन पर ऐसी गहरी पड़ती है कि धीरे-धीरे हमारे अहंकार को समाप्त कर देती है. और हमें आत्म-साक्षात्कार करा देती है. किन्तु गुरु कृपा के बिना कुछ नहीं होता.

'गुरु कृपा कैसे प्राप्त हो ?' इस विषय पर श्री रामदास जी के विचार यहाँ दिये जाते हैं. इससे पहले कि हम किसी संत के साथ सम्पर्क स्थापित करें, हमें यह जान लेना आवश्यक है कि संत किसको कहते हैं ? उसमें कौन-कौन से गुण होने चाहिये ? संत वह है जिसने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है, जो समदर्शी है और जो परमात्मा को हर जगह और हर वस्तु में देखता है. उसके हृदय में प्रेम रूपी गंगा की पवित्र निर्मल धारा लगातार हर

समय बहा करती है. वह प्रेम-स्वरुप होता है, दया और क्षमा का सागर होता है और शान्ति का एक ऐसा अनुपम भण्डार होता है कि जहाँ-जहाँ उसका गमन-आगमन होता है वहाँ सदा शान्ति ही विराजती है. उसके पास बैठने वालों को भी, चाहे वे निपट संसारी हों, उनको भी शान्ति का कुछ न कुछ आभास होता है. संत की जितनी प्रशन्सा की जाये वह थोड़ी है. जितने ईश्वरीय गुण हैं, वे सब संत में मौजूद होते हैं.

केवल ऐसे ही संतों के सम्पर्क में आने में और उनकी शरण ग्रहण करने से आत्मा अज्ञान और मायाजाल से छूट सकती है. जब हम किसी संत के पास जायें तो हमें धूल के समान अत्यंत नम्र बन जाना चाहिये. बना नम्र बने, बिना दीनता के, कभी भी संतों की कृपा का लाभ मिलना सम्भव नहीं. दीन बनेंगे तभी उनकी कृपा की गंगा में स्नान कर सकेंगे. यदि उनके पास कुछ समय तक रहने का सौभाग्य प्राप्त हो तो हमें सदा अपनी त्रुटियों और कमियों की ओर देखना चाहिये और उनकी महानता, दया और कृपा का सदा आसरा रखना चाहिये. बहुत बार संतों के व्यवहार अटपटे से लगते हैं. न मालूम हमारी या अन्य लोगों की भलाई के लिए वे ऐसा व्यवहार करते हैं. ऐसे अवसर पर हमें कभी भी उन्हें यह बताने का साहस नहीं करना चाहिये कि वे किस प्रकार का व्यवहार करें. वे स्वामी हैं, जो चाहे करें, हमारा धर्म सेवा का है. प्रत्येक दशा में, प्रत्येक समय चाहे किसी भी परिस्थिति में हों, हमें उनकी आज्ञा-पालन के लिए तत्पर रहना चाहिये. उनके सत्संग के प्रभाव से धीरे-धीरे हमारा अहंकार टूट कर गिर जायेगा और हम अपनी पाशविक तथा निचली वासनाओं से छुटकारा पा जायेंगे. जब भी संतों के सत्संग का सौभाग्य प्राप्त हो, उसका अधिकतम लाभ उठाओ, अहंकार के मल को धो डालो, अपने आपको निर्मल बना लो और अपनी आत्मा को स्वतंत्र बना कर आन्तरिक शान्ति प्राप्त करने का यत्न करो. यदि हम दीन बने रहे तो गुरु अपनी कृपा की धार से हमें ईश्वर की ओर खींचते हैं और किसी न किसी दिन हमारे जीवन को अपने आध्यात्मिक स्तर पर ले आते हैं. लोग पारस-मणि की उपमा देते हैं कि उसके छूने से लोहा भी कंचन बन जाता है, पारस नहीं बनता, किन्तु गुरु की संगत का प्रभाव ही निराला है, वे मनुष्य को आप समान बना लेते हैं.

बहुत से लोग संतों के पास जाते हैं और कुछ उनकी सँगत में बहुत दिनों तक रहते भी हैं, परन्तु उन्हें कुछ आत्मिक लाभ नहीं होता. इसका कारण यह है कि अधिकतर लोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए नहीं जाते. वे जाते हैं सँसार और उसके भोग विलास की चीज़ें माँगने के लिए, अपने दुनियावी स्वार्थ को पूरा करने के लिये. संत तो दुनियाँ उजाड़ते हैं, उनके पास परमार्थ बटता है, दुनियाँ थोड़े ही मिलती है. पर जो लोग वास्तव में अपने परमार्थी हित की कामना लेकर जाते हैं, वे उसका लाभ उठाते हैं. कहीं ऐसा भी देखा गया है कि जाते तो परमार्थ लाभ के लिये हैं किन्तु उनके पास जाकर उनकी दया का अनुचित लाभ उठाते हैं, परमार्थ लाभ तो एक तरफ़ रहा, आपस में एक दूसरे से वैमनस्य रखने लगते हैं और अशान्ति पैदा कर देते हैं. यह निचली वासनायें हैं. संत की सौहबत में रहने का आशय तो यह है कि पाशविक वृत्तियों से ऊपर उठो, अपनी साँसारिक इच्छाओं को वश में करो और अपने मन को मारो. यदि ऐसा न करोगे और अपनी कमज़ोरियों का शिकार बने रहोगे और ढ़ील देते रहोगे तो संतों के सत्संग का क्या लाभ ? जीवन निर्थक हो जायेगा. दर्पण के सामने इसलिए जाते हो कि उसमें देखकर अपने मुखड़े को साफ़ कर लो. यदि ऐसा न करोगे तो दर्पण में मुख देखने से लाभ ही क्या है ?

जितने घण्टे या जितने समय हम संत की सौहबत में रहें, उसका श्रेष्ठ उपयोग यही है कि हम पहले अपनी कमज़ोरियों को दूर करें, आपस में सब भाई एक दूसरे को प्रेम करें, अपने मन को सम अवस्था पर लाने का अभ्यास करें और शान्ति की खोज करें. कहते तो हम अपने को 'शिष्य' हैं किन्तु देखा जाये तो हम उनके शिष्य नहीं बनते, हम उनके गुरु बनते हैं. प्रभु ईसा के जीवन की बात है, उनके शिष्य आपस में झगड़ते थे कि उनमें से कौन सबसे बड़ा शिष्य है ? इसका समाधान स्वयं प्रभु ईसा ने इस प्रकार किया - " तुम में से जो भी कोई शेष लोगों का सेवक है, वही तुममें सबसे बड़ा है." यदि शिष्य एक दूसरे पर हावी होने के लिये आपस में लड़ते हैं तो वे गुरु के ऊपर घोर आघात करते हैं. भला इससे भी बड़ा कष्ट वे गुरु को क्या दे सकते हैं ?

गुरु आदर्श हैं - सन्तुलन और शान्ति के. उनके बिना मनुष्य की मोक्ष सम्भव नहीं है. राम और कृष्ण जैसे महान अवतारों ने भी गुरु धारण किये थे. जब हम संतों और ऋषियों के जीवन-चरित्र पढ़ते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि सबों ने गुरु धारण किये थे. अतः हमारी मोक्ष के लिये भी गुरु की आवश्यकता है. जब-जब गुरु के सत्संग में जाओ, अपने नुक़्सों (कमियाँ, बुराइयाँ) पर दृष्टि रखो, उन्हें दूर करने का प्रयास करो. दूसरों के दोषों को मत देखो और व्यर्थ अपवाद मत करो. शिष्य के नाते हमारा कर्तव्य है कि आपस में भाइयों में प्रेम हो और सब एक दूसरे का सम्मान और आदर करें. अपने सम्पूर्ण हृदय से गुरु को और उनका आदर्श सामने रखकर सर्वभूतों को समदृष्टि से प्रेम करें.

गुरु का हृदय बहुत कोमल होता है. उनकी सदा यही तीव्र इच्छा रहती है कि जिन्होंने उनका सहारा लिया है, जो उनकी शरणागत हुआ है, चाहे वह एक हो या बहुत से, सभी का कल्याण हो तथा सभी को अन्दर और बाहर से सुख-शान्ति की प्राप्ति हो. अपनी ढ़ेर सारी कृपा गुरु सदा अपने भक्तों पर उड़ेलते रहते हैं. उपदेश देते देते कभी थकान का अनुभव नहीं करते और सदा इस बात का मार्ग-प्रदर्शन करते रहते हैं कि परमेश्वर का आन्तरिक और वाह्य दर्शन प्राप्त करने के लिये हमें कैसा आचरण और क्या अभ्यास करना चाहिये. हमें उनकी शिक्षा और उपदेश को व्यवहारिक रूप देना चाहिये. गुरु की कृपा हमारे हृदय में तभी प्रवाहित होगी जब हम उनकी आज्ञा मानें, उनके उपदेशों पर अमल करें. इससे वे प्रसन्न होंगे. किन्तु आजकल कुछ और ही दृष्टिगोचर होता है. कभी-कभी हमें ऐसा लगता है कि हममें अपने संत सद्गुरु के एक क्षण के सत्संग से महान गुण आ जाने चाहिये थे, वहाँ हमारे अन्दर उनकी एक किनकी मात्र भी पैदा नहीं हुई. इसका कारण यह है कि न तो हम उनकी आज्ञा का पालन करते हैं और न उनके उपदेशों को चित्त देकर सुनते हैं, उन पर अमल करना तो दूर रहा. इसलिए हमारा पहला कर्तव्य यह है कि जो कुछ गुरु आज्ञा दें, हम बिना चूँ किये उसका तन, मन से पालन करें.

ऐसा करने से मन का मैल छूटने लगेगा, घट का दर्पण उजला होने लगेगा जिसमें प्रीतम का मुखड़ा झलकेगा और हमें अमर जीवन और अमिट शान्ति प्राप्त हो सकेगी.

गुरु अत्यंत कृपा करके शिष्य को मंत्र या उपदेश देते हैं. उस मन्त्र या उपदेश को सदा अपने मन और आत्मा से रटने या अभ्यास करने की आदत डालनी चाहिये. शिष्य का ऐसा व्यवहार ही गुरु की आज्ञा का पालन होगा और उसके जीवन में ईश्वरीय ज्योति, ज्ञान और आनन्द का संचार होगा. यही वह सच्चा नाता है जो शिष्य और गुरु के बीच होना चाहिये. यदि ऐसा व्यवहार नहीं है तो संत सद्गुरु को चारों तरफ़ से घेर कर सिवाय उन्हें दुःख देने के और कोई भली बात नहीं होगी.

संत वचन : भाग 5

गुरु में प्रीति और प्रतीति आये बिना उन्नति नहीं होती

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

समझते हो गुरु को मनुष्य, और चाहते हो कि वह ईश्वर का दर्शन करा दे ? पहले गुरु से प्रीति करो और उसकी बात पर विश्वास करो, तब प्रतीति पैदा होगी. बिना प्रतीति के गुरु को ईश्वर नहीं समझोगे और जब तक यह भाव नहीं आयेगा तब तक ईश्वर का अनुभव कैसे होगा ? दोनों का medium (माध्यम) जब तक एक नहीं होगा, तब तक दर्शन नहीं होंगे. यह doubt (शंका) कि यह इन्सान हैं, दर्शन करा सकेंगे भी या नहीं, जब तक मौजूद हैं, तब तक गुरु राग़िब (ढ़ुरना, कृपा दृष्टि करना) नहीं होगा तो दर्शन कैसे होंगे ? गुरु में चाहे सब कुछ सामर्थ्य हो, जब तक शिष्य में प्रीति और प्रतीति नहीं होगी तब तक फ़ायदा नहीं होगा. इसीलिए भगवान कृष्ण ने कहा है कि जो जिस भाव से मुझे भजता है, मैं उसी रूप में दर्शन देता हूँ. सन्त कबीर कहते हैं -

"गुरु को मानुष जानते 'कबीर' ते नर अन्ध"

पढ़े लिखे लोगों को faith (विश्वास) मुश्किल से होता है. जब अक्ल उल्टा समझती है, अविश्वास हो जाता है और आदमी यह समझने लगता है कि वैसे ही ढोंग बना रखा है, एक जमात इकट्ठी कर रखी है, इत्यादि. शिष्य की इस भावना को गुरु समझता है और यह जानता है कि इसे विश्वास नहीं है, लेकिन गुरु खोलकर ऐसा नहीं कहता. उसके हृदय में शिष्य की भलाई निहित होती है, वह सोचता है कि इस ओट में कुछ तो करता है. यदि इससे साफ़ कह दिया जायेगा तो यह करेगा ही नहीं और जो थोड़ा बहुत रास्ता वह चल रहा है उससे भी विमुख हो जायगा.

Blind faith (अन्ध-विश्वास) शुरू-शुरू में करना ही पड़ता है, किसने अपने बाप को देखा है कि यह मेरा बाप है ? सिर्फ़ माँ के कहने पर मान लेता है कि यह मेरा बाप है. बच्चे से माँ कहती है - " कौआ " और वह मान लेता है कि "कौआ" है. गुरु ने कहा और शिष्य ने

मान लिया, तब फ़ायदा होगा. Algebra (बीजगणित) में ' X' मान लेते हैं, फिर सबाल निकलता है, और जो जबाब निकलता है उसका मिलान करके देखते हैं, तब सही निकलता है. अगर 'X" नहीं मानें तो सबाल नहीं निकलेगा. दुनियाँ के मामलों में भी विश्वास करना ही पड़ता है. विश्वास पर ही सारा लेन-देन और लौकिक व्यवहार चलता है. अगर अँग्रेज़ी पढ़ने जाओ तो अध्यापक कहेगा - "कहो A, B, C, D अगर आप कहें कि मैं क्यों कहूँ, कुछ और क्यों न कहूँ, तो मामला बिगड़ जायेगा. फिर तो अँग्रेज़ी पढ़ ली ? पढ़े-लिखे लोगों में blind faith . (अन्ध-विश्वास) नहीं जागता. इसलिए सबसे ज़्यादा दिक़्क़त पढ़े-लिखों को mould (सुधार) करने में आती है. एक तो वे यह समझते हैं कि दुनियाँ में धोखा बहुत है और फिर हर चीज़ को वे अपनी अक़्ल पर तोलते हैं. जब तक अभ्यास करके मन शान्त न हो जाय, और आत्मा का ज्ञान न खुलने लगे, तब तक तुम यह नहीं समझोगे कि जो कुछ गुरु कहता है वह सही है. जब तक बुद्धि शुद्ध न हो जाय तब तक गुरु की बात पर blind faith (अन्ध-विश्वास) करना ही पड़ेगा.

हमने जो कुछ भी हासिल किया वह गुरु पर faith (विश्वास) रख कर किया है. जो कुछ उन्होंने कहा हमने उसको मान लिया. कभी negative faith (विपरीत विचार) पैदा नहीं किया. हमने मान लिया. जब हमें स्वयं ईश्वर का अनुभव हो गया तब पूरा यकीन हो गया कि जो यह कहते थे वह बिलकुल ठीक है.

(इस लेख में पूज्य गुरु महाराज ने blind faith शब्द का प्रयोग अनेक बार किया है जिसका हिन्दी में अर्थ "अन्ध विश्वास " किया गया है. अन्धविश्वास शब्द का एक अर्थ 'superstition भी है. पूज्य गुरुदेव ने जिस अर्थ में blind faith शब्द का प्रयोग किया है उसका आशय यह है कि -गुरु की बात पर आँख बंद करके अर्थात बिना किसी ना नुकर के विश्वास कर लेना.)

सन्त चरनदास जी कहते हैं -

गुरु को रामहि जान कृस्न सम जानिये ।

गुरु नरहींह औंतार जो बावन मानिये ।

गुरु को पूरन जान जो ईश्वर रूप ही ।

सब कुछ गुरु को जान यह बात अनूप ही ।

हरि गुरु एकहि जान यह निश्चय लाइये ।

दुविधा ही को बोझ बेगि बगाईये ॥

राम संदेशः दिसम्बर, 1967.

चाह और दीनता

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ .श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

मनुष्य यह नहीं जानता कि वास्तव में वह चाहता क्या है और प्रभु से माँगता क्या है ?. उसके अन्तर में अनेक प्रकार की चाहें उठतीं रहती हैं और वह उन्हीं के अनुसार व्यवहार करता है. किसी वस्तु या स्थान के विषय में कुछ सुना तो उसे प्राप्त करने की या देखने की इच्छा प्रबल हो उठती है. कहीं यह सुन लिया कि मालिक दर्शन करने योग्य हैं, उनके दर्शन अवश्य करने चाहिये,तो वैसी चाह उठने लगी. यदि यह चाह प्रबल हुई तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह अब और वस्तु नहीं चाहता, केवल मालिक के दर्शन करने हैं. किन्तु यह चाह क्षणिक होती है. उसे यह मालुम नहीं कि उसके अन्दर अनगिनत दूसरी चाहों के अम्बार लगे हुए हैं और जिस समय उन चाहों में से किसी एक या एक से अधिक ने उग्र रूप धारण किया और सँसार के भोग रसों का झोंका आया तो मालिक के दर्शनों की चाह का पता भी न रहेगा कि किधर विलीन हो गई. हमारा अंतःकरण मलीन है. पर्दे पर पर्दे पड़े हैं. हर पर्दे से चाहें उठती हैं और जितनी नीचे से चाह उठेगी, ऊपर वाली चाह को दबा लेगी. यदि मालिक से मिलने की चाह अंतःकरण (ब्रह्माण्डी मन या सतोगुणी मन) के भीतरी पर्दे से होती तो वह अन्य चाहों के उठने पर इस तरह विलीन नही हो जाती. वह चाह तो अंतःकरण के बाहरी पर्दे (पिंडी मन या रजोगुणी मन) से उठी थी, इसलिए जल्दी विलीन हो गई.

सत्संगियों की भी न्यूनाधिक यही दशा होती है. जिस समय जो चाह जागृत होकर उभार लेती है उस समय उसी का वेग रहता है और उसी के अनुसार कर्म होने लगते हैं. जब तक कोई चाह प्रबलता से नहीं उभरती तब तक वह यह समझता है कि अब कोई संशय शेष नहीं रहा, सब बातें अच्छी तरह समझ लीं , अब तो केवल एक ही चाह शेष है कि मालिक के दर्शन हो जायें..किन्तु यह सोच -विचार बिलकुल ग़लत हैं क्योंकि जो चाहें मन में अभी गुप्त रूप से जमा हैं उनकी उसे अभी सुध भी नहीं है. मनुष्य जब भजन, ध्यान और ईश्वर का

स्मरण करने बैठता है तो चाहों के हिजूम सामने आने लगते हैं. स्मरण, ध्यान व भजन जिसके लिए वह बैठा था, सब ग़ायब हो जाते हैं. यदि मालिक से मिलने और उसके दर्शन करने की चाह के सिवाय और कोई चाह अन्तर में मौजूद नहीं थी तो यह सब चाहें कहाँ से आ गईं?. बात वास्तव में यह है कि ये सब चाहें मन में पहले से ही जमा थीं और जमा हैं. अन्तर केवल इतना है कि जो मनुष्य संत सदगुरु की शरण में आए हैं और जिनको उन्होंने उपदेश दे दिया है उनके अंतःकरण मैं ईश्वर से मिलने और उसके दर्शनों की चाह के बसने की जड़ जम गई है. उनके अन्तर में वह चाह नीचे के पर्दों तक प्रवेश करती जाती है और सदा मौजूद रहती है चाहे देखने में उनका व्यवहार निपट संसारियों का सा क्यों न हो. चाहें जितने भी झकोले दुनियाँ के झंझटों के आवे वह चाह नष्ट नहीं होंगी, बीज रूप में बनी अवश्य रहेगी. बहुत समय तक गुरु के सत्संग में रहने से जब वह चाह निज मन और सुरत में बस जावेगी तब कोई डर नहीं रहेगा, यह निश्चय हो जाएगा कि कभी वह चाह प्रबल रूप धारण करेगी और एक न एक दिन उसके प्रभाव से मालिक से मिलना हो सकेगा. किन्तु यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि मालिक से मिलना या उनके दर्शन प्राप्त करना कोई दाल -भात नहीं है जो आसानी से खा लिया जाए. जब दुनियाँ और दीन की सब चाहों में आग लगा दी जायेगी , केवल एक चाह मालिक से मिलने की ही शेष रहेगी, और मनुष्य के सब व्यबहार, आन्तरिक और बाहरी, उसी के अन्तर्गत होंगे, सब पाप का नाश हो जायेगा, तब मालिक के दर्शन होंगे.

यह युग प्रेम और भक्ति का हैं जो बिना दीन बने नहीं आ सकती. यदि सच्ची चाह मालिक से मिलने की और उनके दर्शन प्राप्त करने की होगी तो सच्ची दीनता भी आवेगी और उससे परमार्थ की कार्यवाही सुगमता से बन पड़ेगी. यदि सच्चे गुरु की शरण प्राप्त कर ली है और उनके उपदेश का पालन करता है तो चाहे वह कहीं भी रहे उसका परमार्थ बनना शुरु हो गया है. जो बीज सतगुरु ने उसमें डाल दिया है वह नष्ट नहीं होगा. जब भी उससे सच्चे परमार्थ की कार्यवाही बनेगी वह बीज अँकुर बन कर फूटेगा और फूलेगा- फलेगा. उसकी एक न एक दिन सब चाहें नाश हो जायेंगी. केवल एक ही प्रबल चाह रह जाएगी कि

कब मालिक के दर्शन प्राप्त हों. सतगुरु के चरणों में प्रीति आना बड़े सौभाग्य की बात हैं. इसी के द्वारा सब मार्ग सुगम हो जाता हैं.

सच्चे मालिक की प्राप्ती की चाह या ऐसी चाहें जो उसके प्राप्त होने में सहायक हों, उनको छोड़ कर शेष सब चाहें निकृष्ट हैं और दुनिया में फँसाने वाली हैं. संसारी चाहों के पूरा होने से परमार्थ की कार्यवाही नहीं बन सकत . यह भले ही हो जाए कि हर मृत्यू से कुछ कर्म कट जाएँ, कुछ कर्म बोझ हल्का हो जाए और आगे चल कर जब इन सब से ऊब जाये तब मालिक से मिलने की सच्ची दीनता पैदा हो तथा सच्चे परमार्थ की करनी बने.

सच्ची दीनता यह हैं कि सँसार से दुःखी होकर सँसार को छोडना चाहे. जो इस सँसार से दुःखी हैं उसे यहाँ की कोई वस्तु नहीं सुहाती, किसी वस्तु में आवश्यकता से अधिक उसका ध्यान नहीं जाता. वह यहाँ इस तरह रहता हैं जैसे कोई परदेसी हो जो दूसरी जगह जाकर बेबस और लाचार हो जाता हैं और यही समझता हैं कि यह देश मेरा नहीं हैं. जिसका कोई हाल पूछने वाला नहीं और जैसे सँसार तथा उसके पदार्थों से कोई लगाव नहीं हैं उसका पूछने वाला परमपिता परमेश्वर हैं. ऐसा मनुष्य सच्चा दीन और ग़रीब हैं. ग़रीब से मतलब यह हैं कि उसके पास किसी का बल और नहीं हैं. न तो वह सँसार के किसी योग्य हैं और न ही वह परमार्थ की करनी ही भली प्रकार कर सकता हैं. ऐसे दीन पर मालिक ख़ूब दया करता हैं और उसके सब काम भली प्रकार बनते चलते हैं. उसको सिवाय मालिक के किसी दूसरे का बल और सहारा नहीं हैं. जो मनुष्य ऐसा दीन होगा वह सतगुरु के वचन हितचित से सुनेगा और उन पर अमल करेगा. यह हुई उत्तम दीनत . इससे भी उत्तम अर्थात सर्वोत्तम दीनता होती हैं - वह हैं प्रेम रूप दीनता. प्रेम में वह आकर्षण होता हैं कि सुरत स्वयँ मालिक की ओर को खिचती हैं क्योंकि वह उसका अंश हैं. जब मनुष्य के सब आपे दूर हों, सिवाय परमात्मा के और किसी का भरोसा न हो तब प्रेम की अवस्था प्राप्त होतीं हैं और वही पूर्ण दीनता की अवस्था हैं. जब सच्चा और पूर्ण दीन बने तो दीनबन्धु और दीनानाथ का पात्र बने. अतः दीनता को अपनाना चाहिए. पहली चाहें वह निकृष्ट श्रेणी की ही क्यों न हो, धीरे -धीरे

वह उत्तम और अति उत्तम श्रेणी की भी हो जायेगी. इस काम में सतगुरु का सत्संग बहुत लाभदायक है. जब जब सतगुरु का संग मिले उसका लाभ उठाना चाहिए.

असली सत्संग यह है कि सतगुरु की वाणी को याद रखे और उनके आदेशों पर चलने का प्रयत्न करे . संत लोग ज़ाहिरदारी उपदेश बहुत कम करते हैं क्योंकि अभ्यासी इस कान सुनते हैं और उस कान निकाल देते हैं. वे उपदेश उसी को करते हैं जो उसका पालन करने की कोशिश करते हैं अन्यथा वह मौन धारण कर लेते हैं. क्योंकि बात यदि स्पष्ट कही जाए तो जो व्यक्ति मनमत है और अपने मन के कहने पर चलता है वह उनके वचन सुनकर बिलकुल ही अलग हो जाएगा. जब तक वह अपने मन के मुताबिक़ व्यवहार कर रहा है तो मन की ओट में कुछ भक्ति भी कर रहा है. सम्भव है आगे चल कर सीधे रास्ते पर आ जाए. और यदि उसको कोई बात साफ -साफ कही जायेगी, तो जो वह कर रहा था उसको भी छोड़ देगा और जो कुछ लाभ हो रहा था उससे भी वंचित हो जाएगा .इसलिए संत लोग ऐसे अभ्यासियों के साथ ख़ामोशी इख्तियार कर लेते हैं और इसी में उनकी भलाई है.

राम सन्देश : मार्च-अप्रैल, 2012.

जन्म जन्मान्तर के संस्कार

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जन्म -जन्मान्तर के संस्कार भोगते-भोगते जब क्षीण प्रायः हो जाते हैं और उनका परदा झीना रह जाता है तो मनुष्य ऐसी आत्माओं पर कृपा करके मनुष्य चोले में भेजता है ताकि वे चैतन्य वृत्ति को विकसित कर आत्मा पर से उन झीने परदों को हटाकर, पवित्र निर्मल, चैतन्य बनाकर चौरासी के चक्र से बाहर निकाल दें और वे परमपिता परमात्मा की गोद में पुनः वापस हो सकें तथा परमशान्ति को पा सकें. सच तो यह है कि हम यहाँ तजुर्बा हासिल करने के लिए भेजे गए हैं. यहाँ आकर आत्मा दुनियाँवी चीज़ों में फँस गयी. हम ज्यों-ज्यों दुनियाँ को अपनाते हैं, रूहानियत दबती जाती है. आत्मा पर मन, बुद्धि और ख़्वाहिशात के परदे पड़ जाने से वह अपने आप को भूल गयी है और मन उस पर हावी हो गया है.

यह दुनियाँ मन का ही पसारा है. यहाँ के सभी जीव इस माया के सामान बन गए हैं. हम दुनियाँ की चीज़ों का रस लेते हैं और उन्हीं में आनन्द मानते हैं. विपरीत इसके आनन्द सिर्फ़ आत्मा में है. चूँकि हमें उसका ज्ञान नहीं है, हम इन्हीं आरज़ी सुखों को सब कुछ मान बैठे हैं. तजुर्बा करना यही है कि एक-एक चीज़ को भोंगे तो पायेंगे कि कोई चीज़ न तो आनन्द देने की शक्ति रखती है और न दे सकती है. जो कुछ भी थोड़ा बहुत सुख हमें मिलता है वह उन चीज़ों से नहीं मिलता बल्कि वह तो हमारे अपने अन्तर में मिलता है. जैसे खाने को ही ले लें. जब तक भूख है, हम उस खाने को बड़े चाव से खाते हैं, परन्तु भूख के मिटते ही हमें उसकी चाह नहीं रहती. अगर ज़बरदस्ती कुछ अधिक खा भी लिया जाए तो उसका प्रतिकूल परिणाम मिलता है, यानी शरीर अस्वस्थ हो जाता है. कभी-कभी वही खाना प्राणघातक भी हो जाता है. अगर वास्तविक आनन्द खाने में हो होता तो ऐसा नहीं होना चाहिए था. यही खाना जो कभी सुख का माध्यम था, अब क्यों दुःख का कारण बना ? दूसरा उदाहरण किसी खेल का लें. जैसे ताश खेल रहे हैं, बड़ा आनन्द आ रहा है, छोड़ने की तबियत नहीं होती. अगर

कोई छेड़-छाड़ करता है तो बहुत बुरा लगता है. उसे मना कर देते हैं. घंटों उसी खेल में मशगूल रहते हैं. उसी समय अगर कोई हमारे किसी सगे रिश्तेदार की बीमारी का या ऐसा ही कोई अन्य दुखद समाचार देता है तो हम ताश फेंककर उठ खड़े होते हैं. खेल का सब आनन्द एक तरफ रह जाता है. अतः वास्तविक आनन्द तो खेल में नहीं वरन कहीं और था जिसे हम समझकर भी मानते नहीं. विषयों का आनन्द तो सभी काल व सब अवस्थाओं में ऐसे ही रहा है और रहेगा भी - यह आनन्द क्षणिक है. स्थायी आनन्द तो आत्मा में है, वह आनन्द एक-रस है, उसमें घटाव-बढ़ाव नहीं होता.

हम सभी काल्पनिक जगत में फंसे हुए हैं और कहते हैं कि संध्या-पूजन में हमारा मन नहीं लगता, हमें फ़ायदा नहीं होता. हो भी तो कैसे ? हम चौबीसों घण्टों दुनियाँ की चिन्ता में अनवरत ढ़ंग से रत हैं. हमने इसी को अपना लक्ष्य मान रखा है. श्रष्टि के नियमानुसार तो दुनियाँ चलती रहती है और आगे भी चलती रहेगी. यह अपनी चाल नहीं बदल सकती, न छोड़ सकती है. इसके कर्म भी हमें करने ही पड़ेंगे. पर हम सत्संगियों को चाहिए कि अपना फ़र्ज़ पूरा करें, तजुर्बा हासिल करके दुनियाँ के नश्वर पदार्थों से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करें और स्थायी वस्तुओं को दृंढ़ता से ग्रहण करें. संतजन यह कभी नहीं कहते कि दुनियांवी फ़र्ज़ पूरे मत करो. फ़र्ज़ अवश्य पूरे करो लेकिन एक ड्यूटी (कर्तव्य) समझ कर जैसे संडास में हम ज़रूरत भर को ही बैठते हैं. मान लो कोई काम करना ही पड़े तो उसे करो, परन्तु उसमें फलासक्ति न रखो वरना संस्कार बने बिना न रहेगा और अन्त में उन संस्कारों को भुगतना भी पड़ेगा. फल-त्याग का मतलब यह भी नहीं कि कर्म का सर्वथा परित्याग कर दो, अपितु उसे अपने इष्ट को अर्पण कर दो. भला भी उसका और बुरा भी उसी का. तुम्हारा अपना उसमें कुछ भी नहीं. ऐसा करते रहने से संस्कार बनने रुक जायेंगे. और जब संस्कार ही नहीं रहे तो आवागमन कैसा ? यही अधिकार बनना है. यह कहीं बाहर से नहीं आता और न मिलता है, सब तुम्हारे अन्दर है. मान लो तुम्हें कमरे की सफाई करनी है तो पहले यह आवश्यक है कि खिड़की-दरवाज़े ठीक ढ़ंग से बन्द कर लो, नहीं तो उसमें झाड़ू लगाओगे और दूसरी तरफ़ खिड़कियों और दरवाज़ों के रास्ते गुर्दे -गुबार आते रहेंगे और कमरा कभी

साफ़ नहीं हो सकेगा. इसी प्रकार से हृदय रूपी कमरे को साफ़ करने के लिए ज़रूरी है कि पहले उन इन्द्रियों पर बन्द लगावें जो संस्कार बनाती हैं. संस्कार बनने के कई रास्ते हैं - जैसे कान से शब्द को सुनकर, आँखों से देखकर, जिह्वा से स्वाद लेकर, हाथों से स्पर्श करके. इनमें समता लाओ. फिर सत-असत विवेक की कसौटी पर इन्द्रिय-जन्य ज्ञान को कसो. असत का परित्याग कर सत को अपनाओ और वैसा ही अपना सहज स्वभाव बना लो. फिर तुम्हें संतों के संग में जाने, उनके सदवचनों को सुनने और समझने पर जन्म-जन्मान्तर के दबे संस्कारों को उभारने का मौक़ा हाथ आएगा. जब वे संस्कार उभरें, उन्हें परमात्मा की कृपा समझ कर भोग लो. जहाँ अपने को कमज़ोर पाओ, परमात्मा से दुआ करो, वे तुम्हें भोगने की शक्ति देंगे. इस तरह सतत प्रयत्न करते-करते तुम अपने हृदय की सफ़ाई कर सकोगे. तब तुम्हारा अधिकार जागेगा. अपनी चेष्ठा से यह कभी नहीं हो सकता. सतगुरु की ओट लो. उनके चरणों में आने आप को समर्पण कर दो. निरन्तर उनका ध्यान करो और उन्हीं में लय हो जाओ. उनकी कृपा से तुम्हारा मन मरेगा, आपा टूटेगा और आत्मसाक्षात्कार होगा. रास्ता चलने से कटता है. इसको कहाँ तक खोलकर समझाया जाए, वाणी किसी हद तक ही जा सकती है. अनहद में तो सिर्फ़ आत्मा ही गम्य है. इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सब पीछे रह जाते हैं.

अभी तो हम मन के घेरे में हैं. वह हमें इन्द्रिय भोगों में फँसाए हुए है. एक के बाद दीगर वसनाएँ हमें चक्र में घुमा रही हैं. कभी हम बाल-बच्चों में फँसे हैं, तो कभी रिश्तेदारों में. इन्हीं में सारा सुख मान रहे हैं, निगाह ऊपर को जाती ही नहीं. अगर थोड़ी देर संतों की सौहबत में जा बैठते हैं तो क्षणिक वैराग्य होता है, परन्तु जहाँ वहाँ से हटे नहीं, माया फिर से दबोच लेती है और काल के कुचक्र में नचाने लगती है. कहाँ तो हम आये थे कि फ़र्ज़ पूरा कर तजुर्बा हासिल करें और सबसे अलहदा हो जायें, दुनियाँ के किसी झगड़े से मतलब न रखें. कहाँ इस दुनियाँ को ही सब कुछ मानकर उसी में उलझकर रह गए. जब तक दुनियाँ की कदर हमारे दिल में है, ईश्वर से प्यार नहीं होगा और न परमार्थ की कमाई हो सकेगी. हम सब खुद ही अपने को दुनियाँ में फँसाए हुए हैं. दुनियाँ तो स्वतः जड़ है - वह क्या किसी को फँसायेगी ?

हम स्वयं जब तक इससे बाहर न निकलना चाहें, तब तक न तो गुरु की मदद काम करेगी और न परमात्मा की. संत कभी किसी को दुनियाँ नहीं देता, बल्कि वह तो दुनियाँ उजाड़ कर जीव को ईश्वर से मिला देता है.

हम दुनियाँ में फँसे हुए हैं. हम अपना सम्बन्ध दुनियाँ से केवल उतना ही रखें जितना कि मात्र जीने भर को आवश्यक हो. वरना सबसे अलहदा हो जाएँ. इज़्ज़त, आबरू, मान-मर्यादा, नातेदार-रिश्तेदार, सगे-सम्बन्धी, सब दिखावे के हैं. उनका मोह जो हमें जकड़े हुए ही वही दुःख का असली कारण है. मन चाहता है कि सभी उसके कहने में चलें, उसकी इज़्ज़त करें. यही मन का भरम है, उसे तोड़ दो और धर्म पर आ जाओ. न किसी से राग हो न द्वेष. बगैर माँगे किसी को राय मत दो और न किसी से छेड़-छाड़ करो. सबसे अलहदगी अख़्तियार करो और इनसे निकल भागो. जब तुम्हारे अन्दर सच्ची चाह निकलने की होगी, गुरु और ईश्वर सभी मदद के लिए आ जायेंगे, तुम्हें खोजना नहीं पड़ेगा. वे बाहर तो नहीं हैं, अपितु तुम्हारे अन्दर हैं. हाँ, तुम उन्हें पहचानते नहीं हो, इसीलिए मारे-मारे फिरते हो. सच्चे दिल से उसे पुकारो, मदद अवश्य मिलेगी.

गुरु हमें दुनियाँ से कैसे निकालते हैं, मिसाल के तौर पर सुनो. बचपन में मुझे जुआ खेलने का तो नहीं बल्कि देखने का बड़ा शौक था. जहाँ कहीं जुआ खेला जाता था मैं वहाँ अवश्य जाता और दिलचस्पी के साथ वहाँ घंटों समय व्यतीत करता. एक बार ऐसा हुआ कि दिवाली के दिन लालाजी (परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज) मेरे यहाँ पधारे हुए थे. रात को जुआ देखने के लिए मैं बेचैन था. लालाजी जब सो गए मैं भाग कर वहाँ गया जहाँ जुआ खेला जा रहा था और काफी रात तक वहाँ रहा. दूसरे दिन कहीं सड़क पर जुआ हो रहा था. मैं वहाँ भी घंटों खड़ा तमाशा देखता रहा. शाम को जब मैं सत्संग में आया तो किसी बहिन ने लालाजी से कहा कि भाई साहब भी तो जुआ खेलते हैं. लालाजी ने पूछा - "कौन, श्रीकृष्ण? बहन ने कहा - "जी, श्रीकृष्ण". लालाजी ने अपना मुँह दोनों हाथों से ढ़ककर दहाड़ें मारकर रोना शुरू किया और काफी देर तक रोते रहे. मैं किंकर्तव्यविमूढ़ बन गया, सहमा

और डरा, सर झुकाये बैठा रहा. इसके बाद भी लालाजी ने मुझसे कुछ नहीं कहा लेकिन उसी के बाद से मेरी वह आदत हमेशा के लिए छूट गयी.

अभ्यासियों का एक महान शत्रु काम है. इन्सान के अन्दर प्रेम का माद्दा है. आमतौर पर देखा जाता है कि यह प्रेम वासनामय ही होता है. कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में वासना उसमें समायी हुई है. मन स्वभावतः दुनियाँ का रसिया है. एक चाह को पूरी तरह भोग भी नहीं पाता कि दूसरी चाह आ बैठती है. अतः वह प्रेम और कुछ नहीं गलीज़ है. असल प्रेम तो आत्मा का विषय है. प्रेम का दूसरा नाम ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है. जब तक मन का प्रेम आत्मा से नहीं जुड़ेगा, सच्चा प्रेम नहीं मिल सकता. मन का लगाव आत्मा से है. वह उसी से शक्ति लेकर सब कुछ करता - धरता है. आत्मा तो स्वयं कुछ नहीं करती. मन माया का एक प्रमुख विकारी अंग है. माया देश में आत्मा पर हावी है और जैसा चाहता है उसे नचाता रहता है. काम शक्ति मन ही के अधीन है, एकान्त इसका सबसे बड़ा सहायक है. जहाँ तक सम्भव हो, जब तक तुम मन के स्थान पर हो, इस काम शक्ति को मत उभरने दो. जब कभी इसका ज़ोर हो, फ़ौरन एकान्त का परित्याग कर दो, वरना यह ढ़ेर कर देगी. सभी सत्संगी भाइयों और बहनों को ऐसी परिस्थिति में पूर्ण सतर्कता बरतनी चाहिए. पुरुषों को किसी भी गैर- स्त्री, चाहे माँ ही क्यों न हो, के साथ और स्त्रियों को किसी गैर -पुरुष के साथ एकान्त में होना वर्जित है. ज़रूरत के मुताबिक पुरुष अपनी धर्मपत्नी को और स्त्री अपने पति को अवश्य साथ ले लें. वरना धोखा खाना पड़ेगा.

पर- स्त्री- गमन सबसे बड़ा अपराध है. संतमत इसे क्षमा नहीं करता. ऐसा व्यक्ति संतमत से निकाल दिया जाता है. सेक्स (sex) का आनन्द एक दफा ले लेने का बाद, मन आसानी से वहाँ से नहीं मोड़ा जा सकता. अपनी स्त्री का संग भी duty sake (कर्तव्य-मात्र के लिए) होना चाहिए. अपनी तरफ़ से यदि इच्छा उत्पन्न हो तो उसे फौरन दबाने का प्रयत्न करना चाहिए.हम यह नहीं समझते कि जिस शक्ति को व्यर्थ खोने में इतना आनन्द मिलता है उसे बचाये रखने में कितना आनन्द मिलेगा. इसी प्रकार अपनी सब इन्द्रियों को regulate (नियंत्रित) करो. ज़रूरत के मुताबिक़ उनका इस्तेमाल करो ताकि कम से कम शक्ति का ह्रास हो और ईश्वर से अर्जित की हुई शक्ति को ईश्वर के पथ पर लगा दो.

राम सन्देश : नवंबर-दिसम्बर, 2001

तुम जब ख़ुद तैयार हो जाओगे तो गुरु की मदद काम पूरा करेगी

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

सभी जीव-जन्तुओं की दुहरी ज़िन्दगी है. दुनियांवी (भौतिक) ज़िन्दगी ऊपर है और रूहानी (आत्मिक) नीचे दबी हुई है. भौतिक जीवन अस्थायी (temporary) है और आत्मिक जीवन हमेशा रहने वाला है. भौतिक जीवन नक़ल है. असली ज़िन्दगी (जीवन) तो रूहानी (आत्मिक) है. दुनियाँ ने उसे ढ़क रखा है. जब तक दुनियाँ का तजुर्बा न होगा, यहाँ की वस्तुओं और सुख की नाशवानता का पता नहीं लग जायेगा, तब तक रूहानी-ज़िन्दगी (आत्मिक जीवन) की तरफ़ अभ्यासी नहीं मुड़ेगा. कैसे बढ़ेगा ?

हमारी आत्मा जो दयाल देश से निकाली गयी और इस काल देश यानी इस दुनियाँ में भेजी गयी उसकी वजह यही थी कि हमारे अन्दर ख्वाहिशात (कामनाएँ-वासनाएँ) भरी पड़ी थीं, इसलिए परमात्मा ने दया करके हमें यहाँ भेजा. हम जब पैदा हुए और आँख खुली तो पहले माँ-बाप को देखा, भाई-बहिनों को फिर दुनियाँ की और चीज़ों को देखा और उनसे मोह हो गया. आये थे निकलने लेकिन उलटे उलझ गए.

दुनियाँ के सब काम करते-करते जीव जब सब बातों का कर्त्ता अपने आप को समझने लगता है, लेकिन उसे जब होश आता है और दुनियाँ की बातों का तजुर्बा होता है, तब वह देखता है कि जितने काम मैं कर रहा हूँ वह रहने वाले नहीं हैं. उनसे हासिल हुई ख़ुशी रहती नहीं है, अस्थायी (temporary) है, जाती रहती है. शादी ब्याह किया तो ख़ुशी मिली लेकिन शादी के बाद जब बाल-बच्चेदारी और गृहस्थी की दुःख-मुसीबतें सामने आती हैं तो वह ख़ुशी जाती रहती है. संतान पैदा होती है तो ख़ुशी होती है लेकिन उसके मर जाने या अलहदा हो जाने पर क्या वही ख़ुशी क़ायम रहती है ? रुपया पैदा करते हैं और उसे जोड़-जोड़ कर खुश होते हैं, क्या वह क़ायम रहेगा ? अलहदा तो ज़रूर ही होगा. बड़े-बड़े सेठ साहूकार एक दिन दिवालिया हो जाते हैं. बड़े-बड़े राजे-महाराजे खाने के लिए मोहताज दिखाई देते हैं. कहाँ

गयी वह ख़ुशी ? हम आये हैं यहाँ दुनियाँ का तजुर्बा करने के लिए. इसलिए यह ज़रूरी है कि जितना आवश्यक हो उतना उसमें घुसो यानी ज़रूरत के मुताबिक उसमें व्यवहार करो लेकिन उसे लक्ष्य मत बनाओ. अगर उसी को सब कुछ समझ रखा है तो ईश्वर के दरबार में कैसे घुसोगे ?

लोग कहते हैं की तरक्की नहीं होती. फँसे हुए हैं दुनियाँ में, एक दो दिन को शौंकिया सत्संग में आये, घर पर भी कभी संध्या-पूजा की तो कर ली, नहीं तो दुनियाँ के धन्धों में ही लगे रहते हैं. मकान बनवाने कि ख्वाहिश हुई तो उसको बनवाने के लिए रूपये के इन्तज़ाम की फ़िक्र हुई, क़र्ज़ लिया या और कहीं से इन्तज़ाम किया. जब मकान बन कर तैयार हो गया और कर्ज़ा भी अदा हो गया तो यह फ़िक्र पड़ गयी कि कोई किरायेदार नहीं मिलता. जब किरायेदार मिल गया, माल इकठ्ठा होने लगा, तो चोर-डाकू आने लगे, रखवाली की फ़िक्र पड़ गयी.

क्या ज़िन्दगी भर यही करते रहोगे ? ईश्वर का ध्यान कब करोगे ? किसी को देखो तो वह अपने बेटों की शिकायत करता रहता है कि वे उसका कहना नहीं मानते .यह तो दुनियाँ का क़ायदा है. वो अपना घर देखें या तुम्हारा देखें. इसमें शिकायत काहे की. बहुयें आती हैं अपना घर छोड़कर. बेटा बहू की नहीं सुनेगा तो क्या तुम्हारी सुनेगा ? सासें शिकायत करती हैं कि जब से बहू आयी है तब से बेटा हमारी बात नहीं सुनता. क्या तुमने अपने बेटे को परमेश्वर समझ रखा है कि वही तुम्हारा पालन-पोषण करेगा ? तुमने अपना फ़र्ज़ पूरा कर दिया, अब यह तुम्हारे बेटे की ज़िम्मेदारी है कि वह अपना फ़र्ज़ पूरी तरह अदा करता है या नहीं. अगर वह अपना फ़र्ज़ अदा नहीं करता तो इसमें दुखी होने की क्या बात

है ? अगर लड़कों के झंझट में पड़े रहोगे तो ईश्वर की तरफ ध्यान कैसे लगेगा ?

जो चीज़ हमें ईश्वर से दूर करती है, हमें चाहिए कि हम उसे छोड़ते चलें और जो चीज़ हमें ईश्वर के नज़दीक लाती है उसे अपनाते चलें. लेकिन ऐसा हम कर नहीं पाते. बात क्या है ? अभी अधिकार पैदा नहीं हुआ है. संस्कार तो बना और मनुष्य जन्म भी मिला है लेकिन

अधिकार भी बनता तो गुरु की ओट लेते जिससे मन से पिंड छूट जाता. लेकिन जो समझते हैं कि मन ही उनका साथी हो वो दरअसल ईश्वर को नहीं चाहते और मन के कहने पर ही चलते हैं तो हर समय मन ही उन पर हावी रहता है.

एक बात और कही जाती है कि मन नहीं मानता. अपनी तो अपनी रिश्तेदारों तक की फिकर पडी है. उनकी उलझनों की भी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले रखी है. कहते हैं कि फ़लां (अमुक) ने ये बुराई की और फ़लां इस तरह ख़राब है. क्या तुम इसी काम के लिए यहाँ आये थे और क्या यह काम तुम्हारे ही सुपुर्द है ? ईश्वर तमाम दुनियाँ का मालिक है. तुम अपने आपको मालिक क्यों समझते हो ? तुम ईश्वर का मुक़ाबला करते हो और हो कुछ नहीं. फिर कहते हो कि मन नहीं लगता.

फँसे तो तुम ख़ुद हो, गुरु कैसे हटाए ? तुम ख़ुद निकलना चाहते हो और उसके लिए कोशिश करते हो, मगर निकल नहीं पाते क्योंकि चाहते रहते हो कि तुम्हारे दुनियाँ के सब काम भी पूरे होते रहें और दीन भी मिल जाए. यह नहीं हो सकता. एक गुरु नहीं अगर दुनियाँ के सारे गुरु भी ज़ोर लगायें लेकिन जब तक तुम ख़ुद नहीं निकलना चाहोगे तब तक कोई मदद नहीं कर सकता.

संत तो दुनियाँ उजाड़ने आते हैं, आग लगाने आते हैं. मतलब यह कि दुनियाँ में कर्म करते हुए उसमें फँसो मत, उसे मुख्य मत समझो. मन को और अपने आपको भी दुनियाँ के झंझटों से निकालो.

ख़ुदी (अहं या ego) क्या है ? ख़ुदी यह है कि मन चाहता है कि मैं जिसको चाहूँ अपनी मर्ज़ी के मुताबिक चलाऊँ. धर्म पर चलने के बाद भी कोई-कोई दुखी रहता है. ऐसा क्यों है ? ऐसा इसलिए है कि ख़ुदी बीच में है. चाहता है कि जैसा मैं कर रहा हूँ वैसा ही सब करें. जब तक दुनियाँ तुम्हारे सामने है और तुमने उसी को अहम (मुख्य) समझ रखा है, तब तक ईश्वर तो मिलता नहीं. इसलिए पहले अपनी सहायता आप करो. तुम ख़ुद फँसे हो, मन की

ज़ंजीरों में तुम ख़ुद जकड़े हुए हो, अगर तुम उन्हें काटना पसन्द करोगे तब गुरु तुम्हारी मदद करेगा. गुरु की मदद मिलेगी तो तुम्हारा काम बन सकता है. फ़ारसी में कहा जाता है -

हम खुदा ख्वाही व हम दुनियाँ ए दूँ /

ई ख्यालस्तों मुहालस्तो जिनूं //

(भावार्थ - चाहते हो कि दुनियाँ भी मिल जाय और ईश्वर भी मिल जाये. ऐसा ख़्याल करना पागलपन नहीं तो और क्या है .?)

जब तक यह शरीर है तब तक ख़ुदी (ममता) है. जीवन मुक्त होने पर भी पूरे तौर से उसका चला जाना मुश्किल है. कुछ न कुछ यह बाकी रहती ही है. केले के पत्ते सूख कर गिर जाते हैं मगर उनका निशान पेड़ के तने में बाकी रहता है. यही हाल ममता का है, मगर यह ममता बंधन का बायस (कारण) नहीं होती. विचार दो तरह के होते हैं - बाहरी और अन्दरूनी. किसी फल के छिलके के लिए गिरी (मगज़) की ज़रूरत है और मगज़ के लिए छिलके की ज़रूरत है. न छिलके के बगैर गिरी रह सकती है और न गिरी के बगैर छिलका ही रह सकता है. जूता पहन कर तुम काटों पर चल सकते हो, इसी तरह आत्म-ज्ञान का जूता पहन कर तुम इस कांटेदार दुनियाँ में घूम फिर सकते हो.

अज्ञान की वजह से इंसान ईश्वर की तलाश अपने से बाहर करता है. जब आदमी को समझ आ जाती है कि ईश्वर अन्दर है - इस समझ का नाम ज्ञान है. क्या तुमको मालूम है कि परमात्मा इंसान के अन्दर किस तरह रहता है ? वह इसी तरह रहता है जैसे (पिछले वक्त में) शरीफ़ घरों की स्त्रियाँ चिकों में अन्दर रहती थीं. वह हरेक को देखती हैं और देख सकती हैं लेकिन उनको न तो कोई देखता है और न देख सकता है. बिलकुल परमात्मा इसी तरह रहता है. रौशनी देना चिराग़ (दीपक) के लिए स्वाभाविक बात है. उसकी रौशनी में कोई रोटी बनाता है, कोई जाल बनाता है और कोई भगवत गीता पढ़ता है. इसमें रौशनी का काम तो सबके लिए यकसा है.

जिस वक्त मरते समय तीरों की शैय्या पर भीष्म पितामह लेटे हुए थे उनकी आँखों से आँसू जारी थे. अर्जुन ने श्रीकृष्ण भगवान् से कहा कि - "प्रभु, कैसे ताज्जुब की बात है कि हमारा परदादा जो सच्चा आदमी है और इन्द्रियों पर पूरा अख़्तयार रखता है और आत्मज्ञान से भी भरापूरा रहा है, वह माया के भ्रम की वजह से रो रहा है." भीष्म ने ख़ुद जबाब दिया - " भगवन, आपको मालूम है कि मैं माया की वजह से नहीं रो रहा हूँ. मैं सोचने लगा हूँ कि आपकी लीला विचित्र और समझ से बाहर है. जिस ईश्वर का नाम लोग तमाम खतरों पर विजय प्राप्त करने के लिए लेते हैं वही परमात्मा पाण्डवों का रथवान बना हुआ है, उनका साथी और मददगार है, फिर भी पाण्डवों के दुःख की कोई इंतहा (सीमा) नहीं है."

दीनता संतों के चरणों में बैठने से मिलती है

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

प्रश्न - दीनता कैसे प्राप्त हो ?

उत्तर - दीनता संतों के चरणों में बैठने से प्राप्त होती है। संत इतने दीन होते हैं कि उनमें बड़प्पन लेशमात्र भी नहीं होता। वे बच्चों की तरह भोले-भाले होते हैं। यदि हम बराबर उनसे सम्पर्क रखें, उनकी सेवा करें, उनके चरणों में बैठें, तो उनके स्वभाव का हम पर भी प्रभाव पड़ेगा। उनके से गुण हम में आने लगते हैं, दीनता आने लगती है।चन्दन के पेड़ों का असर आसपास के पेड़ों पर भी पड़ता है, उनमें भी खुशबू आने लगती है। गोरखपुर में डॉ. बैनर्जी साहब को देखा, उनमें दीनता, शान्ति, मूर्तिमान थी। उनको कभी गुस्सा होते, उत्तेजित होते, नहीं देखा। जब वे राणाप्रताप कॉलेज के प्रिंसिपल थे तो उनके लिए उनके कॉलेज के प्रोफेसर साहिबान कहा करते थे - " Professor Banerjee has lost capacity to be angry। (प्रोफेसर बैनर्जी में क्रोधित होने की क्षमता ही नहीं रही है) एक दिन मैंने देखा कि एक देवी जी, जो उनकी बहुत नज़दीकी रिश्तेदार थीं, उनके पास आयीं। उनको कोई दिमाग़ी बीमारी थी। मुझसे कहने लगीं - डॉक्टर साहब, बुढ़ढे का दिमाग़ ख़राब हो गया है, यह मेरा फलाँ शख़्स के साथ विवाह कराना चाहता है।" फिर वह बैनर्जी साहब के गुरुदेव का फोटो उठा लाईं और कहा - " इसे सर पर रखकर कहो कि मैं तेरा विवाह नहीं कराऊँगा।" लेकिन वह महापुरुष शान्त थे। कितनी मानसिक शान्ति थी उनमें. चेहरे पर वही सदा से रहने वाली मुस्कान में कोई फ़र्क़ न था। अहंकार (ego) बिलकुल नहीं था। इसी तरह अगर हम भी अपने आपको दीन (humble) समझ लें तो निरादर और अपमान हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

मुसलमानों में हज़रत मूसा एक बहुत बड़े पैग़म्बर हुए हैं।ऐसा सुना जाता है कि वे अब भी पन्थाइयों का मार्गदर्शन करते हैं। एक बार वे ईश्वर दर्शन के लिए तूर पर जा रहे थे, रास्ते में उन्हें शैतान मिला।उसने पूछा, हज़रत, कहाँ तशरीफ़ ले जा रहे हैं ?"

उत्तर मिला - "ख़ुदा के दर्शन के लिए "

शैतान - "नज़राने के लिए क्या ले चले ? "

मूसा - "अल्लाह के लिए किस चीज़ की कमी है ? वह सबसे बड़ा है, उसको कोई क्या दे सकता है "

शैतान - " मूसा, तुम भूल रहे हो। बेशक वह सबसे बड़ा है, लेकिन उसके पास नियाज़तमन्दी (दीनता) नहीं है। वह उसी से ख़ुश होता है जिसके पास दीनता है, जो नियाज़तमन्दी (दीनता) लेकर जाता है। "

मूसा को होश आया। वाकई (वास्तव में) ख़ुदा अज़ीम (महान) है, लेकिन उसके पास नियाज़तमन्दी नहीं है। तुरन्त वे दीन बन गये और वहीं उन्होंने अपना दीनता भरा दिल ख़ुदा को पेश किया। उसी क्षण उन्हें ईश्वर का जल्वा नज़र आया, यानी दर्शन हुए।

ईश्वर के पास दीनता नहीं है। जो कोई दीन बनकर उसके दरबार में जाता है, उसे वह (ईश्वर) मिलता है। संत सदा उसके दरबार में हज़ूरी के साथ हाज़िर रहते हैं, इसलिए वह सदा संतों में मूर्तिमान रहता है। संतों के चरणों में रहने से दीनता और दीनबन्धु दोनों मिलते हैं। संतों के दरबार में दीनता की बहुत क़दर है। उनके पास जब भी जाओ दीन बनकर जाओ।

" लेने को हरिनाम है, देने को अनदान।

तरने को है दीनता, बूड़न को अभिमान।"

परमात्मा ने इस दुनियाँ की रचना की इन्सान के सुख के लिए। हमने अपनी ख़ुदी (अहं) और मन को बीच में लाकर इसे दुःख की जगह बना ली। अगर हम अपनी ख़ुदी को समर्पण करके उसके बन जायें तो सुख ही सुख है। लेकिंन हम यहाँ अपने आपको यहाँ का मालिक बनना चाहते हैं। कहते हैं, हमारा बेटा, हमारी स्त्री, हमारा घर, इत्यादि ।सोचो, क्या धन, स्त्री, पुत्रादि तुमने बनाये ? ये तो सब चीज़ें दुनियाँ का अंग हैं और दुनियाँ उस परमात्मा ने बनाई है, वही इसका मालिक

है। घर वालों, लड़कों आदि के झगड़े तो तुमने ख़ुद अपने ऊपर मोल ले लिए हैं। सबको उसका समझो और भरसक उनकी सेवा करो। अपने अहं, ख़ुदी, को तोड़ दो, यही बीच का रोड़ा है। हर बात में अपने को दीन समझो। जितनी उसने हमें क्षमता दी है, उतनी दूसरों की सेवा करें ।दुःख वहाँ होता है जहाँ हम अपने अधिकार माँगते हैं दूसरों से, लेकिन उनके प्रति अपने कर्तव्यों को भूल जाते हैं। अगर हम अपना कर्तव्य समझकर सब काम करें, तो उसमें दुःख न हो। नातेदारों और रिश्तेदारों से मोह न हो । अगर हम मोह में फँस कर अपने मन को दुःखी रखेंगे तो परमात्मा की उपासना किस मन से करेंगे ? उन्हें अपना न समझो, परमात्मा का समझ कर उनकी तरफ़ अपने 'फ़र्ज़' पूरे करो। ऐसा करने से फ़र्ज़ भी पूरा हो जाता है और बन्धन से भी बच जाते हो।

सबका मालिक एक ही है। वही हमारा बाप है, प्यारा बाप। उसे सिर्फ़ अपने शुभ-अशुभ कर्मों का जज ही मत समझो, उसे सच्चा बाप समझो। वह भूत, भविष्य सब जानता है, सर्व शक्तिमान है। वही सही मायने में जानता है कि हमारी भलाई किस में है। उसी पर निर्भर क्यों न रहो ? उसी में तुम्हारी भलाई है. गृहस्थ में सबसे हिल मिल कर चलो. अगर कोई तुम्हारे पास आवे तो ज़रूरत के मुताबिक़ मौक़े पर सलाह दे दो। वह माने तो अच्छा है, न माने तो आपत्ति मत करो। बुरा मत मानो।

दुनियाँ में अगर कोई सबसे कठिन काम है तो वह मन का मारना है। सन्यासी दुनियाँ छोड़कर जँगल या एकान्त में रियाज़त (अभ्यास) करते हैं। लेकिन जो काम सन्यासियों के अभ्यास से नहीं होता वह गृहस्थ को घर में करने से, सबको सहयोग देने से हो जाता है।

गुरुदेव ने लिखा है - " और मतों में जो काम अग्नि तपने, व्रत रखने, चिल्ला (मुसलमानों में 40 दिन का उपवास) चढ़ाने वग़ैरा से नहीं होता, वह हमारे यहाँ गृहस्थ में सबों की तानाकशी (उलाहना देना, ताना मारना) सुनने, लानत मलामत (लान्छन) बर्दाश्त करने और सब में अपने आपको क़सूरवार मानने से हो जाता है। हमारे यहाँ इसी को तप कहते हैं "। तुम्हारा काम सेवा का है। इसे दृढ़ता से पकड़ लो। चाहे कोई विघ्न आये, अपनी ख़ुदी को तोड़ते हुए उस सेवा मार्ग पर चलते जाओ। जो संतों की बुराई करते हैं, संत उन्हें अपना मित्र समझते हैं और जो संतों की तारीफ़ करते हैं, उन्हें वे अपना दुश्मन समझते हैं। कबीर साहब कहते हैं -

" निन्दक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय।

बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय॥ "

अगर इस तरह हम दुनियाँ में रहें तो फ़क़ीरी ख़ुद-ब-ख़ुद आने लगती है। मन को शान्त कर दो। आत्मा तुम्हारे अन्दर है उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है - अमर सुख, अमर जीवन और अमर आनन्द (Eternal Bliss , Eternal Life, Eternal Happiness) मगर मन ने उसे अपने नीचे दबा रखा है, इसलिए परमात्मा का अपना रूप उसमें नहीं झलकने पाता। मन को शान्त कर लो, आवरण हट जायेंगे और वे सारे गुण जो परमात्मा के हैं, उसमें नज़र आने लगेंगे।

हमारे देश में रोज़ाना की रहनी-सहनी में हम ऐसी बातें पाते हैं जिनसे मन का दमन होता है। अतिथि सत्कार भारतवर्ष में एक बहुत ऊँची चीज़ रही है। अतिथि सत्कार के लिए राजा मोरध्वज ने अपने बेटे को आरे से चीरा। महाराज शिवि ने अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। महाराणा प्रताप ने जँगलों में भी अतिथि सत्कार से मुँह नहीं मोड़ा, जहाँ उन्हें घास की आधी रोटी ज़िन्दा रहने के लिए मिलती थी। ऐसी-ऐसी सच्ची ऐतिहासिक घटनायें आदर्श पेश करती हैं - सच्चाई का, त्याग का। हमारे देश में यह रीति चली आयी है कि अपने ही नहीं बल्कि ग़ैर भी, भले ही वह दुश्मन क्यों न हो, जो दरवाज़े पर आ गया, शरण में

आ गया, उसकी सेवा और रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया, चाहे कितनी ही मुसीबतों का सामना क्यों न करना पड़े। मन इससे कितना शान्त होता है। हमारा साहित्य कितना ऊँचा है कि हर क़दम पर मन का दमन और आत्मा का आनन्द मिलता है। इसके विपरीत पाश्चात्य देशों को देखो तो पाओगे दिखावा, स्वार्थ, अन्दर कुछ बाहर कुछ। उनके यहाँ किसी चीज़ का जितना ज़्यादा दिखावा करो उतना ही अच्छा मानते हैं। स्वार्थ की यहाँ तक हद हो गयी कि बाप-बेटे अपने स्वार्थ में एक दूसरे से बेग़रज़ हो जाते हैं। हमारे देश में यदि कोई गृहस्थ धर्म का ठीक तरह से पालन करे तो शान्ति का रास्ता आसानी से खुल जाता है। अपने स्वार्थ को मार कर दूसरों का उपकार करना - यही हमारे यहाँ का रास्ता है। जिस घर में सहयोग नहीं है, वहाँ शान्ति नहीं है। मन ईश्वर की तरफ़ कैसे

जायेगा ?

सबसे पहले ज़रूरत इस बात की है कि मन ईश्वर के चरणों में लग जाये। आत्मा, जो मन की क़ैद में है, उसे वह तब छोड़ेगा जब परमात्मा की तरफ़ जाय, शान्त हो जाय। पहले आचरण (character) का बनाना है। इसका यह मतलब है कि अपनी इच्छाओं को जायज़ (न्यायोचित, धर्म के अनुकूल) तरीक़े पर भोग कर पूर्ण करो, उनसे उपराम हो जाओ। सबके साथ सहयोग करो। अपना बड़प्पन और हुकूमत दूसरों पर मत थोपो, हाकिम मत बनो, सेवक बनो, तब शान्ति होगी। जब मन में कोई झँझट नहीं होगा तभी पूजा के वक़्त तबियत लग सकेगी और अभ्यास में मन ऊँचा उठता जायगा।

सन्यास लेकर जंगल में जा रहने से मन नहीं मरता, क्योंकि वहाँ वे भोग के सामान नहीं हैं जिनसे मन लुभाया जा सकता है, या जिनका प्रभाव मन पर सीधा पड़ता है। जहाँ भोग की वस्तुएँ सामने आयीं, सन्यासी का मन चलायमान होने लगता है। इसलिए वास्तविक शान्ति गृहस्थ धर्म में ही है।

संतों ने अपनी ज़िन्दगी ऐसी बना ली है जो आदर्श होती है। उनके पास बैठने से असर ज़रूर होता है। चन्दन के वृक्ष के पास और बहुत से पेड़ होते हैं, उनमें भी चन्दन का असर आ जाता है। महापुरुषों के चरणों में बैठने से दीनता अवश्य आती है।

कबिरा संगत साधु की, ज्यों गंधी की बास।

जो कुछ गंधी दे नहीं, तो भी बास सुबास॥

राम सन्देश : मई, 1993

परमार्थ के मार्ग में साँसारिक बाधायें

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

संत-महात्माओं और ईश्वर भक्तों के जीवन-चरित्र पढ़ने से यह मालूम होता है कि दुनियाँ के लोगों ने ईश्वर-भक्ति के रास्ते में बड़ी-बड़ी व्याधियाँ और मुसीबतें पैदा की हैं। ईसा और मंसूर को सूली पर चढ़ना पड़ा मीरा को विष दिया गया, शम्स तबरेज़ की खाल उतारी गयी, गुरु तेग़बहादुर जी को जलते तेल से नहलाया गया, गुरु गोविन्द सिंह जी के बच्चों को जीते जी दीवार में चुनवाया गया। इस तरह की अनेकों मिसालें मिलती हैं। संत महात्माओं को दुनियाँ वालों ने हमेशा तंग किया, उन्हें तरह-तरह के दुःख दिए, जिससे वे सच्चे परमार्थ की कार्यवाही न कर सकें। घोर कलयुग आता जा रहा है। कौन जाने किस वक्त में क्या मुसीबत आयेगी, इसका अन्दाज़ नहीं हो सकता। लेकिन जो कुछ संतों और महापुरुषों ने कहा है उसे सोच कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अगर यह अत्याचार न हो तो प्रभु के प्यार की परीक्षा कैसे हो, और उस प्यार में परिपक्वता कैसे आये ? इसलिए जो मालिक को सच्चे दिल से प्यार करता है वही उन मुसीबतों को सहन कर सकेगा और भक्ति और परमार्थ के रास्ते से डगमग नहीं होगा।

यह दुनियाँ काल यानी शैतान और माया का पसारा है। काल ने सबको फाँस रखा है। परमार्थ-पथ पर चलना इस फंदे से अपने आपको निकालना है। लेकिन काल अपनी दुनियाँ से किसी को निकलने नहीं देता। जैसे-जैसे अभ्यासी परमार्थ-पथ पर अग्रसर होता जाता है, काल उसके लिए अधिकाधिक बाधाएँ पैदा करता है और जो पहुँचे हुए हैं, जैसे संत-महात्मा और साधुजन, उनके लिए मुसीबतों का रूप और भी भयँकर होता जाता है। सबसे पहले मुसीबत घर वालों की तरफ से पैदा की जाती हैं। भक्तों के पीछे जात-बिरादरी और छुआछूत की बाधा घर वालों की तरफ से लगती है। घर वाले रोकते हैं कि किसी तरह

परमार्थी कार्यवाही न होने पावे, सत्संग में न जाने पावें. वे बदनाम करते हैं और हंसी उड़ाते हैं। यह सब भगवान की मौज़ और भविष्य में किसी अच्छाई के लिए होता है।

एक कहानी है। किसी घर में घड़ी नहीं थी। उस घर का एक आदमी घड़ी खरीद लाया और उसे दीवार पर लटका दिया। वह घड़ी हर समय टिक-टिक करती रहती थी। उस घर में एक अंधी बुढ़िया रहती थी। उसने न कभी घड़ी देखी थी और न वह उसकी क़दर जानती थी, घड़ी की टिक-टिक उसे हमेशा परेशान करती थी और वह बुढ़िया चाहती थी कि उस घड़ी को फेंक दे। लेकिन उसका बस नहीं चलता था। एक दिन उस घर में चोरी हो गयी। उस बुढ़िया ने कहा कि चोरी इस घड़ी की वज़ह से हुई है। इसके बाद एक-एक करके कई बच्चे बीमार पड़े। बुढ़िया ने कहा कि जब से टिक-टिक वाली यह घड़ी इस घर में आयी है, हमारे घर पर मुसीबत छा गयी है। इसे घर से बाहर फेंक दो। पर उसकी बात किसी ने नहीं सुनी। एक दिन उस घर में कोई बच्चा मर गया। बस फिर क्या था ? बुढ़िया का गुस्सा हद से गुज़र गया। वह अपने आपको न रोक सकी। उसने टटोलते - टटोलते उस घड़ी को पा लिया और पहले तो उसे ख़ूब कुचला और फिर उसे बाहर फेंक दिया।

जब किसी के घर में संत पधारते हैं या कोई दुनियाँदार उनकी सेवा में जाता है, अथवा किसी सत्संग में शामिल होता है, या उपदेश ले लेता है तो उसके घर वाले उसके पीछे लग जाते हैं और घर की हर मुसीबत और बला की ज़िम्मेदारी सत्संग या संत-महात्मा के मत्थे मढ़ देते हैं। कहते हैं कि जबसे इन महात्मा जी का आगमन हुआ है, इनका सत्संग किया है, मुसीबत ही मुसीबत आ रही हैं। कहने का मतलब यह है कि दुनियाँ ने संतों और उनके भक्तों और सेवकों को कभी चैन से नहीं रहने दिया है और न रहने देगी, बल्कि हर रोज़ नई से नई व्याधि पैदा करेगी। सच्चे जिज्ञासु इसको अपने प्रीतम की मौज़ और उनका उपहार समझते हैं। इससे उस जिज्ञासु का कोई नुक़सान नहीं होता बल्कि जितना ज़्यादा दुनियाँ उनको तंग करती है उतनी ज़्यादा उसकी भक्ति बढ़ती जाती है और दुनियाँ से वैराग पैदा होता जाता है।

यहाँ पर सच्चे और झूठे की परख होती है। जो मालिक के सच्चे भक्त हुए हैं उन्होंने दुनियाँ की तरफ से निरादर, अपमान और दुर्व्यवहार आदि सभी बातें सही हैं और सब कुछ सहन किया है। दुनियाँ के सामने उन्होंने एक आदर्श पेश किया है कि चाहे दुनियाँ वाले बदनामी करें या नेकनामी, चाहे कोई बुरा कहे या दुतकारे, हमें इसकी परवाह नहीं है। जिन्होंने भक्ति का रास्ता पकड़ा उन्होंने अपनी दुनियाँ उजाड़ कर रख दी। संसार और परमार्थ, लोक और परलोक, दोनों एक साथ नहीं मिल सकते। एक को दुसरे पर कुर्बान करना पड़ेगा। अगर परलोक चाहते हो तो दुनियाँ छोड़नी पड़ेगी। मगर दिखावे के लिए तोड़-फोड़ नहीं करनी होती है। कभी ऐसे अवसर भी आवेंगे जब मालूम हो जावेगा कि भक्ति कहाँ तक पहुँची है। जिसमें भक्ति सच्ची और पक्की होगी वही प्रभु के दरबार में पहुँचेगा। ढ़ोंगी और कपटी के लिए मालिक के दरबार में कोई जगह नहीं है।

कभी-कभी भक्ति और प्रेम का एक ज्वारभाटा सा आता है और उसमें साधक अपने को यह समझने लगता है कि मैंने सब कुछ पा लिया। मगर अक्सर ऐसी बाढ़ स्थिर नहीं रहती। एक भक्त ने ईश्वर प्रेम के आवेश में अपने पैरों में पत्थर मारने शुरू कर दिए। उसने कहा कि अगर मुझे ईश्वर नहीं मिलता तो मैं अपने पैरों को मार-मार कर कुचल डालूँगा। मगर उसकी यह भक्ति कच्ची थी। पैर भी कुचल गए और ईश्वर भी नहीं मिला। यह ढ़ोंग है। अगर थोड़े देर के लिए आँखों से आँसू बहने लगें, कुछ क्षणों के लिए बुद्धि तर्क-वितर्क करना छोड़ दे और मन शान्त हो जाए तो क्या यह असली ईश्वर-प्रेम है ? क्या इसमें स्थिरता आ गयी ? सत्संग में आकर गुरु के चरणों में बैठने से सत्संग के वातावरण से थोड़ी देर के लिए हरेक साधक पर ऐसी अस्थिर हालत गुज़रती है। मगर जहाँ घर पहुँचे और बच्चों ने लिपट कर मीठी-मीठी बातें कीं, या स्त्री ने कुछ कह सुन दिया, सारी भक्ति धुंआ हो जाती है। फिर लौट कर वहीं आ जाते हैं जहाँ थे।

भक्ति का वेग आने से ही गुबार दूर नहीं होता। किसी तालाब में काई जमी है। हाथ से काई को हटा दो तो साफ़ पानी दिखेगा। लेकिन फिर आसपास से आकर काई उसको ढँक लेगी। इस तरह का वेग आना मन का ऊँचा भाव है। यह लक्षण तो अच्छा है पर

स्थाई नहीं है। इस तरह के क्षणिक भाव से क्या ईश्वर मिल जायेगा ? नहीं। इस भाव को कोशिश करके स्थाई बनाओ। हर समय वही हालत रहे। दुनियाँ की हर चीज़ में ईश्वर का रूप देखो। अपने हरेक काम को उस ईश्वर की सेवा समझ कर करो।

दुनियाँ में जब तक रहना है, यहाँ के कर्म तो करने ही पड़ेंगे। एक ही कर्म फँसाता है, वही कर्म निकालता भी है।यदि उस कर्म को करने में अपने को शामिल कर लोगो तो वह कर्म फँसायेगा और अगर उस कर्म को ईश्वर की सेवा समझ कर करोगे तो वही कर्म बन्धन से छुड़ाएगा। मालिक की याद बराबर बनी रहेगी और प्रेम व भक्ति पक्की होती जाएगी। मन से सोचो और बुद्धि से विचार करो कि यह लड़का जिसे तुम अपना कहते हो वह किसका है ? क्या वह तुम्हारे साथ आया था या तुम्हारे साथ जायेगा ? यह मकान किसका है ? क्या इसे तुम अपने साथ ले जाओगे ?

इसी तरह दुनियाँ की हर चीज़ के बारे में सोचो तो देखोगे कि कोई तुम्हारा नहीं है। न तुम्हारे साथ आया था और न तुम्हारे साथ जायेगा। यहाँ की कोई चीज़ तुम्हारे काम नहीं आएगी। ये सब फँसाने वाली हैं। न मालूम तुम्हारी कितनी शादियाँ पिछले जन्मों में हुईं ? कितने बेटे-बेटियाँ हुईं, कितने मकान बने, मगर अभी तृप्ति नहीं हुई ? यह सब तो होता रहा है, आगे भी होता रहेगा। मनुष्य जन्म की क़ीमत समझो। इसी मनुष्य योनि में ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है, दूसरी योनि में नहीं। इसलिए इस जन्म को अमूल्य जानकर इसका उपयोग ईश्वर प्राप्ति के लिए करो।

यह ज़िन्दगी झूँठी ज़िन्दगी है।आत्मा मलीन मन के पर्दों में दबी हुई है। जब वे परदे हट जाते हैं और आत्मा निखर जाती है, तभी असली ज़िन्दगी शुरू होती है। जब किसी पर ईश्वर की कृपा होती है और ईश्वर उसे अपनाना चाहता है तो उसके बन्धन टूटने लगते हैं। सबसे पहले उसकी प्यारी से प्यारी चीज़ उससे छीनी जाती है। दुनियाँदार इसे देखकर रोते हैं, संत खुश होते हैं कि हे प्रभु। तू कितना अच्छा है। इसे मुझसे लेकर तूने मेरा बन्धन काट दिया। इस तरह हर क़दम पर इम्तिहान होता है। वग़ैर इम्तिहान के कोई उसे प्राप्त नहीं

कर सकता। क़ुरबानी करनी पड़ेगी। अगर उस ईश्वर को पाना चाहते हो तो दुनियाँ की चीज़ें तो क्या अपनी गर्दन तक काट कर देनी पड़ेगी।

जब तक तन नाहीं जरत, मन नाहीं मर जात।

तब लगि मूरत श्याम की, सपनेहुँ नाहिं लखात॥

यह दुनियाँ धोखा दे रही है। दिखाई कुछ दे रहा है, असलियत कुछ और है। जो असल है वह सिर्फ ईश्वर है, उसे पाने की कोशिश करो।

जब हमें किसी चीज़ से सुख मिलता है तब हम ईश्वर को बड़ा धन्यवाद् देते हैं, और जब किसी चीज़ से दुःख मिलता है या मुसीबत आती है तो ईश्वर से दूर भाग खड़े होते हैं या उसे मज़बूरी में बर्दाश्त करते हैं, हम ईश्वर को धन्यवाद नहीं देते और न उसमें ख़ुश होते हैं। यही कहते हैं कि ईश्वर को ऐसा ही मन्ज़ूर था। लेकिन यह मालिक की मर्ज़ी के साथ सहयोग करना नहीं है। हमारी आत्मा अभी निखरी नहीं है।

असल निखार तब होगा जब लड़का मरने पर भी वही ख़ुशी हो जो लड़का पैदा होने के वक्त लोग मनाते हैं। पूज्य महात्मा रामचंद्र जी महाराज कैंसर से पीड़ित थे। उन्हें बहुत तकलीफ़ थी लेकिन वे सदा प्रसन्न दिखाई पड़ते थे। किसी भक्त ने उनसे निवेदन किया कि आप इसे अच्छा करने के लिए ईश्वर से दुआ क्यों नहीं करते ? ईश्वर अपने प्यारे भक्तों को इतनी तक़लीफ़ क्यों देता है ? उन्होंने कहा -"अगर तुम्हारा माशूक़ तुम्हारे मुँह पर प्यार से एक थप्पड़ लगा दे तो उसे तुम तक़लीफ़ समझोगे या उसकी एक अदा ? तुम उससे ख़ुश होंगे या नाराज़ ? इसी तरह तक़लीफ़ भी माशूक़ की एक अदा है। ईश्वर हमारा प्रियतम है और प्यार से उसने अगर हमें कोई मुसीबत भेज दी तो वह उसकी अदा है। हमें इसमें बड़ा आनन्द आता है।" मतलब यह है कि जब तक पूर्ण समर्पण नहीं हो जाता, ऐसी अवस्था नहीं आती। पर ऐसा करना निहायत मुश्किल है।

दुःख बर्दाश्त करने के चार रूप हैं :

(1) मज़बूरी से दुःख बर्दाशत करना। यह 'राज़ी -ब-रज़ा ' (यथा लाभ संतोष) नहीं है।

(2) दुःख को प्रभु की कृपा समझकर बर्दाशत करना।

(3) दुःख आवे तो उसे सराहे और सोचे कि हे प्रभु। तेरी बड़ा कृपा है। न मालूम कितनी बड़ी मुसीबत थी जो तूने इतने थोड़े में ही काट दी। न मालूम सूली पर ही चढ़ना पड़ता जो सिर्फ कांटा ही चुभ कर रह गया।

(4) दुःख आवे तो यह सोचे कि वह मेरे मालिक की तरफ से एक तोहफा है, और उसमें खुश रहें। शेर खा रहा है, शरीर की बोटी-बोटी नोंच कर चबा रहा है और फिर भी आवाज़ निकल रही है 'शिवोहम, शिवोहम '। जो खा रहा है वह भी ईश्वर है और जिसे खा रहा है वह भी ईश्वर है। जलते हुए तवा पर बैठे हैं सिर पर उबलता हुआ तेल डाला जा रहा है, दूर-दूर तक धुंआ और दुर्गन्ध उड़ रही ह , फिर भी मुँह से निकल रहा है - ' वाहे गुरु, वाहे गुरु' . यह है असली और पूर्ण समर्पण और सच्ची ' राज़ी-ब-रज़ा ' .

कोई चीज़ मुफ़्त नहीं मिलती। क़ीमत देनी पड़ती है। जो चीज़ जितनी महँगी है उतनी ही ज़्यादा उसकी क़ीमत देनी होगी। अगर ईश्वर को चाहते हो तो जान की बाज़ी लगानी पड़ेगी। क़ीमत क्या है ? अपने अरमानों (इच्छाओं) का खून कर दो, इच्छा रहित हो जाओ और अपने आपको पूरी तरह समर्पण कर दो। इसका भेद संतों के सत्संग में मिलेगा।

जहाँ आपस में मोहब्बत से रह रहे हो वही सतयुग है। जहाँ एक दूसरे से कतराते हो - भेद-भाव है, वहीं कलियुग है। दैवी जीवन वहाँ है जहाँ सबके साथ प्रेम है, सहयोग है। परमात्मा जिस हाल में भी रखे उसी में शुकराना अदा करते रहो, और ख़ुश रहो।

.

संत वचन - 5

प्रार्थना

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

अक्सर लोग प्रभु को पाने के लिए प्रार्थना करते हैं. केवल प्रार्थना करके ही वे अपना कर्त्तव्य पूरा कर लेते हैं, लेकिन वास्तव में प्रार्थना क्या है, वे यह नहीं समझते, क्या ईश्वर से प्रार्थना करके अपना कर्त्तव्य पूरा कर लेना ही सच्ची प्रार्थना है? यह बात नहीं है. प्रार्थना तन्मयता से हो, लगन से हो और उसमें व्याकुलता होनी चाहिए. प्रार्थना शब्दों से तो सभी करते हैं, लेकिन जो प्रार्थना आत्मा से की जाती है, वह सीधी ईश्वर के दरबार में पहुँचती है. जो प्रार्थना मन से की जाती है उसकी पहुँच प्रजापति तक है क्योंकि उसमें साँसारिक चाह होती है. प्रार्थना में किसी साँसारिक चीज़ की चाह न हो. केवल उस परमात्मा का प्रेम माँगिये. जब-जब परेशानी में हों, प्रभु को दिल से पुकारिये, उनके लिए रोइये. जितना ही आप उनकी ओर बढ़ेंगे उतनी ही मदद अवश्य मिलेगी. जितने ही अपने self confidence (आत्म विश्वास, अपना बलबूता) पर निर्भर रहेंगे उतनी ही परेशानी और बढ़ेगी और दुःख होगा. जब आप उस परमात्मा पर निर्भर रहेंगे, सब कुछ उस पर छोड़ देंगे तो आप देखेंगे कि आपको सुख और शान्ति का आभास होने लगेगा. दरअसल अगर आपको कोई प्रभु का प्यारा, वक्त का पूरा सन्त मिल गया है और आपने सच्चे हृदय से उसकी शरण ग्रहण कर ली है तो उसके प्रति समर्पण से, उसकी कृपा से सब कुछ हो जाता है. न ईश्वर रहता है, न गुरु रहता है और न आप स्वयँ रहते हैं. सब मिल कर 'एक' हो जाते हैं. साध्य, साधक और साधन - सब एक हो जाते हैं. भिन्नता का आभास नहीं रह जाता क्योंकि 'एक' हो जाने पर 'अनेकता' की भावना नहीं रहती. यही परम लक्ष्य है. परन्तु पूर्ण सन्त का मिलना बहुत मुश्किल है. यदि आपके अन्तर में गहरी उत्कण्ठा ईश्वर से मिलने की पैदा हो गयी है तो समझ लीजिये कि बीज पड़ गया. आपको कभी न कभी सन्त मिल जायेंगे जो गुरु-रूप में आकर आपका पथ-प्रदर्शन करेंगे.

'मुक्ति' का मतलब क्या है ? मुक्ति का मतलब है कि हमारी आत्मा जो प्रपंच में फँसी है, उसे सतगुरु द्वारा बताये हुए अभ्यास से 'तम' से 'रज' पर, 'रज' से 'सत' पर लाना है. हमारी आत्मा उस अनन्त के स्थान की बासी है जो वर्णन में नहीं आ सकता. वहाँ से उतरकर यह सँसार में मौजूदा (वर्तमान) हालत में आ गयी है. उसकी चाह यही रहती है कि वह अपने असली वतन (निज घर) की ओर लौट जाये, और अपने प्रीतम के चरणों में जा मिले. वह आनन्द ही आनन्द चाहती है. यह दुनियाँ तो दुःखों का घर है. यहाँ वह आनन्द कहाँ जिसको वह चाहती है ? इसके लिए उसको यहाँ के पदार्थों से निकालकर अभ्यास द्वारा दयाल देश में ले जाओ. जब आत्मा ऊपर से (दयाल देश से) नीचे उतरी तब इस पिण्ड शरीर में जगह-जगह ठहरी और नीचे उतरते-उतरते उसका बहाव सँसार और उसके पदार्थों में को हो गया. मन के चक्कर में पड़कर जैसे वह मन चाहता रहा वैसा करती रही और अब इस जगत के सुख-दुःख भोग रही है. यही बन्धन है. इस बन्धन से छूट जाना और अपने निज घर यानी दयाल देश में वापिस पहुँच जाना 'मोक्ष' या 'मुक्ति' है.

सबसे ऊँचा दयाल देश है. यही आत्मा का देश है. यहाँ पर आनन्द ही आनन्द है. हमें यहीं पहुँचना है. यही सन्तों का देश है. जीवों का उद्धार करने के लिए इसी देश से उतर कर सन्त नर-शरीर धारण करके गुरु रूप में जीवों को चेताते हैं और उनका उद्धार करते हैं. दूसरी तरह के गुरु और भी होते हैं. जो व्यक्ति सन्तों की सौहबत में रहकर उन्नति करते हैं और दयाल देश तक पहुँच जाते हैं, वे भी गुरु हैं. इन दोनों प्रकार के गुरुओं में अन्तर यह है कि जो सन्त दयाल देश से आते हैं वे कुछ साधन नहीं करते क्योंकि उन्हें उसकी आवश्यकता नहीं होती और यदि वे कुछ साधन भी करते हैं तो जीवों के कल्याण के लिए करते हैं, इसलिए करते हैं कि उनके भक्त उनका अनुकरण करें. वे ऊपर दयाल देश से उतरकर जीवों का उद्धार करके फिर वापिस चले जाते हैं .

दूसरे प्रकार के गुरु नीचे से ऊपर की ओर चलते हैं यानी सन्त की सौहबत में रहकर अभ्यास व गुरु-कृपा द्वारा अपना उद्धार कर लेते हैं और दयाल देश पहुँच जाते हैं. ऐसे लोग पहले 'साध' कहलाते हैं और उन्हें सन्त की संगति में रहकर अभ्यास अपने उद्धार के लिए

करना पड़ता है. ऊपर से सन्त हज़ार बारह- सौ वर्ष में एक बार आते हैं. अगर सौभाग्य से मिल जाएँ तो उनकी शरण ग्रहण करें और लग लिपट कर अपना काम बना लें. यदि सन्त से मेला न हो सके तो किसी ऐसे साध से जो सन्त की सौहबत में रह चुका हो, मिलकर उसकी संगत ग्रहण करे और लाभ उठाये. यह दूसरे प्रकार के गुरु 'साध गुरु' कहलाते हैं.

'अभ्यासी' वे हैं जो परिश्रम करके 'पिण्ड' से निकलकर 'ब्रह्माण्ड' में आ गए हैं और ऊपर की चढ़ाई का अभ्यास कर रहे हैं. हमारे यहाँ भले या शुभ काम वह हैं जो अभ्यासी को काम क्रोधादिक विचारों से निकालकर 'सत' की ओर ले जायें. ऐसे काम जिनसे किसी का उपकार होता हो वे भी शुभ कर्म हैं. वे कर्म जो ईश्वर से विमुख करें, दुनियाँ में फँसायें, जिनसे किसी का अहित होता हो, बुरे कर्म या अशुभ कर्म कहलाते हैं.

सन्त मत केवल एक ईश्वर में विश्वास करता है. स्थूल रूप में वह 'गुरु' है. सूक्ष्म रूप में वह 'शब्द' है, 'प्रकाश' है, 'प्रेम' है 'आनन्द' है. जिनकी वृत्ति बाहर की ओर है वे उसे अन्तर्मुखी बनायें. सत्गुरु से उसकी युक्ति जानकर आन्तरिक ध्यान करने का अभ्यास करें. ईश्वर सभी जगह मौजूद है. इधर-उधर भटक कर समय नष्ट न करें. उसे अपने अन्तःकरण में देखें और इस काम में ऐसे महापुरुष का सहारा लें जिसने आत्मसाक्षात्कार कर लिया है. तभी फ़ायदा होगा. बिना गुरु के फ़ायदा नहीं होगा. गुरु की मदद से हम अपनी सुरत (attention) को अन्तःकरण पर केन्द्रित कर सकेंगे. जलता हुआ दीपक ही बुझे हुए दीपक को जला सकता है. इसलिए सन्तों ने बार-बार कहा है कि बिना आत्मदर्शी (गुरु) का सहारा लिए साधारण जिज्ञासु अपने अन्तःकरण के पर्दों को साफ़ नहीं कर सकता. जब तक पर्दे साफ़ न हों, आवरण न हटें, तब तक प्रीतम के दर्शन कैसे हो सकते हैं ? जब तक आप इस दुनियाँ से बेज़ार (दुःखी) न होंगे तब तक ईश्वर प्रेम (जो आप में प्राकृतिक रूप से मौजूद है लेकिन आवरणों से दबा हुआ है) जागेगा नहीं. यदि कोई वास्तव में पूर्ण सन्त है तो उसकी सौहबत से आवरण साफ़ होने लगते हैं और ईश्वर प्रेम जागने लगता है. ऐसे सन्त के पास बैठने से, बिना कुछ बोले, बिना कुछ पूछे, आनन्द का, शीतलता का आभास होने लगता है परन्तु यह स्थायी नहीं रहता. यदि आप लगातार उनके पास आते-जाते रहें, उनका सत्संग करते रहें, तो

क्रमशः दुनिया से बेज़ारी, उपरामता होने लगती है. यद्यपि पहले तो यह भी अस्थायी (temporary) होती है परन्तु सत्संग और अभ्यास में इससे दृढ़ता आने लगती है.

हमारी आत्मा ईश्वर का अंश है, ईश्वर की बेटी है. हमारा मन शैतान की औलाद है, शैतान का बेटा है. यदि हम गुरु के आश्रित नहीं रहेंगे तो शैतान हम पर हावी हो जायेगा, हमें दबोच लेगा, और हमारी आत्मा का हनन कर लेगा. सत्गुरु सर्वविकार रहित होते हैं, वह काम-क्रोधादिक विकारों पर विजय पाकर उनके भँवरजाल से ऊपर निकल चुके होते हैं, रास्ता उनका जाना हुआ होता है. अतः उनकी आज्ञानुसार चलना और उनके अनुकूल अपना आचरण बनाना चाहिए. यदि कोई ऐसा करेगा तो निःसन्देह वह काम-क्रोधादिक विकारों के भँवरजाल से निकलने में सफल हो सकेगा और शैतान उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा. इसलिए सच्चे गुरु की खोज करो.

हमारे सिलसिले में सबकी इज़्ज़त करते हैं, वेद आदि धर्मग्रंथों को सही मानते हैं, पर ऐसे महापुरुष (गुरु) का जिसका सम्बन्ध धुर-धाम से है, सबसे अधिक आदर करते हैं. गुरु में सबसे अधिक विश्वास रखते हैं. जो अभ्यास गुरु बताता है, उसी को करते हैं.

जब आत्मा दयाल देश से उतरती हुई इस पिण्ड देश (मनुष्य शरीर) में आयी तो जिस-जिस चक्र पर ठहरी वहाँ पर एक शब्द हुआ और एक-एक प्रकाश. इस तरह अठारह चक्र बने. अब स्वाभाविक तरीक़ा यह है कि जिस रास्ते से यह आई उसी रास्ते से वापिस ऊपर को जावे. शब्द को सुनना या प्रकाश को देखना और अपनी सुरत को ठहरा-ठहरा कर ऊपर चढ़ाते जाना ही सन्तों का 'सुरत शब्द योग' है. तीन तरह से बहुधा हम दुनियाँ में फँसते हैं - देखकर, सुनकर और सूँघकर. अतः इनसे सम्बन्धित इन्द्रियों (आँख, कान, नाक) पर ताला लगा दो और इनका मुँह अन्दर की ओर फेर दो. अन्तर का शब्द सुनो और अन्तर का प्रकाश देखो. धीरे-धीरे अभ्यास करके प्रकाश पर अपनी तवज्जह (सुरत) को जमाओ लेकिन इसमें फँसो मत क्योंकि यह भी रास्ते की चीज़ें हैं. अपनी चढ़ाई जारी रखो जब तक कि धुर-धाम में न पहुँच जाओ. यदि सचमुच तुमने सच्चे गुरु का सहारा पकड़ लिया है तो वह तुम्हें धुर-

धाम में पहुँचा कर छोड़ेंगे. ऐसे महापुरुष का तो केवल ध्यान करने से ही उसके सब गुण स्वतः ही तुम में उतरते चले आयेंगे और एक दिन तुम वही बन जाओगे जो वह स्वयं हैं.

अगर कोई शिष्य मौअद्दीब (सत्गुरु में पूर्ण निष्ठां रखने वाला, पूर्ण आदर करने वाला, जो उनको प्रतिक्षण हाज़िर नाज़िर जाने, एक क्षण के लिए भी ग़ाफिल न हो) हैं तो उसके लिए कुछ भी करने धरने की ज़रूरत नहीं हैं. वह एक क्षण के गुरु-प्रेम में ही सब कुछ पा लेता हैं. 'शब्द' क्या हैं ? 'शब्द" वह आवाज़ हैं जो धुर-धाम से आई हैं। शब्द से ही दुनियाँ पैदा हुई और शब्द में ही लय हो जाती हैं. जो मुँह से उच्चारण हो वह शब्द नहीं हैं, 'नाम' हैं. यों तो चिड़ियों का चहचहाना भी शब्द हैं लेकिन सन्तों ने 'शब्द' उसी को कहा हैं जो आपके ख़्याल (सुरत) को आकर्षित रखे, अन्तःकरण की ओर ले जाय, ईश्वर के ध्यान में लीन करा दे, जहाँ आपको आनन्द ही आनन्द मिले।

प्रेम का स्वरुप

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

इस जगत में प्रेम ही असली सार है जिससे तीनों लोकों की रचना ठहरी हुई है। अगर प्रेम न रहे तो सारी रचना नष्ट हो जाय। इस प्रेम के तीन दर्जे हैं। (1) एक प्रेम इन्द्रियों के भोग के कारण होता है, यानी जिन चीज़ों से इन्द्रियों को आनन्द मिलता है उनसे हम प्रेम करते हैं। (2) दूसरा प्रेम मन के कारण होता है, यानी जिन चीज़ों या प्राणियों से हमारे मन की इच्छाएँ पूरी होने की आशा होती है, उनसे हम प्रेम करते हैं। (3) तीसरा प्रेम बुद्धि के कारण होता है। बुद्धि से जो हम निर्णय करते हैं कि अमुक वस्तु की प्राप्ति से हमारा लाभ होगा और हमको सुख मिलेगा, उससे हम प्रेम करते हैं। परन्तु यह सभी चीज़ें बदलती रहती हैं, यानी इन्द्रियों का आनन्द, मन के संकल्प-विकल्प और इच्छाएँ तथा बुद्धि की चतुराई, आदि सभी हमेशा बदलते रहते हैं। इससे इन तीनों तरह के प्रेम भी बदलते रहते हैं और इनका कोई भरोसा नहीं है। जिस चीज़ में हमें इन्द्रिय-सुख नहीं मिलता उसे हम छोड़ देते हैं। जिस किसी आदमी या वस्तु से हमारे मन की इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं, उससे हम अपना सम्बन्ध हटा लेते हैं और अलग हो जाते हैं। जब हमारी बुद्धि हमें यह बताती है कि अमुक आदमी या वस्तु से हमारा स्वार्थ पूरा नहीं होगा तो हम उसे छोड़ देते हैं। इस प्रकार जिस आदमी की सुरत इन तीनों स्थानों में लगी है, अर्थात इन्द्रिय, मन और बुद्धि में लगी है, उसका प्रेम हमेशा क़ायम नहीं रहता।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिये। बुद्धि का स्थान मन और आत्मा के बीच में है। वहाँ इसके दो रूप हो जाते हैं। जब वह दुनियाँ की तरफ़ लगती है तब वह मलिन बुद्धि कहलाती है, और जब वह दुनियाँ को छोड़कर आत्मा की तरफ़ लगती है, तब वह शुद्ध बुद्धि कहलाती है। जो बुद्धि मन के साथ बहती है, यानी मलिन बुद्धि, वह बदलती रहती है और उसका प्रेम भी

बदलता रहता है। जो बुद्धि शुद्ध हो जाती है, दुनियाँ और उसके सामान की तरफ़ नहीं ले जाती, वह परमात्मा की तरफ़ ले जाती है और उसका प्रेम भी टिकाऊ रहता है।

इस दुनियाँ की हरेक वस्तु क्षणिक और नश्वर है। अतः उस वस्तु का प्रेम भी क्षणिक और नश्वर होता है, क़ायम रहने वाला नहीं होता। लेकिन जब अभ्यासी मन की इन तीन अवस्थाओं से ऊपर आ जाता है, यानी तम, रज और सत से ऊपर उठ जाता है और आत्मिक अभ्यास करके अपनी आत्मा का अनुभव कर लेता है तो उसकी आत्मिक शक्तियाँ जाग उठती

हैं। उसकी आत्मा अपने अंशी कुल मालिक से दुनियाँ का सब व्यवहार करते हुए प्रेम करने लगती हैं। ऐसी दशा में दुनियाँ से वास्ता तो रहता है, लेकिन प्रेम नहीं रहता। चूँकि यह दोनों असल में अनादि हैं, एक ही हैं, हमेशा से हैं और हमेशा रहने वाले हैं, इससे यही सच्चा प्रेम है और विश्वास के लायक है। यही प्रेम सच्चा सुखदायक है। और प्रेम में सुख के साथ दुःख भी है लेकिन इस प्रेम में आनन्द ही आनन्द है।

<u>सत्संगी, सिद्ध, संत-सद्गुरु</u>

सारे संसारी जीव इन्द्रिय-भोग में फँसे हुए हैं और उसी में आते-जाते और चक्कर काटते रहते हैं। इन्द्रियों का सुख शाश्वत नहीं है और इस सुख के साथ विशेष दुःख लगा हुआ है। जो इस सच्चाई को जानकर अभ्यास करता हुआ, आत्मा या परमात्मा को अपना लक्ष्य बनाकर अभ्यास करता है, वह सत्संगी कहलाता है। यह छठे चक्र यानी आज्ञा-चक्र से कुछ ऊपर चढ़ गया है। उसके साथ सत्संग करने से कुछ न कुछ इन्द्रियों को वश में करने में मदद मिलती है।

दूसरे अभ्यासी वह हैं जो त्रिकुटी से ऊपर निकल गये हैं लेकिन सतलोक तक नहीं पहुँचे हैं। इनको सिद्ध कहते हैं। इनके साथ सत्संग करने से मन की वासनाएँ दूर होने लगती हैं और मन कुछ एकाग्र होने लगता है।

तीसरे अभ्यासी वे लोग हैं जो सतपद से पार हो चुके हैं। इनके साथ अभ्यास करने से असली परमार्थ बनना आरम्भ होता है और इन्हीं को संत या सद्गुरु कहते हैं। संतों का सत्संग किये बिना आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। जिन लोगों को असली परमार्थ की चाह है उनको चाहिए कि संत सद्गुरु की खोज करें और अगर वे सौभाग्यवश मिल जावें तो उनकी संगति से लाभ उठाकर अपना काम बना लें, क्योंकि यह रत्न अनमोल है। और अगर वे न मिल पायें तो किसी साधु की मदद लेकर अभ्यास प्रारम्भ कर दें और संत सद्गुरु मिलने पर उनकी शरण ले लें। अगर संत सद्गुरु न मिलें तो किसी ऐसे साध की संगति अख़्त्यार करें जो किसी संत की सौहबत (सत-संगति) उठा चुका हो और अभ्यास करता हो और त्रिकुटी से या तो पार हो गया हो या होने वाला हो। यदि वह भी न मिलें तो किसी ऐसे प्रेमी-भक्त से, जो किसी साध की संगति उठा चुका हो, अभ्यास सीख कर शुरू कर दे और साध या सद्गुरु की तलाश में रहे। बिना सद्गुरु की शरण लिये और उसका सत्संग किये असली परमार्थ नहीं बन सकता ।

अभ्यास के चार तरीके

अभ्यास के सैंकड़ों तरीक़े हैं, परन्तु ग़ौर से देखा जाय तो सब तरीक़े चार हिस्सों में बट जाते हैं।

(1) सलूक - इस तरीक़े में अभ्यास की विधि बतला दी जाती है और आगे की निशानियाँ बतला दी जाती हैं जिससे अभ्यासी रास्ते को जाँच सकता है कि ठीक चल रहा है या नहीं। इसमें अभ्यासी एक के बाद दूसरे चक्रों को बेधता हुआ स्वयं अपने परिश्रम से आगे बढ़ता है। इस तरीक़े में बहुत वक़्त लगता है और यह रास्ता बहुत मुशिकल है। प्राणायाम के कठिन साधन हर आदमी के लिये सम्भव नहीं हैं। हठयोग की सारी क्रियायें इसी में सम्मिलित हैं। इसमें किसी जानकार के बिना कोई बिरला ही सफल होता है।

(2) जज़्ब (खिंचन) - इस तरीक़े में गुरु जो स्वयं मजज़ूब यानी खिंचे हुए होते हैं, दूसरे को अपनी जगह पर खींच लेते हैं जिससे सुरत को अपने प्रीतम का ध्यान तो रहता

हैं लेकिन मन नीचे ही रह जाता है जिससे वे दुनियाँ के काम के नहीं रहते। इसमें दोष यह है कि मन नीचे के स्थानों को छोड़कर ऊपर नहीं आता और सब संस्कार दबे रह जाते हैं इसलिए फिर जन्म लेना पड़ता है। अभ्यासी एक जगह ठहर कर रह जाता है और आगे की तरक़्क़ी रुक जाती है।

(3) सलूकुल जज़्ब - इस तरीक़े में शुरू में ख़ुद रास्ता चलना पड़ता है और इसमें कोई रस नहीं आता। शुरू-शुरू में धीरे-धीरे रास्ता तय होता है और बार-बार इन्द्रियाँ अपने में फँसाती हैं। बाद को गुरु कृपा शामिल होने लगती है। खिंचावट ऊपर को होने लगती है और रास्ता भी तय होने लगता है। इसमें यह कमी है कि शुरू में रस और आनन्द न मिलने के कारण अभ्यासी अक्सर इसे छोड़ बैठते हैं।

(4) जज़्बुल्ल सलूक - इस तरीक़े में संत-सद्गुरु अपनी इच्छा-शक्ति (will powe) से मन को एकाग्र कर देते हैं। मन के एकाग्र होने से सुरत भी एकाग्र हो जाती है और ऊपर को चढ़ती है। इसमें अभ्यासी को शुरू से ही आनन्द आने लगता है और अभ्यास में रस मिलने लगता है। दूसरे, संत-सतगुरु नीचे के चक्रों के देवताओं को ऊपर के चक्रों के देवताओं से मिला देते हैं और अपने प्रेम की डोर से बाँध कर अभ्यासी को आत्मा का दर्शन करा देते हैं और उसे असली आनन्द का अनुभव करा देते हैं। इसी को चढ़ाव या अरूज कहते हैं। इसके बाद सलूक यानी मन की गढ़त कराते हैं जिससे आहिस्ता-आहिस्ता अख़लाक़ (चरित्र, सदाचार) ठीक होने लगता है यानी रहनी-सहनी ठीक होने लगती है। इस तरीक़े में आनन्द मिलने से अभ्यासी का शौक (चाव) बढ़ता जाता है और विश्वास पक्का हो जाता है। उसका मन तम से रज पर और रज से सत पर आ जाता है। नीचे गिरने का नाम सूफ़ियों की भाषा में नज़ूल है।

जब तक मन शान्त नहीं हो जाता यानी उसकी सारी वासनाएँ समाप्त नहीं हो जातीं तब तक वह संयमित (तक़मीलशुदा) नहीं कहलाता। संयमित होना या तक़मील होना यह है कि हर शक्ति कायदे में आ जाय। बिलकुल ठीक-ठीक शक्ति का प्रयोग हो। मन की उपरामता मुद्दत (बहुत काल) में होती है और पचास बरस से पहले बहुत ही कम अभ्यासी

इस स्थान पर पहुँच पाते हैं। इसमें यह विशेषता है कि अभ्यासी को शुरू में परिश्रम स्वयं नहीं करना पड़ता बल्कि गुरु की कमाई का फ़ायदा मिल जाता है और आत्मा का आनन्द जल्दी से अनुभव हो जाता है। शर्त यह है कि शिष्य की दुई मिट चुकी हो, उसने अपना अहं पूर्ण रूप से गुरु को समर्पण कर दिया हो यानी पूरी तरह गुरु में लय हो गया हो।

आत्मा का आनन्द ऐसा आनन्द है कि जिसने एक बार उसका अनुभव कर लिया वह उसको कभी भूल ही नहीं सकता। यह ज़रूर है कि अपने-अपने संस्कारों के अनुसार अभ्यासी दुनियाँ की वासनाओं में फँस जाता है लेकिन यह आत्म- अनुभव और उसका आनन्द उसको ज़्यादे देर उसको वहाँ ठहरने नहीं देता और भोगों का ज़ोर कम हो जाने पर फिर उसकी याद सताती है और वह उस भोग को छोड़कर फिर अपने इष्ट की तरफ़ चलने लगता है। इसी तरह धीरे-धीरे आत्मा सब चीज़ों से उपराम होकर अपने प्रीतम के चरणों में पहुँच जाती है और मन हमेशा के लिए शान्त हो जाता है। यह ज़रूर है कि जब तक मन जगत की इच्छाओं से उपराम नहीं होता, आत्मा को परमात्मा की शरण नहीं मिलती और वह दुनियाँ के भोगों में फँसती रहती है। यह रास्ता बहुत सुगम और सफल है लेकिन इसमें गुरु और शिष्य दोनों में दो बातों का होना बहुत ज़रूरी है. गुरु में - (1) सच्चा गुरु हो यानी जिसने परमात्मा के चरणों में हमेशा के लिए जगह पा ली हो । (2) वह बेग़रज़ हो यानी शिष्य की सिवाय आत्मिक उन्नति के कुछ न चाहता हो। शिष्य में - (1) शिष्य को यह पक्का विश्वास हो कि जो कुछ गुरु कहता है उसी पर चलने में उसकी भलाई है, चाहे सख़्ती हो या नरमी, दोनों अवस्थाओं में गुरु में दृढ़ विश्वास रखे। (2) उसको गुरु से सच्ची प्रीति हो यानी उसके हृदय में सिवाय गुरु के प्रेम के कोई दूसरी चाह न हो और यदि हो भी तो वह सिर्फ़ अपने उद्धार की हो। गुरु में अपने आपको पूर्ण रूप से समर्पण और लय कर चुका हो।

जितनी कमी इन दोनों बातों में होगी उतनी ही देर आत्मा के साक्षात्कार में लगेगी। यह तरीक़ा है जो हमारे यहाँ बरता जाता है, जिसकी नींव कृपा करके हमारे बुजुर्गों ने डाली है। इसमें आत्म दर्शन पहले होता है और आचरण बाद में सुधरता है। फिर परमात्मा की

नज़दीकी (सामीप्य) हासिल करने के अतिरिक्त कोई कामना शेष नहीं रहती। इसीलिए कहा है -

अव्वले माँ आख़िरे हर मुनतहीस्त,

आखरे माँ जेबे तमन्ना तिहीस्त।

(भावार्थ - हमारा प्रारम्भ वहाँ से होता है जहाँ औरों का अभ्यास समाप्त होता है, हमारा अन्त वहाँ है जहाँ तमन्ना की जेब ख़ाली हो जाती है - मन में कोई इच्छा शेष नहीं रहती।)

हमारे तरीक़े के भाइयों को जिन्हें अभ्यास में आनन्द तो आता है लेकिन आचरण ठीक नहीं हुआ है, घबराना नहीं चाहिए। यह रास्ता बहुत लम्बा व कठिन अवश्य है परन्तु सफलता उन सभी को मिलती है जो इस पर बराबर चलते रहते हैं। इसका अन्त भी बेमिसाल है यानी इसकी प्रीति के पश्चात कुछ और प्राप्त करना बाकी नहीं रहता। अभ्यासियों को तीन बातें अवश्य करनी चाहिए - (1) जहाँ तक हो सके गुरु का सत्संग करे। (2) आन्तरिक अभ्यास - ध्यान, भजन, सुमिरन और मनन करते रहें। यहाँ तक कि एक सेकिण्ड के लिये भी अभ्यास को न छोड़ें। (3) अपने मन के ख़्यालों पर हमेशा निगाह रखें और बुरे ख़्यालों को हटाकर अच्छे ख़्याल कायम करते रहें। निश्चित है कि फ़ायदा होगा।

राम संदेश - फरवरी, 1964

भेंट

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

भेंट तीन प्रकार की होती हैं - रुपए -पैसे यानी धन दौलत की, मन की और आत्मा की। रुपए -पैसे की भेंट सबसे नीची समझी जाती है। गुरु को रुपया पैसा और धन दौलत इसलिए भेंट नहीं की जाती कि वह इनका भूंखा है। आपके धन की उसको ज़रूरत नहीं है। भेंट वह इसलिए लेता है कि उससे आपका उपकार हो और आपका पैसा जहाँ लगे उससे औरों का भला हो। दुनियाँ के और पदार्थ जहाँ बन्धन हैं वहाँ रुपया पैसा भी एक बन्धन है और बन्धन टूटने ही चाहिये। यह दुनियाँ में फ़साने वाला है। इसे किसी शुभ कार्य में लगाना, ईश्वर की भेंट है। इस भावना से इसे गुरु अर्पण किया जाता है। इसके साथ -साथ बन्धन ढ़ीला होता है। भेंट देने वाला तो देकर हलका हो जाता है, मगर लेने वाले पर इसका बोझ पड़ता है। वह या तो इसका मुआवज़ा दे (दुआ से या और किसी तरह) या अपने शुभ कर्मों में से

। संत जीव को दुनियाँ की ख़्वाहिशात से उपराम करा कर और दुनियाँ से वैराग्य हिस्सा बाँटे । अगर वह ऐसा नहीं करेगा तो उसकी गिरावट होगी।

भेंट देने से गुरु चरणों में श्रद्धा बढ़ती है, मन शुद्ध होता है और ईश्वर प्रेम बढ़ता है। मन का शुद्ध होना ज़रूरी है। क्योंकि जब तक मन साफ़ न होगा आत्मा के ऊपर से आवरण दूर नहीं होंगें और ईश्वर का प्रेम नहीं मिलेगा। मन का शुद्ध होना यही है कि आत्मा का प्रेम जागे । ईश्वर का प्रेम आत्मा में क़ुदरती है, लेकिन मन की वासनायें, इन्द्रिय भोग की ख़्वाहिश, बुद्धि की चतुराई, अपनी ख़ुदी - यही मन के चारों परदे उसको ढँके रहते हैं। बजाय ईश्वर प्रेम के दुनियावी चीज़ों से प्रेम हो जाता है । जब अभ्यास, वैराग और सत्संग से यह ख़्वाहिशात शान्त हो जातीं हैं, तो यहीं मन के परदों का हटना है। इनके हटने पर जो ईश्वरीय प्रेम क़ुदरती छिपा हुआ था आहिस्ता -आहिस्ता उभरने लगता है।

रुपये के मुक़ाबले में मन की भेंट ज़्यादा अच्छी है। गुरु जो कहे, उस पर यक़ीन करना, अपने ख़्याल को उसके साथ शामिल कर देना और उसके कहे हुए को उसी शक़्ल में क़बूल कर लेना मन की भेंट है। इसके दो रूप हैं - एक मज़बूरी में क़बूल करना और दूसरे ख़ुशी से क़बूल करना। ख़ुशी यह है कि फलाँ काम गुरु का है, उसको लगन से, चाव से करना चाहिये। इसका नतीज़ा यह होता है कि मन का रूप बदल जाता है। उसके ख़्याल को ख़ुशी से क़बूल करना - यहीं मन को तोड़ देना है। जिसने मन को तोड़ दिया वही क़ामयाब है।

आपमें ख़्वाहिशात जन्म -जन्मांतर से दुनियाँ की थीं। उन्हें पूरा करने के लिए मालिक ने आपको दुनियाँ में भेजा। आपकी आत्मा ने मनुष्य शरीर धारण किया, उसके ऊपर ख़्वाहिशात का परदा था। ईश्वर की शक्ति से ही काल ने इस दुनियाँ को रचा। ईश्वर ने जीव को भेजा ताकि होश में आ जावे। यह दुनियाँ को भोग कर उसका रस लेकर ख़्वाहिशात को भोग कर, उपराम हो जाये और अपने धाम वापस चले जायें जो उसका असली ध्येय है। किसी न किसी तरकीब से उनमें जागृति आ जावे। लेकिन जीव यहाँ आकर रस लेते -लेते फँस गये, ख़्वाहिशात दुनियाँ के रस और आनन्द की और बढ़ने लगीं, आत्मा पर ग़िलाफ़ बजाय कम होने के और चढ़ते गये और जीव जो पहले से बन्धन में जकड़े हुए थे और ज़्यादा बन्धन में जकड़े जाने लगे। दुनियाँ की यह हालत देख कर जीवों के उद्धार के लिए संत प्रकट हुए। उन्होंने दुनियाँ को उजाड़ा नहीं, क़ायम रखा, क्योंकि दुनियाँ उजाड़ कर तो असल मक़सद पूरा नहीं हो सकता और ईश्वर से अनुराग कराकर अपने धाम को वापस ले जाते हैं। अवतारों और संतों में भेद है। अवतार जितने भी आये, सब काल देश से आए। काल कभी भी यह नहीं चाहता कि दुनियाँ उजड़ जाय। लिहाज़ा जब -जब दुनियाँ में बुराई और अधर्म बढ़ा अवतारों ने आकर balance (संतुलन) क़ायम किया। बुराइयों को रोका और भलाई को बढ़ावा दिया ताकि दुनियाँ क़ायम रहे। इस तरह रचना को क़ायम रखने के लिए अवतार आते हैं। संत तलवार से काम नहीं लेते, प्रेम से काम लेते हैं, अधर्मी लोगों का नाश नहीं करते बल्कि अधर्म का नाश करके परमार्थ पथ पर चलना सिखाते हैं।

ईश्वर के तीन रूप मानते हैं - ब्रह्मा पैदा करने वाले, विष्णु पालन -पोषण करने वाले और शिव सँहार करने वाले। ये तीनों देवता श्रष्टि को क़ायम रखते हैं और जब -जब ख़राबी होती है तो विष्णु का अवतार आकर उस ख़राबी को दूर करके ठीक करता है। लेकिन ईश्वर का चौंथा रूप भी मानते हैं जो संत या गुरु हैं जो दुनियाँ से छुड़ाने के लिये आते हैं। जब जीव इस आवागमन से तंग आ जाता है और इससे छुटकारा पाने की ख़्वाहिशमन्द होता है तो ईश्वर का चौंथा रूप (संत रूप) इन्सानी शक़्ल इख़्तयार करता है और जो लोग (अधिकारी) जीवनमुक्त होना चाहते हैं उनको अपनी सोहबत से फ़ैज़याब कराकर अपने धाम यानी दयाल देश को वापस ले जाते हैं, जहाँ जाकर फिर वापिस नहीं आता। इस तरह जीव हमेशा के लिये आवागमन से छूट जाता है। बाकी और जीवों पर जो उसकी सोहबत में आते हैं उन पर भी उसका असर पड़ता है और वे भी आगे चलकर अधिकारी जीवों की श्रेणी में आ जाते हैं.

यह दुनियाँ काल की रचना है. यहाँ पर जो क़र्ज़ लिया है वह चुकाना होगा यानी जो कर्म किए हैं, अच्छे या बुरे, उनका एवज़ मिलेगा। मन दुनियाँ में लगा है, आत्मा अपने देश को जाना चाहती है। मन का रुख़ नीचे की तरफ़ है और आत्मा का ऊपर की तरफ़, दोंनों में जद्दोजहद होतीं है। जब मौत आती है, जान हाथ पैरों से खिंच करके ऊपर को सिमटती है। इन्द्रिय और गुदा से जब निकल जाती है तो पेशाब पाख़ाना छूट जाता है। हृदय से निकलने पर दिल की धड़कन बंद हो जाती है, नब्ज़ छूट जाती है। गला घड़घड़ाने लगता है, वहाँ से निकलने पर आँखों की ज्योति जाती रहती है। इसके बाद भोंहों के बीच के हिस्से से ऊपर चढ़ती है वहाँ एक पतली सी नली है जिसे बंकनाल कहते हैं। जब इसमें होकर गुज़रती है तो बड़ी तक़लीफ़ होती है। आत्मा ऊपर को खींचती है और मन की जो गाँठ उसके साथ बंधी होती है वह उसमें से नहीं निकल पाती, टुकड़े -टुकड़े हो जाती है। आदमी हाथ पाँव छटपटाता है, कुछ बोल नहीं पाता। इस मुक़ाम पर बहुत अंधकार होता है। अब जो दुनियाँ में फँसे हैं उनको लेने के लिए यमदूत आते हैं और दूसरों को संत। संत जब आते हैं, बात - चीत करते करते जाते हैं, उन्हें तक़लीफ़ नहीं होती। लगता है जैसे सो रहे हों। जिस रास्ते मौत होती है

उस रास्ते संत रोज़ गुज़रते हैं, रोज़ मरते- जीते हैं। अभ्यासियों ने अनुभव किया होगा कि जब सुरत ऊपर को चढ़ती है तो जिस्म का नीचे का हिस्सा सुन्न हो जाता है। मतलब यह है कि आत्मा वहाँ से खिंच कर ऊपर चढ़ जाती है। दुनियाँ बनती है मन की शक्ति से, परमार्थ मिलता है काल का कर्ज़ा देने से।

हम यहाँ पर अपनी ख़्वाहिशात की पूर्ति के लिए और उससे उपराम होकर अपने धाम को वापस जाने के लिए आए हैं, यानी हमारे दो आदर्श हैं। पहला यह है कि अपनी ख़्वाहिशात को ज्ञान से ख़त्म करो या भोग कर ख़त्म करो। यहीं काल का क़र्ज़ अदा करना है। उनसे वैराग होने पर ईश्वर प्रेम पैदा होगा और उससे अनुराग पैदा होगा। यही ईश्वर प्राप्ति है। दुनियाँ को हांसिल करो और फिर उसको छोड़ो और ईश्वर प्रेम हासिल करो और उसमें अपने आप को लय कर दो। दुनियाँ को हासिल करना बहुत मुश्किल काम है, और यही दीन और दुनियाँ का बनना है। जो दुनियाँ को हाँसिल नहीं कर सकता, वह दीन को क्या हाँसिल कर सकता है यानी जिस चीज़ को हाँसिल नही किया है, वह छोड़ेगा क्या ?

दुनियाँ के जंजाल, मन के विकार सब शैतान का पसारा है। जब तक शैतान से नहीं लड़ोगे कामयाब नहीं होंगे। कामयाब होने पर सच्चा सुःख, हमेशा क़ायम रहने वाला सुःख, ऐसा सुःख जिसके बाद किसी और सुःख की तुम्हें इच्छा नहीं होगी, हाँसिल हो जायेगा। यहीं लक्ष्य है, लेकिन यह एक जन्म का काम नहीं है। कुब्बते- इरादी (इच्छा शक्ति) मज़बूत करो। दुनियाँ की चीज़ों को देखो, भोगो और छोड़ो, उनसे उपराम हो जाओ। पहले वैराग फिर अनुराग। जब परमात्मा से सच्चा अनुराग होता है और उसका सच्चा प्रेम हासिल हो जाता है, यही मोक्ष है। सच्चा प्रेमी मोक्ष नहीं चाहता। इसका साधन यह है कि तुम परमात्मा के अंश हो और उसका प्रेम तुम्हारे अन्दर है लेकिन तुमने उसे बाहरी चीज़ों में फैला रखा है, उसे बटोरो। मन की ख़्वाहिशात को ख़तम करो, उसे सब तरफ़ से हटा कर एक ख़्वाहिश पर लाओ - कौन सी ख़्वाहिश - परमार्थ की ख़्वाहिश।

इस काम में हर दम परमात्मा की मदद चाहो। उसकी कृपा से तक़लीफ़ें आती हैं। तक़लीफ़ों की शक्ल में जो उसकी कृपा होती है वह बंधन छुड़ाने के लिए होती है। इसलिए

फ़क़ीर को तक़लीफ़ें ज़्यादा होतीं हैं। वह तक़लीफ़ चाहता है कि संस्कार ज़ल्दी कटें। असली चीज़ परमात्मा का प्रेम है। सब कोशिशें उसी को हासिल करने के लिए होती हैं। वह तब मिलेगा जब सब संस्कार कट जाएँगे। यह मन की भेंट है। इसे जब तक गुरु को नहीं दे दोगे, मन आसानी से साफ़ नहीं होगा। इसी को समर्पण या surrender कहते हैं। रूपये पैसे की भेंट बहुत से लोग कर लेते हैं, मन की भेंट उनसे कुछ कम लोग कर पाते हैं, लेकिन आत्मा की भेंट कोई बिरला ही कर पाता हैं। जिसने सब कुछ समर्पण कर दिया उसने सब कुछ पा लिया। " मैं तू हुआ तू मैं हुआ। मैं तन हुआ, तू जान हुआ। ऐसी एकता हो गई कि इसके बाद कोई नहीं कह सकता कि " मैं और हूँ, तू और है "। यह आत्मा की भेंट है। यह ज़बानी नहीं होतीं। जिस रोज़ यह दे दी, उसी रोज़ मुराद पूरी हो गई। मोक्ष हो गयी। यह बात भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता के आख़ीर में बताई हैं जो सारी गीता का निचोड़ है, उपसंहार है - "हे अर्जुन। अब अन्त की बात और सुन जो सब से गुह्य है। तू मुझे अत्यन्त प्यारा है, इसीलिए मैं तेरे हित की बात कहता हूँ। मुझमें अपना मन रख, मेरा भक्त हो, मेरी पूजा कर और मेरी वन्दना कर। मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि तू मुझमें आ मिलेगा क्योंकि तू मेरा प्यारा भक्त है। सब धर्मों को छोड़कर तू केवल मेरी ही शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा। डर मत। ".

किसी चीज़ की नापसन्दगी या नफ़रत के ख़्याल से उसे छोड़ देना भेंट नहीं हैं। भेंट सबसे प्यारी चीज़ की दी जाती है जिससे मोह हो, लगाव हो और जो दुनियाँ में फसाने वाली हो। कहने का मतलब यह है कि जो चीज़ तुम्हें सबसे प्यारी हो, उसे ईश्वर की राह में क़ुर्बान कर दो। संध्या में बैठो तो देखो कि किस चीज़ का ख़्याल आता है। जिस चीज़ का ख़्याल आए समझो कि वही रुकावट है। संध्या के वक्त जो ख़्याल आते हैं, आत्मा का प्रकाश पाकर वह स्थूल रूप धारण कर लेते हैं। संध्या में जिस्म का ग़िलाफ़ उतर जाता है, मन काम करता रहता है। अगर मन का परदा टूट जाय तो ख़्याल में इतनी शक्ति आ जाती है कि आदमी भी ब्रह्मांड की रचना कर सकता है। आत्मा और परमात्मा के बीच की चीज़ मन है, वह हट जाये तो आत्मा वही असल है जो परमात्मा है.

जो ख़्वाबात (स्वप्न) आयें उन पर ध्यान रखो। ख़्वाब मन का रूप दिखाता हैं। जो चीजें तुम्हें फसाये हुई हैं, उन्हें ख़्याली तौर पर क़ुर्बान करो। ख़्याली तौर पर उन्हें परमात्मा के चरणों में रख दो - हे मालिक। यह तेरी हैं, हमारा मोह का परदा दूर कर, हमें सच्ची रोशनी दिखा।" जब- जब हम फंसे, हमने गुरुदेव से प्रार्थना की और उन्होंने हमेशा सहायता करने के साथ - साथ हमारी हिम्मत बढ़ायी। उन्होंने हमेशा आगे बढ़ने की ताक़ीद की। मेरा तो यह तज़र्बा हैं कि जो आदत मैंने उनसे छिपाई वह रुक गई और जो उनके आगे रख दी वह आदत जाती रही। यह समर्पण हैं।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।

राम संदेश : अक्टूबर, 1968

मन और माया से आत्मा को आज़ाद करो

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

हर एक मज़हब में मोक्ष प्राप्त करने का अलग -अलग तरीक़ा है। हर एक आचार्य ने वक़्त और ज़माने के लिहाज़ से

जन - साधारण की सुविधा को देखते हुए मोक्ष के तरीक़े को सहल बनाया है। इस कलियुग में परमात्मा का नाम ही मोक्ष का ज़रिया है। इससे सहल कोई उपाय नहीं है। पुराने ज़माने में प्राणायाम और हठयोग को लेकर चलते थे लेकिन अब इससे काम नहीं चलता। न तो अब इसके जानने वाले रहे और न अब लोगों की तंदुरुस्तियां, वक़्त की कमी और आजकल की ख़ुराक ही प्राणायाम साधने के योग्य है। ऐसे लोग अब भी देखे गये हैं जो कहते हैं कि वे तीन - तीन घंटे प्राणायाम करते हैं लेकिन मन नहीं सधता। संत -मत में मन को क़ाबू में करना सबसे ज़रूरी बात है। इसलिए इस मत के अभ्यासियों को प्राणायाम की ज़रूरत नहीं है। हाँ, गृहस्थ आश्रम में तन्दुरुस्ती क़ायम रखने के लिये और वायु साधने के लिए भले ही कोई प्राणायाम कर ले लेकिन किसी जानकार से सीखकर करना चाहिये वरना नुक़सान हो जायेगा।

हमारे ज़िस्म के अन्दर कई layers (आवरण, परदे) हैं उनमें सबसे भीतर परमात्मा बैठा है। संत उसको बाहर नहीं तलाश करते बल्कि अपने अन्दर देखते हैं। इस काम में दो बातें ज़रूरी हैं। पहली यह कि रास्ता जानना चाहिये और दूसरी यह कि ऐसा guide (पथ प्रदर्शक) चाहिये कि जो ख़ुद रास्ता चल चुका हो, उससे अच्छी तरह वाक़िफ़ हो और जिसमें दूसरे को रास्ता बताने की योग्यता हो और वह तुम्हारा हमदर्द भी हो। इसके अलावा जिज्ञासु में पक्का इरादा रास्ता चलने का हो और रास्ता बताने वाले में उसकी पूरी श्रद्धा और विश्वास हो, तब रास्ता चला जा सकता है। रास्ता जानने वाले की पहरेदारों से जान पहिचान हो तभी वे अन्दर जाने देंगे वर्ना पीछे ढ़केल देंगे। कहने का मतलब यह है कि guide (पथ प्रदर्शक

गुरु) ऐसा हो जो परमार्थ के रास्ते की सब कठिनाइयों को जानता हो और पन्थाई को उनमें से होकर निकाल ले जाने की पूरी योग्यता हो। वैसे तो रास्ते में बहुत सी रुकावटें और परदे हैं लेकिन ख़ास - ख़ास परदे सात हैं, सातवें आसमान के ऊपर परमात्मा बैठा है।

(1) अन्नमय कोष :- जो मनुष्य का स्थूल शरीर है वह पंच -महाभूतों (तत्वों) से बना है। यह पहली रुकावट। जब मनुष्य इंद्रियों द्वारा कोई आनन्द लेता है तो उसे उस आनन्द की याद बनी रहती है। जब -जब उस आनन्द की याद आती है तो फिर उसी आनन्द में फँस जाता है। नाक गंध का स्वाद लेती है। जिव्हा खाने का स्वाद लेती है, कान मीठी ध्वनि या गाने का स्वाद लेते हैं, वगैरह-वगैरह। ये सब मनुष्य की सुरत को बहिर्मुखी बनाते हैं और दुनियाँ में फंसाते हैं।

(2) प्राणमय कोष :- मनुष्य के शरीर में जो हवा सांस के जरिए आती - जाती है और जिससे वह ज़िन्दा है वही दूसरा परदा है। अभ्यास में जब मनुष्य का ध्यान स्थूल शरीर से हट कर ऊपर को चढ़ता है तो वह इस दूसरे परदे पर आ जाता

है। इसी सांस को साधने के लिए प्राणायाम किया जाता है जिससे nervous (स्नायु , नाज़ुक़ नाड़ियाँ) पाचन क्रिया, शरीर में रक्त का प्रवाह, आदि बातें ठीक रखती हैं। सन्त - मत में प्राणायाम का अभ्यास नहीं कराया जाता क्योंकि यह बातें ऊँचा अभ्यास करने से स्वयँ सध जाती हैं।

(3) मनोमय कोष :- तीसरा पर्दा मन का है जिसका विस्तार बहुत बड़ा है मन में बेशुमार विकार और वासनायें भरी पड़ी हैं। मन उन्हीं का गुनावन उठाया करता है। ज़्यादातर अभ्यासी यहीं अटके रहते हैं। बिना गुरु की मदद के मन से निकलना नामुमकिन है।

(4) विज्ञानमय कोष :- चौथा पर्दा बुद्धि का है जो बहुत सूक्ष्म है। बुद्धि अपने ख़्याल उठाती रहती है। अधिकतर विद्वान और ऊँचे अभ्यासी इसी जगह ठोकर खाते हैं। उन्हें

अपनी विद्या, बुद्ध , चतुराई आदि का गर्व हो जाता है और उसी में फंस कर रह जाते हैं। अभ्यासी की बुद्धि शंकाएँ पैदा कर लेती है। वह एक विषय पर क़ायम नहीं रहने देती।

(5) आनन्दमय कोष :- पाँचवाँ पर्दा आनन्द का है। जब मन सधने लगता है तब जो आनन्द आने लगता है उससे अभ्यासी यह समझते हैं कि हम सब कुछ हो गये। लेकिन यह आनन्द स्थायी नहीं है। जब चिराग़ की रोशनी किसी object (वस्तु) पर पड़ती है तब वह चीज़ दिखाई देने लगतीं है। इसी तरह जब आत्मा का प्रकाश जब माया पर पड़ता है तब आनन्द मालूम होता है लेकिन यह आनन्द आत्मा का ख़ालिस आनन्द नहीं है। आत्मा के आनन्द में एक तरह का ऐसा सरूर होता है जो अपने आप पर आधारित होता है और जो बयान नहीं किया जा सकता।

(6) तुरिया अवस्था :- यह आत्मा का स्थान है। यहाँ अभ्यासी की स्थिति आत्मा में हो जाती है। यहाँ अभ्यासी 'अहं ब्रह्मास्मि ' कहने लगता है।

(7) तुरियातीत अवस्था : - सातवां स्थान ईश्वर का है . इस स्थान पर अभ्यासी की अवस्था तुरियातीत की हो जाती

है।

संत मत में ईश्वर को जानने का बहुत आसान तरीक़ा है। मनुष्य का क़िस्म दो चीज़ों से मिलकर बना है, एक मन और माया, दूसरी आत्मा। मन की तीन हालतें हैं। सबसे निचली हालत तमोगुण की है जिसमें हैवानी ख़वास (पाशविक वृत्तियाँ) रहती हैं। मन की दूसरी हालत रजोगुण की है जो बीच की अवस्था है। इस हालत में मन एक ख़्याल पर नहीं रह सकता। उसके विचार बराबर बदलते रहते हैं । कभी वह अच्छाई की तरफ़ जाता है, कभी बुराई की तरफ़ । मन की तीसरी हालत सतोगुण की हैं जो पहली दो हालतों के बनिस्बत ज़्यादा stable (परिपक्व)है। इसमें मन अच्छे -अच्छे विचार उठाया करता है। अभ्यासी के सब काम सतोगुणी मन की अवस्था पर आकर नेकी और भलाई के होने लगते हैं। लेकिन जब तक भलाई का ख़्याल सामने है तब तक बुराई का ख़्याल छिपे तौर पर मौजूद

है। इसलिए यहाँ से भी गिरावट का डर रहता है। यह दुनियाँ कालदेश है। मन और माया काल के ही आधीन हैं और जहाँ काल का राज्य है वहां की सब चीज़ें नाशवान हैं। एक solar system (सौर मण्डल).का मालिक ईश्वर है और जो सब सौर मण्डलों का मालिक है वह परमेश्वर है जो हजारों ईश्वरों पर हुकूमत कर रहा है। उसी को सन्तों में सतपुरुष दयाल और सूफ़ियों में मालिके -कुल कहते हैं। जितने सितारे आप देखते हैं ये सब सूर्य हैं और उनका एक -एक मण्डल है और हर एक मण्डल में दुनियाँ आबाद है। ऐसे - ऐसे अनगिनत सौर मण्डल हैं। न मालुम अब तक कितने राम और कृष्ण के अवतार इन सौर मण्डलों में हो चुके हैं। अगर इन बातों का अन्दाज़ लगाने बैठें तो आदमी की अक़्ल हैरान रह जाय।

मनुष्य की आत्मा अज्ञान में पड़ी थी और उसके ऊपर ख़्वाहिशात के पर्दे पड़े हुए थे। ईश्वर की कृपा हुई और उसने उसे इस दुनियाँ में भेज दिया कि ख़्वाहिशात को भोग कर सब परदे दूर हो जायें और आत्मा स्वयँ प्रकाशित हो जाये। लेकिन हुआ इसका उलटा। बजाय परदे दूर करने के मनुष्य इस दुनियाँ की चीज़ों में आनन्द लेने लगा और बजाय आज़ाद होने के और उलझ गया .

इस दुनियाँ में मन का राज्य है। मन आत्मा से शक्ति लेकर उसी पर हुकूमत करता है। मन हमेशा बदलता रहता है और उसके प्रभाव में आकर हम भी बदलते रहते हैं। जब कोई वस्तु मिलती है तब सुःख होता है और जब छिन जाती है तब दुःख होता है। यह दुःख -सुःख लगातार चलता है। इस दुनियाँ का आख़िरी अन्जाम जुदाई है। जहाँ यह हालत है, वहाँ असली सुःख कैसा ? संतों के देश यानी दयाल देश में आत्मा ही आत्मा है। वहाँ आत्मा ही आत्मा, प्रेम ही प्रेम, आनन्द ही आनन्द है। तुम उसी देश के वासी हो लेकिन अज्ञान के कारण अपने घर से दूर पड़े हो। अज्ञान अभी बना हुआ है, उसे दूर करो। तुमने इस दुनियाँ में आकर अपने देश को भुला दिया है और यहाँ की वस्तुओं से मोह पैदा कर लिया है। तुम कहते हो 'यह मेरा है '। यहाँ कोई किसी का नहीं है। अगर तुम्हारा है तो तुम्हारे मन के अनुसार चलेगा। लेकिन नहीं, वह अपने मन के अनुसार चलता है क्योंकि मन सबका अलग

-अलग हैं। वह कभी आपके अनुसार नहीं चलेगा। इस दुनियाँ की एक ख़ास बात यह है कि दो चीज़ें कभी एक सी नहीं होतीं। कुछ न कुछ फ़र्क अवश्य होता है। अगर फ़र्क न हो तो दो एक सी चीज़ें एक हो जायेंगी।

आत्मा पर से ख़्वाहिशात के परदे हटा दो। अपना रूप देखो। तुम्हारा रूप क्या है ? तुम ईश्वर के हो, ईश्वर तुम्हारा है। इस दुनियाँ में कोई तुम्हारा नहीं है। यहाँ की चीज़ों को एक - एक करके तजुर्बा करके छोड़ दो। ये तो तुम्हें तजुर्बा करने के लिये मिली थीं। भ्रम से तुम इन्हें अपनी समझ बैठे। अगर गुरु के कहने में चलोगे तो यहाँ की चीज़ों का तजुर्बा भी होता चलेगा और उन्हें छोड़ते भी चलोगे। अगर बराबर गुरु के कहने में चलते रहोगे तो एक न एक दिन तुम्हें असली तजुर्बा यानीं आत्म -बोध हो जायेगा। पहले गुरु के कहने पर विश्वास करो, उनमें श्रद्धा लाओ, उनका सत्संग करो और उनके कहने पर चलो। जो ऐसा करता है उसको आसानी से आत्म - बोध हो जाता है। जो तर्क -वादी होते हैं उन्हें कठिनाई होती है। विश्वास से रास्ता ज़ल्दी तय होता है।

अनुराग और वैराग्य दोंनों एक हैं। किसी चीज़ को अच्छा समझ कर क़बूल करना अनुराग और किसी चीज़ को बुरा समझ कर उसे छोड़ना वैराग्य है। जो वस्तु ईश्वर की तरफ़ ले जाती है उसे पकड़ो, वही अनुराग है और जो वस्तु ईश्वर से छुड़ाती है उसे छोड़ते चलो, यही वैराग्य है। दोनों का लक्ष्य एक है। आपके यहाँ गुरु को प्यार करते हैं और जो चीज़ उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ है उसको छोड़ते चलते हैं। यह प्रेम का रास्ता है।

कई ऐसे भाग्यशाली होते हैं जिन्हें गुरु ख़ुद प्यार करता है लेकिन ऐसे बहुत थोड़े होते हैं। ईश्वर करे आप में से हरेक ऐसा हो। कुछ ऐसे होते हैं जो गुरु को प्यार करते हैं। वे नहीं जानते कि वे क्यों ऐसा करते हैं ? उन्हें कोई ग़रज़ नहीं होती, अगर कुछ होती भी है तो ईश्वर को पाने की ग़रज़ होतीं है। लेकिन यह ग़रज़ नहीं कहलाती। ये लोग भी भाग्यशाली हैं। कुछ ऐसे लोग हैं जो दुनियाँ से बेज़ार हैं और इससे छूटना चाहते हैं। ये आते हैं और गुरु से प्रेम करने लगते हैं। लेकिन परमार्थ की ग़रज़ के साथ -साथ इन्हें दुनियाँ की भी ग़रज़ होतीं है। ऐसे लोगों की संख्या बहुत है।

आपके यहाँ पहली चीज़ सतगुरु की तलाश है। सतगुरु वह है जो कामिनी, कांचन और यश - इन तीन चीज़ों से ऊपर हो। ईश्वर का पूर्ण भक्त हो। सिवाय ईश्वर की बात के दूसरी बात न करे। उसे आप से कोई ग़रज़ न हो। उसके पास बैठने से मन शाँत हो, उसकी कथनी और करनी एक जैसी हो, सिवाय दूसरों की भलाई के और कुछ न चाहता हो। अगर सौभाग्य से कोई ऐसा महापुरुष मिल जाय तो उससे अपना मन मिला दो, अपने मन को तोड़ दो। जब उसके मन में आ जाओगे तो मन मिल जायेगा। यही फनाइयत (लय) है जिसमें जिस्म तो मिलकर एक नहीं होता, मन एक हो जाता है, आदतें वैसी ही हो जाती हैं। यहाँ तक कि शकल भी बदल जाती है।

तुम जो बनना चाहते हो, पहले उसकी ख़्वाहिश करो और फिर उसके लिए यत्न करो। जितनी कोशिश करोगे उतना मिलेगा। जिस गुरु के ध्यान के साथ - साथ जीवन में एक बार भी आपको प्रकाश नज़र आया है, तो समझ लीजिये कि वह सचखण्ड तक पहुँचा हुआ है। पहले ऐसे गुरु की तालाश करो फिर उसका सत्संग करो और उसका दिया हुआ नाम लो। वह नाम चाहे राम हो, कृष्ण हो, ॐ हो या चाहें कोई और नाम हो। जिस नाम को जप कर उसने परमेश्वर को हासिल किया है वही नाम तुम्हें भी परमेश्वर की प्राप्ति करा देगा।

राम सन्देश : जुलाई-सितम्बर, 2017

मनमानी मत करो

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

ईश्वर की भक्ति सभी में है और सभी ईश्वर की प्राप्ति कर सकते हैं, लेकिन हमारा मन विघ्न डालता है। इसलिए हमें अपने मन से सावधान रहना चाहिए। यानी जो हमारे मन को भाये वह ही नहीं करना चाहिए। इससे मन शक्तिशाली और मोटा हो जाता है।बाप को बेटे से मोहब्बत होती है और वह सदा उसका फ़ायदा चाहता है। उसको नसीहत भी उसी काम की करता है जिसमें उसका भला हो।

जो बाप ईश्वर का भक्त है तो यह ज़रूरी है कि मामूली आदमियों के मुक़ाबले में उसकी बुद्धि ज़्यादा शुद्ध हो चुकी है और वह बहुत दूर तक की सोच सकता है जिसे आम आदमी नहीं सोच सकते। जब आपने यह मान लिया कि यह हमारे हितेषी हैं, यह जो बात कहेंगे हमारे हित की कहेंगे, तो फिर तुम्हें मनमानी नहीं करनी चाहिए। जब दुनियाँ के मामलों में आप हमारी बात नहीं मानते तो फिर परमार्थ के मामलों में क्या मानोगे ? बात क्या है - क्योंकि आपका मन बीच में बिघ्न डालता है।

मान लीजिये कोई बात आपके आचार्य ने आपसे कही या किसी के ज़रिये अपने ख़्याल को ज़ाहिर किया तो अच्छाई इसी में है कि उसे मान लेना चाहिए। आपको अपनी अक्ल से उसे परखना नहीं चाहिए। गुरु जो कुछ करेगा, आपके फ़ायदे के लिए ही करेगा। अगर तुम उसकी बात को नहीं मानोगे और बुरा मान कर बैठ जाओगे तो फ़ायदा क्या होगा ? देखने में आता है कि गुरु की बात को मानते वहाँ तक हैं जहाँ तक आपका मन उस बात को क़बूल करता है। गुरु के मुक़ाबले आपने अपने मन को ज़्यादा महत्वपूर्ण मान लिया है और मन को ही अपना दोस्त समझ रखा है। लेकिन तुम यह भूल जाते हो कि हमारा मन ही हमें दुनियाँ में ले जाकर फँसाता है। जब मन को ही दोस्त मान रखा है, उसी का कहना करते

हो तो इस दुनियाँ से निकलोगे कैसे ? अगर तुम गुरु को अपना सच्चा हितेषी मानते हो तो उसकी बात भी मानो।

ऐसे भी लोग हैं कि जिनके पास धन की कमी नहीं है। अगर वह घर बैठ कर भी खायें तो शायद उनकी तीन पीढ़ियाँ भी उसे ख़तम नहीं कर सकें। फिर भी रुपये में फँसे हैं, परमार्थ क्या कमायेंगे? जिसे अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करना है उसे तो नौकरी या तिज़ारत करनी ही पड़ेगी। उसकी बात अलग है, लेकिन नौकरी-पेशा या दुकान करने वालों को भी दुनियाँ में, अपने पेशे में, ईमानदारी से बरतना चाहिए। क्या आजकल नौकरी में और दुकानदारी में ईमानदारी है ? कोई भी अपना काम साफ़ नियत से नहीं करता और अगर करने की कोशिश भी करे तो लोग करने नहीं देते। ख़ैर, किसी हद तक यह भी क्षमा के योग्य है।लेकिन जिनके पास बहुत काफी धन-जायदाद है और फिर भी वोह फँसे हुए हैं, वे मन के ग़ुलाम हैं, परमार्थ कैसे कमायेंगे ? किसी संत ने कहा है - "ख़ुदा ख़ुदा भी करे और ख़ुदी का दम भी भरे, बड़ा फरेबी है, झूँठा है वो ख़ुदाई का।"

दुनियाँ तो छोड़ना नहीं चाहते, एक क़दम आगे नहीं बढ़ाना चाहते और चाहते हो तरक़्क़ी हो। कैसे हो ? जब तक ख़ुद कोशिश नहीं करोगे तब तक गुरु-कृपा और ईश्वर-कृपा नहीं होगी। हम चाहते हैं कि हमारे सभी सत्संगी भाई यह समझ जाएँ। तुम उस मामले में जो परमार्थ की तरफ ले जाता है कुछ सुनना नहीं चाहते, करना तो अलग रहा। भक्ति कैसे

होगी ? फिर शिकायत करते हो कि तरक़्क़ी नहीं होती।

इस दुनियाँ में हर चीज़ का बदला है। तुमने दान दिया, बड़ा अच्छा किया, लेकिन क्या उसे लेने वापस नहीं आओगे ? लड़का नौकर रखा तो क्या उससे ख़िदमत नहीं चाहोगे ? हो गया बदला या नहीं ? अच्छे और शुभ कर्म, मन को सतोगुणी बनाते हैं लेकिन सतोगुणी मन भी आवागमन से नहीं छुड़ाता। जो कामी, क्रोधी और लालची हैं, वे परमार्थ के लायक़ नहीं हैं - यह संतों का कहना है। फँसे तो सब हीन अवस्था में हो और पहुँचना चाहते हो आसमान में। जिससे कहो कि तुम्हारी फलाँ बात ठीक नहीं है, वही नाराज़ हो जाता है। कोई बिरला है

जिससे कहते हैं तो वह सुन लेता है वर्ना जिससे कहते हैं वह मुँह बना लेता है। कैसे तरक़्क़ी हो सकेगी ? जो गुरु के कहने पर चला वह इस भवसागर से निकल गया। जो मन का साथी है वह गुरु का साथी नहीं। अगर तुम गुरु की सहायता करोगे तो वह तुम्हें मन के पंजे से निकाल देगा।

मोक्ष प्राप्त करने के लिए मन का मर्दन तो करना ही होगा। जब तक मन के चक्कर में फँसे रहोगे, मन तुम्हें इस भवसागर से नहीं निकलने देगा। तमोगुणी मन जानवर बनाएगा, रजोगुणी मन दुनियाँ में लौटा कर लाएगा. मरते समय सोचोगे कि यह काम रह गया, वह काम रह गया। इसी में अटक कर प्राण निकलेंगे और फिर वापस इस दुनियाँ में आना पड़ेगा। सतोगुणी मन धर्म पर जाता है। आनन्द तो दिलवाता है परन्तु वह भी मोक्ष नहीं देता।

जो काम करो, निष्काम भाव से करो, कोई ख़्वाहिश मत उठाओ। यह ऊँचे अभ्यासियों के लिए है। सोते वक्त सोचो - "आज कोई इच्छा उठाई " ? अगर उठायी तो संस्कार बन गया। रात को सोने से पहले अपने मन से हिसाब लो। आगे जाकर भूख प्यास की ख़्वाहिश भी मिटा देते हैं। मिल गया तो खा लिया, नहीं मिला तो सोच लिया कि आज परमात्मा की मर्ज़ी नहीं थी, और उसी हालत में ख़ुश रहे। असली गुरु तो तुम्हारे अन्दर है, उसी से हिदायत मिलती है। लेकिन जब तक वहाँ पहुँच नहीं है, तब तक बाहरी गुरु से मदद लो।

जो आता है दुनियाँ के लिए रोता आता है। सन्तों के यहाँ दुनियाँ नहीं मिलती। वे तो दुनियाँ उजाड़ते हैं। यह अलग बात है कि किसी का परमार्थ बिगड़ रहा है और कोई दुनियाँ की कोई ऐसी मुसीबत है जो उसकी तरक़्क़ी में बाधक है, तो उसके लिए दुआ कर देते हैं। वर्ना जब हरेक को हर वक़्त यही रोना है, तो कहाँ तक किस-किस के लिए दुआ करें। जितना दुनियाँ में फँसोगे उतनी ही ख़्वाहिशें बढ़ेंगी, उतनी ज़्यादा दुःख-तकलीफें आएँगी। इसलिए दुनियाँ में उतना फँसो जितने में कम से कम काम चल सके, जितना कम से कम ज़रूरी हो।किसी काम को करने से पहले ख़ूब सोच लो कि क्या यह काम वास्तव में ज़रूरी है, क्या इसके बिना काम नहीं चलेगा ? अगर ज़रूरी हो तो करो, वर्ना छोड़ दो।

भक्ति बढ़ाने का सबसे ऊँचा तरीक़ा यह है कि मन के फन्दे से बचें और ईश्वर से नाराज़ न हों। ज़रा गर्मी हो जाये तो कहने लगते हैं - 'हाय बड़ी तपन है' , कभी बारिश ज़्यादा हो गयी तो परमात्मा को कोसने लगे। ये सब बुरी बातें हैं। परमात्मा के सब काम सर्वहित के लिए होते हैं। वह जो करता है किसी अच्छाई के लिए ही करता है। उसके कामों को अपने मन की कसौटी पर मत परखते रहो। जिस हाल में वह रखे, उस हाल में खुश रहो। उफ़ भी न करो। कोई ख़्वाहिश मत उठाओ। 'शुक्र' वही है कि अगर तकलीफ़ भी हो रही है तो भी उसकी सराहना करो। हर समय राज़ी -ब-रज़ा में रहो। मान लो किसी का लड़का बीमार हो गया। अगर अच्छा हो गया तो ख़ुश हैं और अगर मर गया तो लगे भगवान को कोसने, संध्या-पूजा बन्द कर दी।यह नहीं सोचा कि जिसने दिया था उसने ले लिया। ये परमात्मा से मोहब्बत हुई या लड़के से ?

मनमानी करना बन्द करो। मन के बन्धनों को ढ़ीला करते चलो। हर एक चीज़ को परमात्मा की समझो। मोह छूटता जायेगा। जिस हाल में परमात्मा रखे, उसमें ख़ुश रहो। गुरु के कहने पर चलो और परमात्मा की याद में रहो। ईश्वर तुम्हे प्रेम देगा।

राम सन्देश : जनवरी, 1955

विश्वास और श्रद्धा

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

क़ानून को सच्चा मान लेना विश्वास है और सच्चा समझ कर उससे गहरा ताल्लुक (सम्बन्ध) पैदा कर लेना और वैसा ही बन जाना श्रद्धा है। क़ानून जो कुछ कहता है उसमें हमारी बेहतरी है। जितने भी प्राकृतिक नियम हैं, वे सब हमारी समृद्धि के लिए ही हैं। उनमें लग़्ज़िश (लाग लपेट) और कमी नाम को भी नहीं है। किसी भी क़ानून को ले लो और उस पर विचार करो। वह हमेशा से एक ही हालत पर क़ायम रहेगा। उसमें कभी फ़रक़ नहीं आता। न किसी के साथ रियायत है और न ज़्यादती। हमेशा एकरस, सबके साथ एक जैसा। क्या तुमने सूरज को कभी पश्चिम से निकलते देखा है ? क्या मौसम की चाल में फ़र्क़ आया है ? क्या कभी जानवर के आदमी और आदमी के जानवर पैदा हुए हैं ? और क्या चौपायों को आसमान में उड़ते देखा है ? गरज़ है कि कहाँ तक गिनवाया जाय। जहाँ पर हर चीज़ एक उसूल के मातहत काम कर रही है ओर हमेशा करती रहेगी। जब हर क़ानून ऐसा अटल है और उसमें तबदीली नाम को भी नहीं है, तो क़ानून को बनाने वाला और उसको क़ायदे में रखने वाला ज़रूर कोई है। यह एक ऐसी बात है जिसको बेवक़ूफ़ भी जानता है और समझता है। लेकिन अगर किसी ने आँख बन्द कर रखी है और चिल्ला रहा है कि मुझको दिखाई नहीं देता, तो इसमें सूरज का क्या दोष है ? आँख इस वास्ते दी गयी है कि उससे देखो - भालो। मन इसी वास्ते दिया गया है कि उससे सोचो और विचारो। अक्ल इसी वास्ते दी गयी है कि उससे नतीजे पर पहुँचो। इस ताक़त को तुम कोई नाम दो, इसकी कोई शक्ल क़ायम करो, यह तुम्हारी अपनी समझ पर मौक़ूफ़ (निर्भर) है।

उसके अनगिनत नाम हैं और जितने नाम तुम्हारे कानों में सुनाई पड़ते हैं, सब उसी के तो नाम हैं। उसके सिवा यहाँ है कौन, और इसका नाम है, और कोई भी नाम नहीं है। जो

शक्लें तुम देखते हो और जो शक्लें तुम्हारे ख्याल में आ सकती हैं, सब उसी की शक्लें हैं और उसकी कोई भी शक्ल नहीं है। उसमें ज़रा भी शुबाह और कमज़ोरी नाम को भी नहीं है। उसूल अपना काम करता हुआ चला जा रहा है और बराबर काम करता रहेगा। यह ही उसूल क़ानून का और मालिक का हुक्म है। हज़ार मज़हिमत (प्रयत्न) करो - मगर यह अपने ढ़ंग पर काम करता ही रहेगा। यह मुख़ालफ़त (विरोध) की ज़रा भी परवाह नहीं करता और इसे जहाँ ज़िन्दगी को ले जाना है वहाँ पहुँचा कर रहेगा। बच्चा बाप के दिमाग़ से निकलकर माँ के गर्भ में आता है, कुछ दिनों वहीं परवरिश पाता है, फिर बाहर आता है, जबान होता है, बूढ़ा होता है और फिर मर जाता है। यह तुम रोज़ देखते हो। दुनियाँ में में जब अधर्म बढ़ जाता है, माद्दा (भौतिकता) का ज़ोर होता है, बुराई बढ़ जाती ह , भलाई दब जाती है और कमज़ोर पड़ जाती है, बुरे लोग खुशहाल और भले परेशान नज़र आते हैं - प्रकृति की ओर से एक शक्ति आती है जो काँट-छांट करती हुई फिर तवाजुन (संतुलन) ठीक कर देती है। उस शक्ति को चाहे आप पैग़म्बर या अवतार या ख़ुदा का बेटा, चाहे जो कहो, वह उन उसूलों कोसमझाता है जो इन्सान के अक्ल के बाहर की बातें हैं और जहाँ इन्सानी अक्ल की पहुँच नहीं है। इन्सान कहाँ से आता है, मरने के बाद कहाँ चला जाता है। कौन क़ानून बनाता है, कौन उसको बनाता है और क़ायदे में रखता है, वह क़ानून क्या है, वगैरह - वगैरह ? जब उस पर यक़ीन आ जाता है, यह ही विश्वास है और जब यह यक़ीन पुख्ता हो जाता है और दिल से हम-आहंगी (ताल-मेल) अख्त्यार कर लेता है तो इसी को श्रद्धा कहते हैं।

ज़िन्दगी अपने कायभा पर काम करती हुई आ रही है। उसकी सम्भाल भी मालिक आप करता है। खाने के वक़्त खाना और पीने के वक़्त पानी ख़ुद मिल जाता है। जहाँ ज़िन्दगी वख्शी जायेगी वहाँ उस के ज़रूरी सामान क़ुदरत खुद मुहैया (उपलब्ध) कर देगी। यह तुम रोज़ ज़िन्दगी के हर तबका (भाग या पक्ष) में देखते हो। यह देख लेना और सुन लेना और उस पर मज़बूती के साथ क़ायम रहना ही श्रद्धा है। जहाँ श्रद्धा और विश्वास में पुख़्तगी आई, आप ही आप क़ानून के साथ मुआफक़त (सहयोग) और ताल- मेल आ जाता

है और यह हालत हो जाती है कि चाहे ज़मीन और आसमान अपनी जगह से टल जाएँ , समुन्द्र पहाड़ पर लहराने लगे, सूरज और चाँद अपनी गर्दिश (चाल) छोड़ दें, मगर ज़िन्दगी कभी क़ानून का साथ नहीं छोड़ेगी । इस तरह क़ानून को समझना, उसके साथ ताल-मेल करना और फिर क़ानून पर हावी हो जाना और उसके दायरे से बाहर निकल जाना, इसी हालत का नाम मोक्ष, मुक्ति या निर्वाण पद में दाखिल होना है।

तस्लीम व रज़ा

मालिक पर विश्वास रख कर उसके आधीन रहना, यह ख़्याल पुख़्तगी के साथ रखना कि वह हमारा सच्चा बाप है, उसका हर काम हमारी भलाई के लिए है और वह सर्व-शक्तिमान है, वह जो कुछ करता है, हमारी भलाई के लिए करता है और उसी में हमारी भलाई है और किसी में नहीं, यह समझ कर हर हालत में, चाहें वह हालत हमारी ख़्वाहिश के मुताबिक है या खिलाफ, ख़ुश रहना तसलीम व रज़ा है। यह मालिक का क़ानून और उसूल है, जो कभी गलती नहीं करता और जो नुक्श और ऐब से पाक (पवित्र) है। जिसको इतनी समझ आगयी फिर उसको परमार्थ में करना- धरना कुछ नहीं है। वह रोटियों को नहीं रोता और न दीन और दुनियाँ की कोई फ़िक्र उसको सताती है।

एक गरीब को लड़का पैदा हुआ। जब वह ज़रा बड़ा हुआ और माँ का दूध पीना छोड़ा, बाप रोने लगा कि लड़के को खाना कहाँ से आएगा। औरत सियानी थी, मुस्करायी और बोली - " बच्चे को मेरे पेट में क्या तू ग़िज़ा (खुराक) देता था ।जब वह पेट से निकलकर गोद में आया तो उसके लिए दूध क्या तू पैदा करता था ? अब उसके दाँत निकल आये हैं और उसने दूध पीना छोड़ दिया तो तुझे क्या परेशानी है ? जो ताक़त अब तक ग़िज़ा मोहय्या (प्रदान) करती रही है वह अब भी ग़िज़ा मोहय्या करेगी। जब तूने पहले कुछ नहीं किया, तो अब क्या करेगा ? विश्वास करो ईश्वर की दया पर। वह मुसब्बिउल असबाब (सब ज़रूरतों को पूरा करने वाला) है। झक मारेगा, अपने आप सारा इन्तज़ाम करेगा। उसको आप फ़िक्र होगी। उसने बच्चे को पैदा किया है, वह जानता है कि बच्चे की परवरिश

किस तरह होगी। तू क्यों नाहक दुखी होती है ? जा अपना काम कर, और बात भी सच्ची थी।

जब दाँत न थे तब दूध दियो।

जब दाँत दिए तो का अन्न न दैहैं ॥

जल में थल में जो देत है सबको।

काम पड़े पर वह सुध लेहैं॥

जान को देत अनजान को देतु।

जहाँ को देत सो तोको देहैं ॥

काहे को सोच करें मन मूरख।

सोच किये कुछ काम न अई हैं॥

जिसने बच्चे को पेट में दी ग़िज़ा।

गोद में पाला जिसने दूध पिला॥

वह जहाँ का है हाक़िम आला।

हर जगह है उसका बोलबाला।

दीन व दुनियाँ का वह ख़ालिक़ है॥

वही राज़क और राणज़ाक़ है।

भूके को देता है नान जवीं।

नहीं उसमें है बुग्ज़ नफरत चाँकीं॥

वोही है बेकसों का पुश्तों पनाह ।

वेबसों की उसी की सिमत है राह ॥

वही यतमों को पालने वाला ।

वही बेबाओं का सच्चा रखवाला ।

कारसाज़ व रहीम व दानिश वर ।

वह ख़ुदा पाक ज़ात है बरतर ।

किस लिए फ़िकर से परेशान हैं ।

जिसने पैदा किया वह पालेगा ॥

आप गिरते को वह संभालेगा ।

मर्द खामोश हुआ, काम काज में लगा । फ़िकर काफ़ूर (दूर) हुई । मायूसी हट गयी और मालिक ने उसके काम में बरकत दी और वह घर खर्च आसानी से निकालने लगा ।

प्रत्यक्ष देख रहे हो, फिर भी फ़िकर है । मुतफशीर (चिन्चित) और परेशान हो । क्यों नहीं सबर और रज़ा का तरीक़ा अख़्त्यार करते ? मज़हब के लम्बे -चौड़े व्याख्यान हर जगह होते हैं । मगर मालिक की ज़ात पर कुछ भरोसा नहीं । इसलिए ज़रूरी है कि संतों के सत्संग में जाओ, जहाँ तुमको तसलीम व रज़ा की तालीम मिलेगी । तुममें विश्वास और श्रद्धा पैदा होगी और तुम सुखी होंगे ।इस तरीक़े पर चलने से तुम अपाहिज और निकम्मे नहीं बन जाओगे, क़ानून आप तुमसे सब कुछ करा लेगा । वह ग़ाफ़िल नहीं रहता ।

राम सन्देश : जुलाई-सितम्बर 2014

संत करहिं भवसागर पारा

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जीव जबसे संसार बना तबसे उसे एक के बाद दूसरी चाह सदा घेरे रहती है। एक चाह पूरी नहीं हो पाती, दूसरी घर कर लेती है,और हम उन चाहों के पीछे दौड़ने लगते हैं। इसी तरह यह जीवन चक्र चलता रहता है। जो चीज़ हमारे मन के अनुकूल आ जाती है उसमें हम सुख और जो प्रतिकूल आ जाती है उसमें दुःख का भान करते हैं। सुख दुःख का आना - जाना ही जीवन है। दरअसल हम चाहते क्या हैं ? हम चाहते यह हैं कि हमें पूर्ण जीवन मिल जाये जहाँ मौत का ख़ौफ़ न हो, पूर्ण ज्ञान मिल जाये, जहाँ अज्ञान का नामोनिशान न हो और पूर्ण आनन्द प्राप्त हो जाये जहाँ लेशमात्र भी दुःख न हो। यही सत- चित-आनन्द कहलाता है।यह सारे गुण आत्मा में हैं, पर सिर्फ़ किसी हद तक हैं। परमात्मा पूर्ण सत-चित-आनन्द है। इसकी कोई सीमा नहीं है, निःसीम है। हम ससीम (limited) हैं। ससीम को निःसीम में मिला देना ही हमारा परम कर्तव्य है। आत्मा परमात्मा के चरणों से अलग होकर लोक-लोकान्तर में घूमती हुई कई कोषों का चक्कर लगाते-लगाते यहाँ आयी और अपने ऊपर कोषों का पर्दा भी लायी। अनन्त काल से इस माया देश में भ्रमण करते करते वे परदे मोटे होते चले गए। अब यह दशा हुई कि वह इन पर्दों में ढ़क जाने से ग़ाफ़िल हो गयी और अपनी असलियत को ही भूल गई जैसे एक गडरिये ने शेर के नवजात शिशु को उठाकर भेड़ों के बीच में रख दिया। शेर का बच्चा भेड़ों के बीच में रहते-रहते अपने को भेड़ समझने लगा और उन्हीं जैसा व्यवहार करने लगा। जब वह बड़ा हुआ तो एक दिन घास चरते-चरते जंगल में चला गया। वहाँ एक दूसरे शेर से मुलाक़ात हो गयी। चूँकि वह अपनी असलियत को भूल गया था,उसने वहाँ से भागना चाहा। तब उस शेर ने उसे समझाया और नदी के किनारे ले जाकर पानी में उसका रूप दिखा कर कहा - " भाई, तुम तो मेरी जाति के हो, शेर हो, तुम कैसे अपने स्वरुप को भूल गए हो ?" शेर के बच्चे को अपनी याद आयी और वह उस शेर के साथ उछलता -कूदता जंगल में चला गया और फिर वापस नहीं लौटा। यही

हाल हम सबका हैं। हम भी अपने को भूल कर उस माया देश में चक्कर लगा रहे हैं। कोई टिकाव नज़र नहीं आता। इसका कारण एकमात्र यही है कि हमारा रुझान केन्द्र की तरफ़ से हटकर विपरीत दिशा में पड़ गया है। मन प्रबल बन गया है और आत्मा दब गयी है। हमारा मन दुनियाँ की छोटी-छोटी चीज़ों में रस लेता और सुख मानता है। परन्तु सच्चा सुख तो आत्मा में है।

विषयों का आनन्द क्षणिक होता है और आत्मा का आनन्द स्थायी होता है। बल्कि जो भी आनन्द हम महसूस करते हैं वह आत्मा से बुद्धि व मन के द्वारा छन कर आता है - अतः वह छाया मात्र ही है। चन्दन के पेड़ के आस-पास के बृक्ष भी उसकी महक के प्रभाव से थोड़ा बहुत महकने लगते हैं पर वे चन्दन के बृक्ष नहीं कहे जा सकते ।आत्मा का असली रस व आनन्द तभी मिल सकेगा जब बीच से बुद्धि व मन के परदे हट जाएँ। बाहरी वस्तुओं से जो भी आनन्द प्राप्त होता है दरअसल वह उन वस्तुओं का नहीं होता बल्कि वह हमारे अन्दर से हमारी आत्मा से ही आता है। उदाहरण के लिए भोजन को ही ले लें। हमें जब तक भूँख लगी होती है मामूली से मामूली खाना भी हमें अच्छा लगता है। जब भूँख शान्त हो जाती है तो अच्छे से अच्छा खाना भी बुरा लगने लगता है। अगर ज़बरदस्ती खा लें तो वह खाना उल्टा कष्टकारी बन जाता है। इन्सान बिस्तर में पड़ा-पड़ा कराहने लगता है। कहाँ रहा भोजन का सुख व आनन्द ? यदि भोजन में ही सुख व आनन्द होता तो ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए था। आरजी आनन्द जो मिल रहा था वह तो भूख की वजह से था। यही हाल सन्तान का भी है. जब तक सन्तान नहीं होती हम परेशान रहते हैं और देवी देवताओं की मनौती मनाते हैं। कहीं सन्तान हो जाती है तो हम ख़ुशी में आसमान सर पर उठा लेते हैं और पुराने दुःख भूल जाते हैं। पर अगर बच्चा बीमार पड़ गया तो डाक्टरों, हकीमों के पास भागते नज़र आते हैं। यही हाल हर दुनियावी पदार्थ का है। अतः चीज़ तो वस्तुतः है कहीं और हम देखते कहीं और हैं। कोई इसका परिचय कराये तभी हमारी आत्मा निज घर की तरफ लौट सकेगी।

दुनियाँ और दीन एक दूसरे के प्रतिगामी (opposite) हैं। आत्मा मन बुद्धि के पर्दों में छिपी हुई है जब तक ये परदे नहीं हटते आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मा की दृष्टि से सुख व दुःख मन की वासनाओं के अनुरूप आपेक्षिक है। आत्मा में सिर्फ़ ईश्वर की कामना है, अतः वह कभी किसी भौतिक पदार्थ की तरफ नहीं जाती। हमें दुनियाँ में रह कर दुनियाँ के व्यवहार तो करने ही पड़ेंगे। इससे फुर्सत नहीं है। वासनायुक्त किया गया व्यवहार बन्धन का कारण होता है। जहाँ फलासक्ति का अभाव है वह कर्म कतई बन्धन पैदा नहीं कर सकता। फल को न छोड़कर फलासक्ति को छोड़ना ही हमारा फ़र्ज़ होता है। आत्मा जितनी ही मन से न्यारी होती है हमारा लक्ष्य भी उतना हे क़रीब होता जाता है। अतः मन, जो हर चीज़ में रस लेता है, नई चाहें उठा कर हमें नचाता फिरता है, उस मन को को काबू में करने का साधन पहली सीढ़ी है। इसका सीधा उपाय यह है कि हम विषयों का त्याग करें, वीत-रागी बनें और बीच के रास्ते पर आ जावें, फिर अंतर में घुसें क्योकि आत्मा हमारे अंतर के अंतर में है। मन दब भले ही जाये, यह जल्दी मरता नहीं, कुकर -ब्यौंत किया करता है। मन को सिर्फ़ वही मार सकता है जो अंतर की चढ़ाई कर चुका होता है. संतों ने इसका सरल और ज़ल्द असर करने वाला और पूर्ण रास्ता निकला है और वह यह है कि किसी ऐसे व्यक्ति को ढूढो जो अपने आपको ईश्वर में लय कर चुका हो। ऐसे व्यक्ति का प्यार ईश्वर से प्यार होता है। ऐसे व्यक्ति का मन ख़त्म हो चुका होता है।उसे इस अवस्था में दुनियावीं इच्छाएँ फुज्ला (विष्ठा) नज़र आती हैं। ईश्वर का प्यार मिल जाने पर आत्मा खुद मन से न्यारी हो जाती है। आत्मा पर से जो आनन्द आता है भोगता तो उसे मन ही है, लेकिन समझता है कि यह आनन्द विषय में ही है। जैसे कुत्ता जब हड्डी चूसता है तो उसको चबाने से उसके मुँह से जो खून निकलता है उसे चूस कर वह यह समझता है कि ख़ून उस हड्डी में से मिल रहा है। वह यह नहीं समझ पाता कि ख़ून उस हड्डी में से नहीं बल्कि खुद उसी का है। इसी तरह हम भी अज्ञानी बने हुए हैं और विषयों के आनन्द को ही आत्मा का आनन्द समझते हैं।

ईश्वर ने अत्यंत कृपा करके हमें मनुष्य शरीर दिया है। हमारा फ़र्ज़ है कि हम इसे ईश्वर की अमानत और धरोहर समझ कर इससे सबकी सेवा करें, सत का जीवन अपनायें, धर्म

पर चलें और अपने आपको संत-सद्गुरु के हवाले कर दें। मोक्ष तो संतों के सन्मार्ग में जाने से ही मिल जाती है परन्तु वगैर मन के शुद्ध व निर्मल हुए स्थायी आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। वैसे तो ईश्वर कृपा हर समय, कण -कण पर सामान रूप से हो रही है, पर उसका अनुभव केवल अधिकारी व संस्कारी जीव ही कर पाता है। संस्कार तो सबका है क्योंकि मनुष्य जन्म मिलना ही इस बात का ध्योतक है कि हमारा संस्कार तो है लेकिन अधिकार बनना चाहिए। अधिकार इस तरह बनेगा कि धर्म पर, सच्चाई पर और संतों के बताये हुए रास्ते पर चलो। अधिकार व संस्कार बनना निज कृपा कहलाती है। जब निज कृपा होती तभी गुरु कृपा और ईश्वर कृपा होगी। जो अवस्था हम बर्षों की तपस्या से नहीं पा सकते वह गुरु कृपा से क्षण -मात्र में मिल जाती है। गुरु नानक देव, कबीर साहब, महात्मा रामचंद्र जी साहब के इतिहास को, उनके जीवन को, देखें तो मालूम होगा कि इनके संग में आने व इनकी कृपा करने से सैंकड़ों जीव तर गए। ऐसे ही संतों की सोहबत में परमात्मा का प्रेम मिलता है, और कहीं नहीं मिल सकता। ये लोग दयाल-पुरुष के निज पुत्र होते हैं। सतपुरुष दयाल देश का मालिक है। जब वही उतरकर त्रिकुटी पर आता है तो काल पुरुष कहलाता है। दयाल पुरुष चौथे देश का मालिक है। संत दयाल पुरुष के अवतार होते हैं। वे चौथे मोक्षदाता हैं। संत कभी भी अपने आपको ज़ाहिर नहीं करते। संत मत में पूरी महिमा गुरु की है। साधारण मनुष्य तो अनाधिकारी होता ही है। संतों के सत्संग और अभ्यास से उसकी रहनी-सहनी बदल जाती है, मन के घाट बदलते हैं और एक दिन वह संतों का, ईश्वर का प्यार प्राप्त कर लेता है और यही प्यार उसको भवसागर से पार कर देता है।

राम संदेश : जुलाई 1979

संत मत में वेदान्त के साधनों का समन्वय

(ब्रह्मलीन महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

वेदान्त में छैं : साधन बताए हैं जिनके बिना परमार्थी के रास्ते पर नहीं चल सकता। ये हैं - (1) शम (2) दम

(3) उपरति (4) तितिक्षा (5) श्रद्धा, और (6) समाधान। इसके बाद समर्पण होता है। ये सभी साधन लगभग सभी मतों में किसी न किसी रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। बिना इनके मन नहीं सधता।

(1) शम -- शम पहला साधन है। मन को किसी ऐसी चीज़ में लगा दो कि जहाँ पर वह ठहरे और उसको आनन्द मिले। यानी उसको किसी बिन्दु पर स्थिर कर दो। जब मन स्थिर हो जायेगा तो उसके साथ आत्मा भी ठहरेगी क्योंकि मन और आत्मा दोनों एक साथ चल रहे हैं। आत्मा का जो अन्दर का आनन्द है वह प्रकट होने लगेगा। मन को किसी चीज़ पर ठहराने से जो आनन्द मिलता है वह मन का आनन्द नहीं है क्योंकि मन तो बेजान है। उसमें जो आनन्द है वह आत्मा का प्रतिबिम्ब है क्योंकि आत्मा आनन्द स्वरूप है। मन को सब तरफ़ से हटाकर एक ही चीज़ के ध्यान में लगा देना होता है। अब इसके साथ -साथ यदि उसे किसी ऐसे महापुरुष के ध्यान में लगाओगे जिसका चरित्र भी पूर्णता को प्राप्त कर चुका है और जिसने ईश्वर की प्राप्ती कर ली है तो इससे तीन फ़ायदे अपने आप हो जाते हैं। मन अन्दर की तरफ़ यानी अन्तर्मुखी हो गया, चरित्र उच्च हो गया और ईश्वर का प्रेम मिलने लगा। इस वास्ते बतलाया गया है कि जो अन्दर focus (ध्यान केन्द्रित रखना) रखो वह किसी ऐसी जीवित महान आत्मा या किसी महापुरुष का हो जिसने ईश्वर की प्राप्ती कर ली हो। उसका ध्यान बनाओ। यह शम है।

(2) दम -- जब मन ऊँचा उठने लगा तो जो इन्द्रियाँ विषयों में लगी हैं और जिनसे मन को ग़िज़ा मिलती है जिसके कारण वह इन्द्रियों की तरफ़ भागता है, तो वह एक

ही बिन्दु पर स्थिर हो गया, और उसमें से जो शक्ति बाहर की तरफ़ जाती थी, वह रुक गयी और एक तरफ़ यानी अन्दर की तरफ़ को केन्द्रित हो गयी। इस तरह मन को बड़ी आसानी से इन्द्रियों के विषयों से हटाया जा सकता है। यह 'दम ' है जिसका अर्थ है इंद्रियों का दमन करना पहले - पहल इन्द्रियों का दमन करने में बड़ी मुश्किल होती है क्योंकि मन इन्द्रियों के द्वारा दुनिया की तरफ़ को भागता है। इन्द्रियाँ बेजान हैं और उन्हें जो शक्ति मिलती है वह मन से मिलती है जो आत्मा पर सवार हैं। उदाहरण के तौर पर हम और आप बैठे हुए हैं, बातचीत कर रहे हैं, और बाहर लड़के शोर कर रहे हैं लेकिन हमें सुनाई नहीं देता। कान, यानी सुनने की इन्द्रिय तो मौजूद है, फिर शोर सुनाई क्यों नहीं देता। विषय की तरफ़ जो उसके सुनने का कार्य है, वो क्यों नहीं जाती ? इसका कारण यह है कि मन की शक्ति बजाय कानों के तरफ़ के अन्दर की तरफ़ को है, आपका ध्यान यहाँ (सत्संग में) लग रहा है। ऐसे ही आँखों का है। आप किसी के सोच - विचार में पड़े हुए हैं, आँखें खुली हुई हैं, कोई चीज़ सामने से गुज़र गई और वह दिखाई नहीं देती, तो आंखें तो प्रकाश नहीं हैं। आँख में तो जब फ़ोकस पड़ता है किसी चीज़ का तो वह चीज तब दिखाई देतीं है जब अन्दर और बाहर की लाइट एक हो जाती है। अन्दर से बाहर लाइट आती है और वह बाहर के प्रतिविम्ब को अन्दर ले जाती है। इस प्रकार जब दोंनों लाइटें मिल जाती हैं तब किसी चीज़ का अनुभव होता है। अन्दर लाइट है लेकिन सूरज छुपा हुआ है तो क्या दिखायी देगा ? सूरज निकला हुआ है और ख़्याल दूसरी तरफ़ है तो भी दिखायी नहीं देगा। ख़्याल भी बाहर की तरफ़ है और सूरज भी चमक रहा है यानी रोशनी हो रहीं है, तब दिखाई देगा। ऐसा ही सभी इन्द्रियों का हाल है।

(3-4) <u>उपरति और तितिक्षा</u> -- विषयों से मन और इन्द्रियाँ हटकर इस तरह अपने अन्दर सिमिट जाती हैं जिस तरह कछुआ अपने हाथ -पाँव समेट लेता है। कछुए का स्वभाव होता है कि जब कोई बाहर से छेड़ता है तो वह अपने हाथ -पावँ और सिर को अन्दर की तरफ़ सिकोड़ लेता है। फिर उसको कोई ख़तरा नहीं रहता। हमारा मन कछुए की तरह है जो इन्द्रिय रूपी हाथ -पांवों से बाहर को जा रहा था। उसको बाहर से हटाकर अन्दर में ले

आयें तो अब वह बेफिक्र हो गया। अब बाहर से उसके ऊपर कोई आपत्ति नहीं है. अन्दर अपने ध्यान में लगा हुआ है। इन्द्रियाँ जो उसको बाहर की ओर खींच रहीं थीं, उनका दमन हो गया, अब मन में शान्ति आ गयी। अब तुम्हारे अन्तर में जो आनन्द हो रहा है, मन पर रोक लगने से उसकी झलक मिलने लगी उसे प्राप्तकरके ऐसा लगने लगा कि बाहर संसार की चीज़ों में, भोगों में जो आनन्द है वह तो भीतर के आनन्द का हजारवाँ हिस्सा भी नहीं है। इस वास्ते हम बाहरी चीज़ों को क्यों देखें ? हम यहीं चाहेंगे कि आँखें बन्द करके उस भीतर के आनन्द को ही देखते रहें। इस तरह मन दुनियाँ से उपराम हो जाता है। अब उसको अन्दर से आनन्द आने लगा तो दुनियाँ की चीज़ों से उसका वास्ता नहीं रहा। अब गरमी - सर्दी इज़्ज़त -बेइज़्ज़ती और बाहर के अच्छे- बुरे प्रभावों की उसके लिए कोई कठिनाई रही ही नहीं। अगर उसकी साधना के रास्ते में कोई बाहरी कठिनाई आती है तो अन्दर का आनन्द उसको हटा देता है। गुरु का काम कर रहे हैं, आनन्द आ रहा है। अचानक किसी बच्चे ने आकर छेड़ दिया या परेशान करने लगा। भले ही हम उसको प्यार करते हों तो भी हम उसको हटा देते हैं। हर किस्म की कठिनाई जो उस सार- वस्तु को हाँसिल करने में जिसके लिए हम यत्न कर रहे हैं, रुकावट डालती है, उसको हटा देते हैं। गरमी, सर्दी, इज़्ज़त, बेइज़्ज़ती, दुनियाँ का माल, दुनियाँ की मुश्किलात या और भी जितनी ।रुकावटें, जितने द्वन्द हैं उन सब को अपने प्रियतम की राह से हटा देना 'तितिक्षा ' है।

(5) <u>श्रद्धा</u> -- जब तक दुनियाँ की क़दर है तभी तक आपको कठिनाई मालुम देती है गुरु के पास जाने में। अभी एक बहन हमसे कह रहीं थीं कि हम आना तो चाहते हैं लेकिन रुपया हमारे पास नहीं है। रुपया तो है, मगर दुनियाँ की क़दर ज़्यादा है। इस वास्ते रुपये इस तरफ़ ख़र्च नहीं कर सकते और जब दुनियाँ से उपराम हो गये और गुरु के सत्संग को हमने मुख्य समझ लिया तो चाहें जिस तरह भी हो राह ख़र्च के लिए रुपया बचा कर वहाँ जाएँगे और हर रुकावट को पार करेंगे। अगर पैसा नहीं है और पैरों चलकर, इतनी तक़लीफ़ उठाकर जाता हैं, तो वह कितना शौक़, कितनी श्रद्धा लेकर जाता है। उतना ही उसका फल (फ़ायदा) पाता है क्योंकि शौक़ चीज़ पर निर्भर नहीं करता, बल्कि मन की हालत पर निर्भर

करता है। मन में श्रद्धा नहीं है, उत्साह नहीं हैं, आप किसी फ़क़ीर के पास जा रहे हैं, चाव है नहीं। वहाँ पर जाकर बैठेंगे तो क्या ख़ाक अनुभव होगा ? दूसरा बड़े उत्साह से जाता है, शौक़ और श्रद्धा लेकर जाता है, वह समझता है कि मैं किसी महापुरुष के पास जा रहे हूँ तो वहाँ जाकर उसको बड़ा आनन्द मिलता है। तो यह फ़र्क़ क्यों हो गया ? तुम्हारे मन का फ़र्क़ है। उस महापुरुष में कुछ कमाल है या नहीं मगर पहली बाधा तो तुम्हारा मन है। अगर मन में श्रद्धा और उत्साह है तो तुम कुछ न कुछ आनन्द ज़रूर महसूस करोगे और अगर उत्साह बिलकुल नहीं है तो चाहें फ़क़ीर की सोहबत में कितना भी आनन्द हो, तुम्हें कुछ भी महसूस नहीं होगा। यह श्रद्धा है।

(6) <u>समाधान और समर्पण</u> -- जब मन शुद्ध हो गया, इन्द्रियाँ शुद्ध हो गईं और उन्होंने विषयों की तरफ़ भागना बन्द कर दिया, मन में किसी चीज़ की इच्छा नहीं है, तो अब ऐसी हालत पैदा हो गई कि अपनी शंकाओं का समाधान करो। जो तुम्हारे संशय हैं, ईश्वर के मुताल्लिक़, मज़हब के मुताल्लिक़, उनको दूर करो और किसी ऐसे महापुरुष के सामने जिसने पारब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो, शास्त्रों का ज्ञाता हो, तुम्हारा और सारे जगत का हितैषी हो, उसके पास जाओ और बड़े अदब से बैठो। बेअदबी से कुछ हाँसिल नहीं कर सकते। जब तुम्हारी सब शंकाओं का समाधान हो जाये तब स्वयँ को पूरी तरह से उनके समर्पण कर दो। तन, मन, धन सब कुछ उन पर न्योछावर कर दो और अपनी आप को पूरी तरह उसमें लय कर दो। जीवन के लक्ष्य की प्राप्ती हो जायेगी।

ईश्वर आप सबको समर्पण और गुरु में लय होने की शक्ति प्रदान करें .

राम सन्देश : नवम्बर, 1994

सर्वप्रथम कर्त्तव्य क्या है - समर्पण क्या है ?

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

आप कोई काम अपनी इच्छा से करते हैं और उससे अपनी वह इच्छा पूरी करते हैं - वहाँ आपको अच्छा लगता है। यह संस्कार कमाना है। जब आपने सब कुछ ईश्वर के सुपुर्द कर दिया, आप ईश्वर के आसरे बैठे हैं। जो कुछ हो रहा है ठीक हो रहा है, जो होगा वह भी ठीक होगा। यह समर्पण हो गया। तो जब समर्पण हो गया और आप अपनी किसी इच्छा से काम करते ही नहीं, तो संस्कार कहाँ से बनेंगे ? अगर आप अपने को कर्ता समझते हैं और प्रयत्न भी कर रहे हैं तो आप कर्ता तो बन ही गए, चाहे वह काम होने का हो या न हो। जब आप कर्ता हैं और उसके लिए पुरुषार्थ भी कर रहे हैं तो उसका फल मिलेगा ही। इस तरह आगे का कर्म बना।

" सुपुर्दों मतों माओ खेशरा,

तू जाने हिफाज़त कमो वेशरा. "

भावार्थ : मैंने तो अपने आपको पूर्ण रूप से ईश्वर के सुपुर्द कर दिया। अब वह चाहे कम दे या ज़्यादा दे, वह जुम्मेदार

है। मैं कुछ नहीं चाहता, जो उसकी मर्ज़ी आये वह करें।

गीता में आप पढ़ें तो अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण बराबर समझाते चले गए हैं। सब तरह के तरीके बताये , सब प्रकार के योग बतलाये। अष्टांग योग, वेदान्त, संन्यास आदि। सब समझाते चले गये। सबसे अन्त में भगवान कहते हैं - " ऐ अर्जुन। अगर तू यह भी नहीं कर सकता, वह भी नहीं कर सकता, तो तू मेरा सच्चा दोस्त है, मैं तुझे एक राज़ की बात बताता हूँ। तू सब कर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा। " सर्व कर्माणि परित्यज्य माम शरण

व्रज " यानी मेरी शरणागत हो जा। मैं तुझे यकीन दिलाता हूँ कि मैं तुझे भवसागर से पार कर दूँगा. कृष्ण कौन हैं - ईश्वर और अर्जुन कौन है ? जिज्ञासु जो अभ्यासी है ?

इसे समझिये कि हमारा सबसे मुख्य कर्तव्य क्या है ? इस समय आप अपना कर्तव्य क्या समझ रहे हैं ? दुनिया में तरक्की करना, या कर्त्तव्य यह समझ रहे हैं कि अपने परिवार, बाल- बच्चों का पालन पोषण करना, लड़के की शादी करना या कोई और सांसारिक कर्तव्य। ये कर्तव्य तो हैं, मगर ये किसके कर्त्तव्य हैं ? ये आपकी स्थूल देह ही से तो ताल्लुक़ रखते

हैं। कल को यदि यह देह ही नहीं रही तो ये कर्तव्य कैसे पूरे होंगे ? लेकिन हमारी आत्मा, जो हमें सच्चा आनन्द देने वाली है, वह तो हज़ारों बरस से मन के चंगुल में फँसी है। उसकी तरफ क्या हमारा कोई कर्तव्य नहीं है? अपने किसी साधारण मित्र के लिए कोई काम कर देना तो हम अपना कर्तव्य समझते हैं लेकिन अपनी चिरकाल से बन्धन में फँसी हुई आत्मा को मुक्त करने के लिए हमें जो यह मनुष्य शरीर मिला है, भविष्य में फिर यह शरीर मिले या न मिले, - उसके लिए हमारा क्या कोई फ़र्ज़ नहीं है ?

हमारे मन में जो दुनियाँ की इच्छायें उठती हैं उन्हें पूरा करना हम अपनी ड्यूटी समझते हैं। मान लीजिये कि आपके मन में यह ख़्याल आता है कि हमारा बेटा नाराज़ है, लाओ उसे ख़ुश कर लें। लेकिन ये कितने दिनों के लिए ? क्या वह हमेशा ख़ुश रहेगा ? अगर वह नाराज़ है तो और ख़ुश है तो, दोनों हालातों में भी आपका सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि आपकी आत्मा जो मन की दुनियाँ में फंस गयी है, उसको आज़ाद करायें। इस काम के लिए कितना जीवन शेष है ? इसका किसी को क्या पता ? किसी को भी अपनी मौत का पता नहीं है, न जाने कब आ जाये। आदमी यह सोचता है कि दुनियाँ की और सब ड्यूटी तो उसकी हैं लेकिन अपनी आत्मा को मन के चंगुल से आज़ाद कराने की ड्यूटी उसकी नहीं है।

कृष्ण भगवान कहते हैं कि अपनी आत्मा को मेरे समर्पण कर दो यानी सर्वप्रथम कर्तव्य वह यही बताते हैं कि अपने आप को पूरी तरह उनको समर्पित कर दो और तुम्हारे सारे काम

वे पूरा कर देंगे। हम बीसियों बार गीता पढ़ते हैं लेकिन अपने मन के मुताबिक़ उसका ऐसा मतलब निकल लेते हैं जिससे दुनियाँ के मोह और माया में फंसते रहते हैं।

आपका सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि ईश्वरको याद करो और दुनियाँ के जितने और कर्तव्य हैं उन्हें गौण समझो और जब तुम उन सबको पूर्ण कर जाओ तो अपनी इस ड्यूटी को भी छोड़ कर अलहदा हो जाओ - सम्पूर्ण समर्पण। समर्पण का मतलब यह है कि तुम्हारी अपनी कोई इच्छा शेष न रहे। अपने को कर्ता न समझो, द्रष्टा समझो। समझ लो कि यह दुनियाँ एक सिनेमा हो रहा है। शिव भगवान शक्ति के साथ ताण्डव नृत्य कर रहे हैं, खेल हो रहा है। उसको देखो और जो पार्ट (अभिनय करने को) तुम्हें दिया गया है उसको अदा करो। तुम दूसरे के पार्ट में क्यों दख़ल देते हो। यह तो प्रकृति माँ खेल खेल रही है। यह दुनियाँ किसकी है ? क्या तुमने यह दुनियाँ बनाई है ? क्या तुम यहाँ अपनी मर्ज़ी से आये हो ?

लाये हयात, क़ज़ा ले चली,

अपनी ख़ुशी न आये, न अपनी ख़ुशी चले।

हमें तो एक पार्ट अदा करने के लिए इस दुनियाँ में भेजा गया और माँ अपना खेल खेल रही है। तुम अपना पार्ट अदा करते रहो। ईश्वर का ध्यान रखो, और शिव भगवान का जो खेल हो रहा है उसे देखते चलो। याद रखो, आदमी को ईश्वर ने फाँसा है यहाँ जन्म देकर और ईश्वर ही उसे निकालेगा। लेकिन फँसते हम ख़ुद हैं क्योकि हम अपनी इच्छायें पैदा करते हैं। जिस हालत में उस ईश्वर ने हमें रखा है, उसी हालत में हमें खुश रहना चाहिए - यही दीनता है।

अगर आपके मन में कोई इच्छा उठती है और उसे पूरी करना चाहते हो तो उस ईश्वर का आसरा लेकर पूरी करो और यदि वह इच्छा पूरी न हो तो भी ख़ुश रहो। यह भी समर्पण में आ जाता है। अपनी इच्छाएँ उठाना और अपने आप को कर्ता समझना - यह समर्पण कहाँ है ? जहाँ समर्पण है वहाँ कर्म कहाँ ? जहाँ कर्म नहीं, वहाँ बदला कहाँ है ? कर्म कहाँ पैदा

होता है - इच्छाओं से। जब किसी वस्तु की इच्छा होती है तो हम कर्म करते हैं और जब वह वस्तु हमें हमें प्राप्त हो जाती है तो उसे हम अपना समझने लगते हैं, और जब वह प्राप्त नहीं होती तो हम दुखी होते हैं। प्राप्ति हो जाने पर भी हम यह ख़्याल करते रहते हैं कि न जाने कब यह चीज़ हमसे छूट जाएगी। यानी हर हालत में उसी का ख़्याल रहता है। उस वस्तु से मोह हो जाता है और हम उसमें फँस जाते हैं

अगर इच्छा न उठे और किसी वस्तु की प्राप्ति आपको हो जाय तो यह समझो कि यह वस्तु मेरी नहीं है, भगवान जब चाहेगा इसे वापस ले लेगा। तो लगाव या मोह कहाँ हुआ ? इस तरह से रहो, दुनियाँ उसकी (ईश्वर की) समझो। उसको दृष्टा बनकर देखते रहो। हर चीज़ उसकी है, तुम भी उसके हो, तुम्हारा शरीर भी उसी का है। तुमको जो पार्ट अदा करने के लिए दिया गया है, अपनी शुद्ध बुद्धि और सच्चे दिल से उसको अदा करते रहो। क्या होगा? मैं क्या जानूँ ? क्या किसी चीज़ का फल तुम्हारे काबू में है ? तुम कर सकते हो काम को, सो किये जाओ। नतीज़ा तो वह जाने क्या होगा ? सब उस पर छोड़ दो। यह समर्पण है।

जहाँ समर्पण है, वहाँ इच्छा नहीं होती। जहाँ इच्छा नहीं, वहां कर्म नहीं। जहाँ कर्म नहीं वहाँ आवागमन नहीं। जितने महापुरुष हुए हैं सबने यही कहा है कि अपनी कोई इच्छा मत रखो। बुद्ध भगवान ने भी यही कहा है कि इच्छाएँ ही सब बन्धन की जड़ हैं। जो इच्छाओं को जीत गया, वही मन को जीत जाता है। जिसने इसको जीत लिया, उसने दुनियाँ को जीत लिया, उसका आवागमन ख़त्म हो गया। इसी का नाम मोक्ष है। मोक्ष का मतलब है, मुक्त हो जाना। काहे से ? सारी इच्छाओं से। इसके बाद आनन्द ही आनन्द है। उसके बाद है हमेशा-हमेशा के लिए उसमें लय हो जाना। मोक्ष का मतलब ईश्वर में लय हो जाना है। पर इसके लिए पहले इच्छाओं से आज़ाद हो जाना होगा।

मेरे गुरुदेव (पूज्य लाला जी महाराज) ने एक बार कहा था कि मैंने इस शख़्स को (मुझे) मोक्ष दे दी। हमें इस बात का ख़्याल भी नहीं था। हमें हमारे एक गुरुभाई ने बताया कि यह बात उन्होंने अपने रजिस्टर में दर्ज़ कर रखी हैं।

परमात्मा से कुछ मत माँगो। माँगो तो उसका प्रेम माँगो। हालाँकि यह भी नहीं माँगना चाहिए। हरि इच्छा पूरी हो, जो आपकी मर्ज़ी हो, वोही हो। सबसे ऊँची प्रार्थना यही है - " हे प्रभु आपकी इच्छा पूर्ण हो।" अगर आप मुझको नर्क में रखना चाहते हो तो बहुत अच्छा - केवल आपकी याद बनी रहे। मुझे न दीन चाहिए, न दुनियाँ .। अगर कोई इच्छा हो भी तो यह हो कि तुम्हारा (परमात्मा का) प्यार बना रहे, तुम्हारी याद बनी रहे। इस दुनियाँ का क्या माँगना ? यह तो तबाह (नष्ट) होनी ही है। हम माँगे कि हमें एक लाख रुपया मिल जाएँ - मिल भी गया और कल को मौत हो गयी तो भी उसको भोगने के लिए भी दुबारा आना पड़ेगा। तो ऐसी चीज़ माँगे जो हमेशा हमारे साथ रहे, मरने पर भी हमारे साथ रहे.- यानी ईश्वर प्रेम ही माँगे। ईश्वर से सिवाय उसके प्रेम के और कुछ मत माँगो, वो दे या न दे। अगर सच्चे दिल से तुम उसका प्यार माँगते हो तो वोह तुमको देगा और इससे तुम्हारा इतना भला होगा कि तुमको ख़्याल भी नहीं है।

हर व्यक्ति अपने-अपने मत का प्रचार करता है लेकिन जिस तरीक़े को आपने अपनाया है उसी को पकड़े रहो जब तक कि आपको आत्मा का असली ज्ञान न हो जाए। इसके बाद तुम्हें अख़्तियार है कि चाहे ख़ामोश होकर बैठ जाओ और चाहे तो और तरक़्क़ी करके देख लो।

जैसा भाव - वैसा लाभ

जो भाव सन्सारी चित्त में बसा हुआ है जिसकी कार्यवाही के लिए साधक का मन धन-दौलत की फ़िकर में लगा हुआ है, वोह मौजूद रहे और परमार्थ भी बन सके, यह नामुमकिन है। संसारी भय, भाव और चिन्ता मन से निकाल देनी होगी। सँसार उजाड़ देना होगा। बाहर की कार्यवाही बन्द कर देने से या सब छोड़ देने से मतलब नहीं है बल्कि अन्तर में, दिल में, जो भय, भाव और चिन्ता सँसार की भरी हुई है, उसको दूर कर देना होगा। अन्तर में जिस कदर सँसार का भय, भाव और चिन्ता भरी हुई है उसका ज़रा सा ही असर बाहर में आता है, बाकी अन्तर में अम्बार का अम्बार भरा पड़ा है जिसकी इस वक़्त ख़बर भी नहीं है। जिस

क़दर उसको दिल से निकाला जायेगा तब ईश्वर का प्रेम पैदा होगा और तब ही मालिक की नूरानी शक्ल (ज्योतिर्मय रूप) के दर्शन होंगे।

इसलिए हर साधक को चाहिए कि प्रभु प्रेमकी बाज़ी में सँसार को दाँव पर लगा दे और हाथ झाड़ कर उठने को तैयार हो जाये। जब सब कुछ झाड़ देगा तभी सब मिलेगा, यानी सँसार और सँसार की वस्तुएँ और उनके लिए जो भय, भाव और चिन्ता दिल में बसी हुई हैं उसको हाथ झाड़ कर छोड़ देगा और हार जाएगा तब मालिक के प्रेम की दौलत और धन जो कि एक अपार भण्डार है, ज़रूर मिलेगा। मालिक के साथ प्रेम का ऐसा नाता जोड़े जो मालिक ही मिल जाए। वह भक्त जिसने मालिक की प्रेम की बाज़ी पर सँसार को लगा दिया है वही ईश्वर की ज्योति की जगमगाहट के दर्शन यानी मालिक के नूरानी रूप के दर्शन प्राप्त कर सकेगा

ज़ाहिरी तौर पर (प्रकट रूप में) दुनियाँ के त्याग से कुछ हांसिल नहीं होगा, जब तक कि सँसार का रस दुनियाँ में और साधक के भाव में मौजूद है। मालिक के चरणों में पहुँचने के लिए तो अनुराग सहित वैराग्य होना चाहिए - यानी मालिक से अनुराग और दुनियाँ से वैराग्य बढे। जब सँसार के झटके खायेगा, उनसे दुखी होकर और कोई रास्ता न पायेगा, तब चित्त सँसार से उदास होगा और उपरामता प्राप्त होगी। तभी इस बात की चाह पैदा होगी कि इस बात की तलाश करें कि सच्चा सुख कहाँ है और उसके पाने के क्या साधन हैं ?

गुरु को जिस भाव से देखोगे वैसा है लाभ होगा। मनुष्य समझोगे तो मनुष्य का सा लाभ होगा। अगर ईश्वर समझोगे तो ईश्वर का सा लाभ होगा .

ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें।

साधना के दो पथ

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

दो रास्ते हैं. एक मन का दूसरा बुद्धि का. मन के रास्ते पर चलने वाले साधक प्रेम को अपनाते हैं. अपने आचार्य से मौहब्बत करते हैं और जिस रास्ते पर वह चलता है, उस पर पूर्ण विश्वास (blind faith) के साथ चलते हैं. उसके वचनों पर बिना किसी शक या सन्देह के यक़ीन लाते हैं. मौहब्बत में क़ुर्बानी होती है, वहाँ अक़्ल का दख़ल नहीं होता.

दूसरे वे साधक हैं जो अपनी बुद्धि द्वारा रास्ते को ख़ूब समझ लेते हैं. किताबों को पढ़ कर, सतगुरु के वचन सुनकर उन पर ख़ूब विचार करते हैं और तब रास्ता अपनाते हैं.

दोनों में ख़ूबियाँ भी हैं और खराबियाँ भी. अगर साधक का प्रेम सच्चा है, और वह अपने गुरु का पूरा आशिक़ (प्रेमी) है और गुरु की मौजूदग़ी में रास्ता चलता है, तो रास्ता ज़ल्दी तय हो जावेगा. गुरु ने कहा और उसने मान लिया कि जो कहा गया सच है. उस पर अमल करने से उसे खूद तजुर्बा हो जाता है और आहिस्ता-आहिस्ता तजुर्बा करके वह उस हालत को पा जाता है. अगर साधक के प्रेम में कमी है तो तरक़्क़ी भी कम होती है, आरज़ी या temporary (अस्थायी)होती है. जैसे, अगर गुरु की कोई बात उसे अच्छी लगी, उसे क़बूल कर लिया और अगर किसी बात में बुराई दिखाई दी तो उसे दरगुज़र कर (टाल) दिया. लेकिन आगे चलकर जब वह ग़ौर से देखता है तो वह बुराइयाँ उसे अपने अन्दर ही नज़र आती हैं.

जैसे-जैसे सफ़ाई होती चलती है, अपने में बुराइयाँ दिखाई देती जाती हैं क्योंकि हरेक को हम अपने मन से जाँचते हैं.

बुद्धि वाले सोच-समझकर तो चलते हैं और तरक़्क़ी भी करते हैं मगर एक झूँठा ख़्याल उनकी बुद्धि पर यह भी हो जाता है कि, "मैं कुछ जान गया." अहंकार आ गया. आलिम

(विद्वान) तो बना दिया लेकिन बाअमल नहीं बना (व्यवहार में नहीं लाया). जैसा पढ़ा वैसा बन भी जाय तब तो ठीक है. उसे झूँठा अभिमान हो जाता है कि मैं सब समझ गया. इससे बजाय तरक़्क़ी के गिरावट होती है.

यदि आप बार-बार एक बात पढ़ें या सुनें तो उस पर विश्वास हो जाता है. लेकिन यह मन का विश्वास है और चूँकि मन स्थिर नहीं हुआ है, इसलिए विश्वास भी स्थिर नहीं रह पाता. जब तक उस बात पर अमल नहीं किया जाय और उसका ख़ुद साक्षात्कार न हो जाय, विश्वास पुख़्ता नहीं होता. यही धोखा है.

मेरा तजुर्बा डाक्टरी का आहिस्ता-आहिस्ता हुआ. जब मैं डाक्टरी की थर्ड और फोर्थ ईयर में पढ़ता था तो सैंकड़ों नुस्ख़े लिखता था और कम्पाउण्डर उन्हें बनाते थे. साल भर बलरामपुर हॉस्पिटल में इसी तरह काम किया. लेकिन तजुर्बा ठीक से नहीं हुआ. जब अपनी प्रैक्टिस सिकन्दराबाद में खोली तो एक रईस को दवा देने का इत्तफ़ाक़ हुआ. दवा में Acqua Anisi (अकवा एनीसी) की जगह Oil Anisi (आयल अनीसी) 1 या 2 ड्राम डाल दिया और दवाई बनवा दी. जब उसकी खुशबू फैली तब ग़लती मालूम हुई और दवा बदलवाई. तो यह पढ़ने में और तजुर्बे में फ़र्क था. कुछ गलती करके सीखा और कुछ कम्पाऊण्डरों से सीखा, तब तजुर्बा हुआ. करने में और समझने में बड़ा फ़र्क होता है, मगर पढ़ने-लिखने का झूँठा अभिमान हो जाता है.

यों तो गुरु दया और कृपा के भण्डार हैं और उनकी कृपा सब पर होती है लेकिन जब कोई विशेष कृपा होती है तो शिष्य पर अपनी शक्ति से कोई न कोई हालत गुज़ार देते हैं. लेकिन यह हालत आरज़ी होती है, क़ायम नहीं रहती क्योंकि अभ्यास और इख़लाक़ की कमी होती है. जब धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ता जाता है और इख़लाक़ बनता जाता है, शिष्य एक न एक दिन गुरु कृपा से उस हालत को पहुँच जाता है. पहली हालत कश्फ़ (गुरु की खेंच शक्ति) की और दूसरी हालत कस्ब (शिष्य का निज अभ्यास) की कहलाती है. इसी को अरूज (चढ़ाव) और नज़ूल (उतार) कहते हैं. पहले चढ़ा, फिर गिरा और फिर चढ़कर वहाँ तक पहुँचा. पहली हालत की याद बराबर शिष्य की तरक़्क़ी में मदद करती है. जब गिरता है

तब उसे याद आती है उस हालत की जो उस पर गुरु ने गुज़ारी थी और उसका आनन्द और सरूर उसे ऊपर उठने में मदद देता है.

एक बार फ़रुखाबाद में छोटे भाई की शादी में ट्रेन में सफ़र कर रहा था. उस वक़्त एक सैकिण्ड के लिये यह महसूस हुआ कि ईश्वर हर जगह मौजूद है. वह ऐसी हालत थी कि बयान में नहीं आ सकती. अगर वह हालत कुछ और देर रहती तो शरीर छूट जाता. इसी को हैरत का मुक़ाम या विराट रूप का दर्शन कहते हैं. इसमें बुद्धि इतनी खिंच जाती है कि अगर गुरु मदद पर न हों वह क़ायम नहीं रह सकती. जब भगवान कृष्ण ने अर्जुन को विराट रूप का दर्शन दिया तो पहले उन्होंने उसे दिव्य दृष्टि दी थी जिससे वह उस रूप के दर्शन कर सकें. मामूली हैसियत में अर्जुन विराट रूप के दर्शन नहीं कर सकता था. और जब दर्शन हुए तो वह ज़्यादा देर बर्दाश्त नहीं कर सका और उसने प्रार्थना की कि 'हे प्रभु। मुझे तो अपना वही रूप दिखलाइये .'

<u>सन्तमत प्रेम का मार्ग है.</u> अगर शिष्य को गुरु की सौहबत बराबर मिलती रहती है और उनकी सेवा में बराबर आता रहता है, तो जल्दी तरक्क़ी होती है. सबसे आसान यही रास्ता है, मगर शर्त यह है कि बराबर गुरु से सम्पर्क बनाये रखे.

मैं जब गुरुदेव की सेवा में गया तो मुझे मज़हब के नाम से चिढ़ थी मगर उनकी शकल मुझे अच्छी लगती थी. मेरे घर के लोग इस बात को पसन्द नहीं करते थे और मुझसे नाराज़ रहते थे. प्रेम करने का माद्दा मुझमें शुरू से ही था और मैं सबसे प्रेम करता था. मैं यह समझता ही नहीं था कि मैं क्यों प्रेम करता हूँ. प्रेम करने के माद्दे की वजह से बाज़े काम मैं ऐसे कर जाता था जो समाज के क़ायदों के ख़िलाफ़ होते थे, लेकिन मैं उसे समझ नहीं पाता था. साफ़ बयानी (स्पष्ट वादिता) मेरे अन्दर थी. इसी वजह से सब मुझसे नाराज़ रहते थे. गुरुदेव ही एक पहले शख़्स मुझे ऐसे मिले जिन्होंने मुझे प्यार किया और वह प्यार हमेशा क़ायम रहा. उस प्यार की वजह से वह किसी से मेरे बुराई भी सुनने को तैयार नहीं थे.

एक बार की बात है कि एक रईस साहब उनकी सेवा में गये और ख़्वाहिश की कि उन्हें भी सत्संग में क़बूल कर लिया जाय. गुरुदेव ने उन्हें हिदायत दी कि मेरे साथ बैठकर पूजा कर लिया करें. कुछ दिनों बाद जब वे फिर गुरुदेव से मिले तो गुरुदेव ने पूछा कि क्या वे मेरे साथ बैठकर पूजा करते हैं ? उन्होंने जबाब में फ़रमाया कि वे जब भी मेरे साथ पूजा करने को आये तो मैं न मिला या मेरे कमरे का दरवाज़ा बन्द मिला. यह बात गुरुदेव को पसन्द नहीं आयी, और उन रईस साहब से फ़रमाया, "मैंने आपको Detective Inspector (ख़ुफ़िया दारोग़ा) बना कर तो नहीं भेजा जो आप मेरे पास शिकायत लेकर आये हैं." गुरुदेव का मेरे लिये ऐसा प्यार था.

प्रेम के द्वारा ही उन्होंने मुझे रास्ता दिखाया. कभी न मैंने संध्या-पूजा के बारे में कुछ पूछा और न उन्होंने बताया. उनके पास बैठने को ही मैं सब कुछ समझता था. एक बार मुझे मालूम हुआ कि सत्संग में उपदेश भी दिया जाता है. मैंने निवेदन किया, "लालाजी, आप औरों को उपदेश देते हैं, शिष्य बनाते हैं, मुझे भी बना लीजिये." उन्होंने फ़रमाया कि तुम मौलवी अब्दुल ग़नी साहब के पास जाओ और उनसे उपदेश लो. मैंने निवेदन किया कि आप शिष्य बनायेंगे तो उपदेश लूँगा, मैं और किसी के पास नहीं जाऊँगा. मैंने ज़िद की, ख़ैर, किसी तरह कृपा करके उन्होंने क़बूल कर लिया. एक मुसलमान सज्जन जिनका नाम अब्दुल सलाम था और जो लालाजी की सेवा में आया करते थे, मेरे दोस्त थे. आर्य समाजी ख़्याल का होने की वजह से मैं उनके साथ पान तक नहीं खाता था. जब उन्हें यह मालूम हुआ कि मैंने उपदेश ले लिया है तो वे बोले कि अब तुम मुसलमान हो गये हो, अपना नाम बदल दो. उन्होंने ऐसा इसलिए कहा कि इस वंश के पूर्वज इस्लाम धर्म के थे. मैं रोटी हाथ पर रखकर खाने लगा. घर के बर्तनों में न खाना खाता, न पानी पीता. पानी चुल्लू से पी लेता था. मैंने यह सब बातें एक खत में लिखी कि मैं मुसलमान हो गया हूँ, कहिये तो नाम बदल लूँ.

अपने गुरुदेव से मैं कोई बात छिपाता नहीं था. अगर ज़बानी अर्ज़ नहीं कर सकता था तो लिख कर दे देता था. अगर इस दुनियाँ में मेरा कोई हमदर्द था या मेरा कोई परम हितेषी था तो वह एक ही पाक़ हस्ती (पवित्र व्यक्तित्व) थीं - गुरुदेव. दुनियाँ ने मुझे ठुकराया, जिसको

भी मैंने प्यार किया उसी ने मुझे दुतकारा. अगर मेरे दुःख-दर्द को कोई सुनने वाला था तो वे थे गुरुदेव. उनमें बाक़ई पाक और सच्ची मौहब्बत थी. उनके पास बैठकर प्रेम लहलहाता मालूम होता था. अगर कोई मौहब्बत के लिये टूटने वाला दिल देखा, अगर दुःख-दर्द के लिये पिघलने वाला दिल देखा तो वह लालाजी (गुरुदेव) के पास देखा.

उन दिनों मैं पढ़ता था और बोर्डिंग हाउस में रहता था. मेरा ख़त पढ़कर लालाजी परेशान हो गये. बेचारे आधी रात को चलकर मेरे पास आये और बड़े प्रेम भरे शब्दों में फ़रमाया - " मैं इसी वजह से कहता था कि अभी उपदेश मत लो. तुम जान देने लगे, मैंने तुम्हें ले लिया. अब तो मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा, तुम भले ही मुझे छोड़ दो. " मैंने निवेदन किया - "मैं नहीं जानता, मेरे लिये क्या ठीक है. आप जो ठीक समझें वह कीजिये."

उन्होंने फ़रमाया - "तुम बच्चे हो, समझते नहीं, हम ठीक कर लेंगे."

आहिस्ता-आहिस्ता उनकी कृपा से वह नफ़रत चली गयी. संत लोग धार्मिक कर्मकाण्ड के बन्धन से ऊँचे होते हैं. हिन्दू मुसलमान का भेद उनमें नहीं होता. जब अल्लाह का नाम गुरुदेव लेते थे तो हमें दिल में उनसे लड़ाई होने लगती थी. हम सोचते थे कि क्या कोई हिन्दू गुरु इन्हें नहीं मिला ? उनकी कृपा से सब नफ़रत दूर हो गयी.

आप देखेंगे कि जितने मुसलमान संत थे जिन्होंने हिन्दुओं से तालीम ली और आगे हिन्दू शिष्य बनाये. गुरु नानकदेव जी के शिष्यों में मुसलमान भी थे. राधास्वामी, कबीर साहब, गाँधी जी आदि सब संत ही तो थे जिन्होंने हिन्दू मुसलमानों की एकता की जीती-जागती मिसालें क़ायम कीं. मज़हबी दायरों में घिरे रहना ओछापन और बन्धन है. हमारा रास्ता प्यार का रास्ता है. गुरुदेव कहा करते थे कि, "मैं किसी बन्दिश (बन्धन) को नहीं मानता. मैं तो एक प्यार का रिश्ता जानता हूँ" वास्तव में वे महान थे.

बाज़े लोगों को यह एतराज़ है कि दूसरे मज़हबों की किताबें हमारे यहाँ क्यों पढ़ी जाती हैं या पढ़ने को बताई जाती हैं. हमारे लिए तो जो रास्ता हमारे गुरुदेव ने दिखाया वही सही है. उसी को हम ठीक मानते हैं. लालाजी के दिल में अपने गुरुदेव के लिए इतना प्रेम था कि वे

उनके नाम से रोने लगते थे. हालाँकि उनके गुरुदेव मुसलमान थे लेकिन उनके सत्संग में महात्मा शिवव्रत लाल बर्मन की किताबें पढ़ी जाती थीं. वे स्वयं हिन्दू संतों की सौहबत में जाते थे.

लालाजी के महानिर्वाण के बाद मैंने ऐसा महसूस किया कि अपनी मुश्किलें किसके सामने रखूँ. शास्त्रों के जानने की ख़्वाहिश हुई लेकिन कोई बताने वाला नहीं मिला. एक साहब मिले भी, लेकिन उनका आचरण शुद्ध नहीं था. इत्तफ़ाक़ से एक संत लालाजी की तरह के मिल गये. उन्होंने शास्त्रों को पढ़ाया. मैंने यह देखा कि जो तालीम लालाजी की थी उसी को उन्होंने मुझे ऋषियों की भाषा में समझा दिया. मैंने देखा कि सब एक ही चीज़ है, फ़र्क सिर्फ़ शब्दों का है. मुसलमानों में जहाँ तक शरियत (इन्द्रियों की शुद्धि) है, उसमें फ़र्क है, तरीक़त में फ़र्क है, बुद्धि शुद्ध करने के तरीक़े में फ़र्क है, मगर जहाँ तक हक़ीक़त का सवाल है, वह एक ही है. हमने तो यह देखा कि इखलाक़ को बनाने (character formation) के लिए किसी एक तरीक़े को ले लो, चाहे वह वेद शास्त्र का हो या कोई और हो. जब हकीक़त पर आ जाओ तो औरों के तरीक़े को देखो. आख़ीर सबका एक सा ही पाओगे. लाला जी के पास क्रिश्चियन (ईसाई) लोग भी धर्म (religion) के मामले में सलाह लेने आते थे. उन्होंने लिखा है कि सब तरीक़े ठीक हैं मगर हमारा तरीक़ा माजूने-मुरक्किब (patent medicine) है और सबसे आसान है.

मालिक ने जब से दुनियाँ पैदा की और जीव माया में बंधे, उससे निकलने का तरीक़ा भी बना दिया. यह तो हमेशा से है, कोई नया नहीं है. अगर यह कहें कि यह तरीक़ा अब आया है, ऐसा नहीं है. ब्रह्मविद्या गुप्त थी, आम नहीं. अब आम हो गयी है.

भिन्न-भिन्न मतों की तालीम के लफ्ज़ों (शब्दों) में फ़र्क़ हो सकता है, मगर भाव (sense) एक ही है. किसी मज़हब के नाम या या उसके साहित्य (literature) में इस्तेमाल किये गये शब्दों के झगड़ों में मत पड़ो. यह नीचे की चीज़ें हैं. भाव (sense) पर जाना चाहिये. किसी मज़हब में अगर यह कहा जाता है कि मूर्ति-पूजक काफ़िर है तो यह तंगदिली (छोटापन) है. अगर कोई पत्थर को, पेड़ों को या और किसी चीज़ को पूजता है और यह समझता है कि

इसमें ईश्वर है, तो उसकी उपासना सच्ची है. हाँ, अगर उस चीज़ को ईश्वर समझ कर ऐसा करता है तो वह काफिर है.

मज़हब का ख़्याल छोड़ दो. हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, वग़ैराके झगड़े में मत पड़ो. ये सब रास्ते की बाधाएँ हैं. हमारा प्रीतम तो ईश्वर है. उस तक पहुँचने के लिये हमें रास्ते में कुछ भी करना पड़े, हमें मन्ज़ूर है. जो हमारे पूर्वज हैं, जिनकी कृपा से हम रास्ते पर चल रहे हैं, चाहे वह किसी भी मज़हब के थे, हमारे लिये पूज्य हैं. जब तक मन सत -वृत्ति पर न आ जाये, और आत्मा के स्थान पर न पहुँच जाये, तब तक पाबन्दी में रहना चाहिये और समाज और कर्मकाण्डों के नियमों का पालन करना चाहिये. जब बुराई छोड़कर अच्छाई पर आ गये, सत पर आ गये और मन पर क़ाबू आ गया, तब अगर कोई चीज़ रास्ते में आती है तो उसकी परवाह मत करो.

हमें अपने गुरुदेव से मोंहब्बत थी. उनके सत्संग में जाते थे. हमारे पिता जी को यह बात पसन्द नहीं थी. वे नाराज़ होते थे. हमने अपने दिल में ठान लिया था कि चाहे कुछ भी हो, हम लालाजी को नहीं छोड़ेंगे. 15 वर्ष की उम्र में हमें पिता ने छोड़ दिया. बड़ी भारी हवेली के वे मालिक थे. मुझे उसमें से हिस्सा नहीं मिले, उसे भी उन्होंने बेच दिया. पढ़ने की फ़ीस देनी भी बन्द कर दी. जब मेडिकल में पढ़ने गये तब तक शादी हो चुकी थी. हमें सिर्फ़ दस रूपये महीने मिलते थे ,जिसमें फ़ीस, किताबें, खाना वग़ैरा शामिल था. घरवाली को एक पैसा खर्च के लिये नहीं दे सकते थे. यह सब मुसीबतें आयीं लेकिन हमने लालाजी को नहीं छोड़ा. कहने का मतलब यह है कि परमार्थ के मामले में किसी की परवाह मत करो. इस दुनियाँ में अभी तक हमें कौन सा सुख मिला है जो आगे देगी. जब जाने का वक़्त आयेगा तो क्या सुख से जाओगे ? इसलिए इस ज़िन्दगी में इसे मन से छोड़ दो.

सब की सेवा ईश्वर का रूप जानकर करो. यह दुनियाँ उसका विराट रूप है. बिना किसी भेदभाव (distinction) के सब की सेवा अपना फ़र्ज़ समझ कर करो. अगर कोई बुराई करता हो तो सोचो कि यह बुराई करता है तो भी मेरे लिये अच्छाई है. क्या ईश्वर की मर्ज़ी के बिना पत्ता भी हिलता है ? कितनी मेहरबानी है उस ईश्वर की, उसकी बुराई से तुम्हारा

संस्कार कट गया और बुराई दूसरे को मिल गयी. निगाह (दृष्टिकोण) बदल लो. जो चीज़ें तुम्हें बन्धन में डाल रही हैं, उन्हें छोड़ दो. एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम सब कुछ छोड़कर उसके बन जाओगे और वह तुम्हें अपनायेगा. उस वक़्त तुम Dearest son of God (ईश्वर के सबसे प्यारे बेटे) हो जाओगे. तमाम दुनियाँ की शक्तियाँ तुम्हारे आगे हाथ बाँधे खड़ी रहेंगे. मरते वक़्त आज़ादी से जाओगे. महापुरुषों की पवित्र रूहें तुम्हें लेने आवेंगी. हँसते हुए जाओगे.

ईश्वर सबका भला करें.

राम सन्देश : मार्च-अप्रेल, 2008 .

स्तुति करने का तरीक़ा

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जब सुबह नींद खुले, आँख बन्द रखो. किसी चीज़ को मत देखो. ख़्याली तौर पर अपने गुरु के चरणों पर सिर रख दो और ख़्याल करो कि वह तुम्हारे सिर पर हाथ रखकर तुमको दुआ दे रहे हैं. चारपाई से उठो तो प्रभु के गुण गाते हुए उठो और किसी पद को मालिक की स्तुति में गाते रहो. शौचादि से निवृत होकर स्नान करो और कपड़े बदलो. उस वक्त बराबर गुण गाते रहो. पाक- साफ़ होकर जब संध्या के लिए बैठो तो ख़्याल करो कि किसी महापुरुष के सामने जा रहे हो. आदर से सिर झुकाकर पग रखो और बैठ जाओ. उनकी तारीफ़ में कुछ शब्द कहो, फिर उनका आवाहन करो और ख़्याल करो कि तुम उनको देख रहे हो और वे तुमको देख रहे हैं. फिर उनका ध्यान करके, सब फ़िक्रों से आज़ाद होकर बैठ जाओ. संध्या के वक्त कोई ख़्याल दिल में न आवे. अपना ध्यान उसी तरफ़ लगाये रहो. जब तुम किसी दुनियाँबी अफसर के सामने जाते हो तो क्या उस वक़्त सिवाये अपनी गरज़ के और बातों का ख़्याल करते हो, या कोई हरक़त ऐसी करते हो जो ख़िलाफ़-अदब (आदर के विपरीत) हो, और जिससे वह नाराज़ हो जाये. फिर वह तो अफसरों का अफसर है. अगर उस वक़्त दूसरे ख़्याल आते हैं तो तुम उनको हाज़िर-नाज़िर (उपस्थित) नहीं समझते या उनकी बुज़ुर्गी के क़ायल नहीं हो. संध्या खत्म होने पर जो निवेदन करना हो करो और जो पूछना हो पूँछो.

पूजा पाठ से निवृत होकर जब खाना खाने बैठो तो अपने मन को देख लो कि गुस्सा तो नहीं है, किसी की बुराई का ख़्याल तो परेशान नहीं कर रहा है, या किसी तरह का कोई बुरा ख़्याल तो दिल में नहीं है. अगर है तो उस वक्त खाना मत खाओ, अपने मन को शान्त हो जाने दो. खाने से पहले ख़्याल करो कि तुम्हारी थाली प्रकाश से भरी हुई है. इससे अच्छे विचार पैदा होंगे. ख़्याल करो कि तुम्हारे गुरुदेव ने इसमें से खाना खा लिया है. अब तुम

प्रसाद समझकर खाना शुरू करो, और बराबर मालिक का नाम लेते रहो. इससे जो खून बनेगा वह शुद्ध व पवित्र होगा, और उससे जो ख़्यालात बनेंगे उनमें मालिक का प्रेम शामिल होगा. पेट भर कर खाना मत खाओ, कुछ खाली रहने दो. जो चीज़ खाने में अच्छी लगे उसे कम खाओ. अगर खाने में किसी चीज़ की कमी या ज़्यादती है तो खाने का बाद बतला दो ताकि ठीक कर ली जावे. खाने के बाद मालिक का धन्यवाद् करो और खाने पर से उठ जाओ. एक महापुरुष का यह नियम था कि जो खाना आता था उसमें से आधा अपने इष्टदेव के लिए पहले रख देते थे, जो बाद में पंडितों या ग़रीबों को दे दिया जाता था.

जो कपड़ा पहनो पहले ख़्याली तौर पर भेंट चढ़ाओ फिर पहनो. पहले हिन्दू घरानों में यह आम रिवाज़ था कि पहली दो रोटी अलग रख दी जाती थीं. जो कपड़े बनते थे दुहरे बनते थे. उसमें से आधे कपड़े पंडितों या गुरुओं को दे दिए जाते थे, चाहे वे कितने ही क़ीमती क्यों न हों. एक मर्तवा किसी के सुपुत्र (जो किसी उच्च पद पर नौकर थे) एक ख़ूबसूरत क़ीमती अलवान अपने पिता के लिए लाये, और उन्हें भेंट किया. अगले रोज़ बगैर अलवान देखकर पूछा कि आपने अलवान क्यों नहीं पहना तो फ़रमाया कि वह अलवान हमने ठाकुर जी को दे दिया. उनके लिए दूसरा नया अलवान आया, तब उन्होंने उसे पहना. धन्य हैं वे लोग जो अपने हिस्से में से ग़रीबों को भी हिस्सा देते हैं, और असली ज़कात (दान) यही है. इसमें बड़ी बरकत है. जिन सज्जनों को परमात्मा ने इस लायक बनाया है उनको चाहिए कि अपने हिस्से में से कपड़ा बनाते वक्त जाड़े के मौसम में कुछ कपड़ा ग़रीबों के लिए तैयार कराकर बाँट दें.

खाने के बाद जब अपने काम में लगें तो अपने इष्टदेव का ख़्याल करके काम शुरू करो और यह ख़्याल करो कि वह तुम्हारे हृदय में बैठे हुए सब देख रहे हैं. बीच-बीच में मौक़ा मिले एक-दो मिनिट आँखें बन्द करके हृदय में उनके दर्शन करते रहो. जब दफ़्तर बन्द करो या काम ख़त्म करो तो मालिक को मन ही मन धन्यवाद करो. पहले-पहल दिक़्क़त पेश आयेगी और भूल हो जायेगी, लेकिन कुछ दिन के अभ्यास से आदत पड़ जायेगी. मिलने-जुलने वालों और बाल-बच्चों, सबके साथ मोहब्बत से पेश आओ, उनकी देख-भाल रखो,

लेकिन उन्हें अपना मत समझो. उनको उसकी अमानत समझो. शाम का खाना भी सुबह की तरह खाओ.

रात को बीबी बच्चों को साथ लेकर किसी किताब का पाठ करो, महात्माओं की कहानियाँ सुनाओ, अगर ज़रूरत हो तो उसकी व्याख्या भी करो. सोते वक़्त मालिक का नाम लो, और उनके दर्शन अपने घट में करो, और उसी के ख़्याल में सो जाओ. तुम देखोगे कि ख़्वाब में भी तुम उसी ख़्याल में रहोगे, और जो दृश्य दिखाई देंगे, वह भी उसी किस्म के होंगे.

बाक़ायदा साधन करने और इसी तरीक़े से स्तुति करने से खुद-ब-खुद सब बातें ठीक होती जायेगीं और तुम्हारे ज़िन्दगी शानदार बनती जायेगी.

आदमी बुरा है या भला. तरक़्क़ी कर रहा है या नहीं, इसकी तमीज़ वह ख़ुद खूब अच्छी तरह कर सकता है और ख़ासकर अपने ख़्वाबों पर निगाह रखने से. जैसे आदमी के कर्म होते हैं वैसे ही विचार बनते हैं. वह दिमाग़ के एक हिस्से में बीज रूप में क़ायम रहते हैं, नष्ट नहीं होते. मन रात को अपनी इन्द्रियों से काम लेना बन्द कर देता है. उस वक़्त दिमाग़ जमा किये हुए विचारों की ओर आकृष्ट होता है, और यही ख़्वाब बन जाते हैं. अगर तुम ख़्वाब में किसी पराई स्त्री से बेजा हरक़त करते हो, तो अभी काम प्रबल है. अगर किसी पर क्रोध आ रहा है तो क्रोध का ज़ोर है. अगर डरते हो तो मालिक से कोसों दूर हो. अगर इस किस्म के ख़्यालात तुमको डरायें तो सोने से पहले प्रार्थना करके खाट पर लेटो. आहिस्ता -आहिस्ता छुटकारा मिल जायेगा.

स्तुति और प्रार्थना सदा अपनी मातृभाषा में करनी चाहिये और उसके शब्द भी वह हों जो तुम्हारे दिल से निकलें. दुसरी जुबान में गढ़े हुए शब्दों में प्रार्थना करने से वह फ़ायदा नहीं होता जो होना चाहिये. मन्त्रों का जाप मूल भाषा में ही होना चाहिये जिसमें वह लिखे गए हों.

गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करें.

राम सन्देश – दिसम्बर, 1994.

ईश्वर के नाम का जाप ईश्वर तक पहुँचाता है - सन्तों की कृपा

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

साधारण मनुष्य के लिए जो दुनियाँ में फंसा हुआ है, ईश्वर तक पहुँचने के लिए सबसे सरल उपाय यही है कि ईश्वर के नाम का उच्चारण बराबर किया जाए. उसके नाम का उच्चारण करने से वह नाम उसे उस ईश्वर से मिला देता है जो उसके दिल में रहता है. जितना ही वह इस पवित्र नाम का उच्चारण करता जायेगा, उतना ही वह अपने अन्दर उस परमात्मा के नज़दीक पहुँचता जाएगा. अपने अन्दर से बुराइयों को निकालने और आनन्द और ईश्वर को प्राप्त करने का इससे आसान तरीक़ा और कोई नहीं है. नाम के उच्चारण से केवल मन ही शुद्ध नहीं होता बल्कि नाम भक्त को अपने भगवान् से मिला देता है.

नाम की बरक़त जो मैं आपको सुना रहा हूँ, यह मेरा अपना ही तजुर्बा ही नहीं है बल्कि दुनियाँ के सभी सन्तों का यही तजुर्बा है . इसलिए मेरी आपसे यही गुज़ारिश है कि ईश्वर की सच्ची भक्ति करो, उसमें सच्चा विश्वास लाओ और उसका पवित्र नाम बराबर लेते रहो. इससे तुमको उसके दर्शन तुम्हारे अपने दिल में होंगे और तब सारे जगत में ही उस ईश्वर के दर्शन तुम्हें होंगे. ईश्वर का जो भी नाम तुम्हें प्यारा लगता हो उसे लेने में कोई दिक्क़त नहीं उसमें कुछ ख़र्च नहीं होता. इसके लिए न कोई ख़ास बैठने का तरीक़ा है और न किसी और चीज़ की ज़रूरत है. तुम ईश्वर का नाम हर जगह, हर समय, ले सकते हो. जब तुम हाथ-पाँव से काम कर रहे हो, तब उसका नाम ले सकते हो, जब तुम कहीं जा रहे हो - चाहें गाड़ी में, चाहे पैदल - तुम बड़ी आज़ादी से उसका नाम ले सकते हो. इस अभ्यास के कुछ दिनों बाद ख़ुद-ब-ख़ुद ही तुमको अपने अन्दर 'शब्द' सुनाई देगा. तुम्हारे अन्दर ईश्वर का प्यार ख़ुद-ब -ख़ुद ही पैदा हो जायेगा. आज़मा करके देखो तो सही.

सन्तों की कृपा

ईश्वर के लिए यह खिचाव, प्यार और भक्ति सिर्फ सन्तों की कृपा से मिल सकती है. यह उन्ही की कृपा होती है कि हमारे दिलों में ईश्वर का विश्वास आता है और उस ईश्वर का नाम लेने की कामना पैदा होती है. सन्त हमारे दुनियावी माँ-बाप से जो हमारे जिस्म और दुनियाँ की ही देख-रेख करते हैं, ज्यादा कृपालु और मेहरबान होते हैं , क्योंकि वह हमेशा यह चाहते हैं कि हम दुनियाँ के कर्म और बन्धनों से हमेशा के लिए छूट जाएँ. उनकी ज़िन्दगी का ख़ास ध्येय यही होता है कि वे सोई हुई आत्माओं को जगायें , उनके ऊपर से अज्ञानता का पर्दा हटायें, उनको ईश्वर की तरफ़ ले जाएँ और उनकी दुःख की ज़िन्दगी को शान्ति की ज़िन्दगी बना दें .

इसलिए हमको चाहिये कि हम संतों की कृपा हासिल करें. परमात्मा का नाम बराबर लेते रहें, अपनी ज़िन्दगी को पवित्र बनायें और आख़िर में ईश्वर को अपने दिल में अनुभव करें और फिर तमाम दुनियाँ में होता हुआ उसी का खेल देखें. जब हम ईश्वर को हर जगह देख पायेंगे तभी हमारी ज़िन्दगी ख़ुशी और आनन्द की ज़िन्दगी होगी. अगर हमने यह कैफ़ियत (मनोदशा) हासिल कर ली तो हमने अपनी ज़िन्दगी सफल कर ली.

इसलिए मैं फिर आपको नसीहत करता हूँ कि सन्तों की सौहबत में जाओ . उनकी कृपा हासिल करो जिससे तुम्हें परमत्मा का प्रेम मिलेगा. परमात्मा का ध्यान बराबर बना रहेगा,और तुम्हारा मन शुद्ध होगा तथा ईश्वर का प्रेम तुमको अपने अन्दर अनुभव होगा जिससे तुम हमेशा - हमेशा के लिए जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाओगे और हमेशा का आनन्द प्राप्त कर सकोगे.

गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करें .

गुरु का काम सेवा और सहारा देना है

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

सच्चाई यह है कि गुरु के मुताबिक चलोगे तो सहायता ज़रूर मिलेगी. अगर तुमने इन बातों को माना कि ख़िदमत करना हमारा फ़र्ज़ है, तो हर वक़्त ध्यान रहे कि हम 'गुरु' नहीं हैं. अगर मन ज़रा भी तंग करे तो ठोकर मार कर उसे नीचे पटक दो. और ऐसी जगह बैठो जहाँ यह ख्याल न हो कि मैं ऊँची जगह बैठा हूँ, गुरु हो गया हूँ. नीची जगह जाकर बैठ जाओ. पैर छुआने में अगर तुमको ग़रूर (अभिमान) आने लगा है, तो कभी किसी से पैर मत छुआओ. जिस चीज़ से ज़रा भी ग़रूर हो उसे तोड़ कर फेंक दो. हमारे यहाँ का तरीक़ा तो ख़िदमत (सेवा) का है. अपनी जान फ़िदा (न्योछावर) कर दो गुरु पर .जब तक ये दोनों बातें यानी प्रेम और सेवा रहेंगी, आपका तरीक़ा चलेगा. प्रेम करो, सेवा करो.

दूसरी बात जो मैं अर्ज़ कर रहा हूँ , इसकी गवाह है रामायण और श्रीमद भगवत गीता. आप देखिये, ऋषि व्यास जी फ़रमाते हैं कि परमात्मा सबसे ज़्यादा उसको प्यार करता है जो उसके (परमात्मा के) नाम को फ़ैलाता है. इस नाम के लिए ही भगवान कृष्ण फ़रमाते हैं कि प्राणियों में सबसे ज़्यादा प्यारा मुझको वह है जो मेरा नाम जपता है और दूसरों का भला करता है. तो गुरु जब किसी से मोहब्बत करता है तो उसकी जाँनिसारी (जी जान से न्योछावर होने) का बदला देना चाहता है तो ऐसे शिष्य को अपना प्रेम देता है. गुरु जिससे (ईश्वर से) प्रेम करता तो जो उससे प्रेम करने लगता हैं, उसमें भी परमात्मा का प्रेम आ जाता है और आहिस्ता-आहिस्ता वह चमक उठता है.

शुरू के अन्दर गुरु का प्रेम नज़र आता है, मगर थोड़े दिनों के बाद नज़र आएगा कि गुरु का प्रेम नहीं रहता और गुरु की जगह परमात्मा ले लेता है. गुरु का ख्याल भी नहीं आता. गुरु का ख्याल तो ऐसे नज़र आता है जैसे कि शादी होने के बाद एक बेटी को अपने बाप का ख़्याल आता है. रिश्ता तो उसका अब अपने पति से होता है लेकिन मुसीबत के वक्त

कभी-कभी वह अपने बाप को याद कर लेती है. इसी तरह से अभ्यासी का गुरु पिता समान और पति परमात्मा होता है. गुरु वास्तेदार (माध्यम) बीच में है . पाल-पोसकर बड़ा कर देता है और जब स्त्री (शिष्य) की जवानी (पूर्णता) का वक़्त आता है तो पति (परमात्मा) के हवाले कर देता है और ख़ुद पीछे हट जाता है. अब अभ्यासी साधक का लक्ष्य उसका पति परमात्मा है.

इसी तरह से गुरु उम्र भर सेवा करके उसको (शिष्य को) तैयार करता है और जब देखता है कि जवानी के आसार (लक्षण) आ गए यानी जब शिष्य में परमात्मा का प्रेम झलकने लगता है, तब वो उसके (परमात्मा के) सामने कर देता है, ख़ुद पीछे आ जाता है. यह बात बिलकुल साफ़ है कि गुरु परमात्मा के बीच में कभी नहीं आयेगा. असली गुरु तो परमात्मा है, देहधारी गुरु तो एक ज़रिया (माध्यम) था. हाँ , वह (गुरु) उम्र भर देख-भाल तो रखता है और मदद भी करता रहता है.

तन का सुख, इन्द्रिय सुख, मन का सुख और बुध्दि का सुख - सबको समता में लाकर इष्ट के अर्पण कर दें, अपने आप को पूर्ण रूप से परमात्मा के हवाले कर दें. इसके बाद कुछ करना-धरना नहीं रहता. इसके लिए गुरु कि सेवा और गुरु का सहारा ही उसे निकाल ले जायेगा. .

गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करें.

गुरु प्रेम एवं गुरु कृपा

(परम सन्त परमात्मा-रूप निर्वाण प्राप्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी साहब,सिकन्दराबादी, द्वारा अपने एक प्रेमी जन को लिखा गया पत्र)

सिकन्दराबाद

26-5-64

प्रिय ..... बाबू,

खुश रहो. परमात्मा तुमको सच्चे रास्ते पर खुश रखे और अपने प्यार से मालामाल रखे. आपकी चिट्ठी मिली. जिसको दुनियाँ मिलती है उसको परमार्थ नहीं मिलता. वह दुनियाँ से बेपरवाह हो जाता है. जिसको परमात्मा प्यार करता है,जब वह ईश्वर को भूलकर दुनिया की किसी चीज़ को प्यार करने लगता है तो ईश्वर उससे उस चीज़ को छीन लेता है. जिसको वह अपनाता है उसको अपना ही बनाकर रखता है. मुसीबतें एक नैमत हैं. परमात्मा तुम पर कृपा करें.

मालिक की दया हरवक्त वर्तमान है किन्तु उस दया को आने के लिए रास्ता होना चाहिए. जितना अहं पुष्ट होगा उतना ही रास्ता रुका हुआ होगा और उतनी ही मात्रा में जिम्मेवारी स्वयं जीव की होगी. उसमें मालिक कोई मदद नहीं करेंगे. इसके विपरीत यदि अहं टूटा हुआ है, केवल ईश्वर का ही भरोसा है तो जिम्मेवारी ईश्वर स्वयं ले लेता है, और हर काम में आन्तरिक मदद और सम्हाल मिलती है. अहं पुष्ट होने पर परमात्मा दख़ल नहीं देता. इसलिए यदि ईश्वर के सहारे रहना है और उसकी दया का पात्र बनना है, तो अपने अहं को तोड़ कर दीन बनना होगा.

जो भक्त-जन हैं वे जिस मात्रा में गुरु की शरण लेते हैं और अपनी जिम्मेवारी उन पर छोड़ देते हैं और उनके बताये रास्ते पर दुःख तकलीफ़ के होते हुए भी डटे रहते हैं तो उनकी मदद श्री गुरुदेव स्वयं करते हैं. वही विपत्ति में सहारा देते हैं. सभी प्रेमी भक्त इसे जानते हैं, क्योंकि सबको किसी न किसी रूप में गुरु की कृपा मिली है और मिलती रहेगी.

दूसरा तरीक़ा यह है कि जीव सदा मालिक द्वारा की गयी मदद और सम्भाल को याद रखे. उनकी कृपा को सदा ताज़ा बनाये रहे. इसका आशय यह है कि अपने संस्कारों और कर्मफल के कारण यदि दुःख आ पड़े तो उस समय गुरु में अविश्वास पैदा न होने दे. यह न सोचे कि गुरुदेव सर्व समर्थ हैं, फिर उनके रहते और उनकी याद सदा करते हुए यह दुःख क्यों आ गया ? उनकी शक्ति में विश्वास खो न बैठे. ऐसी दशा में सबसे पहले यह याद करे कि गुरु की कृपा उस पर पहले कब हुई और सोचे कि जब उस समय उन्होंने मुझे बचा लिया तो इस समय भी वे पूर्ण रूपेण बचा सकते थे. लेकिन मेरी किसी भलाई के लिए ही उन्होंने यह होने दिया. अलावे यह भी सोचे कि यह तो अपने कर्मफल का भोग था. ऐसा होना ही था, वह हुआ. इस प्रकार इस दुःख के आलम में भी उनका शुक्रिया अदा करे. उन्हें धन्यवाद् दे.

तीसरा तरीक़ा यह है कि भक्त के ऊपर जब कोई गहरी आपत्ति आ जाय यानी किसी प्यारे की मौत हो जाय या कोई भी दिल की साध टूट जाय तो वह गुरुदेव की याद में अपने को और लय कर दे. गुरु से रुष्ट भूल कर भी न होवे. सोचे यह उनकी मौज़ है. शायद वही हमारे रास्ते का काँटा हो और गुरु की नज़दीकी हासिल करने में बाधा हो. इसलिए परमात्मा ने कृपावश मुझसे छीन लिया. दुखी आदमी को ऐसा समझाना कठिन है, क्योंकि दुःख में उपदेश काम नहीं करता. लेकिन प्रेमी-भक्तों को संतजन सदा उपदेश देते हैं और साथ-साथ अपना प्रेम भी जिससे उनके हृदय पर असर पड़ता है. वे अपना दुःख बर्दाश्त तो नहीं कर पाते लेकिन गुरु की कृपा से उसे सहने के लायक बन जाते हैं. दुनियाँदार उसे गुरु से रिश्ता तोड़ देने की सलाह देने लगते हैं और कहते हैं कि सत्संग में जाने से तुम पर यह दुःख आया. किन्तु प्रेमी भक्त उनकी एक बात भी नहीं सुनता. वह दिल ही दिल

गुरु-कृपा का भिखारी बना रहता है और कहता है कि इसमें सत्संग का या गुरु का क्या दोष है? मेरे भाग्य में यही था. मेरे कर्मों का फल यही था. वह इस दुःख को ख़ुशी - ख़ुशी सहता है और समझता है कि यही होना था और इसी में मेरा मंगल है तथा यही मेरे लिए ईश्वर का वरदान है. लेकिन इतने दिनों के अपने प्रिय सम्बन्ध को एक बार भी भूल नहीं सकता, इसीलिए वह रोता है. समय के प्रभाव में धीरे- धीरे उसका दुःख स्वयं हल्का हो जाता है.वह अपने सारे सम्बन्धियों से प्रिय अपने गुरु को समझता है. वह अपने गुरु को कुछ नहीं कहता. सब कुछ उनकी मौज समझता है.

इसके विपरीत संसारी जीव दुःख और आपत्ति में अधीर हो जाते हैं. कहते हैं परमात्मा बड़ा बेरहम है. उसने मेरे साथ न्याय नहीं किया. ऐसा सोचना भारी भूल है. परमात्मा तो हर हाल में न्यायी है. तुम्हें तो तुम्हारे कर्मों की ही सज़ा मिलती है. पुनः संसारी जीवों का कोई काम उनकी अनुकूल हो गया तो उसमें वे अपनी बहादुरी और शेख़ी बोलने लगते हैं. अपनी बुद्धि की प्रशंसा स्वयं करने लगते हैं तथा अपने भाग्य और कर्म की सराहना करते हैं. वे समझते हैं कि जो कुछ मनोनुकूल हुआ है सब उनके बाहुबल का नतीज़ा है. वे सुख की हालत में भी मालिक को भूल जाते हैं और उसके कृतज्ञ नहीं होते. वे कृतज्ञता प्रकट करने के घाट पर नहीं आते.

ऐसे लोगों से यह पूछा जाय कि जब तुम गर्भ से बाहर निकले तो माँ का स्तन-पान करने का प्रबन्ध क्या स्वयं तुमने किया था ? यह हवा जिसकी साँस पर तुम जीते हो किसने तुम्हें दी. जहाँ- जहाँ तुम जाते हो वहाँ -वहाँ तुम्हें हवा मिलती है. आख़िर इसका प्रबन्ध क्या तुमने स्वयं किया ? वे कहते हैं कि यह सब तो प्रकृति ने किया. यह प्रकृति कहाँ से आयी ? सबका प्रेरक एवं मालिक ईश्वर है.

बच्चे का अहं जब तक पुष्ट नहीं रहता, मालिक उसकी सम्भाल स्वयं करता है. एक बार मैं बाल-बच्चों के साथ दिल्ली गया था. वहाँ घूमते -टहलते शाम के समय स्टेशन के पास से लाजपत नगर डेरे पर लौटना था. एक चौराहे पर खड़ा बस का इन्तज़ार कर रहा था. बस आयी. बड़ी भीड़ थी. मैंने जल्दी- जल्दी तीनो बच्चों को पहले चढ़ा दिया और पीछे पत्नी को

चढ़ाना चाहता ही था कि बस चल पडी. माथा चकरा गया. सौ क़दम तक दौड़ता- चिल्लाता गया. लेकिन कहाँ मोटर की चाल कहाँ मैं ? पसीना- पसीना हो गया. मेरे लिए दिल्ली शहर का यह पहला अनुभव था. थक गया और श्री गुरुदेव की याद करने लगा. अफ़सोस करने लगा कि दौड़ने से बच्चे मिलेंगे या मालिक की याद करने से, फिर मालिक कर्म करने को तो कहते ही हैं. ऐसा समझ पत्नी को लेकर एक स्कूटर में बैठ गया और ड्राइवर से उस बस के रास्ते का पता लगाते हुए तेज़ चाल में चलाने को कहा. लेकिन जैसे ही स्कूटर चला एक लम्बा-चौड़ा आदमी तीनों बच्चों को लेकर मेरी तरफ़ ही आ रहा था. मैंनें उसे बच्चों के साथ दूर से ही आते हुए देख लिया. स्कूटर को रुकवा दिया और उतर गया. जब वे सज्जन बच्चों के साथ आ गए तो मेरे पास उनके लिए कुछ कहने को शब्द नहीं थे. वे मुझे श्री गुरुदेव के रूप में नज़र आये. तो भाई परमात्मा ही किसी न किसी रूप में आकर सहायता करते हैं. वे कहने लगे कि बस में बड़ी भीड़ थी और यह छोटा बच्चा माँ-माँ कहकर रोने लगा. मैंनें पूछा कि कहाँ जाओगे ? बच्चों ने बताया कि लाजपत नगर जाना है, लेकिन हम लोग कैसे जायेंगे ? वे लोग तो छूट गए हैं. मुझे रहम आया कि बच्चे अकेले कहाँ जायेंगे. फिर दिल्ली में ऐसे बच्चों को फुसला कर भी ले भागते हैं. हमने कहा कि चलो हम तुम्हें घर पहुँचा देते हैं. हमने यह भी सोचा कि अभी आप लोग बस स्टैंड के आस -पास ही होंगे और अफ़सोस कर रहे होंगे. इसलिए देखता हुए बच्चों को उतार कर लेता आया. सोचा कि ये बच्चे तो आप लोगों को पहचान ही लेंगे या आप लोग इन्हें. मेरी आखें भर आयीं. श्री गुरुदेव की इस कृपा को क्या कहूँ ? उन बच्चों के सहायक स्वयं भगवान बने. बच्चों का रुदन ईश्वर शीघ्र सुनते हैं इसीलिए वे सरल एवं निश्छल स्वभाव के होते हैं. वे अहं शून्य होते हैं. मालिक द्वारा की गयी इन सारी बातों के लिए सदा उसके प्रति कृतज्ञ बना रहे एवं उनका शुक्रिया अदा करता रहे. इन कोमल बच्चों की सम्भाल किसने की ? मैं स्कूटर लेकर दौड़ता ही रह जाता तो बच्चों को कहाँ पाता ? बस का नम्बर भी नहीं मालूम था. यह सब उनकी कृपा ही थी. ऐसे ही सबकी सहायता परमात्मा स्वयं करते हैं. इसलिए ख़ुशी और सुख की हालत में भी परमात्मा को धन्यवाद् दें और सब कुछ उसकी कृपा समझकर उसकी मौज़ में मस्त रहें.

संसार में सभी प्राणी दुःख तकलीफ को भोगते रहते हैं. सब पर दुःख पड़ता है. कोई इससे वँचित नहीं है. कहते हैं कि एक माँ का एकलौता बेटा मर गया. उसका जीवन उदास हो गया. वह दिन रात रोती रहती थी. एक दिन कोई फ़क़ीर उसके दरवाज़े पर आया. उस माँ की दशा देखकर उसने कहा - 'बेटी, यह क्या दशा तुम्हारी हो गयी है ?' वह और रोने लगी और अन्त में चुप होकर फ़क़ीर के लिए खाना लाने गयी. फ़कीर ने कहा - 'बेटी, मैं तो उसी का अन्न खाता हूँ जिसके यहाँ कोई मरा न हो.' वह और अपने भाग्य पर रोने लगी. तब फ़क़ीर ने कहा - " बेटी, घबराओं नहीं. अपने किसी आदमी को इस शहर में अभी प्रातः ही भेज दो. हर दरवाज़े इसे जाने का आदेश दो. गरीब अमीर सबके घर जाये परन्तु उसी घर से कुछ लेना स्वीकार करे जिस घर से कोई मरा न हो." ऐसा ही प्रबन्ध हुआ. उस माँ का आदमी रात बीते घर लौटा और कहने लगा -' 'मैं सुबह से लेकर इस समय तक सारे शहर की ख़ाक नंगे पाँव छानता रहा किन्तु कोई भी ऐसा घर नहीं मिला जिसके यहाँ कोई मरा न हो. किसी का बेटा मर गया है किसी की बेटी, किसी का पति मरा है किसी की पत्नी, किसी का पिता मरा है किसी की माता, किसी का दोस्त मरा है किसी की सहेली. क्या करूँ, मुझे तो एक दाना भी नहीं मिल सका "? फ़क़ीर बैठा सुन रहा था. उसने बड़े कोमल और मीठे शब्दों में माँ से कहा -

" बेटी, यह जगत की रीति है. यहाँ कोई ऐसा नहीं जिस पर विपत्ति नहीं आयी हो. मैंने अपने खाने के लिए इस आदमी को नहीं भेजा था. मैं तो तुम्हारा ही अन्न खाऊँगा. इतना प्रेम और कहाँ मिलेगा. तुम्हें केवल समझाया था कि इस दुःख से अपने को दुखी मत बनाओ. यह केवल तुम्हारे साथ ही नहीं हुआ, सबके साथ लगा है. फ़िर जिसके लिए तुम रोती हो क्या वह भी तुम्हारी फ़िक्र में ऐसे ही रो रहा होगा ? तुम तो उसे नहीं देख देखती, इसलिए सच्चाई नहीं समझ पाती कि सच्चाई क्या है ?

मैं तुम्हें महाभारत की एक कहानी सुनाता हूँ. कुरुक्षेत्र में अर्जुन की अनुपस्थिति में बालक अभिमन्यु कौरवों द्वारा मार डाला गया. इसे तुम जानती हो. अर्जुन ने अपने इकलौते पुत्र की हत्या की ख़बर सुनी तो उनके होश उड़ गए. ज़ार -ज़ार रोने लगे. कृष्ण को कोसने

लगे. कृष्ण ने उन्हें धैर्य दिया कि मैं तुम्हें उसके पास ले चलता हूँ, तुम रोना बन्द करो और चलो उसके दर्शन कर लो. अर्जुन कृष्ण के साथ गए. देखते हैं कि अभिमन्यु दूसरे लोक में लड़कों के साथ खेल रहा है. अर्जुन को देख रहा है किन्तु उसके पास नहीं आता, उनसे कुछ पूँछता तक नहीं. अर्जुन पुत्र को देख विकल हो पड़े. कहने लगे - 'बेटे, तुम यहाँ आ गए, चलो मैं तुम्हें लेने आया हूँ.' अभिमन्यु ने उत्तर दिया - अर्जुन, जिसे तुम किसे पुत्र कहकर सम्बोधित कर रहे हो ? न जाने कितने जन्मों में मैं तुम्हारा पुत्र बना और न जाने कितने जन्मों में तुम मेरे पुत्र बने. यहाँ कौन किसका पुत्र है और कौन किसका पिता. यह दुनियाँ तो एक खेल है. घड़ी भर के लिए जिसके साथ हुआ सम्बन्ध हो गया, तो क्या यह शाश्वत और अमर सम्बन्ध थोड़े ही है. मेरा मोह छोड़ दो और मुझे एकदम भूल जाओ. मैं इस खेल को छोड़कर तुम्हारे साथ कहाँ जाऊँ ?" बस, अर्जुन का मोह टूट गया. इसीलिए तो कृष्ण भगवान उन्हें अभिमन्यु के पास ले गए थे. वे कृष्ण के साथ लौट आये और उनका दुःख हल्का हो गया. फ़क़ीर ने अन्त में कहा - " बेटी, यही हाल है. अपने दुःख को भूलने की कोशिश करो और शेष ज़िन्दगी को परमात्मा की याद में लगा दो. दुनियाँ में केवल कहने के लिए और अपने स्वार्थ के लिए अपने बनते हैं. निःस्वार्थ प्रेम यहाँ किसी को किसी से नहीं है. अतः इन सबसे ऊपर उठो. " उस माँ को सार तत्व का बोध हुआ और धीरे-धीरे वह अपना दुःख ख़ुशी-ख़ुशी भूलने लगी और परमात्मा की याद में अपना जीवन व्यतीत करने लगी.

जो व्यक्ति जन्म से ही दुःख और तकलीफ़ में रहते आये हैं उन्हें उस हालत में रहने की आदत पड़ जाती है और उसमें उन्हें तकलीफ़ मालूम नहीं होती. कोई दूसरा उस हालत को बर्दाश्त नहीं कर सकता. परन्तु वह अभ्यस्त होने के कारण ख़ुशी और चैन की नींद सोता है. इसीलिए सदा दुःख और तकलीफ़ में रहने वाले मस्त जीव होते हैं और परमात्मा के प्रिय पात्र हैं. दुःख तो सुखी और दुखी लोगों पर एकसा ही आता है, पर जीवन भर सुख की वंशी फूकने वाले के लिए दुःख पहाड़ बन जाता है. वह काटे नहीं कटता. इसलिए मन का स्वभाव यह होना चाहिए कि ख़ुशी से दुःख को सहे, क्योंकि हँस कर या रोकर, दुःख को तो काटना ही

पड़ेगा. मालिक की भक्ति कायम रखते हुए उसकी मौज में खुश रहते हुए दुःख बर्दाश्त करना उत्तम तरीक़ा है.

निर्धनता, रोग और शोक जीव के लिए माया की ओर से विघ्न हैं. निर्धनता ओर रोग विशेषकर जीव को भटकाते हैं. परमार्थ में ये दोनों बड़ा विघ्न डालते हैं. जिन सत्संगी भाई-बहनों पर ये हालतें आती हैं वह तिलमिला उठते हैं ओर बहुत चिन्तित रहा करते हैं. जो कच्चे और बोदे भक्त हैं ऐसी दशा आने पर परमार्थ में ढ़ीले पड़ जाते हैं और गुरु की ओर से उदास हो जाते हैं. कहने लगते

हैं, " अपना परमार्थ अपने पास रखो', हमें परमार्थ के बदले यह दुःख नहीं चाहिए. सत्संग में आने के कारण है यह दुःख हम पर आया है." लेकिन जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि परमात्मा तो परम दयालु है. वह दुःख नहीं देता. दुःख तो अपने संस्कारवश आते हैं. ऐसी दशा में गुरु में विश्वास दृढ़ करने पर ही उसकी कृपा होती है और किसी न किसी प्रकार वह दुःख को हल्का कर देते हैं, जैसे कृष्ण ने अर्जुन का किया. जो पक्के भक्त हैं तथा जिनकी भक्ति पुष्ट हो गयी है वे इन दुखों से नहीं घबराते. और मालिक से कभी विमुख नहीं होते. संतमत में दाख़िल होने पर बहुत से जिज्ञासु या तो दुःख में गुरु की शरण छोड़ देते हैं या उसे और दृढ़ता पूर्वक पकड़ लेते हैं. सच्चा सत्संगी वही है जो दुःख में भी गुरु को न छोड़े. गुरु प्रेम पाने के लिए ही तो सत्संग में दाख़िल हुए थे. अतः सारे जागतिक भोगों के रहते हुए भी मन में यह बेचैनी बनी रहे कि किस प्रकार गुरु का प्रेम मिले. जो सद्गुरु की चरण -रज के लिए सदा व्याकुल रहता है वही अपनाया हुआ शिष्य है . वह अपना लिया गया है. वही गुरुमत है. ऐसे गुरुमत शिष्य के लिए गुरु का उसके प्रति जो प्रेम है उसकी तुलना दुनियाँ के किसी भी पदार्थ से नहीं की जा सकती. अतः हर दशा में गुरु प्रेम के भिखारी बने रहो, तभी जीवन में शान्ति और आनन्द की वर्षा होगी.

श्री गुरुदेव सबके जीवन को आनन्द प्लावित करें.

गुरु शिष्य का अन्तरंग प्रेम

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

निराकर दयालदेश का मालिक और देहधारी गुरु सब एक ही हैं. सबका एक समान आदर और एक समान उपासना होनी चाहिये. यह कैसे मुमकिन है कि हम गुरु को प्यार करें मगर दयाल पुरुष और खानदान के बुजुर्गों से प्यार न हो ? अगर सत्संगी भाइयों में आपस में प्यार न हो तो यह ज़रूर हैं कि उन्हें अपने गुरु से प्यार नही हैं. इसी तरह जितनी मज़हबी किताबें हैं उन सब में हमारी एक सी ही श्रद्धा हो हमें सारे अवतारों, संतों और धार्मिक ग्रंथों को समान आदर भाव से देखना चाहिये.

असली जिज्ञासु कौन है ? जिसको ईश्वर से मिलने की सच्ची ख़्वाहिश हैं और तड़प है और जो अपनी ज़िन्दगी से बेज़ार हैं. मौजूदा हालत चाहें उसकी कुछ भी हो, चाहें वह अच्छे आचरण का हो या न हो अगर उसमें सच्चा प्रेम हैं, तड़प हैं तो वही उसे हर हालत में निकालकर ले जायेगी.

यह मार्ग प्रेम का हैं. अगर आपके दिल में गुरु का प्रेम हैं तो आप उससे प्रेम करेंगे और वह आपसे प्रेम करेंगे. जब हालत ऐसी बन जाये कि गुरु से निरन्तर प्रेम की डोर लगी रहे और हर वक़्त उसका ख़्याल बना रहे तो यदि दुनिया के ख़्याल आते भी रहें तो कोई हर्ज़ नहीं. अगर ऐसा अभ्यासी गुरु के दर्शनों को न भी जाए तो कोई हर्ज नहीं. लेकिन जिनको अभी ऐसा प्रेम पैदा नहीं हुआ हैं और वह फ़ायदा उठाना चाहते हैं तो उनके लिए ज़रूरी हैं कि तीन- चार महीने में एक बार गुरु के पास जाते रहें. कुछ समय भले ही ज़्यादा लग जाये, लेकिन फ़ायदा होगा. गुरु से प्रेम और नाता जुड़ने की पहचान यह हैं कि जो ख़्याल गुरु के दिल में पैदा हो वह शिष्य पर उतर जाये. फिर उस ख़्याल की ख़त के ज़रिये या मिलने पर पुष्टि कर लें. इसका मतलब हैं कि शिष्य का निजी रूप जागृत अवस्था में ले गया हैं और गुरु की तालीम (शिक्षा) क़बूल कर रहा हैं. लेकिन एक बात हमेशा ध्यान रखना चाहिये कितना ही आपका अनुभव खुल जाये, अन्दर से कितने भी आदेश मिलें, लेकिन शैतान बडा

जबरदस्त है. वह कहीं भी धोखा दे सकता है. इसलिए अभ्यासी चाहें कितना भी ऊँचा हो और ख़्याल से गुरु की कितनी भी नजदीकी हो, उसे गुरु के दर्शन साल में २-3 बार अवश्य कर लेने चाहिये.

आपके सिलसिले में, बल्कि हरएक सिलसिले में, गुरु की बहुत महत्ता है. गुरु के निजी रूप (प्रकाश रूप) का, नूरानी रूप का ध्यान किया जाता है. चाहें ध्यान में पहले गुरु का स्थूल शरीर दीखता हो मगर वह नूरानी(प्रकाश) रूप है. वह प्रकाश बराबर सूक्ष्म होता जाता है और आगे चलकर साधक को सतपुरुष से मिले देता है.

तीन अवस्थाएँ हैं. पहले अपने आप को गुरु में लय करो, फिर अनामी पुरुष में और फिर ईश्वर में पहले स्थूल गुरु का ध्यान आता है और वही प्रकाश गुरु के ध्यान में बदल जाता है. पहले फनाइयत (लय) गुरु में होती है और जब प्रकाश रूप में गुरु दर्शन हो जाते हैं तो गायबाना (अप्रत्यक्ष) तौर पर उसे गुरु से मदद मिलने लगती है. इससे यह निश्चय हो जाता है कि रास्ता ठीक है और सही है. जब ऐसा परिचय मिलने लगे तब यह विश्वास करें कि यह पूर्ण गुरु हैं. इसी को प्रतीत कहते हैं. जब तक गुरु का सत्संग नहीं करेगा तब तक प्रीति नहीं पैदा होगी. बिना प्रीति के प्रतीत यानी विश्वास पैदा नहीं होगा और बिना गुरु में विश्वास आए ईश्वर में विश्वास नहीं होगा. मगर प्रतीत आने के बाद भी अभ्यासी गिर जाते हैं. इसका कारण यह है कि माया बड़ी प्रबल है. यह परमात्मा की बड़ी कृपा है कि वह मनुष्य को इसके जाल से निकाल देता है वर्ना आदमी की अपनी क्या ताक़त है जो इसके जाल से निकल सके

और तरीक़ों में सिर्फ रास्ता बताया जाता है और अभ्यास कराया जाता है लेकिन हमारे यहाँ इससे आगे भी कुछ और है. गुरु अपनी कृपा, तवज्जह और इच्छाशक्ति से शिष्य के सतोगुणी मन को अपनी मन में मिला कर ऊपर को ले जाता है जिससे शिष्य की आत्मा थोड़ी देर के लिये बाहरी वातावरण से उठकर ब्रह्माण्डी मन का आनन्द लेने लगती है और इससे जल्दी तरक़्क़ी होती जाती है . अगर किसी ने गुरु से निस्बत (आंतरिक सम्बन्ध) हासिल कर ली है तो वह दूर बैठे भी फ़ायदा उठा सकता है. जब निरन्तर प्रेम से गुरु और

शिष्य के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता हैं तो एक के विचार दूसरे पर उतर आते हैं. गुरु रूप में परमात्मा आकर हमारी सहायता करता हैं. मगर शर्त यह हैं कि प्रेम सच्चा हो, कोई ग़रज़ (स्वार्थ) न हो और अगर ग़रज़ भी हो तो प्रेम पाने की ख़्वाहिश हो. हमें तो जो कुछ भी फ़ायदा हुआ प्रेम से ही हुआ. अगर प्रेम हैं तो ईश्वर ख़ुद ही खिंचा चला आता हैं .

गुरु शिष्य संवाद

गुरु-भक्ति का भेद और पाँच प्रश्न

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

शिष्य का प्रश्न - " इस गुरु भक्ति (पीर परस्ती) का असली भेद क्या है ?

गुरु का उत्तर - गुरु से शिष्य को ब्रह्मविद्या का बीज मिलता है। जब उसकी बीज-रूप शक्ति शिष्य में प्रवेश कर जाती है तो वह स्वयं गुरु-रूप ही हो जाता है। आटे में एक चुटकी ख़मीर डाल दो तो सब आटा ख़मीर हो जायगा। गरम दूध में थोड़े से दही का जामन दे दो, सारा दूध बग़ैर महनत के स्वयं दही के रूप में परिणित हो जायेगा क्योंकि दही ने दही होने की कमाई पहले से कर रखी है। जलते हुए दीपक से ही बुझा हुआ दीप जलाया जाता है। जागा हुआ मनुष्य ही सोते हुए मनुष्य को जगा सकता है। तैराक़ ही डूबते हुए को पानी के बाहर निकाल सकता है। दूसरों से यह सम्भव नहीं है। क्या तुम नहीं देखते कि विद्वान मनुष्य प्रभाव शून्य होते हैं ? जहाँ अभ्यास और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने का प्रश्न आता है, परीक्षा के समय वह मुँह के बल गिरते हैं क्योंकि उनमें कमाई नहीं होती। कमाई का हिस्सा किसी कमाई किये हुए से ही मिलता है, अन्य से नहीं। यह सच्ची और सही -सही बातें हैं। यदि ऐसे महापुरुष से शक्ति ली जाय जो आत्मज्ञानी हो तो वास्तविक फ़ायदा होगा, अन्यथा नहीं। इस शक्ति के विभिन्न नाम हैं। सूफ़ियों में इसे 'फ़ैज़' के नाम से पुकारते हैं। सिखों में इसे 'अमृत' का नाम दिया है। वही अमी-रस है। वास्तव में यह गुरु का दान है जो वह शिष्य को अपनी कमाई में से देता है। शिष्य के लिए यही अनमोल भिक्षा है और भिक्षा तब मिलती है जब दीनता और भक्ति पूर्वक बन कर जाय

और - " द्वार धनी के पड़ रहूँ, धका धनी का खाय ". तब किसी क्षण गुरु कृपा करेंगे और अमृत यानी 'फ़ैज़' बख़्शेंगे।

शिष्य ने पुनः प्रश्न किया - " ख़मीर का भेद तो मैं समझ गया किन्तु इस विषय में कई प्रश्न और पैदा हो गये। कृपा करके उनको भी समझा दीजिये।

गुरुदेव बोले - तुम्हें सब प्रकार के प्रश्न करने की स्वतंत्रता है। बुरा, भला. जो मन में आवे उसे बाहर निकल दो। एक भी विचार शेष न रह जाय। संगति का लाभ इसी में है।

शिष्य - "भगवन, मेरे पाँच प्रश्न हैं।

(1) एक समय में एक ही गुरु करना चाहिए या एक से अधिक ?

(2) एक समय में एक ही गुरु आध्यात्मिक शिक्षा के लिए जन्म लेता है या दो चार ?

(3) जिसने एक गुरु से दीक्षा ली हो उसे दूसरे गुरुओं के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ?

(4) जिस गुरु से दीक्षा ली गयी है यदि वह निर्वाण को प्राप्त हो जाय अर्थात शरीर त्याग दे तो शिष्य को किसी दूसरे गुरु से दीक्षा लेनी चाहिये या नहीं ?

(5) यदि अपने गुरु से तसल्ली न हो तो क्या करना चाहिये ?

गुरुदेव मुस्कराये - "एक प्रश्न के पाँच उप-प्रश्न ? बहुत अच्छा। कोई हर्ज़ नहीं। अब ध्यान पूर्वक एक-एक का उत्तर सुनते चलो।

(1) तुम्हारा पहला प्रश्न है कि एक समय में एक ही गुरु करना चाहिये या एक से अधिक। एक समय में एक ही गुरु करना चाहिये। एक ही की शरण लेना उचित होता है अन्यथा वहदत (एक का ख़्याल) पैदा नहीं हो सकता। दुनियाँ में चाहे कितने ही गुरु क्यों न हों, परन्तु सत्संग, सेवा और उनकी कृपा की धार का लाभ एक से ही लेना चाहिये। हाँ, यह शर्त अवश्य है कि बिना समझे -बूझे किसी को हाथ नहीं देना चाहिये। यहाँ हज़ारों ही गुरु बने हुए हैं। कौन जाने किस आशय से आध्यात्मिक स्वांग रच रखा है। यह तो अवश्य ही देख लेना चाहिये कि :-

- क्या वह ईमानदारी और धर्म की (हक़-हलाल की) रोटी कमा कर खाता है और उसी पर अपना निर्वाह करता है या नहीं ?

- उसने गुरुआई को पेट भरने का साधन तो नहीं बना रखा है ?

- उसके विचार कैसे हैं ? चारित्रिक दशा (इख़लाक़ी हालत) कैसी है ?

- वह मान बड़ाई का भूखा तो नहीं है ?

- क्या वह दूसरे गुरुओं की बुराई तो नहीं करता ?

- उसके सत्संग में बैठने से मन एकाग्र होता है या नहीं, शान्ति आती है या नहीं ?

जब पूरी तसल्ली जो जाय तो उससे सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिये और उसी को अपना इष्ट एवं आदर्श बनाकर, उसका सहारा लेकर परमार्थ की कमाई में लग जाना चाहिये । दुनियाँ में धर्म-सम्बन्धी विषयों में एक ही गुरु का ध्यान रखना चाहिये जिससे उससे स्नेह और प्रेम होकर ज्ञान प्राप्त कर सके । ज्ञान उपार्जन करने के बाद एकेश्वरवादी (वहदत परस्त) हो जाय, उपराम (इस्तग़ना) , लय (फ़ना) और पुनर्जीवन (बक़ा) प्राप्त कर सके । स्त्री का जब एक ही पति होगा तभी उसे सुख और आनन्द प्राप्त होगा । एक देश में जब एक ही राजा होगा तभी शान्ति मिलेगी, अन्यथा ख़राबी और बर्बादी

होगी । "

(2)" तुम्हारा दूसरा प्रश्न यह है कि क्या एक समय में एक ही आध्यात्मिक गुरु शिक्षा के लिए जन्म लेता है या दो

चार ?

इस प्रश्न को अच्छी तरह समझ लो । जितने भी ब्रह्माण्ड हैं उन सबका एक -एक ईश्वर है जो अपने -अपने ब्रह्माण्ड का मालिक है । और जो सारे ब्रह्माण्डों का मालिक है, उसको परमेश्वर (परम + ईश्वर) कहते हैं । मुसलमानों में, ख़ास कर सूफ़ियों में, उसे ख़ुदाए-अज़ीम कहते हैं । सन्तों की भाषा में उसे दयालपुरुष के नाम से पुकारा है । आदि में अल्लाह

या परमेश्वर से दो धारें निकलीं। सूफ़ियों में इनका नाम पड़ा शैतान और रहमान। सन्तों के यहाँ वही काल और दयाल के नाम से पुकारी गयीं। हिन्दुओं में इन्हीं धारों को प्रकृति और पुरुष, शक्ति और शिव, आदि नामों से पुकारा गया।

शैतान यानी काल की शक्ति द्वारा माया अर्थात दुनियाँ रची गयी। जितने ब्रह्माण्ड, सूर्य-मण्डल, चाँद सितारे, आदि दिखाई देते हैं वे सब काल के द्वारा रचे गए हैं और काल के ही आधीन हैं। जितने अवतार कच्छ, मच्छ, वाराह, राम, कृष्ण आदि हुए वे सब काल के ही अवतार थे। भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न शक्तियाँ लेकर आये, अपना काम पूरा किया, और फिर काल ही में वापिस समा गए। दुनियाँ में जितनी ज़्यादा ख़राबी होती है उसको ठीक करने के लिए उतनी ही अधिक शक्ति अवतरित होती है। इसी नियम के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न अवतार भिन्न-भिन्न कलायें लेकर उतरे। भगवान् राम बारह कला के अवतार थे। भगवान कृष्ण सोलह कला के अवतार थे। अधर्मी और पापियों के विनाश के लिए उन्होंने शस्त्र उठाये, धर्म की स्थापना की और फिर वापिस अपने धाम को चले गए। काल अपनी दुनियाँ का विनाश नहीं होने देता, उसको क़ायम रखता है। मोक्ष देना या दयाल पुरुष के साथ जीव का मेला कराना, काल का काम नहीं है। अगर वह ऐसा करे तो उसकी दुनियाँ उजड़ जाय। जीवन मरण का चक्र चलता रहता है।

परमेश्वर की दूसरी धार जिस रहमान या दयाल कहा गया है, वह दुनियाँ के उन लोगों के उद्धार के लिए हैं जो अपने आपको जीवन-मरण के चक्र से छुड़ाना चाहते हैं, यहाँ के झँझटों और दुःखों से ऊब गए हैं जिनको हमेशा की शान्ति और आनन्द की चाह है। सन्त दयालपुरुष के निज पुत्र हैं। रहमान की रहमत और दयाल की दयालुता उनमें पूर्ण रूप से विद्यमान है। उनकी बैठक दशम द्वार पर होती है। अन्दर से वे दयालपुरुष के चरणों में लीन रहते हैं और शरीर से वे दुनियाँ के काम-काज करते हैं। जीवों को दुनियाँ और उसके सामान की नाशवानता का ज्ञान कराते हैं। भूले-भटकों को चेताते हैं, दीन-दुखियों को शान्ति का सन्देश देते हैं, परमात्मा के प्रेम का पाठ पढ़ाते हैं। सच्चाई, नेकी और भक्ति के रास्ते पर

चला कर एक दिन उन्हें दयालपुरुष के चरणों तक पहुँचा देते हैं, जहाँ पहुँचकर दुनियाँ में फिर आना नहीं होता। जीवन मरण के चक्र से मनुष्य छूट जाता है।

जो असली गुरु हैं और जो सबका एक ही है, वह तो परमात्मा ही है। लेकिन दुनियाँ के लोगों को चेताने और उनका कल्याण करने के लिए वह अपनी शक्ति अपने निज-पुत्रों के रूप में भेजता है जिन्हें गुरु, सद्गुरु, सन्त, ऋषि, औलिया, आदि नामों से पुकारते हैं। एक समय में एक गुरु भी पैदा हो सकता है और अनेक भी। गुरु का पैदा होना समय का प्रश्न है। जहाँ जैसी आवश्यकता होती है वहाँ उसी प्रकार वह पूरी की जाती है। एक मनुष्य सारे सँसार में अकेला काम नहीं कर सकता। सारे मनुष्य एक से विचारों और भावनाओं के नहीं होते। प्रत्येक व्यक्ति का प्रेम, विश्वास और सहानुभूति भी एक के साथ नहीं हो सकती। गुरु या सन्त लोग प्रेम को लेकर चलते हैं। प्रेम के द्वारा ही वे शिक्षा देते हैं। प्रेम में ऐसा आकर्षण है कि कैसा ही निष्ठुर-हृदय व्यक्ति क्यों न हो, पिघल जाता है। अवतारों की भांति गुरु लोग अस्त्रों का प्रयोग नहीं करते। किसी को सज़ा नहीं देते। यदि कोई प्रेम से राहे-रास्त पर आ जाय तो ठीक है, अन्यथा उसको दण्ड नहीं देते, उसके लिए दुआ करते हैं।

एक संस्था में एक समय में एक ही गुरु होता है, किन्तु उसके अनेक शिष्य हो सकते हैं जो दूर-दूर देशों में जाकर उस एक गुरु की आज्ञानुसार, उसी के उसूलों पर चलकर, आध्यात्म-विद्या की शिक्षा देते हैं, उसका प्रचार एवं प्रसार करते हैं। उन सब में ख़मीर और प्रभाव तो एक का ही होता है किन्तु पात्र अलग-अलग होते हैं, उनकी योग्यताएँ भी अलग-अलग होती हैं। जो उनसे स्नेह करते हैं, उन पर श्रद्धा रखते हैं, उन्हें वे अपनी योग्यता के अनुसार चेताते रहते हैं। उनका भी काम बनता रहता है और दूसरों का भी। जो उनकी ओर झुकते हैं वे परमार्थी कमाई में लग जाते हैं।

किसी- किसी सम्प्रदाय में ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिन महापुरुष से उनके यहाँ का सिलसिला आरम्भ हुआ और आगे को चला, वे ही आदि गुरु थे। उनसे पहले कोई सच्चा गुरु दयालपुरुष या परमेश्वर के चरणों में पहुँचने वाला नहीं हुआ। मालिक के धाम का असली भेद उन्हीं को पहले- पहल मालूम हुआ और उन्होंने उस भेद को आगे के लोगों को

बताया। इस बात की पुष्टि के लिए वे लोग अनेकों दलील पेश करते हैं। यदि उनकी संस्था की दृष्टि से देखा जाय तो यह बात ठीक हो सकती है क्योंकि उस सम्प्रदाय में विश्वास रखने वालों और वहाँ के तरीकों में ईमान लाने वालों के लिए उस संस्था के महापुरुष ही आदि गुरु हुए। किन्तु दूसरे लोगों के ऊपर यह बात थोपी नहीं जा सकती। जब से दुनियाँ बनी, जीवन-मरण का सिलसिला क़ायम हुआ, तभी से जीव के उद्धार का सिलसिला भी क़ायम हुआ। गुरु और सन्त सदा सदा आते रहे, अब भी मौजूद हैं और सदा आते रहेंगे। परमेश्वर का यह नियम है। संस्थायें सदैव से बनती रही हैं और बिगड़ती रही हैं। जब से दुनियाँ बनी तब से अब तक वक्त और मौक़े के लिहाज़ से न मालूम कितना संस्थायें बनी और बिगड़ीं। जब तक उनकी ज़रूरत रही, वे क़ायम रहीं, कुछ असलियत में, कुछ नाम को, और एक वक्त ऐसा आया कि अब कोई उनका नाम भी नहीं लेता। भारत देश में ही बड़े-बड़े सन्त और ऋषि हो चुके हैं जो इतने शक्तिशाली थे कि दूसरी दुनियाँ रच सकते थे। उनमें से बहुतसों ने अपने-अपने अलग सम्प्रदाय स्थापित किये जो या तो अब बिगड़ गये क्योंकि वक़्त और मौक़े के लिहाज़ से उनकी अब आवश्यकता भी नहीं रही, अगर हैं भी तो नाम मात्र के लिए। हाँ, यह अवश्य है कि पुराने ज़माने में ब्रह्मविद्या की शिक्षा आम नहीं थी क्योंकि न तो हरेक व्यक्ति इसका अधिकारी था और न ही सन्तों ने इसे खोलकर रखा। वह समय ही ऐसा था। किन्तु अब जीवों की छोटी आयु, वक़्त और मौक़े के लिहाज़ से यह विद्या आम कर दी गयी है। गुरु-जन इतने अधिक दयालु हो गये हैं कि जो भी उनके सम्पर्क में आयें, उस पर ईश्वर प्रेम का छींटा डाल ही देते हैं। जब समय आयेगा तो वह छींटा रूपी बीज फूट निकलेगा और फलेगा फूलेगा। मन की शक्तियाँ अब थक गयी हैं और आत्मा के उद्धार का समय आ गया है। "

(3) "तुम्हारा तीसरा प्रश्न है कि जिसने एक गुरु से दीक्षा ग्रहण कर ली हो, उसको दूसरे गुरुओं के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये ? जिसने एक गुरु से दीक्षा ले ली है, उसे दूसरा गुरु करने और उससे लाभ उठाने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु, यदि दूसरे गुरु के सत्संग में जाना पड़े अथवा वे उसके पास आवें तो आदर और प्रेम से पेश आवे।

आदर और प्रेम मनुष्य के चरित्र के लिए उत्तम श्रेणी की चीज़ें हैं। ब्रह्मविद्या का नाम ही इल्मे-अदब और इल्मे-इख़लाक़ है। इसका आशय यह है कि दूसरों का आदर करना और अपना चरित्र गठन करना ब्रह्मविद्या ही सिखाती है। जिसका चरित्र स्वच्छ नहीं है और जिसके मन में ईर्ष्या और डाह भरा हुआ है, उससे किसी को ब्रह्मविद्या की शिक्षा नहीं मिल सकती तथा वह स्वयं भी ब्रह्मविद्या का ऊँचा अधिकारी नहीं बन सकता। "

(4) " चौथा प्रश्न जो तुमने किया है वह यह है कि यदि गुरु शरीर त्याग दे तब क्या शिष्य को दूसरा गुरु करना

चाहिये ? यदि किसी के गुरु ने शरीर छोड़ दिया है और उसने अभी तक पूर्णलय (मुक़म्मिल फ़नाइयत) की अवस्था प्राप्त नहीं की है, और उसको मरा हुआ समझ रखा है, तो समझ लेना चाहिये कि वास्तविक मायनों में उसने दीक्षा ली ही नहीं। उसे अवश्य दूसरा गुरु करना चाहिये अन्यथा काम नहीं बनेगा। उसे शिष्य कहने कौन लगा ? शिष्य कहते हैं मुरीद को और मुरीद नाम है मुर्दे का। शिष्य तो वह है जिसने गुरु में लय होने का पद प्राप्त कर लिया हो अर्थात पूर्ण रूप से गुरु में लय हो गया हो। जिसमें अपने शरीर का ज्ञान तथा अहंभाव अभी तक वर्तमान है उसको दूसरे गुरु से अवश्य दीक्षा लेनी चाहिये। हाँ, यह अवश्य है कि उसको गुरुमुख की पदवी प्राप्त नहीं होगी क्योंकि उसमें एकता और एक गुरु (वहदानियत) का विचार कठिनता से पैदा होगा और अनेकता (कसरत पसन्दी) का प्रभाव बहुत दिनों तक शेष रहेगा। "

(5) "तुम्हारा पाँचवाँ प्रश्न है कि यदि अपने गुरु से तसल्ली न हो तो क्या करना चाहिए ? यदि किसी को गुरु कृपा का लाभ उठाने का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ है और गुरु से बिछुड़ गया है, या गुरु करने में धोखा हुआ है, या गुरु करने के बाद इस बात का पता नहीं चलता कि वे कहाँ हैं, या वह बहुत बृद्ध और बीमार हैं और प्रभाव पैदा नहीं कर सकते, या गुरु से अविश्वास हो गया है, तो उसे भी दूसरा दूसरा गुरु कर लेना चाहिए। यदि गुरु मौजूद हैं तो उनको अपनी सारी हालत बता दें और यदि उन्होंने ध्यान न दिया हो, या ध्यान तो दिया हो किन्तु लाभ न होता हो और हालत न सुधरती हो, तो उनसे अनुमति लेकर दूसरे

गुरु से लगाव या प्रेम पैदा करें। ऐसी दशा में गुरु लोग दूसरों के पास भेज देते हैं या दूसरे के पास जाने की अनुमति दे देते हैं। यदि अनुमति न दें तो फिर चिन्ता न करें। "

शिष्य - " प्रभु, अपने जो बातें समझाईं हैं उनसे मुझे पूरा सन्तोष हो गया। अब इस विषय में मेरे मन में कोई शंका शेष नहीं रही। ख़मीर का विषय ठीक है। बिना जामन के दूध से दही नहीं बन सकता। इसी प्रकार बिना गुरु का ख़मीरी असर लिये ब्रह्मविद्या का रंग नहीं चढ़ सकता। अर्थात गुरु से ब्रह्मविद्या का बीज लिये बिना शिष्य में ब्रह्मविद्या का वृक्ष पल्लवित और पुष्पित नहीं हो सकता। गुरु धारण करना, उनका सत्संग करना, उनके वचनों के अनुसार अपने जीवन को ढ़ालना भी बहुत आवश्यक है। इसके अलावा कोई और बात भी शेष रह गयी है जिसको श्री महाराज ने नहीं कहा या मैंने ध्यान नहीं दिया। वह बात यह है कि गुरु-भक्ति पर इतना बल क्यों दिया गया है ?"

गुरुदेव - " तुम्हारा कहना ठीक है। मैंने तुम्हें इस विषय को साफ़-साफ़ खोल कर नहीं कहा, किन्तु तुमने उसे भुलाया नहीं। "

शिष्य - " उसे फिर से समझा दीजिये।"

गुरु - " मनुष्य का हृदय बहुत चंचल है जैसे पारा। एक क्षण के लिये भी शान्त होकर नहीं बैठता। न उसे आराम है, न शान्ति और न चैन। अशान्ति, चंचलता, बेचैनी और बेक़रारी मुसीबत हैं। गुरु का निरन्तर ध्यान ही इस रोग की औषधि है। दिल रूपी बन्दर को जब तक मज़बूती के साथ गुरु-ध्यान रूपी खूँटे से न बाँधोगे, यह कूदता ही रहेगा। इसे खूँटे से बाँधने पर भी शुरू-शुरू में यह अपनी उछल-कूद नहीं छोड़ेगा। यह अवश्य है कि थोड़े दिनों में इसी अभ्यास से छलांग मारने योग्य नहीं रहेगा। और जब यह कूदना, फाँदना और लम्बे डग भरना बन्द कर देगा तो फिर धीरे-धीरे चुपचाप बैठने लगेगा और उसको शान्ति एवं आनन्द का अनुभव होने लगेगा। उसका चसका पाकर वह ठहरने लगेगा, और जब वह ठहरने लगेगा तब अपने अन्तर में घुसने लगेगा और असली काम बनाने लगेगा,अर्थात अपने

भीतर असलियत का ज्ञान प्राप्त करने लगेगा। सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सत से प्रेम और असत से विमुख होने लगेगा।"

प्रश्न - " यह पहले इतना चंचल क्यों रहता था ?"

उत्तर - " पहले इसका सम्बन्ध, लगाव एवं प्रेम अनेकों वस्तुओं से था। स्वभाव के कारण उसका ध्यान सब तरफ़ जाता था, इसलिए परेशान और दुःखी रहता था। स्त्री, सन्तान, अफ़सर, मातहत, रुपया, धन, मर्यादा, रूप, ऐश्वर्य, विद्या एवं गुण, आदि, सब ही तो इसकी जान के पीछे पड़े रहते थे और सभी की ओर इसका ध्यान जाता था। अब सब से हट कर केवल एक ही का ध्यान रहता है, उसी एक की धुन है और उस 'केन्द्र' का नाम गुरु है। अनेकों वस्तुओं और रंग-रूपों से उसका मनोरंजन नहीं होता, उनमें आनन्द जाता रहा. अब केवल एक गुरु-रूप से ही लगन लग कर रह गयी है। अनेकों वस्तुओं से मनबहलाव के कारण उसमें बेचैनी थी, अब केवल एक गुरु-रूप से लगन लगी है। जब वह उस गुरु आकृति के भीतर प्रवेश करता जायेगा तो स्वतः बाहरी आकृति की सीमा से परे निराकार आत्मा का दर्शन करने लगेगा। उस आत्म- दर्शन में शान्ति, तृप्ति और आनन्द ही आनन्द है। यहाँ पर समस्त वाह्य एवं आन्तरिक, प्रकट एवं गुप्त, इच्छायें एवं भावनायें, मिट जाती हैं। यह गोपनीय रहस्य है। निराकार में शान्ति है क्योंकि वहाँ पहुँच कर साँसारिक पदार्थ विलीन हो जाते हैं, अन्तःकरण में इच्छाओं एवं भावनाओं की हिलोरें शान्त हो जाती हैं और कोई वस्तु आत्मा के ज्ञान में बाधक नहीं शेष रहती।"

प्रश्न - "प्रभु, यह तो मैं समझ गया, किन्तु एक शंका पैदा हो गयी, उसका निवारण करने की कृपा करें। विचारों को बनाने वाला और हवा में क़िले खड़े करने वाला तो यह दिल ही है। देखने में तो दिल के नक़शे और विचारों का ताँता ग़ायब मालूम होगा, किन्तु वे भीतर भीतर दबे- दबे सुलगते रहेंगे और वर्तमान रहेंगे।"

उत्तर - " यह ठीक है। नकशों का खींचने वाला और विचारों को बनाने वाला यह स्वयँ ही था। परन्तु अब धीरे-धीरे यह स्थिति बन गयी है कि यह समझने लगा है कि इन विचारों

और नकशों का बनाने वाला मैं स्वयँ ही हूँ। यह इच्छायें, यह विचार, यह वासनायें मेरे ही आधीन हैं, न कि मैं इनके आधीन हूँ। यह समझ में आ जाने पर वासनाओं तथा इच्छाओं से विमुख होता जायगा, उनसे सम्बन्ध टूटता जायगा, और विचारों के आते रहने पर भी उनसे निश्चिन्त होता जायगा, अर्थात आत्मा मन से न्यारी हो जायगी, उसके ऊपर से मन का आवरण हट जाने पर उसका असली रूप और नैसर्गिक गुण प्रकट होने लग जायेंगे। उनमें से एक यह है कि आत्मा को अपने अंशी सत्तपुरुष कुल मालिक परमेश्वर के चरणों में प्रेम पैदा होता जायगा जिसका आनन्द मिलने पर ध्यान उसी ओर लगा रहेगा और कर्म करते हुए भी वह अकर्ता बना रहेगा। यही 'मोक्ष' है और यही जीवन का परम-लक्ष्य है। उसको पूर्ण ज्ञान यानी असलियत का ज्ञान हो जायगा। जब तक मन के चक्कर में है वहाँ ज्ञान नहीं, सब अज्ञान है। उस ज्ञान को प्राप्त करके (मैं आत्मा-स्वरुप हूँ, मेरा रिश्ता सिर्फ़ ईश्वर से है, अंश का अंशी से है, और वह रिश्ता हमेशा से है और हमेशा रहेगा) और उसी में लय होकर अपने शारीरिक बन्धनों को जो अज्ञानवश पैदा हुए थे कि " मैं शरीर हूँ " दुनियाँ के सब रिश्ते सदा के लिये टूट जायेंगे। सब में रहता हुआ, सब से बर्तता हुआ, सबसे अलहदा हो जायगा और तमाम संसारी बन्धनों से मुक्त हो जायगा। यही असली मोक्ष है।"

शिष्य - " प्रभु, मैं समझ गया, किन्तु कोई ऐसा रहस्य अवश्य है जिसके कारण सन्तों ने गुरु-भक्ति की इतनी महिमा गाई है। कृपा करके उसे और समझा दीजिये।"

गुरुदेव ने गम्भीर होकर कहा - " भेद यह है कि जीवात्मा को जन्म-जन्मान्तर से दूसरों का सहारा लेने की आदत पड़ गयी थी। बिना सहारा लिये और बिना दूसरे की सहायता के इसको कोई भी काम करना दूभर हो गया था। पहले यह अनेक सहारों पर निर्भर रहती थी। अब धीरे-धीरे सब सहारों को छोड़कर केवल एक गुरु का सहारा रह गया। सब की ओर से दृष्टि हट कर केवल एक गुरु का सहारा रह गया। सब की ओर से दृष्टि हट कर केवल एक की ओर लग गयी। सब सहारे जाते रहे। अब जब वह एक में लय हो जायगी, मोक्ष स्वयँ मिल जायगी।"

शिष्य - " यह ठीक है, इसको सहारे की आवश्यकता है, किन्तु क्या यह आवश्यक है कि वह सहारा गुरु का ही हो ? सहारा तो किसी का भी हो सकता है - पत्नी का, मित्र का, माता-पिता का या किसी अन्य सम्बन्धी का। सहारा तो सहारा ही है चाहे वह किसी का भी हो। वह किसी अन्य सहारे में लय होकर क्या मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।"

गुरुदेव - " तुम ठीक कहते हो। इस संसार में सब बातें सम्भव हैं, किन्तु दूसरे सहारों में सदा ख़तरा है। वे ख़तरे और अनेकता के दोषों से बचे हुए नहीं हैं। तुम जिसका सहारा लोगे उसके प्रभाव से न बच सकोगे, उसके गुण-दोष तुम्हारे भीतर प्रवेश करने लगेंगे और तुम उसके मन की वासनाओं के आधीन हो जाओगे। स्त्री का सहारा लेने से घर के झँझटों में फंसोगे, उसकी वासनाओं एवं इच्छाओं के चक्कर में फँस जाओगे। बादशाह का सहारा लेने पर देश की रक्षा और उससे सम्बन्धित अनेक झँझटों में फँस जाओगे। वे सब तुम्हें घेरेंगे। बुद्धि का सहारा लेने पर अनेक तर्क-वितर्को में फँसोगे। धर्म का सहारा लेने पर अनेक निन्दाओं और स्तुतियों में फँसोगे। किसी सांसारिक वस्तु का सहारा सँसार की अनेक वासनाओं और उसके विचारों को पैदा करने वाला सिद्ध होगा। चाहे कोई भी सहारा लो, जिनका स्वयं तुमने अपने प्रश्न में कथन किया है, अनेकताओं के विचारों और इच्छाओं के वशीभूत हो जाओगे। उनसे नहीं बच सकते। इसलिए गुरु का ही सहारा उच्च, वरन उच्चतम, सुखद एवं आनन्दप्रद होगा। इससे अनेकता का भ्रम दूर होता है, लौकिक और पारलौकिक इच्छाओं से छुटकारा मिलता है। दूसरों से ऐसी आशा करना धोखा है।"

प्रश्न - "इसमें भी भेद है, कृपया उसे भी साफ़ कर दीजिये।"

उत्तर - " तुम्हारा विचार ठीक है। गुरु वह है जिसने अपनी सारी इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर ली है। उसका ध्यान इन्द्रियों और सारे काल्पनिक विचारों से नाता तोड़ कर, उस सत्पुरुष के चरणों में निरन्तर लगा रहता है। गुरु में एक-भाव होता है, अर्थात उसकी आन्तरिक दृष्टि सदा सच्चे मालिक परमेश्वर के चरणों में लगी रहती है। इसलिए उसका सहारा लेने से धीरे-धीरे स्वयं उस एक-भाव (वहदानियत) का प्रभाव शिष्य में पैदा हो जायगा। यह गूढ़ बात है। जिसके अन्दर जो इच्छायें और वासनाएँ होती हैं, संगति के प्रभाव

से वही आदतें, स्वभाव और विचार उसके निकट बैठने वालों में पैदा हो जाते हैं। हिम के निकट बैठने से शीतलता और अग्नि के निकट बैठने से ऊष्णता का अनुभव होता है, यह सभी जानते हैं।

प्रश्न - "प्रभु, ऐसा प्रतीत होता है की इसके भीतर भी कोई और रहस्य छिपा हुआ है। कृपा करके उसे भी समझा दीजिये जिससे मेरे मन में एक भी शंका शेष न रहे। यह सेवक आपके सत्संग में आता है तो प्रत्यक्ष सत्संग का प्रभाव अनुभव करता है, किन्तु वह प्रभाव स्थायी नहीं रहने पाता। सदा स्थिर नहीं रहता। हिम और अग्नि का प्रभाव केवल उस समय तक रहता है जब तक उसकी निकटता रहती है। क्या यह सम्भव नहीं कि गुरु के सत्संग का प्रभाव भी उसी प्रकार थोड़े से समय के लिए ही होता हो ?"

उत्तर - " वत्स, तुम्हें बाल कि खाल निकालने की आदत पड़ गयी है, इसलिए मेरे प्रत्येक उत्तर में कोई न कोई रहस्य पाते हो। रहस्य से रहित कोई भी नुक़ता (विषय,पॉइंट) नहीं है। प्रत्येक विषय स्वयं एक रहस्य है। सारा संसार स्वयं एक रहस्य है। प्रभाव क्षणिक और अस्थायी होता है, यह ठीक है. किन्तु गुरु की संगति के प्रभाव में एक और असर है जिसका संकेत पहले भी कई बार किया जा चुका है किन्तु तुमने ध्यान नहीं दिया। ध्यान पूर्वक सुनो। गुरु की संगति के प्रभाव से शिष्य में जज़्ब (ग्रहण) करने की योग्यता आ जाती है और उसमें अपने अन्दर घुसने की आदत पड़ जाती है। जितना वह अपने अन्तर में घुसता जायगा, आनन्द, ज्ञान और प्रेम का अनुभव करता जायगा। और जितना अन्तर में ठहराव होता जायगा उतना ही वह आनन्द, ज्ञान एवं प्रेम स्थायी होते जायेंगे। इसके साथ-साथ जितनी अधिक चाल अन्तर में चलेगा उतने ही यह आनन्द आदिक बढ़ते चले जायेंगे। इसी के प्रभाव से वह एक दिन सत्तपुरुष, जो स्वयं उसके अन्दर हैं, के दर्शन करके कृतार्थ हो जायगा और उसकी हार्दिक मनोकामना पूर्ण हो जायेगी। तुम इस प्रकार के सत्संग के प्रभाव को अस्थायी नहीं कह सकते बल्कि यह वह स्थिति है जो अवर्णनीय है, यह गूंगे का गुड़ है।"

शिष्य - शिष्य आनन्द से उछल पड़ा और प्रेम पूर्वक निवेदन करने लगा - "प्रभु, मैं ख़ूब अच्छी तरह समझ गया। यद्यपि यहाँ भी प्रभु ने कोई न कोई भेद छिपा रखा है। किन्तु अब

मैं समझ गया और अधिक प्रश्न न करूँगा। आप धन्य हैं और मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ कि आप जैसे महापुरुष के दर्शन हुए और श्री-चरणों का सत्संग प्राप्त हुआ। यदि मैं अपने देश से आकर प्रभु के दर्शन नहीं करता तो मेरे अन्तर के विकार, संशय और भ्रम कैसे दूर होते।"

गुरुदेव - " रहस्य का रखना प्रकृति का एक विशेष गुण है। उसका स्वभाव है। संसार का प्रत्येक व्यवहार रहस्य से भरा होताहै। रहस्य का परदा उठाना प्रत्येक के लिए मन्जूर नहीं है। परदा केवल व्यक्ति विशेष के लिए उठाया जाता है। परन्तु जिनके लिए उठाया जाता है वे मजबूरन स्वयं परदेदार बने रहते हैं अर्थात रहस्य को गूढ़ रखने की कला में दोष नहीं आने देते। पुरुष स्त्री के सामने नग्न हो जाता है। स्त्री पुरुष के लिए अपना परदा उठा देती है। पुरुष स्त्री का और स्त्री पुरुष की फिर भी परदादार बनी रहती है। यह सिद्धान्त है। अपने पुत्र से माँ परदा नहीं करती। अपने शरीर के अंग उसके लिए खोल देती है, फिर भी पुत्र अपनी माँ का परदादार बना ही रहता है। इसी तरह परदे की बात हर जगह परदे में ही की जाती है। यहाँ पग -पग पर परदा रहता है। आत्मा शरीर के अन्दर परदों में छिपी रहती है। यह परदे केवल आत्मा के पुजारियों के लिए ही उठाये या फाड़े जाते हैं। आत्मा का ज्ञानी उसकी दशा का वर्णन दूसरों पर नहीं कर सकता, और यदि चाहे भी तो उसका वर्णन नहीं हो सकता, न कोई उसका वर्णन कर सकता है और न कोई उस स्थिति पर पहुँचे बिना समझ ही सकता है।

ज़ुबाँ जब नहीं फिर कहेंगे वो क्या।

न ये राज़दाँ देंगे उसका पता।

किसी के यहाँ आँख मीची हुई।

किसी दिल की ताक़त से खींची हुई।

संसार में ऐसे अनेक महान एवं आश्चर्य से चकित कर देने वाले व्यक्ति हैं जो प्रत्यक्ष में एकदम छोटे और निपट अज्ञानी मालूम देते हैं किन्तु वास्तव में वे पूर्ण ज्ञानी होते हैं और

निरन्तर शाश्वत आनन्द का पान करते रहते हैं। वे अपने आप को छिपा कर रखते हैं और भीतर ही भीतर ईश्वर प्रेम में निमग्न रहते हैं। इसके साथ ही साथ दूसरे ओर यहाँ पर बहुत से अत्यंत विद्वान भी आध्यात्म विद्या में नादान, अनपढ़ और अज्ञानी प्रतीत होते हैं। यहाँ कोई बात निश्चित नहीं है।

आरिफ़ों को भी नहीं इसका पता।

है ताज्जुब, भाड़ से किसने कहा।

अगर कान रखते हो तो सुनते चलो। यदि आँखें हैं तो देखते चलो। यदि आश्चर्य करते हो तो विस्मय करते चलो और जिव्हा, आँख तथा कानों को बन्द रखो । परमात्मा सर्वशक्तिमान हैं अर्थात उसमें सारी शक्तियाँ वर्तमान हैं। जिससे चाहे शक्ति देकर अपना काम करा ले। वह अनन्त और असीम है। सारी प्रशँसा और गुणगान उस एक परमात्मा के लिए है। वही आलिम, हक़ीम, शबीर और वसीर है, अर्थात वही पूर्ण विद्वान, पूर्ण बुद्धिमान तथा सर्वत्रव्याप्त है। यह आध्यात्मविद्या का ज्ञान है। इस सागर का न वार है न पार। किसी ने आज तक पूर्ण रूप से उसे नहीं जान पाया। यह आदमी की शक्ति से परे है। केवल अधिकार बढ़ाते जाओ, मन को शुद्ध और पवित्र बनाते चलो जिससे आसानी से काम बनता चले। काम से काम रखो और बस। ज्यादा बातचीत बेमतलब और बेकार है।

आज तुमने गुरु-पूजा का भेद समझ लिया। इसमें शक नहीं कि गुरु-पूजा एक मूर्ति-पूजा है जिसकी नींव स्वयं ख़ुदा या भगवन ने रखी है। उसी ने मिट्टी के पुतले 'आदम' को बनाकर फ़रिश्तों और उनके उस्ताद इज़राईल से कहा कि इसकी पूजा करो। वहाँ से बुत-परस्ती अथवा मूर्ति-पूजा का श्रीगणेश हुआ। जो व्यक्ति पूरे गुरु की शरण ग्रहण नहीं करता वह कभी भी परमात्मा का पुजारी नहीं बन सकता। उक्त पुरातन कथा में मूर्ति-पूजा की ओर संकेत है। "गुरु" ही "आदम" है। वह पूर्ण-ज्ञानी पुरुष है। आदम परस्ती अथवा गुरु पूजा प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव होना चाहिए, तब वह सच्चाई तथा वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। इसके बिना उस सत्तपुरुष तक पहुँचना कठिन है।

बिना गुरु धारण किये और बिना उसकी आज्ञा पालन किये अर्थात उसके बताये अभ्यास के बिना अन्तर का रास्ता नहीं खुलेगा और आत्मा और परमात्मा के दर्शन नहीं होंगे। इसी कारण सब महापुरुषों ने गुरु-पूजन और गुरु-भक्ति पर बल दिया है। गुरु पूर्ण ज्ञानी का नाम है जो सब तरह से पूर्ण हो। पूर्ण ज्ञानी के प्रकट गुण यह हैं :-

उसका शरीर सही एवं शुद्ध हो। उसकी भक्ति शुद्ध हो, उसका चरित्र शुद्ध हो। उसके होश, उसकी बुद्धि शुद्ध हो। ललाट उभरा हुआ और चौड़ा हो। उसकी आँखों में आकर्षित कर लेने वाली चमक हो, नूरानी हों। छोटे और तंग माथे का न हो। आँखों की बनावट ठीक हो, उनमें दोष न हो। यह प्रकट पहिचानें हैं। भीतरी पहिचान आन्तरिक लक्षणों से होती है। एक बीच की है जो बाहरी और भीतरी दोनों हालतों पर प्रकाश डालती है। यह मध्य की वस्तु "वाणी " है जो देहरी के दीपक की भाँति भीतर और बाहर का हाल दिखाती है। जिसका अन्दर अच्छा होगा, उसका बाहर भी अच्छा होगा। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि बाहर के अच्छे होने पर अन्दर भी अच्छा हो। दुनियाँ धोखे की जगह है। यहाँ भेष बदलकर लोग दूसरों को ठगा करते हैं। इसलिए गुरु की वाणी की ओर ध्यान देना आवश्यक है। यदि उसकी स्थिति ऊँची है तो ऊँचे स्थान की बात बातचीत करेगा ओर सुनने वालों पर उसका प्रभाव अवश्य होगा क्योंकि उसने इस बात की कमाई कर रखी है। दूसरी पहिचान यह है कि बातचीत करते समय सुनने वालों के दिल का झुकाव आत्मा की तरफ़ होगा। गूढ़ समस्याओं के समझाते समय श्रोतागण उन्हें समझ जायेंगे जो उसकी अनुपस्थिति में सम्भवतः समझ में न आयें।

तीसरी पहिचान यह है कि शिष्य जब ध्यानावस्था में होता है अथवा सो रहा है तो गुरु उसकी शंकायें दूर करता है और उसके प्रश्नों के उत्तर देता है जिससे श्रद्धा और विश्वास बढ़ते हैं। चौथी पहिचान यह है कि उसके पास बैठने से और उसके सत्संग में जाने से शान्ति मिलती है। साँसारिक विचार कम उठते हैं और परमात्म विषयक विचार आते रहते हैं। वार्तालाप करने में ही गुरु प्रश्नों के उत्तर दे देते हैं।

इन सब बातों से उनकी (गुरु की) स्थिति का अनुमान हो सकता है। इससे अधिक परख करना साधारण मनुष्य की शक्ति से परे है। किसी कवि ने कहा है -

क़ल्बे आरिफ़ लामकाँ है बेगुमा।

फ़ाँकोपस्ती का नहीं उसमें निशाँ॥

ज़र्रा गर चाहे कि नापे कोह को।

अक़्ल दानिश अपनी वह डालेगा खो॥

मर्दे आरिफ़ का हो क्योंकर इम्तिहाँ।

अक़्ल है लाचार उसमें बेगुमाँ॥

(भावार्थ - गुरु का हृदय लामकाँ है, उसकी कोई हद नहीं है। उसकी ऊँचाई और नीचाई का कोई चिन्ह नहीं है। यदि एक कण चाहे कि वह पर्वत को नापे तो वह अपनी बुद्धि खो बैठेगा भक्तों की पहिचान करना बहुत कठिन है। बुद्धि की वहाँ पहुँच नहीं है।")

राम सदेश : दिसंबर,1993.

ज़िन्दगी में रूहानियत लाओ - (जीवन में आध्यत्मिकता लाओ)

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

सभी जीव जन्तुओं की दुहरी ज़िन्दगी है. दुनियावी ज़िन्दगी ऊपरी है और रूहानी ज़िन्दगी नीचे दबी हुई है. भौतिक जीवन अस्थाई है और नकली है. असली ज़िन्दगी तो रूहानी है जो हमेशा रहने वाली है. दुनियाँ ने उसे ढक रखा है. जब तक दुनियाँ का तजुर्बा न होगा, यहाँ की वस्तुओं और सुख की नाशवानता का पता नहीं लग जाएगा, तब तक रूहानी ज़िन्दगी की तरफ नहीं मुड़ेगा. अँधेरे से उजाले में कैसे आएगा. बुराई छोड़ कर भलाई की तरफ कैसे बढ़ेगा ?

हमारी आत्मा जो दयाल देश से निकाली गयी और इस कालदेश यानी इस दुनियाँ में भेजी गयी उसकी वजह यही थी कि हमारे अन्दर ख्वाहिशात (कामनायें-वासनायें) भरी पड़ी थी. इसलिए परमात्मा ने दया करके हमें यहाँ भेजा. जब पैदा हुए और आँख खुली तो सबसे पहले माँ-बाप को देखा, भाई -बहिनों को देखा, फिर दुनियाँ की और चीज़ों को देखा और उनसे मोह हो गया. आये थे निकलने लेकिन उल्टे उलझने लगे.

दुनियाँ के सब काम करते-करते जीव सब बातों का कर्ता अपने आप को समझने लगता है लेकिन जब उसे होश आता है और दुनियाँ की बातों का तजुर्बा होता है तब वह देखता है कि जितने काम मैं कर रहा हूँ वह रहने वाले नहीं है. उनसे हासिल ख़ुशी रहती नहीं है, जाती रहती है. शादी ब्याह किया तो ख़ुशी मिली, लेकिन शादी के बाद जब बाल-बच्चेदारी और गृहस्थी की दुःख-मुसीबतें सामने आती हैं तो वह ख़ुशी जाती रहती है. संतान पैदा हुई तो ख़ुशी हुई लेकिन उसके मर जाने या अलहदा हो जाने पर क्या वही ख़ुशी क़ायम रहेगी ? रुपया पैदा करते हैं और उसे जोड़-जोड़ कर खुश होते हैं, क्या वह क़ायम रहेगा? अलहदा तो ज़रूर होगा. बड़े-बड़े सेठ-साहूकार एक दिन में दिवालिया हो जाते हैं, बड़े-बड़े राजे-महाराजे खाने के मोहताज दिखाई देते हैं. कहाँ गयी वह ख़ुशी ?

हम यहाँ आये हैं दुनिया का तजुर्बा करने के लिए. इसलिए यह ज़रूरी है कि जितना आवश्यक हो उतना उसमें घुसो यानी ज़रुरत के मुताबिक उसमें व्यवहार करो, लेकिन उसे अपना लक्ष्य मत बनाओ. अगर उसी को सब कुछ समझ रखा है तो ईश्वर के दरबार में कैसे घुसोगे ? लोग कहते हैं कि तरक़्क़ी नहीं होती. फँसे हुए हैं दुनियाँ में, एक दो दिन को शौंकिया सत्संग में आये तो आ गए, घर पर भी कभी संध्या-पूजा कर ली तो कर ली नहीं तो दुनियाँ के धंधों में ही लगे रहे. मकान बनवाने क़ी ख़्वाहिश हुई तो उसको बनाने के लिए रुपए के इन्तज़ाम की फ़िक्र हुई, क़र्ज़ लिया या और कहीं से इन्तज़ाम किया. जब मकान बन कर तैयार हो गया और कर्ज़ा भी अदा हो गया तो तो यह फ़िक्र हो गयी कि कोई किरायेदार नहीं मिलता. जब किरायेदार मिल गया, माल इकट्ठा होने लगा तो चोर-डाकू आने लगे , रखवाली की फ़िक्र बढ़ गयी.

क्या ज़िन्दगी भर यही करते रहोगे? ईश्वर का ध्यान कब करोगे? किसी को देखो तो वो बेटों की शिकायत करता है कि वे कहना नहीं मानते. यह तो दुनियाँ का कायदा है. बेटा अपना घर देखें या तुम्हारा? इसमें शिकायत काहे की.? बहुएँ आती हैं अपना घर छोड़कर. बेटा बहू की नहीं सुनेगा तो क्या तुम्हारी सुनेगा ? सासें शिकायत करती हैं कि जब से बहू आई है तब से बेटा हमारी बात नहीं सुनत . उनसे कोई पूछे क्या तुमने अपने बेटे को परमेश्वर समझ रखा है कि वही तुम्हारा पालन-पोषण करेगा ? क्या तुम उससे पहले भूखे मरते थे या उसके बाद भूखे मरोगे ? तुमने अपना फ़र्ज़ पूरा कर दिया. अब यह तुम्हारे बेटे की ज़िम्मेदारी है कि वह अपना फ़र्ज़ पूरी तरह अदा करता है या नहीं. अगर वो अपना फ़र्ज़ अदा नहीं करता तो इसमें दुखी होने की क्या बात है? अगर लड़कों के झंझट में पड़े रहोगे तो ईश्वर की तरफ ध्यान कैसे लगेगा ?

जो चीज़ हमें ईश्वर से दूर करती है, हमें चाहिए कि उसे छोड़ते चलें और जो चीज़ हमें ईश्वर के नज़दीक लाती है, उसे अपनाते चलें. लेकिन हम ऐसा कर नहीं पाते. बात क्या है ? अभी अधिकार पैदा नहीं हुआ है. संस्कार तो बना और मनुष्य जन्म भी मिल गया लेकिन अगर अधिकार भी बनता तो गुरु की ओट लेते जिससे मन से पिण्ड छूट जाता. लेकिन जो

मन को ही अपना साथी समझते हैं और ईश्वर को नहीं चाहते और मन के कहने पर ही चलते हैं,उन पर मन हर समय हावी रहता है.

आम शिकायत है कि मन नहीं मानता. तुम्हें अपनी तो अपनी,अपने रिश्तेदारों तक की फ़िकर पड़ी है. उनकी उलझनों की भी ज़िम्मेदारी तुमने अपने ऊपर ले रखी है. कहते हैं कि फ़लां (अमुक) ने ये बुराई की और फ़लां इस तरह ख़राब है. तुम क्या इसी काम के लिए यहाँ आये थे और क्या यह काम तुम्हारे ही सुपुर्द है ? ईश्वर तमाम दुनिया का मालिक है. तुम अपने आप को मालिक समझते हो. तुम ईश्वर का मुक़ाबला करते हो और हो कुछ नहीं. फिर कहते हो कि मन नहीं लगता.

फँसे तो तुम ख़ुद हो, गुरु तुम्हें कैसे हटाये ? जब तुम ख़ुद निकलना चाहोगे, तब गुरु तुम्हारी मदद करेगा. मदद उनके लिए है जो निकलना चाहते हैं और उसके लिए कोशिश करते हैं मगर निकल नहीं पाते. चाहते हो कि तुम्हारे दुनियाँ के सब काम पूरे होते रहें और तुम्हें दीन भी मिल जाए. यह नहीं हो सकता. एक गुरु नहीं, अगर सारे गुरु भी ज़ोर लगायें, तो भी जब तक तुम ख़ुद नहीं निकलना चाहोगे तब तक कोई मदद नहीं कर सकता.

सन्त तो दुनियाँ उजाड़ने आते हैं, आग लगाने आते है . आग लगाने का मतलब यह है कि दुनियाँ में कर्म करते हुए उसमें फँसो मत, उसे मुख्य मत समझो, मन को और अपने आपको भी दुनियाँ से निकालो.

ख़ुदी (अहं) क्या है ? ख़ुदी यह है कि मन चाहता है कि मैं जिसको चाहूँ उसको अपनी मर्ज़ी से चलाऊ . धरम पर चलने के बाद भी कोई-कोई दुखी रहता है. ऐसा क्यों है ? ऐसा इसलिए है कि ख़ुदी बीच में है. चाहते हैं कि जैसा मैं कर रहा हूँ वैसा ही सब करें. जब तक दुनियाँ तुम्हारे सामने है और तुमने उसी को मुख्य समझ रखा है, तब तक ईश्वर तो मिलता नहीं. इसलिए पहले अपनी सहायता आप करो. तुम ख़ुद फँसे हो. मन की ज़ंजीरों में तुम ख़ुद जकड़े हो, अगर तुम उन्हें काटना पसन्द करोगे तब गुरु तुम्हारी मदद करेगा. जब तक उसमें फँसे रहोगे उसमें और फँसते जाओगे तो दूसरा यानी गुरु तुम्हारी क्या मदद करेगा ?

हम ख़ुदा ख़्वाही व दुनियाँ ए दूँ

ई ख्यालस्तो मुहालस्तो जिनूं

(भावार्थः चाहते हो कि दुनियाँ भी मिल जाये और ईश्वर भी मिल जाये, ऐसा ख्याल करना पागलपन नहीं तो और क्या है)

राम संदेश : मार्च , 1968 .

दीनता परमार्थ में अनिवार्य है तथा अहंकार बाधक

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ .श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

प्रत्येक मनुष्य की अपनी प्रथक स्थिति होती है. राजसिक वृत्ति के मनुष्य कभी तामसिक वृत्ति की ओर जाते हैं, कभी सात्विक वृत्ति कीओ . कहने का भाव यह है कि मनुष्य के अन्तर में निरन्तर घटाव - बढ़ाव होता ही रहता है. इससे घबराना नहीं चाहिये. प्रयत्न यही होना चाहिये कि साधक जहाँ खड़ा है, उससे नीचे न गिरे, आगे की ओर बढ़ता जाये. तामसिक वृत्ति से राजसिक वृत्ति की ओर, और इससे आगे सात्त्विक वृत्ति की और चलता जाये. साधक जब नीचे की ओर जाता है तो घबरा जाता है. घबराना नहीं चाहिये. यह तो स्वाभाविक प्रवत्ति है, संस्कारों के कारण मन इधर - उधर भागता है. कभी साधक आकाश में उड़ता है, कभी उसे अपने पैर की पीठ भी नहीं दीखती. मन एक क्षण में क़ाबू में नहीं आ सकता . प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्थिति समझनी चाहिये तथा अपने इष्टदेव का आश्रय लेकर आगे की ओर प्रगति करते रहना चाहिये. ऐसा करने से अन्तर में शान्ति रहेगी, नहीं तो मन सर्वदा अकारण ही चंचल तथा दुःखित रहेगा. संत कौन है ? जिस महापुरुष ने अपनी स्थिति को खोकर ईश्वर से एकता प्राप्त कर ली है तथा उस अवस्था में जो निरन्तर एकरस रहता है वह संत है. उसकी दृष्टि भेदरहित होती है. वह अपने में, ईश्वर में तथा औरों में कोई अन्तर नहीं देखता. उसे सदैव ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ अनुभव नहीं होता.

समय पाकर सभी महापुरुषों के सत्संग से लाभ अवश्य होता है, परन्तु ऐसे भी संत होते हैं, तथा हैं, जिनकी क्षण भर की दृष्टि से साधक के आचरण में युगपरिवर्तन आ जाता है. इतिहास बताता है कि जिन मनुष्यों के विषय में कभी यह अनुमान भी नहीं किया जा सकता था कि उनका कभी सुधार होगा वे संतों के क्षण भर के दर्शनों से भवसागर पार हो गये. संत ज्ञानेश्वर जी ने भैंसों से वेदमंत्रों का शुद्ध उच्चारण करवाया. गुरु हरकिशनदेव जी ने अपने अशिक्षित बाबर्ची से प्रसिद्ध पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित करवाया. अनेकों ऐसे और

उदाहरण हैं. संत चाहें तो अपनी पृथक श्रष्टि बना सकते हैं, परन्तु वे दीनता के स्वरूप होते हैं . प्रभु की मौज को अपनी प्रसनन्ता समझते हैं.

दीनता परमार्थ में अनिवार्य है तथा अहंकार बाधक है . जहाँ दीनता नहीं है वहाँ परमार्थ की उन्नति नहीं हो सकती इसलिए साधक को चाहिये कि वह निरन्तर अपने अन्तर को टटोलता रहे कि वह अभिमान की ओर तो नहीं जा रहा है. अपने अहं को सत्संग, विवेक, वैराग्य तथा अभ्यास द्वारा समाप्त कर देना चाहिये. ' मैं ' और 'मेरेपन ' को ख़त्म करना चाहिये.

वास्तव में ईश्वर की मौज़ में निरन्तर प्रसन्न रहना ही दीनता है. दीन पुरुष अपना कुछ भी नहीं समझता. वह सब कुछ ईश्वर का ही समझता है. इसलिए यदि कुछ प्राप्ति होती है तो उसे हर्ष नहीं होता, वह उसका गर्व नहीं करता. यदि कुछ हानि होती है तो वह अप्रसन्न नहीं होता . वह तो एकरस रहता है. वह सब कुछ ईश्वर का ही समझता है. "कबीर मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर, तेरा तुझ को सौंपते क्या लागे है मोर " कबीर साहब अपने आप को कुत्ता कहते हैं. ईश्वर ने उनके गले में रस्सी डाली हुई है, जैसा वह (ईश्वर) खींचता है वैसे ही वह खिंच जाते हैं . "कबीरा कूकर राम की, मुतिया मेरो नांव, गले हमारी जेवरी, जें खींचें तैं जाँव"

परमार्थ का मुख्य ध्येय है कि मनुष्य अपने आप को ईश्वर के चरणों में पूर्णतयः समर्पण कर दे. यह समर्पण मन से होना चाहिये. कथनी तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये. प्रभु की रहस्यमय लीला में सदा प्रसन्न रहना चाहिये, उसमें दोष नहीं देखना चाहिये. वह जो करता है हमारे हित के लिए ही होता है.

अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय

सत्संगियों व अभ्यासियों के लिए कुछ आवश्यक बातें

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

(1) प्रेमी अभ्यासियों को भी कुछ बातें सन्तों ने आवश्यक बताई हैं। अभ्यास के समय उनको चाहे गुरु-स्वरुप का प्रत्यक्ष दर्शन हो या न हो, उन्हें चाहिए कि अपनी सुरत को सतगुरु के स्वरुप (शब्द, प्रकाश, गुरु स्वरुप जैसा जिसे बताया हो) पर जमाना चाहिए और यदि उनके मन में उस स्वरूप के प्रति थोड़ा बहुत भी प्रेम है तो यह उनसे सुगमता से हो सकेगा। दूसरे शब्दों में यों समझ लेना चाहिए कि उस स्वरूप के आसरे उनके मन और सुरत किसी क़दर ऊँचे स्थानों पर ठहरने लगेंगे और उस स्थान का थोड़ा बहुत रस भी उन्हें प्राप्त होगा। जैसे-जैसे ऊँचे स्थानों पर ठहराव बढ़ता जायेगा वैसे-वैसे वहाँ का रस और आनन्द भी बढ़ता जायेगा।

(2) कोई-कोई अभ्यासी यह चाहते हैं कि पहले हमको अंतर में दर्शन मिलें तब हम ध्यान करें। उनकी यह चाह अनुचित तो नहीं है परन्तु इससे यह मालूम होता है कि उनमें जैसा चाव होना चाहिए वैसा नहीं है और विरह की कमी है। प्रभु की ऐसी मौज़ मालूम नहीं होती कि हर किसी को उसकी इच्छानुसार जब चाहे तब उसको गुरु रूप के दर्शन हों। इसलिए सभी अभ्यासियों के लिए यह उचित है कि पहले चाव को बढ़ायें और उसी चाव के अनुसार स्वरूप का अनुमान करके अभ्यास करें। दर्शनों की प्राप्ति मालिक की मौज़ पर छोड़ दें। संत सद्गुरु अत्यन्त दयालु होते हैं। जब-जब और जैसे-जैसे, जिस-जिस के लिए मुनासिब होगा समय-समय पर, किसी को ज़ल्दी-ज़ल्दी और किसी-किसी को कभी-कभी स्वरूप के दर्शन देते रहेंगे।

इसमें कोई संशय नहीं कि प्रतिदिन और हर समय जब मन चाहे तब दर्शन मिलने से अभ्यास में आसानी तो होती है और प्रेम भी जल्दी-जल्दी बढ़ता है, परन्तु यह स्थिति थोड़े ही दिन रह सकती है। उसके बाद गुप्त होने लगती है। इसका कारण यह है कि रास्ता बहुत

लम्बा है जिसे काटने के लिए विरह, बेकली और शौक की बड़ी आवश्यकता होती है। यदि दर्शन हर वक्त मिलते रहें तो विरह, बेकली और घबराहट पैदा नहीं होवे।

(3) आन्तरिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि सुरत पर मैल न चढ़ने पाये, उसका दिन-रात निखार होता चले और वह अपने प्रीतम परमात्मा की राह में तेज़ी से बढ़ती चली जाय। इसके लिए ज़रूरी यह है कि सतगुरु का सत्संग ज़ल्दी-ज़ल्दी मिलता रहे. यदि सतगुरु दूर हों, ज़ल्दी-ज़ल्दी उनके पास न जा सकें, या उनने शरीर छोड़ दिया हो या अन्य किसी कारण से उनका सत्संग ज़ल्दी न मिल सके तो जो कोई प्रेमी सत्संगी उनसे मिला हुआ हो, साधना कर रहा हो और उनका मंजूरे-नज़र हो, अर्थात उस पर उनकी विशेष कृपा और प्यार हो, उसके संग से भी परमपिता परमेश्वर अभ्यासी की सुरत को अपने श्री चरणों में लगावेंगे, अंतर व बाहर का परिचय देकर उसकी प्रीति और प्रतीति बढ़ायेंगे जिनसे उसे इस बात का दृढ़ विश्वास हो जायेगा कि मालिक ने उसे अपनाया है और दिन प्रतिदिन उसकी सुरत का निखार करते जा रहे हैं। ऐसी दशा में उसके लिए यह और भी हितकर होगा कि उस प्रेमी सत्संगी का संग करता । जो आप चल रहा है, वह दूसरों को चलाता जावेगा और एक दिन दोनों रास्ता तय करके मालिक के धाम में पहुँच जायेंगे।

अभ्यासी को, विशेषकर उस अभ्यासी को जो चाहता है कि उसकी सुरत को एकदम ऊपर चढ़ा दिया जाय, यह जान लेना आवश्यक है कि सुरत की धार से यह सारा पिण्ड शरीर चैतन्य है। जैसे-जैसे सुरत की धार इस पिण्ड शरीर में से सिमट-सिमट ऊपर को चढ़ेगी वैसे ही वैसे यह शरीर उससे ख़ाली होता जायगा। दूसरे शब्दों में यों समझ लीजिये कि जिस सुरत की धार से यह पिण्ड शरीर संचालित है उस धार के ऊपर खिंच जाने से इसके संचालन पर प्रभाव पड़ेगा। यदि सुरत एकदम ऊपर खिंच जायेगी तो यह कभी शरीर को सहन नहीं होगा और बहुत कुछ सम्भव है कि कुछ शारीरिक नुक़सान हो जाय या शरीर ही छूट जाय। किन्तु यदि धीरे-धीरे सुरत का चढ़ाव ऊपर को होगा तो उससे शरीर का कुछ हर्ज़ नहीं होगा।

(५) अधिकतर लोग मन के स्थान पर हैं और उनकी सुरत मन में फँसी हुई है। यदि मन शुद्ध नहीं हो पाया है, वह अभी सात्विकी नहीं हो पाया है (यानी तम से रज और रज से सत पर नहीं आ पाया है) तो वह सुरत के साथ चढ़ाई नहीं कर सकेगा। इसको यों समझ लीजिये कि जब तक अभ्यासी का आचरण (इख़लाक़) दुरुस्त नहीं हुआ है तब तक उसके मन की गढ़त नहीं हुई है, वह सात्विकी नहीं हुआ है, ऐसी सूरत में सुरत को एकदम ऊपर चढ़ाने से नुकसान हो जायगा। यदि सुरत को एकदम ऊपर चढ़ा दिया जाय और सतगुरु अपनी कृपा ऐसी भी मेहर करें कि शारीरिक नुकसान भी न हो तो भी यह बात अभ्यासी के हित में नहीं है। ऐसे अभ्यासी का मन एकाँगी यानी एक-तरफ़ा हो जायगा। उसका मन दुनियाँ के कारोबार में नहीं लगेगा। परमार्थ भी दुरुस्ती से नहीं बनेगा, एक प्रकार की बेहोशी की सी हालत हो जायेगी और आगे का रास्ता बन्द हो जायगा। फिर वह मनुष्य न स्वार्थ का रहेगा न परमार्थ का। न दुनियाँ भोगी और न परमार्थ बना। किसी ने कहा है - ' न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधर के रहे न उधर के रहे '।

(६) इसलिए सन्तमत में इस बात पर बल दिया जाता है कि दुनियाँ की चीज़ों को धर्मशास्त्र के अनुसार भोग कर, उनसे उपराम होकर, उन्हें छोड़ते चलो। इससे दुनियाँ भी निभ जायगी और दीन भी बनता चलेगा। जिस चाल में दीन और दुनियाँ दोनों का ही नुक़सान हो, ऐसी चाल सन्तजन नहीं चलाते। वे अभ्यासी को धीरे-धीरे चलाकर धुर मन्जिल पर पहुँचा देते हैं न कि रास्ते में अटकाकर छोड़ देते हैं। अतः अभ्यासियों और सत्संगियों को चाहिये कि ऐसी जल्दी न करें जिसमें उनका काम बिगड़े। जैसे -जैसे सन्त सतगुरु कभी-कभी रस और आनन्द तथा कभी-कभी विरह और बेकली देकर चलावें उसी तरह चलता जाय। अभ्यासी की अपेक्षा सतगुरु ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं कि अभ्यासी की भलाई किस में है। वो जो उचित और हितकर समझेंगे सो ही करेंगे। इसीलिए सूफ़ी सन्तों ने कहा है कि अभ्यासी को मुरीद बन जाना चाहिये। मुरीद का अर्थ है - मुर्दा। जैसे मुर्दा ज़िन्दे के हाथ में होता है, उसी तरह अभ्यासी को चाहिये कि अपने आपको सतगुरु के प्रति पूर्ण समर्पण कर दे। इसका मतलब यह नहीं कि उनसेअपनी हालत भी न कहे। जब-जब

उचित हो तब-तब अपनी उन्नति के लिए सतगुरु से निवेदन कर दे, परन्तु निराश होकर अभ्यास में सुस्ती और ढ़ील न आने दे, सतगुरु और परमपिता परमेश्वर के प्रति अपने प्रेम को रूखा-फ़ीका न होने दे। सतगुरु की संगति से उस प्रेम का तीख़ापन तेज़ करता जाय। यही प्रेम तो वह बूटी है जिसे पिये बिना पूर्ण समर्पण सम्भव नहीं, जिसके बिना मुरीद (मुर्दा) नहीं बनता।

(6) मनुष्य का मन जन्म-जन्मान्तर से अपनी असल मातृ भूमि को भूला हुआ है और इस पिण्ड देश की माया और उसके पदार्थों में लिपट कर उलटी चाल चल रहा है, यानी बजाय ऊपर को चलने के नीचे की तरफ़ चल रहा है। इसकी गढ़त और सफ़ाई होनी चाहिये। जब तक सफ़ाई नहीं होती यानी जब तक यह तम से हट कर रज पर और रज से हटकर सत पर नहीं आ जाता, तब तक गुरुजन अभ्यासी के आन्तरिक चक्षु नहीं खोलते। उसकी सुरत को सामान्य रूप से चढ़ने में सहायता अवश्य करते रहते हैं। जैसे-जैसे मन की सफ़ाई होती जाती है और सुरत ऊपर चढ़ने लगती है, वैसे-वैसे रास्ता साफ़ होता जाता है। जब मन की पूरी तरह सफ़ाई और गढ़त हो जाती है, अभ्यासी को ऊँचे चक्रों के आनन्द को सहन करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है, तब सतगुरु दया करके अंशतः आन्तरिक चक्षु खोलते हैं और शक्ति प्रदान करते हैं कि उन चक्षुओं से अन्दर का जलवा देखे और उसे देखकर श्रष्टि-कर्ता सर्वाधार मालिक के प्रति प्रेम बढ़े। जिस समय भगवान कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि देकर उसके आन्तरिक चक्षु खोले और उसे विराट रूप के दर्शन कराये, वे दर्शन उससे बर्दाश्त (सहन) नहीं हुए और उसने भगवान से प्रार्थना की कि उसे पुनः पूर्व स्थिति में कर दें। बात यह थी कि अर्जुन के मन की गढ़त और सफ़ाई नहीं हुई थी, इसीलिए उसे वे दर्शन सहन नहीं हुए। वह अपने भ्रमों और शंकाओं का निवारण कर रहा था और भगवान उसे उपदेश दे रहे थे। किन्तु अभी मन साफ़ और शुद्ध नहीं हो पाया था। उसके अत्यन्त आग्रह करने पर भगवान ने उस पर यह कृपा की थी। इसी प्रकार सतगुरु तो अपनी ओर से चाहते हैं कि शिष्य को सब कुछ दे दें, किन्तु शिष्य के पात्र में तो जगह ही नहीं होती, भरें किसमें ? मन शुद्ध होना ही पात्र में जगह होना है। ज्यों-ज्यों पात्र बनता जायगा,

सतगुरु की कृपा से लबालब होता जायगा। अंतर के चक्र खुलने लगेंगे, उनका गहरा आनन्द अनुभव होने लगेगा और परमपिता परमेश्वर की सच्ची महिमा को समझने योग्य हो जायगा।

(7) जब तक अभ्यासी की ऐसी स्थिति न हो जाय जैसी कि ऊपर बताई गयी है, तब तक धैर्य के साथ, पूर्ण विश्वास, प्रीति और प्रतीति के साथ, अपना अभ्यास किये जाय और धीरे -धीरे अपनी आन्तरिक उन्नति का आभास करता जाय। इसकी पहिचान यह है कि उसके मन में दिन-प्रति-दिन सतगुरु और परमपिता परमेश्वर के चरणों में प्रीति और प्रतीति गहरी होने लगेगी। दुनियाँ से उपरामता और सतगुरु के जल्दी-जल्दी दर्शन करने की लालसा बढ़ती जायगी।

(8) अभ्यासी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भगवान से सिवाय उनके चरणों में प्रीति के और कुछ न माँगे। हाँ, बहुत मज़बूरी में रोटी, कपड़े या दुनियाँ के किसी ज़रूरी काम के लिए निवेदन कर देने में कुछ हर्ज़ नहीं है। इसके अलावा दुनियाँ की और और बातों के लिए माँग करना अनुचित है और भक्ति के नियमों के प्रतिकूल है। कभी-कभी ऐसा होता है कि मन मानता ही नहीं और बहुत रोकने पर भी यही चाहता है कि अमुक काम पूरा होने के लिये अवश्य निवेदन करें। यह ख़्याल पूजा में भी विघ्न और रुकावट पैदा करता है। इसे दूर करने के लिये संतों ने बताया है कि जब सतगुरु के सामने बैठें और पूजा समाप्त हो जाय तो धीरे से निवेदन कर दें और यह न चाहें कि वे उस इच्छा को अवश्य पूरा कर दें। उनकी मौज पर छोड़ दें। ऐसा अक्सर देखा गया है कि जो सच्चा प्रेमी अभ्यासी है उसके प्रेम-पूर्ण हठ या आग्रह को सतगुरु यदि उचित समझते हैं और उसका फल उसके परमार्थी हित में होता है, तो पूरा कर देते हैं। इसलिए यह नहीं सोचना चाहिये कि माँगना बिलकुल ही मना है किन्तु यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि यदि माँग पूरी न हो या सत्संगी की इच्छानुसार कार्य पूरा न हो तो सतगुरु से विमुख न हो जाय। जो कुछ उनकी मौज़ से हो उसी में कुछ भेद और अपना भला समझ कर धैर्य और सन्तोष के साथ उसे अपने सर आँखों पर रखे।

(9) ध्यान के समय कभी-कभी कोई चिन्ता या तकलीफ़ ऐसी सामने आती है कि पूजा में मन नहीं लगने देती। इसके लिए यह करना चाहिए कि पूजा प्रारम्भ करने से पहले

ख़्याली तौर पर उस चिन्ता या तकलीफ़ को सतगुरु से निवेदन कर दें और यह ख़्याल करके उधर से निश्चिन्त हो जाय कि मैंने अपनी ओर से निवेदन कर दिया है और चूँकि मैं तो उनका हूँ, उन्हीं के आश्रित हूँ, अतः अब वे जानें। ऐसा करने से उस चिन्ता या तकलीफ़ का भार मन से हल्का हो जायगा। फिर अपने मन और सुरत को समेट कर जितना बन सके सतगुरु स्वरूप या शब्द या दोनों में लगा दें। ऐसा करने से पूजा में मन भी लगता है और तकलीफ़ को सहने की ताक़त भी प्राप्त होती है।

(10) सन्तमत में राज़ी-ब-रज़ा (यथा लाभ सन्तोष) का नियम है। इसका तात्पर्य यह है कि जो मालिक को वास्तव में मानते हैं और उसके सच्चे भक्त हैं, वे अपनी किसी प्रकार की इच्छा नहीं रखते, साँसारिक वस्तुओं से अपना गहरा सम्बन्ध नहीं रखते, और उस अन्तर्यामी को अपना सच्चा सहायक और हितैषी समझ कर निश्चिन्त रहते हैं, सदा सर्वथा उसी के आश्रित रहते हैं, जो कुछ उस मालिक की मर्ज़ी से होता है उसी में राज़ी व प्रसन्न रहते हैं, उसके चरणों में निरन्तर मग्न रहते हैं और उस प्रेम के आनन्द का रसपान करते हैं। इस प्रकार की रहनी-सहनी उत्तम भक्ति के नियमों के अन्तर्गत आती है। परन्तु ऐसी स्थिति प्रत्येक अभ्यासी की एकदम नहीं हो

सकती। इसके लिए समय चाहिए। धीरे-धीरे अभ्यास और सत्संग से, सतगुरु की भक्ति से, इस स्थिति तक पहुँच होती है। ज्यों-ज्यों साँसारिक विचार कम होते जायेंगे, यहाँ के बन्धन ढ़ीले होते जायेंगे और सतगुरु की दया और कृपा का भरोसा दृढ़ होता जायगा, त्यों-त्यों पूर्ण प्रेम की स्थिति आती जायेगी। जब तक पूर्ण प्रेम की स्थिति प्राप्त न हो जाय, यानी परमपिता परमेश्वर के प्रति पूर्ण रूप से प्रेम न हो जाय, सिवाय उसके किसी और साँसारिक वस्तु से प्रेम न हो, सिवाय उसके आसरे के और किसी का आसरा न हो, तब तक जब-जब अभ्यासी-भक्त के मन में जो चाह दुनियाँ के अत्यन्त आवश्यक सामान की उठे, या कोई कष्ट अथवा चिन्ता सतावे, उस समय के लिए सन्तों ने ऐसा कहा है कि अपना हाल सतगुरु से दीनता पूर्वक निवेदन कर दे। यदि कोई आवश्यक वस्तु माँगनी हो तो कोई हर्ज़ नहीं। संत सतगुरु अपनी दया से सम्भाल करेंगे और यदि उचित समझेंगे तो उसे यह भी बता देंगे

कि उसकी माँग क्यों कर स्वीकार हुई। इससे उसकी कष्ट और मुसीबत सहन करने की शक्ति बलबती होगी। थोड़ी सी मुसीबत आने पर वह एकदम अधीर नहीं होगा। किन्तु इन सब बातों के साथ-साथ सन्तों ने एक शर्त भी रक्खी है, वह यह है कि शरण दृढ़ करके पकड़े। जानबूझ कर कोई बुरा कर्म, कोई पाप कर्म, न करे और अपना व्यवहार सतगुरु की आज्ञानुसार ठीक करता चले, उनकी आज्ञा का उल्लंघन न करे, यानी आचरण और सदाचार ठीक रखे, उसके लोक-व्यवहार धर्मशास्त्र के अनुकूल हों और गुरु का आज्ञाकारी शिष्य हो।

(II) जब जिज्ञासु उपरोक्त बातों का पालन करने लगता है तब गुरु अपनी कृपा से उसके पिछले कर्मों को काटते चलते हैं ऐसी बलायें, आफ़तें और कष्ट जो अभ्यासी को अपने पूर्व जन्मों और कर्मों के फलस्वरूप आती हैं, उन्हें सतगुरु अपनी दया से या तो काट देते हैं या इतनी कम कर देते हैं जैसे सुई का काँटा। बहुत से कर्म अभ्यास के समय और बहुतेरे स्वप्न में भुगतवा देते हैं जिनकी ख़बर भी अभ्यासी को नहीं पड़ती और यदि पड़ती भी है तो ऐसे जैसे कोई साधारण झड़प हो। इसलिए चाहे जिस भी अवस्था में हो, सतगुरु को सदा धन्यवाद देता रहे, उनका शुकराना करता रहे। सतगुरु अत्यन्त दयालु होते हैं। उनका निरन्तर सम्पर्क दया के सागर परमपिता परमेश्वर से रहता है। उसकी अनुपम दया का रसपान वे स्वयं करते हैं और उसका हिस्सा उन्हें भी देते हैं जो उनके सम्पर्क में आते हैं। प्रेमी सत्संगी की तो बात ही क्या है, उसके प्रियजनों तथा सम्बन्धियों तक के अनेकों कर्म बहुत सुविधा से और रियायत से काट दिए जाते हैं, जिसके फलस्वरूप इन सम्बन्धियों को जो दुःख और क्लेश व्यापते हैं वे सब कम हो जाते हैं। ऐसी दशा सतगुरु की ओर से गुप्त और प्रकट दोनों रूप से होती है परन्तु अधिकतर गुरुजन इसे गुप्त ही रखते हैं, प्रगट नहीं करते। किन्तु जो सत्संगी अभ्यासी अपनी नृत्य प्रति की दशा पर ध्यान रखते हैं, जो अपने मन और इन्द्रियों की चाल पर दृष्टि रखते हैं, और जो सतगुरु की दया की परख रखते हैं, उन्हें थोड़ा बहुत आभास सतगुरु की दया का हो जाता है और वे जान जाते हैं कि किस अवसर पर किस ढँग से सतगुरु ने उनकी रक्षा की। ऐसे ही सत्संगी अभ्यासी सच्चे दिल से गुरु के प्रति धन्यवाद से नतमस्तक रहते हैं, वे ही तहेदिल से शुकराना बजा लाते हैं।

(12) जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रेमी अभ्यासी को चाहिए कि यदि वह अभ्यास और भजन में रस और आनन्द लेना चाहता है तो अपना साँसारिक व्यवहार और पारमार्थिक बरताव दोनों को सतगुरु की आज्ञा में ढ़ाल दे। जो वे कहें उसे गाँठ बांधकर उसका पालन करे। दूसरी आवश्यक बात यह है कि अपने स्वार्थ के लिए, विशेषकर साधारण जीवन में भी, कोई ऐसा काम न करे जिससे दूसरों को दुःख और तकलीफ़ पहुँचे। सबके साथ प्रेमपूर्वक रहे, सबसे दया का व्यवहार करे। यहाँ यह प्रश्न सहज ही उठता है कि जो सत्संगी लोग किसी ऐसी सरकारी नौकरी पर काम करते हैं जहाँ कानून के अनुसार उन्हें दूसरों को दण्ड देना पड़ता है, वे क्या करें ? उन्हें तो किसी के साथ सख़्ती करनी पड़ती है और किसी के साथ नरमी, किसी को क्षमा, किसी को दण्ड, किसी को मुआफ़ी, किसी को फांसी देनी पड़ती है। संतों ने कहा है कि यह सब दुनियाँ के व्यवहार हैं जो करने पड़ते हैं और क़ानून के मुताबिक उनको व्यवाहरिक रूप देना ही पड़ता है, किन्तु जहाँ तक मुनासिब हो थोड़ा बहुत दया का अंग उस व्यवहार में भी संग रहे तो अच्छा है।

(13) सब मतों में यह पुकार कर कहा गया है कि परमात्मा के चरणों में सच्ची प्रीति करो। सब साधन इसलिए किये जाते हैं कि परमात्मा के चरणों में प्रेम पैदा हो जाय। संत मत का आधार ही प्रेम है, अतः इस मत में परमार्थ के मामले में मलिक के चरणों में प्रीति और प्रतीति को सर्वप्रथम रक्खा गया है, उसी को मुख्यता दी गयी है। बिना प्रेम के न तो मालिक की शरण प्राप्त हो सकती है और न अभ्यास ठीक से बन सकता है। अतः परमपिता परमेश्वर के प्रति प्रेम पैदा करें, वक़्त के पूरे सतगुरु के चरणों में प्रेम और प्रतीति को पैदा करें और अपने आपको उनके आश्रित कर दें। संसार की फ़िज़ूल की बातों में न पड़ें, भोग-विलास से दूर हट जाय, अपनी बढ़ाई और प्रसिद्धि को विष की तरह त्याग दें। अपने हृदय की मलीनता को दूर करता जाय जिससे अभ्यास और भजन में बाधा न पड़े और सतगुरु के बताये हुए मार्ग पर दृढ़ता पूर्वक अग्रसर होता जाय।

(14) ऐसी पुस्तकें पढ़ें जिनमें संतो की वाणी हो जिससे प्रेम अंग उभरे और मन को चेतावनी मिले। यदि अपने ही सिलसिले की ऐसी पुस्तकें हों तो उत्तम है अन्यथा किसी

मिलते जुलते सिलसिले की किताबें देखें। वैसे तो भक्ति, ईश्वर प्रेम व् चेतावनी पर अनेकों अच्छी-अच्छी पुस्तकें उपलब्ध हैं जिनकी कोई गिनती नहीं है, उनमें से जो अच्छी लगे वह ठीक है लेकिन सबसे उत्तम वह है जो गुरु ने बताई हो। उन्हें समझ-समझ कर पढ़े और उनमें लिखी हुई बातों पर मनन करें। ऐसा करने से ईश्वर प्रेम तो बढ़ता ही है, साथ-साथ अपनी बुराइयों पर भी दृष्टि जाती है और उन्हें दूर करने में सहायता मिलती है। जितने समय वह पुस्तक पढ़ता है उतने समय के लिए दुनियाँ के खुराफ़ात (बुरी बातों) से बचता है।

(15) संतमत में देवी-देवताओं को नहीं पूजते लेकिन उनकी अवेहलना या निरादर भी नहीं करते। केवल एक निर्गुण (अरूप) परमात्मा को मानते हैं और उसी की प्राप्ति संतमत का लक्ष्य है। पूजा वक़्त के पूरे सतगुरु की की जाती है क्योंकि उसी के स्थूल रूपी शरीर मन्दिर में वह निर्गुण परमात्मा विराजता है। उसका स्वरुप जो अभ्यासी के अन्तर में ध्यान के द्वारा प्रगट होगा, चैतन्य और अकाल रूप है। जहाँ तक रूप, रंग और रेखा है, वहाँ तक स्वरुप स्थिति के अनुसार सूक्ष्म और प्रकाशवान होते हुए अभ्यासी के साथ जायगा और सच्चे नर्गुण (अरूप) पद में, जो कि रंग, रूप, रेखा से न्याश है, उसे पहुँचा देगा। यह बिना सतगुरु की कृपा के नहीं होता, बिना प्रीति और प्रतीति के, बिना सेवा भाव और दीन भाव के, बिना धर्मशास्त्र पर चले और बिना उसकी आज्ञा पालन के सतगुरु का कृपा -पात्र कोई नहीं बन सकता।

(16) बाहरी सेवा सतगुरु के स्थूल शरीर तथा उनके प्यारों की और अन्तर में सेवा सतगुरु के निजरूप की सेवा यह है कि शब्द को घट में सुनना, शब्द, प्रकाश या प्रेम (जैसा जिसे सतगुरु ने आदेश दिया हो) के सहारे अपनी सुरत को ऊपर चढ़ाना। जब तक सतगुरु के प्रत्यक्ष स्वरुप के प्रति गहरा प्रेम नहीं होगा तब तक, जैसा चाहिए, न तो शब्द ही खुलेगा, न प्रकाश दीखेगा, और न अन्तर में गहरा प्रेम ही उमड़ेगा। जब तक ऐसी स्थिति पैदा नहीं होगी तब तक, यदि सतगुरु के बाहरी स्वरुप में गहरा प्रेम है, तभी थोड़ी बहुत चढ़ाई

अन्तर में हो सकेगी। बस, सतगुरु से प्रेम करो जिसका मूल गुर से 'सेवा' - तन, मन, धन से सेवा।

संतमत के अभ्यासियों को चाहिए कि विरह और उमंग को साथ लेकर अपना अभ्यास प्रतिदिन नियम से करें। अपने मन, सुरत और दृष्टि को पहले उस स्थान पर ठहरायें जहाँ सतगुरु ने बताया हो। फिर वहाँ से ऊपर को चढ़ाई करें। चढ़ाई करने में नीचे से ऊपर के लिए बहुत ज़ोर न लगायें, सहज स्वभाव से करें। इस बात की होशियारी रखें कि दुनियाँ के विचार मन में न आने पायें और मन इधर-उधर की तरंगें न उठाने पावे। यदि ऐसा अभ्यास करेंगे तो थोड़ा बहुत आनन्द और रस पूजा में अवश्य मिलेगा।

(17) यदि अभ्यास के समय विरह तथा उमंग की दशा न हो तो चाहिए कि कुछ भजन या पद या ग़ज़ल (जैसा मन को भावे)

जिसमें चेतावनी हो, ईश्वर प्रेम हो, उसे पढ़े और उसके शब्दों पर ध्यान दे, यानी ग़ौर करे, फिर अभ्यास में बैठे। अपनी कमी और त्रुटियों को देखते हुए, मन में दीनता लाये और कोई प्रार्थना, चाहे वह पद्य के रूप में हो या गद्य के रूप में, ईश्वर की दया प्राप्त करने के लिए करे। अपने आपको गुनहगार और दोषी समझते हुए ख़्याली तौर पर अपना सिर गुरु के चरणों में टेक दे और तब ध्यान शुरू करे। ऐसा करने से मन ठहरने लगेगा और ध्यान ठीक से हो सकेगा। यदि इस पर भी मन न माने और संसार के निरर्थक विचार उठावे तो कोई भजन गाने लगे और उसी में अपने ध्यान को शामिल कर दे। फिर भी मन की उथल -पुथल बनी रहे तो किसी वाणी या रामायण आदि का (जो मन को भावे) पाठ करने लगे या नाम का ज़ोर-ज़ोर से उच्चारण करने लगे।

(18) बहुधा देखा गया है कि उपरोक्त युक्तियों से मन की गुनावन दूर होने में सफलता मिलती है और वह अभ्यास में टिकने लगता है जिससे पूजा में रस तथा आनन्द आने लगता है। परन्तु कोई-कोई ऐसे भी होते हैं जिन्हें इन युक्तियों से भी, जैसा चाहिए लाभ प्राप्त नहीं होता। ऐसी स्थिति में समझ लेना चाहिए कि मन अत्यन्त कर्मी और मलिन है। उसकी

सफ़ाई का इलाज संतों ने यह बताया है कि कुछ दिनों होशियारी के साथ सत्संग करे। सतगुरु और उनके प्रेमियों की सेवा करे, सत्संग में जो प्रवचन होते हैं उन्हें ध्यान पूर्वक चित्त देकर सुने और उन पर मनन करे और उन्हें अपने व्यावहारिक जीवन में सक्रिय रूप दे। तब कुछ समय में मन की सफ़ाई होने लगेगी और जैसे-जैसे मन साफ़ होने लगेगा, उसमें शौक़, चाव और उमंग पैदा होने लगेंगे जिनके फल-स्वरुप अभ्यास में मन का ठहराव होगा तथा रस व आनन्द भी मिलने लगेंगे।

यदि ऐसा मौक़ा न हो कि कुछ दिन गुरु के सत्संग में रहकर उनकी तथा उनके प्रेमी-जनों की सेवा कर सके तो यह करे कि हर घन्टे-दो-घन्टे बाद, जहाँ बैठा, लेटा या खड़ा हो (जिस परिस्थिति में हो) वहीं आँखें बन्द करके पांच-सात मिनट के लिए अपने मन और सुरत को उस स्थान पर जमा कर ध्यान करे जहाँ से गुरु ने बताया हो। इतने थोड़े समय में (यानी पांच-सात मिनिट में) कम चंचल होगा और उसमें तरंगें नहीं उठेंगी। इस तरह रात दिन में जितना अधिक से अधिक हो सके, करे। यदि यह अभ्यास

दस-पन्द्रह बार भी हो जाय तो कुल मिलाकर एक या डेढ़ घन्टे का अभ्यास हो जायगा। इस प्रकार कुछ दिन करता रहे तो देखेगा कि थोड़ा बहुत रस और आनन्द प्रभु की कृपा से आने लगेगा और उसका प्रभाव हर समय मालूम पड़ेगा। धीरे-धीरे साधारण अभ्यास ठीक से होने लगेगा और उसमें भी रस और आनन्द आने लगेगा। इस प्रकार मन की सफ़ाई होने लगेगी, इन्द्रियाँ भी वश में होने लगेंगी और नित्य के अभ्यास में आनन्द तथा रस की मात्रा बढ़ती जायगी। नित्य के अभ्यास के साथ-साथ दिन भर में दस पन्द्रह बार, सात-सात मिनिट का ऊपर बताया हुआ अभ्यास जारी रखना चाहिए।

(19) कभी-कभी अभ्यासी के मन में यह उत्कण्ठा होती है कि जो अभ्यास मैं कर रहा हूँ क्या वह मुझ से ठीक-ठीक बन रहा है या वह गलत है। यहाँ दो बातें हैं। अभ्यासियों की दो किस्में बताई जा चुकी हैं। एक तो ऐसे अभ्यासी होते हैं जिनमें प्रेम अंग उभरा हुआ होता है। दूसरे वे जिनमें विवेक और वैराग का अंग सबल होता है। प्रेमी अभ्यासी के मन में बहुधा ऐसे प्रश्न उठते ही नहीं, वह अपने गुरुदेव के प्रेम में मग्न रहता है और उसकी सभी चेष्टायें

प्रायः उसी प्रेम को उत्तरोत्तर बढ़ाने के हेतु होती हैं। इस प्रकार की उत्कण्ठा यदि यदा-कदा उसके मन में उठती हैं तो वह समर्पण का आसरा लेता है और कहता है - " हे सतगुरु । मैं नहीं जानता कि मेरा अभ्यास ठीक से हो रहा है या नहीं। मैं तो आपकी शरणागत हूँ, भला हूँ या बुरा हूँ, हूँ तो आपका, अभ्यास ठीक से होता है या नहीं, यह मैं क्या जानूँ ? मैं तो आपका दामन पकड़े हूँ, मेरी लाज अब आप ही के हाथ है। इससे अधिक और मैं कुछ नहीं जानता।" इस प्रकार वह अपनी ख़ुदी (अहं) को मिटटी में मिलाता चलता है और अभ्यास ठीक है या नहीं, इन बखेड़ों में नहीं पड़ता।

ऐसी उत्कण्ठा बहुधा उन अभ्यासियों को परेशान करती है जिनका विवेक और वैराग अंग प्रबल होता है। ऐसे लोगों के लिए अपनी उत्कण्ठा की चर्चा अपने गुरुदेव से करनी चाहिये और अपना हाल निवेदन कर देना चाहिये। वे ही सही सही बतायेंगे कि अभ्यास ठीक चल रहा है या नहीं। मोटी सी पहचान यह है कि भजन या ध्यान के समय दुनियाँ से गाफ़िल हो जाय और अंतर में होश रहे तो यह निशानी इस बात की है की है कि अभ्यास ठीक से हो रहा है। यदि नींद की सी हालत हो जाय, भीतर और बाहर दोनों तरफ़ का होश न रहे तो समझ लेना चाहिये कि यह नींद की अवस्था है। कोई-कोई तो ऐसी अवस्था में खुर्राटे लेने लगते हैं। ऐसी सूरत में अभ्यासी को चाहिये कि जब शरीर में सुस्ती हो तो अभ्यास करने न बैठे और यदि बैठने पर नींद की सी हालत इस तरह की हो जाय कि अन्दर और बाहर दोनों का होश न रहे तो आँखें खोल दे और मुँह धोकर थोड़ा सा टहले जिस से सुस्ती दूर हो जाय। तब अभ्यास करे। यदि बार-बार यही इलाज करने पर भी ग़फ़लत आ जाय तो उस समय अभ्यास को स्थगित करके किसी और समय अभ्यास करना चाहिये। यदि कोई सत्संगी पास बैठा हो तो उसे मुनासिब है कि जो सत्संगी अभ्यास के समय खुर्राटे ले रहा हो उसे धीरे से हाथ छूकर जगा दे।

(20) अभ्यासियों को चाहिए कि जो साधन गुरु ने बताया है उसको नियमानुसार नित्य-प्रति, मन लगा कर, सच्ची लगन के साथ करते रहें। यदि अधिक नहीं हो सके तो कम से कम दिन में दो बार (सवेरे और शाम) आधा घंटे या बीस मिनिट के लिए अवश्य करें।

जिस प्रकार के अभ्यास में (भजन या ध्यान में) मन ज़्यादा लगे, वह ज़्यादा करना चाहिए, दूसरा कम। नागा नहीं करना चाहिए। जो कुछ भी भजन और अभ्यास करें, रात्रि को सोते समय उसे प्रभु के चरणों में अर्पण कर दें और कोशिश यह करें कि उन्हीं के ध्यान में सो जाय।

(21) संतों ने अभ्यास में अनेकों सुविधायें कर दी हैं, जैसे नहाने-धोने की कोई क़ैद नहीं रखी है। नहा लें तो बहुत ही अच्छा है परन्तु यदि कोई मज़बूरी हो (सफ़र, बीमारी आदि) तो बिना नहाये भी नियम के साथ अभ्यास पर बैठ जाय।

एक सुविधा यह भी है कि यदि पूजा का कोई विशेष स्थान है तो बहुत ही अच्छा है और यदि ऐसा नहीं है तो किसी भी स्वच्छ जगह बैठ कर अभ्यास किया जा सकता है। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि जिस जगह अभ्यास के लिए बैठें वहाँ का वातावरण शान्त हो यानी वहाँ कोई शोर न हो। वहाँ पर अभ्यासी को अभ्यास की हालत में कोई दूसरा न छेड़े।

दूसरी एक और सुविधा यह भी है कि कौन से आसन में बैठ कर अभ्यास किया जाय, इसका कोई प्रतिबन्ध नहीं है। जस तरह अभ्यासी का दिल चाहे आराम के साथ बैठे, सम्भवतः नरम फ़र्श पर बैठें जिससे पैर जल्दी न दुखें। साधारणतया पालथी मर कर बैठना ही अच्छा समझा जाता है।

जब अभ्यास के लिए जाओ तो शुद्ध होकर जाओ। एक है बाहर की शुद्धि और दूसरी है अन्दर की शुद्धि। सम्भव हो तो नहा कर अपने शरीर को स्वच्छ कर लो और साफ़ कपड़े पहन लो। पूजा करते समय सर पर टोपी लगाना या सर को ढ़का रखना आदर-सूचक है। जब अपने गुरुदेव के सामने पूजा करने जाओ तो आदर पूर्वक प्रणाम करो और उनकी आज्ञा प्राप्त करके दीनता पूर्वक, जहाँ वे बैठने को कहें, बैठ जाओ। निगाह और ध्यान उनके चरणों की तरफ़ रखो और जब वे अभ्यास करायें तो जिस तरह वह करायें, उसी तरह अभ्यास करो। गुरु की अनुपस्थिति में जब पूजा करने जाओ तो यह ख़्याल करो कि किसी महापुरुष (बुज़ूर्ग-तरीन हस्ती) के सामने जा रहे हो। झुक कर क़दम लो और उन्हें हाज़िर-नाज़िर

जान कर, ख़्याली तौर पर, दीनता पूर्वक, उनके श्रीचरणों में मस्तक टेक दो और फिर पूजा करने बैठो। संतों में गुरु के सामने बैठकर किसी ग़ैर ख़्याल का आना बेअदबी (अनादर) में शुमार किया जाता है।

(22) संतों ने यह भी प्रतिबन्ध नहीं रखा है कि अभ्यास भोजन के बाद करें, या पहले, परन्तु भोजन के बाद पेट भारी हो जाता है और बैठने में असुविधा होती है। अतः अच्छा यही है कि अभ्यास भोजन के पहले करें। जिन्हें अभ्यास का ज़्यादा चाव है उनके लिए कहा है कि चाहे जिस समय, भोजन से पूर्व या भोजन करने के दो-तीन घण्टे बाद, चाहे जिस जगह, चाहे जितनी देर तक जितना दिल चाहे, एक समय में अभ्यास करें। जब सतगुरु की दया से उसकी सुरत और मन सिमट कर ऊपर की ओर चढ़ने लगें

तो उसके लिए यह सावधानी रखने को कहा गया है कि सुरत ओर मन को बहुत अधिक ओर बहुत ऊँचा न खींचें। धीरे-धीरे जितना बर्दाश्त होता जाय, उतनी चढ़ाई करें। कभी-कभी ऐसा होता है कि आन्तरिक चढ़ाई करते समय दिल तड़पने लगता है। यह इस बात का सूचक है कि उसमें भगवान के चरणों की प्राप्ति की तड़प पैदा होने लगती है। इस हालत को जहाँ तक सम्भव हो सहन करें ओर अपना अभ्यास जारी रखें। जब ऐसी हालत हो कि वह तड़प सहन न हो तो उस समय के लिए, या जब ख़ुद-ब-ख़ुद ऊपर को खिंचता हुआ मालूम होता हो और उसकी बर्दाश्त न हो सके या कोई तक़लीफ़ या डर मालूम होने लगे तो भी, उस समय के लिए अभ्यास छोड़ दें (चाहे कुछ समय बाद फिर से शुरू कर दें) अभ्यास के बाद कुछ काम-काज शुरू कर दें जिससे शरीर और इन्द्रियाँ शिथिल न होने पायें। इस प्रकार करने से धीरे-धीरे उस तड़प की हालत बर्दाश्त होने लगेगी।

अभ्यास करते समय किसी-किसी अभ्यासी को ऐसा होता है कि उसके शरीर का कोई अंग सुन्न हो जाता है, यानी अस्थायी तौर पर सुस्त या बेकार सा हो जाता है, और अभ्यास से उठने के थोड़ी देर बाद पुनः आप ही आप ठीक हो जाता है। इससे घबराना नहीं चाहिए। यह इस बात का सूचक है कि अभ्यास दुरुस्ती से हो रहा है। जब कभी ऐसा हो तो अभ्यासी

को चाहिए कि अभ्यास कर चुकने के बाद दस बीस मिनट टहले तो सुस्ती और सुन्नपना दूर हो जायगा।

(23) किसी-किसी अभ्यासी को अभ्यास में जल्दी ही ऐसा रस और आनन्द आने लगता है कि उसकी तबियत में ऐसी मस्ती आने लगती है कि वह संसार की ओर से अपने आपको बेपरवाह सा समझने लगता है और संसार और उसके भोग विलास और सांसारिक कामों से उसे वैराग होने लगता है और आवेश में आकर अपने कुटुम्ब, परिवार और रोज़गार का ज़ल्दी से त्याग कर देता है। साधकों को भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि शुरू-शुरू में इस तरह का आवेश टिकाऊ नहीं होता। इस प्रकार के आवेश में आकर जल्दबाज़ी न करें और अपने रोज़गार और कुटुम्ब-परिवार का त्याग न कर बैठें। ऐसी दशा में बहुत सावधानी रखनी चाहिए। कुछ ही समय में सतगुरु की कृपा से वैराग की यह हालत ह्ज़्म होने लगेगी और स्थिति साधारण हो जायगी। इस प्रकार के आवेश को यथा सम्भव पी जाय और संसारी लोगों की दृष्टि से छिपता रहे। संतों ने कुटुम्ब परिवार और रोज़गार त्यागने को नहीं कहा है। दुनियाँ और उसकी चीज़ें उपराम होकर मन से छोड़ी जाती हैं, बिना उपराम हुए कुटुम्ब परिवार और रोज़गार छोड़ देने से दुनियाँ नहीं छूटती, दुनियाँ की कुछ चीज़ें भले ही छूट जायें। जोश की उपरोक्त हालत में अभ्यासी को यह कभी नहीं समझना चाहिए कि वह पूर्ण हो गया या उसका काम पूरा बन गया है। ऐसा सोचने से रास्ता रुक जाता है। भविष्य में उन्नति नहीं होती। जो स्थिति उत्पन्न हो गयी है वह धीरे-धीरे साधारण हो जाने पर अपनी कसर मालूम पड़ती है।

(24) प्रत्येक परिस्थिति में अभ्यासी को चाहिए कि अपनी कमियों पर सदा दृष्टि रखे. दीनता कभी न छोड़े। बीच-बीच में

गुरु-कृपा से ऐसा होता है कि मस्ती और बेपरवाही की सी हालत अनुभव होने लगती है किन्तु जब तक त्रिकुटी और दसवें द्वार में न पहुँचे और अधिक आनन्द प्राप्त न हो तब तक उस हालत को स्थायी न समझे।

यहाँ पर प्रश्न यह हो सकता है कि इस बात की क्या पहचान है कि अभ्यासी त्रिकुटी या किसी अमुक चक्र में पहुँच गया है। इसका उत्तर यह है कि यह सब बातें यानी रास्ते का भेद और पहचान संतों ने अपनी वानी में लिखी हैं। परन्तु उससे अच्छा यह है कि सतगुरु से पूछे। उत्तम बात यह है कि रास्ता चलता जाय और यदि आनन्द दिनों-दिन बढ़ता जाता है, प्रभु-चरणों में प्रेम दिन रात में अधिक समय तक रहता है तो इस उलझन में न पड़े कि त्रिकुटी कहाँ है, कौन सा दसवाँ द्वार है या अमुक चक्र कौन सा है। जान लेने से अभिमान हो जाता है जिससे गिरावट होने का डर है। आम खाने से मतलब है या पेड़ गिनने से ? जब पेट भर आम खा चुकेगा तब यदि पेड़ भी गिन ले तो कोई हर्ज़ नहीं है। अपनी दृष्टि और इरादा ऊँची से ऊँची चढ़ाई पर रखे तथा शरीर और इन्द्रियों से धर्म शास्त्र के अनुसार दुनियाँ का काम-काज और लोक व्यवहार करता रहे। इससे यह होता है कि आत्मा की धार का चढ़ाव -उतार बराबर जारी रहता है तथा आत्मिक उन्नति होती जाती है। यह सावधानी रखते हुए अभ्यास करेगा तो काम पूरा और दुरुस्त बनेगा नहीं तो ऐसा देखा गया है कि मस्ती और बेपरवाही छा जाती है और दुनियाँ और देह के काम में बहुत हर्ज़ होने लगता है। अभ्यास में भी यह मस्ती और बेपरवाही कुछ न कुछ विघ्न डालने लगती है जिससे आगे की उन्नति में रुकावट होने लगती है क्योंकि मस्ती की हालत एक-रस स्थिर नहीं रहती। अभ्यासी के स्वास्थ्य पर भी इसका अनुकूल प्रभाव नहीं होता। इस मस्ती और बेपरवाही के जोश को पी जाना चाहिए और आन्तरिक अभ्यास दुरुस्ती से जारी रखना चाहिए। संतों ने अपनी वाणी में लिखा है कि इसके लिए अभ्यासी को चाहिए कि संत सतगुरु का सत्संग करता रहे। सतगुरु मौजूद न हों तो साधगुरु (या कोई प्रेमी अभ्यासी जो अपने से ज़्यादा उन्नत हो) से मेल रखे और उसके सत्संग में कुछ दिनों के लिए जाता रहे। उनकी सत्संगति और वचनों से उसको अपनी हालत की सच्चाई मालूम होती रहेगी। आनन्द और मस्ती का नशा जो उसे यदा-कदा अभ्यास में प्राप्त होगा, अनुचित तौर पर बढ़ने नहीं पायेगा। वे हर तरह से आन्तरिक और बाहरी सहायता करके अभ्यासी को जल्दबाज़ी, मस्ती और दूसरे नुकसान से बचाते रहेंगे और दिन-दिन उन्नति में सहायक होंगे।

(25) संतमत के अभ्यासियों को चाहिए कि मन लगाकर भजन करें। भजन से तात्पर्य यह है कि चाहे तो कोई प्रार्थना, पद या स्तुति तल्लीनता से भाव-विभोर हो कर गावें और चाहे मन ही मन पढ़ें, परन्तु उसके भाव पर ध्यान रहे। प्रार्थना के लिए कोई विशेष पद्य निश्चित हो, ऐसा नहीं है। जिसमें रुचि हो, जिसके द्वारा मन इश्वरोन्मुखी हो, जिसे मालिक का प्रेम उमड़े, वही प्रार्थना या भजन उत्तम है, चाहे वह गद्य हो या पद्य, उर्दू हो या हिन्दी या कोई अन्य भाषा। इस मामले में लकीर का फ़क़ीर नहीं बनना चाहिए और न ही तोते की तरह किसी रटी हुई प्रार्थना या पद को ख़ानापूरी करने के लिए पढ़ने से कोई फ़ायदा नहीं।

जो नाम गुरु ने दिया है उसका सुमिरन भी भजन के ही अन्तर्गत आता है। भजन के अतिरिक्त ध्यान भी एकाग्रचित्त होकर करना चाहिए। भाव विभोर हो कोई प्रार्थना पहले कर लें और उसके बाद ध्यान करें तो चित्त को एकाग्र करने में सुगमता होती है। भजन और ध्यान इन दोनों में से जिसमें मन अधिक लगे उसे अधिक देर करें और जिसमें मन कम लगे उसे कम करें।

कभी-कभी मन ऐसा सोया रहता है कि न तो भजन में मन लगता है और न ध्यान में। इसका उपाय यह है कि सत्संग करें। यदि सत्संग प्राप्त न हो तो संतों की वाणी का पाठ नित्य नियम पूर्वक करें और समझ-समझ कर करें। ऐसा पाठ कुछ-कुछ सत्संग जैसा ही लाभदायक होगा। मन को सोई हुई अवस्था और लगन जागने लगेगी। यदि अभ्यासी को अपने कल्याण की थोड़ी बहुत खुटक मन में लगी रहेगी जिसके कारण थोड़ा बहुत भजन और अभ्यास नियम पूर्वक करता रहेगा तो संत सतगुरु जब-जब और जिस तरह समझेंगे उस अभ्यासी पर दया दृष्टि करते रहेंगे और अभ्यास में उन्नति भी कराते रहेंगे।

(26) जब कभी अभ्यासी को अभ्यास में रस या आनन्द न आवे या आते-आते अचानक रुक जाय तो समझ लेना चाहिए कि या तो किसी ओछे कर्म का चक्कर है या किसी ऐसे भोजन का प्रभाव है जो अधर्म की कमाई का है। ऐसा भोजन अपने घर पर भी हो सकता है या किसी दूसरे के घर का भी हो सकता है। इसलिए संतों ने इस बात पर बल दिया है कि जो अन्न आदि ग्रहण करे वह सात्विक हो और धर्म की (सूफ़ी भाषा में हक़ और हलाल की)

कमाई का हो. हरेक के यहाँ का भोजन नहीं खाना चाहिए। परिस्थिति-वश मज़बूरी में कहीं ऐसी जगह खाना पड़े जहाँ हक़-हलाल की कमाई न हो तो उस दिन (सम्भव हो तो अगले दिन

भी) ज़्यादा भोजन न करें। उपवास रखें तो और भी अच्छा है। चाहे भजन में रस आवे या न आवे अपने मन पर ज़ोर देकर अभ्यास करें। चेतावनी और प्रेम की संतों की वाणी पढ़ें। ऐसी हालत में अधिक घबराना या निराश नहीं होना चाहिए। हो सके तो ओछे कर्म के चक्कर को शीघ्र काटने के लिए साधारण से अधिक परमार्थ की कार्यवाही करनी चाहिए।

निराश होकर अभ्यास मत छोड़ो - भगवान की दया और कृपा पर भरोसा रक्खो

संतों ने कहा है कि प्रत्येक परिस्थिति में प्रभु की कृपा और दया का भरोसा रखना चाहिए। जब उन्हीं का भरोसा रखेगा और सब तरह उन्हीं के आश्रित रहेगा यो वे उसे अवश्य अपनी ओर खींचेंगे। संसार में यदि कोई सेवक अपने स्वामी का काम मेहनत से करता है और हर समय उसके सामने दीन भाव से हाज़िर रहता है तो स्वामी बदले में उसको भरसक मज़दूरी या इनाम देता है और जो कुछ उसकी हैसियत के मुताबिक़ और भी बख़्शिश करनी होती है वह भी करता है। फिर परमपिता परमेश्वर तो सारी श्रष्टि का मालिक है और सर्वशक्तिमान है। वह अपने सेवक को किस तरह ख़ाली रख सकता है ?

भगवान की कोई भी बात भेद से ख़ाली नहीं है। कभी-कभी अकारण ही अभ्यास में रस और आनन्द मिलना रुक जाता है। उसमें भी कोई भेद अवश्य होता है। यदि किसी दिन अभ्यास में कुछ रस नहीं मिलता या कम मिलता है तो आगे अधिक रस मिलने की आशा है, या कोई दूसरा लाभ होगा, जैसे मन की गढ़त होना, समझ बूझ ठीक होना, मालिक के प्रति प्रति और प्रतीति पक्की होना, इत्यादि, इत्यादि।

कभी भी घबरा कर या निराश होकर अभ्यास को छोड़ना नहीं चाहिए। परमपिता परमेश्वर और संत सतगुरु की ओर से कभी बेप्रतीत (बे-ऐतक़ाद) नहीं होना चाहिए। वह बड़ा दयालु है। जो उसमें विश्वास नहीं रखते, उसे अपशब्द कहते हैं, उन्हें भी भोजन, वस्त्र

आदि की तथा उनकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। तब फिर उनके ऊपर, जो उससे प्रीति और प्रतीति करते हैं और उसका भरोसा रखते हैं, वह अपनी विशेष कृपा क्यों नहीं करेगा ? ऐसा समझ कर उसका आसरा नहीं छोड़ना चाहिए और उसी की तरफ़ लौ लगाए रखना चाहिए। अपने मन और इन्द्रियों के हाल और उनकी चाल पर कड़ी निगाह रखनी चाहिए कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि उनकी कसर के कारण अभ्यास का रस नहीं मिला। यदि ऐसा है तो उस कसर को दया का बल देकर दूर करने का यत्न करना चाहिए वह विघ्न शीघ्र दूर हो जाय और भविष्य में अभ्यास में बाधा न डाले। यदि आवश्यक हो तो जो कोई सत्संगी इस मार्ग में अपने से ज़्यादा बढ़ा-चढ़ा हो, अपने से ज़्यादा अनुभवी हो, उससे एकान्त में अपना हाल कह कर सलाह ओर सहायता ले। ऐसा करने से कुछ आध्यात्मिक लाभ होगा और तबियत को ताक़त मिलेगी।

मन को अन्तर्मुखी बनाना

संतों ने कहा है कि जो अभ्यासी तेज़ी से परमार्थ पथ पर बढ़ना चाहते हैं उन्हें यह सावधानी अवश्य रखनी चाहिए कि संसार के भोगों की चाह और तरंगें कम उठावें और उनमें उतना ही व्यवहार करें जितना आवश्यक है। यदि इन्द्रियों के भोग में आवश्यकता से अधिक व्यवहार करेंगे तो भजन में रस कम आवेगा। इसका एक उपाय संतों ने बताया है कि सत्संग करें, संतों की वाणी का समझ-समझ कर पाठ करते रहें जिनमें चेतावनी, वैराग्य, भक्ति और ईश्वर प्रेम हो। जब-जब मन बेफ़ायदा और फ़िज़ूल तरंगे उठावे तो उन्हें भरसक रोकें और दूर करें तथा उनके लिए मन ही मन लज्जित हों, पछतावें और प्रार्थना करें। धीरे-धीरे मन की हालत बदलती

जावेगी।

इस काम में न तो जल्दी हो सकती है और न जल्दी करना मुनासिब ही है, क्योंकि यह मन युग-युगान्तर और अनेकों जन्मों से भूला हुआ है, भ्रम में पड़ा है और आरम्भ से ही इसका झुकाव संसार और इसके भोग विलासों की तरफ़ हो रहा है। यह बहिर्मुखी है।

अभ्यास और गुरु कृपा से इसका स्वभाव बदलेगा और तब यह अन्तर्मुखी बनेगा। भगवान की दया तो हो ही रही है लेकिन वह भी धीरे-धीरे अपना काम करेगी क्योंकि एक दम हालत बदलने में पूरा और स्थायी लाभ नहीं होगा।

संतमत में आने पर अभ्यासी को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इस मत में मन को संसार की ओर से खींच कर प्रभु के चरणों में लगाना होता है। इसलिए जिस तरह यह काम सुगमता पूर्वक हो सके, वही यत्न करना चाहिए। जिस अभ्यास में मन अच्छी तरह लगे वह काम अधिक करना चाहिए और दिल में यह शौक़ नहीं रखना चाहिए कि मुझे किसी प्रकार का प्रकाश या चमत्कार दिखाई दे या कोई सिद्धि या शक्ति प्राप्त हो जाय। यदि ऐसी आशा मन में लगाई जायेगी तो अभ्यास में कभी निर्मल रस नहीं आवेगा। इसलिए यह उचित है कि भजन ओर ध्यान करते समय अपने मन को उसी अभ्यास में लगावे जो सतगुरु ने बताया हो। चाहे प्रकाश या गुरु स्वरुप दिखाई दे या न दे, अपनी सुरत (attention) को उसी अभ्यास में लगाए रखे जो सतगुरु ने बताया हो। मन में संसार की कोई भी गुनावन न उठावे। ऐसा करने से चित्त एकाग्र होने लगेगा। संतों ने इसी को निर्मल रस कहा है। यदि प्रभु की मौज से कोई प्रकाश दिखाई देता है या शब्द सुनाई देता है या आन्तरिक परिचय मिलता है तो उसको निहारे और मालिक को धन्यवाद दे परन्तु अपना मन उसमें न बाँधे और न इस बात की इच्छा रखे कि बार-बार वही प्रकाश, शब्द या परिचय देखने या सुनने को मिले। यदि ऐसा करेगा तो तो शब्द और स्वरूप के केन्द्र से ध्यान हट जायगा, मन नीरस हो जायगा, और अभ्यास में जैसा चाहिए वैसा नहीं लगेगा। फिर यह भ्रम होने लगेगा कि हमको तो कुछ प्राप्त नहीं हुआ, या हमारी उन्नति नहीं होती, या सतगुरु की हम पर दया नहीं है। ऐसी अनेक तरह की भ्रामक बातें मन में पैदा होकर उसे अभ्यास की तरफ़ से ढ़ीला कर देंगी। अतः सावधान रहो और हर हालत में भगवान पर आश्रित रहो, उसकी दया और कृपा के लिए सदा झोली फैलाये रहो। न मालूम कौन सी घड़ी स्वाँति की बूँद चातक की खुली हुई चोंच में गिर जाय।

राम संदेश : मई, 1979

पढ़ो और मनन करो

(महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के उपदेशों के अंश)

1- मन में मान (egoism) बड़ा कट्टर दुश्मन है और काटे जाने पर भी चोरी छिपे साधक पर हमला करता है . यही सबसे बड़ा दुश्मन है और सब विकारों की जड़ है. इससे होशियार रहना चाहिये. जब मन में मान आवे, किसी बात पर अहँकार पैदा हो, तब तुरन्त ही यह ख़्याल पैदा करो कि - " जो कुछ हुआ सब गुरु कृपा या ईश्वर कृपा से हुआ, मालिक की दया से हुआ, मेरी क्या सामर्थ्य जो मैं ऐसा कर सकता." अहं (ego) को दीनता में बदल दो. इससे मन का मान घट जाता है और ईश्वर प्रेम बढ़ता है. अपने आप को दुनियाँ का सेवक समझो, सब में ईश्वर का रूप देखो --इससे दीनता आती है.

2-जो सत्संगी सत्संग में आकर संसार और उसके भोग -विलासों की बातें करते हैं, वे अभागे हैं. क्या उन्हें इस काम के लिए अपने घर में फ़ुरसत नहीं मिलती ? अपना रास्ता खोटा करते हैं और दूसरों के लिए रोड़ा बनते हैं. परन्तु ऐसे लोगों से भी अधिक अभागे वे हैं जो सत्संग में आकर उनकी बातें चित्त देकर सुनते हैं. परमात्मा ऐसे लोगों पर रहम करें.

3- इन्सानी ज़िन्दगी का आदर्श यह है कि अपने आप को पहिचानें कि " मैं क्या हूं .? ईश्वर को पहिचाने और उसमें स्वयँ को लय कर दें . जो इस आदर्श का रास्ता दिखाये वही सच्चा मज़हब है और जिसने इस आदर्श की प्राप्ती कर ली है वही सच्चा गुरु है . जो इस आदर्श की प्राप्ति करना चाहता है वही सच्चा भक्त है . जब ऐसा शिष्य हो और ऐसा गुरु हो तभी सच्चे लक्ष्य की प्राप्ति मुमकिन है .

4- अगर कोई तुम्हारे सामने किसी की बुराई करता है तो यह समझ लो कि वह तुम्हारी भी बुराई किसी और के सामने कर सकता है. यह आदत परमार्थ में बड़ा विघ्न डालती है. दूसरों की एबजोई (पर - दोष - दर्शन) पाप है. ऐसा आदमी तरक्क़ी नहीं कर सकेगा. बुराई करने की आदत छोड़ो.

5- प्रेम चाहे किसी दुनियांदार से हो या ईश्वर से, उसमें कोई ग़रज़ नहीं होनी चाहिये. जहाँ ग़रज़ होतीं है, उसे प्रेम नहीं कहते. वह सौदेबाज़ी है. गुरु से प्रेम करो और कुछ न चाहो. अपने मन से पूछो कि क्या चाहते हो और जबाब मिले कि कुछ नही चाहते, हमारा प्रीतम खुश रहे, बस यही चाहते हैं. हमारा रास्ता प्रेम का रास्ता है. प्रेम में जहाँ ग़रज़ शामिल होती है, वहीं रास्ता बंद हो जाता है.

6-अपने मन की हालत पर चौंकसी रखो. देखो कहाँ - कहाँ जाता है. विघ्न आयें, उनसे उसको हटाते रहो और गुरु के चरणों का सहारा लो. जहाँ तक हो सके, अपने सत्संगी भाईयों की या अन्य परमार्थियों की मदद करो, और जो ऐसा न कर सको तो उनका किसी तरह का परमार्थी नुकसान करने की इच्छा मत करो. इन बातों पर चलने से हर सत्संगी की तरक्की होगी. सतगुरु ख़ुश होकर उसे प्रेम दान देंगे जो उसे संसार सागर से पार कर देगा.

7- संत के पास जाकर बैठे रहो और मन में कोई ख़्याल मत आने दो, फ़ायदा हो जायेगा. बेबकूफ़ लोग समझते हैं कि हम संत के पास गये लेकिन उसने हमसे बात भी नहीं की. बात की या नहीं की, इससे तुम्हें क्या मतलब ? हर बक्त उसके अन्दर से आत्मा के प्रकाश की और आनन्द की शीतल धारें निकल रही हैं जिससे फ़ायदा हो रहा है. सूरज चमक रहा है. अगर तुमने अपनी आँखें बंद कर रखी हैं तो इसमें सूरज का क्या दोष है ? क्या वह किसी से बात करता है ? नहीं. लेकिन उसके प्रकाश और गरमी से सबका फ़ायदा होता है.

8- भोगने की बनिस्बत भोगने की इच्छा ज़्यादा नुकसान करती है. मन भोगों की गुनावन उठाया करता है चाहे उसके पास उनके भोगने के साधन हों या न हों. इसका आसान तरीक़ा यह है कि मन को भजन, सुमिरन और ध्यान में लगा दो.

9- ईर्ष्या कई तरह की होती है. किसी की सांसारिक तरक्की, धन - दौलत, मान -बढ़ाई, आदि को देखकर ईर्ष्या करना निहायत नीचे दर्ज़े का ओछापन है. यह सब अपने - अपने संस्कारवश होता है. पिछले जन्मों में जिसने जैसा किया वैसा उसने इस जन्म में पाया. तुमने जैसा किया होगा, वैसा तुम पा रहे हो. उसमें ईर्ष्या या जलन की बात ही क्या है ? अगर

कोशिश करो तो तुम्हें भी वही दुनियाँ के सामान और मान आदर मिल सकते हैं जो औरों के पास हैं और जिनसे तुम्हें ईर्ष्या होती हैं. लेकिन ऐसी कोशिश किसी ख़ास जगह और ख़ास मौक़े पर भले ही मुनासिब हो अन्यथा साधक के लिये यह नीचे ले जाती हैं, दुनियाँ में फंसाती हैं और आगे के लिए सँस्कार जमा करती हैं .

अगर किसी ऐसे साधक को देखकर जो तुमसे ज़्यादा तेज़ चल रहा हैं और परमार्थ के रास्ते में तुमसे ज़्यादा तरक्क़ी कर रहा हैं, ख़्याल चाँप का पैदा होता हैं तो यह बात किसी कदर फ़ायदेमन्द हो सकती हैं. उसे देखकर तुम्हारा मन भी यह इरादा करेगा कि तुम भी ऐसी ही सेवा और प्रेम करो जिससे तुम्हारी भी परमार्थ में इसी तरह तरक्क़ी हो. यहाँ तक तो उचित हैं. लेकिन सत्संगी भाईयों की तारीफ़ सुनकर, उनकी तरक्क़ी देखकर बिना बात जलना या बैर विरोध करना और उनकी बुराई करना यह बहुत अधिक विघ्नकारक हैं.

10- भक्ति बढ़ाने के लिए सबसे ऊँचा तरीक़ा यह हैं कि मन के फन्दे से बचें और ईश्वर से नाराज़ न हों . ज़रा गर्मी हो जाये तो कहने लगते हैं कि हाय बड़ी तपन हैं. कभी बारिश ज़्यादा हो गई तो लगे परमात्मा को कोसने. ये सब बुरी बातें हैं. परमात्मा के सब काम सर्वहित के लिए होते हैं. वह जो करता हैं सब अच्छाई के लिए ही करता हैं. लेकिन आम लोग उसके कामों को अपने मन की कसौटी पर परखते हैं . इसलिए जिस हाल में वह रखे उसी में खुश रहो. उफ़ भी न करो - कोई ख़्वाहिश न उठाओ. शुक्र वही हैं कि अगर तक़लीफ़ भी हो रही हो तो भी उसकी सराहना करो. हर समय राज़ी - व - रज़ा रहो.

11- कभी किसी की बुराई न करो. जब -जब बुराई करने का ख़्याल मन में आवे तब - तब यह सोचो कि अगर तुम्हारे लिए भी कोई इस तरह करे तो तुम्हें कैसा लगेगा ? इससे यह ख़्याल टूट जाता हैं.

12- क्या जीव ईश्वर से मिलने के बाद नाश हो गया ? नहीं, वह तो अमर हो गया. जहाँ - जहाँ ईश्वर हैं वही वह जीव भी मौजूद हैं. इसी तरह मोक्ष पुरुष मरते नहीं. वे हमेशा -

हमेशा ईश्वर में रह कर सर्व व्यापी हमेशा -हमेशा ज़िन्दा रहते हैं. इसलिए गुरुजन मरते नहीं हैं ।

13 - उन लोगों से दूर रहें जो निपट संसारी हैं और जिनके मन में सिवाय संसार और उसके भोग विलास की बातों के और कुछ नहीं है. वे ईश्वर से विमुख हैं और जो कोई उनके सम्पर्क में आवेगा उसे भी ईश्वर से विमुख कर देंगे उनकी संगत में बैठने से तुम इधर -उधर की बातें सुनोगे, दुनियाँ की चीज़ों और भोगों के हाल सुनकर तुम्हारे चित्त में भी उनकी याद हरी हो जायेगी. इससे दुःख पैदा होगा और भजन और अभ्यास के समय भी वे याद आकर तुम्हारी साधना में विघ्न डालेंगी.

14- जब दो तारों में गाँठ लग जाती है तो वे अलग नहीं हो सकते. उन्हें अलग -अलग करने के लिए गाँठ खोलनी पड़ेगी. इसी तरह मन और आत्मा में गाँठ पड़ गई है. जब गाँठ छूट जाय तब परमात्मा के दर्शन हों. अज्ञानता ही यह गाँठ है .

सन्त-वचन : भाग 2

परमात्मा से प्रेम करो, अभ्यास करो और यह मत सोचो कि कितना समय लगेगा

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

मनुष्य चार प्रकार के होते हैं - (1) तम प्रकृति वाले (Lower Mind), (2) सत प्रकृति वाले (Upper Mind),

(3) रज प्रकृति वाले (Middle Mind), तथा (4) सबसे ऊपर वाले (Super Mind)

(1) <u>तम प्रकृति वाले</u> (Lower Mind) - इनकी हालत मनुष्य शरीर रखते हुए भी जानवरों की सी होती है। खा-पी लेना, सोना और विषय-भोग कर लेना इनका कर्म होता है। इसी में इनकी सारी ज़िन्दगी कट जाती है। इनमें यह सोचने की शक्ति नहीं होती कि क्या आत्मा और परमात्मा भी कोई चीज़ है, या यह कि मनुष्य को हमेशा की शान्ति और परम आनन्द कैसे प्राप्त हो, इत्यादि। यह जानदार (जीवधारी) होते हुए भी जड़ हैं।

(2) <u>सत प्रकृति वाले</u> (Upper Mind) - यह लोग धर्म पर चलते हैं, दूसरों पर दया करते हैं, दान-पुण्य करते हैं तथा इन्द्रियों का दमन करते हैं। इनका जीवन दूसरों की भलाई के लिए होता है। पिछले जन्म का कोई बचा हुआ संस्कार इस जन्म में पूरा करके सम्पूर्ण ज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति करते हैं और दूसरों को रास्ता दिखाते हैं।

(3) <u>रज प्रकृति वाले</u> (Middle Mind) - यह लोग ऐसे हैं जो डाँवाडोल हैं। इनके अन्दर सुख और दुःख अनुभव करने की शक्ति बहुत होती है। हर वस्तु में सुख की तलाश करते हैं लेकिन वे चीज़ें जिनमें सुख तलाश किया जाता है, दुनियावी, क्षणिक और नश्वर हैं। उनसे हमेशा का सुख नहीं मिलता और उनसे प्रेम करने का फल उदासी और दुःख होता है। कोई भी नाशवान वस्तु सुख और शान्ति नहीं दे सकती। शादी, स्त्री, सन्तान, धन, आदि सबमें जीव ढूँढ़ता है सुख, पर पाता है दुःख। उसे शान्ति कदापि नहीं मिलती।

ऐसे लोगों का समूह ज़्यादातर पाया जाता है। यही लोग परमार्थ के अधिकारी होते हैं लेकिन संस्कार और अक़ल के लिहाज़ से इनके दर्जे (श्रेणी) अलग-अलग होते हैं। ऐसे लोगों को मदद की ज़्यादा ज़रूरत होती है। थोड़ी सी मदद और लगातार अभ्यास से कोई तो एक जन्म में या चार-पाँच जन्मों में अपना काम बना लेते हैं, आवागमन के चक्र से छूट जाते हैं और सम्पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करते हैं।

सन्तमत ऐसे ही लोगों के लिए उद्धार का सरल उपाय बतलाता है। करना यह होता है की सुरत शब्द का अभ्यास करके आत्मा की सोई हुई शक्तियों, यानी सत, चित, आनन्द के अनुभव को जगा लें और उस पर से मन और माया के पर्दों को हटा दें। ऐसे लोगों को चाहिये कि वे वक्त के पूरे सतगुरु की खोज करें और उनसे सुरत शब्द अभ्यास की विधि सीखें।

आत्मा अजर-अमर है। मरते समय जीव की जो इच्छायें शेष रह जाती हैं उन्हीं के आवरण लिए हुए आत्मा शरीर से निकल जाती है और जब फिर से नया शरीर धारण करती है तब जो आवरण उस पर लिपटे रहते हैं उन्हीं के अनुसार प्राणी दूसरे जन्म में कर्म करता है। एक इच्छा पूरी करने के लिए जो कर्म करता है, उससे अनेकों इच्छायें बनती चली जाती हैं। जिसके फलस्वरूप प्रत्येक मृत्यु और नए जन्म होने से आत्मा के ऊपर के आवरण बजाय घटने के और बढ़ते जाते हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि कर्म तो करो लेकिन मन के कहने में मत चलो। यह ग़ुलामी है, मन की परतन्त्रता (dependence) है। मन मुरदा है लेकिन आत्मा से शक्ति लेकर काम करता है, यानी आत्मा को नीचे रखता है और स्वयं उसको ढ़ाक लेता है। तुम आत्मा हो, मन नहीं हो। आत्मा सर्वशक्तिमान है क्योंकि वह उस परमपिता परमेश्वर की अंश है जो समस्त शक्तियों का भण्डार है। मन के कहने में मत चलो। जो मन के अनुसार काम करता है वह भंवर में फँसे हुए या दलदल में फँसे हुए मनुष्य की तरह है जो स्वयं बाहर नहीं निकल सकता। कोशिश करो, मेहनत करो, किन्तु सहारा परमात्मा या गुरु का लो। बिना सहारा लिए काम नहीं बनेगा। कोशिश करो, यह पहली शर्त है। गुरु और मालिक को पुकारो और मदद माँगो, यह दूसरी शर्त है। जिस बच्चे

को गोद में लिए रहोगे वह निकम्मा हो जायेगा, परिश्रमी नहीं बनेगा और जीवन में कभी सफ़ल नहीं होगा। बच्चा वही सफ़ल होगा जो स्वयं हाथ-पाँव मारे। जो मनुष्य अभ्यास नहीं करेगा उसे सफ़लता नहीं मिल सकती।

मनुष्य में उतनी ही शक्तियाँ हैं जितनी परमात्मा में हैं। अन्तर यह है कि वे शक्तियाँ जीव में दबी हुई दशा में हैं, उनको उभारना चाहिये। संसार से निराश होकर जब हम सच्चे हृदय से परमात्मा को पुकारते हैं तो ऊपर से, यानी मालिक की तरफ़ से शक्ति का संचार या प्रवाह (flow) होने लगता है। धीरे-धीरे दबी हुई शक्तियाँ प्रकट होने लगती हैं। उस मनुष्य में इन्सान से देवताओं के गुण और फ़िर परमात्मा के गुण आ जाते हैं। अन्तर केवल मात्रा (quantity) का रह जाता है, गुण (quality) का नहीं।

मनुष्य स्वतंत्र है, वह स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। अपने कर्मों से वह चाहे तो पशु बन जाय, फ़रिश्ता (देवता) बन जाय और चाहे तो मुकम्मिल इन्सान (पूर्ण मानव) बन जाय। मुशिकलों का सामना करो और प्रकृति यानी माद्दे से ऊपर उठो। उसे अपने नियंत्रण में लाओ। अगर ज़रा सी मुसीबत में घबड़ा जाओगे तो तरक़्क़ी कैसे करोगे, कैसे स्वतंत्र बनोगे ? बच्चे को देखो, जब चलना सीखता है तो गिरता है, माँ सहारा देती है, फिर गिर जाता है, चोट खाता है और माँ फिर सहारा देती है। इसी तरह अभ्यास करते-करते एक दिन ऐसा आता है जब वह स्वयं चलने लगता है। माँ की निर्भरता

(dependence) उसे नहीं रहती और वह इस मामले में आज़ाद (स्वतंत्र) हो जाता है। तुम भी कर्म करो, अभ्यास करो और यदि सफ़लता नहीं मिलती तो घबड़ाओ मत, चिन्तित मत होओ और उदास न हो। परमात्मा जो तुम्हारी असली माँ है, तुम्हें मदद देगा और धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते तुम एक दिन स्वतंत्र हो जाओगे। माया से, आवागमन से, जन्म-मरण के दुःख से, सदा के लिए छूट जाओगे।

परमात्मा ने तुम्हें बुद्धि दी है और कर्म करने की स्वतंत्रता दी है। जो काम करो, ख़ूब सोच-समझकर करो। यदि असफल होते हो तो रोओ और मदद माँगो। जो मालिक तुम्हारी

तरफ़ देख रहा है वह आयेगा और किसी न किसी रूप में तुम्हारी सहायता करेगा। लेकिन हर काम में नियत (motive) देखी जाती है। तुम्हारी भी नियत देखी जायेगी। परमात्मा बिना प्रेम के किसी की ओर रागिब (आकृष्ट) नहीं होता। दुनियाँ में भेजकर उसने हमें अपने से अलहदा तो नहीं कर दिया है, लेकिन पहले अपनी तरफ़ तो देखो, क्या दरअसल हम उसे अपना समझते हैं ? क्या हमारी लगन उसके साथ सच्ची है ? अगर हम दुनियाँ के सुखों से सुखी होते हैं तो उस तक नहीं पहुँचते, उन सुखों में ही फँस कर रह जाते हैं। उसकी दया यही है कि जो हम दुखी हैं। इसके कारण हम उसे चाहते तो हैं, उसे याद तो कर लेते हैं। धन, विद्या, बाल-बच्चे, स्त्री इत्यादि रास्ते की रुकावटें हैं।

असफलता की बात भूल जाओ। देखो जब एम.ए. पास करना चाहते हो तो पहली कक्षा से पढ़ना आरम्भ करते हो और उससे ऊपर की कक्षायें पास करते-करते एम.ए. पास करने में कई साल लग जाते हैं। जब संसार की विद्या प्राप्त करने में कई वर्ष लग जाते हैं तो ब्रह्मविद्या जो आध्यात्मिक विद्या है, उसे प्राप्त करने में ज़ल्दी कैसे हो सकती है ? कोई बिरला ही ऐसा संस्कारी होता है जो इसे एक ही जन्म में प्राप्त कर लेता है वरना पाँच जन्म या कम से कम तीन जन्म तो ज़रूर लग ही जाते हैं। पूर्ण विश्वास (full faith) और दृढ़ निश्चय (complete determination) से काम करना चाहिये। संतों ने झूँठ नहीं कहा है। रामचन्द्र जी महाराज ने पहले वशिष्ठ जी को गुरु बनाया। वशिष्ठ का अर्थ है full determination

(पूर्ण या दृढ़ निश्चय) यानी अपने अन्दर पूर्ण दृढ़ इच्छा-शक्ति पैदा की। उसके बाद उन्होंने विश्वामित्र जी को गुरु बनाया. विश्वामित्र का मतलब है - सँसार का मित्र (good to all) । इसके बाद उन्होंने जनकपुरी में जाकर यानी हृदय-चक्र में स्थित करके अपने मन को एकाग्र किया यानी सीता जो मन की शक्ति है उसे वश में किया और यज्ञ में गुरु-कृपा से धनुष्य तोड़ा अर्थात आज्ञा-चक्र से ऊपर गए । फिर बन्दरों की सेना इकट्ठी करके रजोगुणी मन यानी रावण को मारा। फिर विभीक्षण यानी सतोगुणी बुद्धि को राज्य दे दिया ।

(४) चौथे प्रकार के जीव वे हैं जो Supper mind पर हैं यानी मन से ऊँचे उठ गए हैं. जिन्होंने मन की तीनों वृत्तियों को जगा कर अपनी इच्छाओं का दमन कर लिया है या उन्हें अपने वश में कर लिया है, आत्मा का अनुभव कर लिया है और उसकी शक्ति को जगा लिया है। इनमें से एक प्रेम की शक्ति है और उसी प्रेम की सहायता से अपनी सुरत को परमात्मा के चरणों में लगा दिया है। ऐसा मनुष्य सब कर्म करते हुए भी कर्मों से न्यारा है क्योंकि कर्म वह पिछले संस्कार-वश कर रहा है। उसने सब दुनियावी ख़्वाहिशों (सांसारिक इच्छाओं) का ख़ात्मा (अन्त) कर दिया है और उसकी सुरत परमात्मा के चरणों में लगी हुई है जिसके कारण उसे किसी कर्म-फल की इच्छा नहीं है। वह कर्म करते हुए भी अकर्ता है। ऐसे ही मनुष्य मुबारिक हैं, धन्य हैं। वह ज़मीन मुबारिक है जहाँ वे पैदा हुए हैं, वह शहर मुबारिक है जहाँ वे रहते हैं, वह जाति और कौम मुबारिक है जिसमें उनका जन्म हुआ है। वे ही परमात्मा के निज पुत्र हैं। यही अवतार और यही पैगम्बर हैं। यह लोग नर रूप में ईश्वर हैं और यही असली गुरु हैं। वे लोग बड़े ही भाग्यशाली हैं जिनके बीच यह रहते हैं। जो उनके सम्पर्क में आता है वह भवसागर से तर जाता है। वे हज़ारों भूले-भटकों को सही रास्ते पर लगाते हैं और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर देते हैं।

तीन चीज़ें हैं -

(1) ख़ूब कोशिश करो

(2) ख़ूब प्रार्धना करो - परमात्मा से, गुरु से, जिसका तुमने सहारा लिया है। ख़्याली पैर पकड़ लो, रोओ, गिड़गिड़ाओं और शक्ति माँगो।

(3) यह ख़्याल भी मत करो कि नाकामयाबी (असफलता) होगी। अगर कोई बुरी आदत छुड़ानी हो और कोशिश करने, प्रार्थना करने और मदद माँगने से भी न जाती हो तो उदास मत होओ, निराश मत बनो। इसकी ज़िम्मेदारी तुम्हारे ऊपर नहीं है। सोच लो कि इसी में उसकी ख़ुशी है। कर्म करना तुम्हारा काम है, वह करो। फल की इच्छा रखना तुम्हारा काम नहीं है।

मन को जिस बात की आदत पड़ गयी है उसकी वह याद दिलाता रहता है। किसी काम को छोड़ देने के बाद भी मन उसका ख़्याल दिलाता रहता है ठीक उसी तरह जैसे मिटटी का बर्तन बन जाने के बाद भी कुम्हार का चाक चलता ही रहता है। चोर चोरी छोड़ दे लेकिन हेरा-फेरी से नहीं जाता। कंडील का दीपक बुझ जाने के बाद भी उसमें शक्लें कुछ देर चक्कर लगाती ही रहती हैं, वैसे ही किसी काम को छोड़ देने के बाद भी मन में उन आदतों की याद चक्कर लगाया करती है। लेकिन एक दिन ऐसा आयेगा जब वह उसे भी छोड़ देगा। जब आत्मा को उस काम में रुचि ही नहीं रही तो मन कब तक चक्कर काटेगा ? जब चिराग़ ही बुझ गया तो कंडील की शक्लें कब तक चलती रहेंगी ? जब शक्ति ही निकल गयी तो कब तक चक्कर चलेगा ?

जिस चीज़ से घृणा करते हो वह तो छूटेगी ही, चक्कर थोड़ी देर का है। जिसकी आपने क़ीमत दे दी वह तो आपको मिलेगी है। जो कर्म आप कर रहे हैं यह आप क़ीमत दे रहे हैं। क़ीमत क्या है ? तुम्हारी जान। चीज़ क्या मिलेगी ? परमात्मा का प्रेम। इस प्रेम की क़ीमत है तुम्हारी जान। ज़िन्दा रहो और परमात्मा मिल जाय, यह असम्भव है। ज़िन्दगी में ही मर जाओ तब वह मिलेगा। मीरा कहती हैं -

" सूली ऊपर सेज पिया की, किस विधि मिलना होय "

असली आनन्द आत्मा में है। वह जिस चीज़ को छूती है या जिस चीज़ पर उसका अक्स पड़ता है, उसी में आनन्द का भ्रम होने लगता है, जैसे बच्चे को शीशे में अपना ही रूप देखकर किसी दूसरे बच्चे का भ्रम हो जाता है। आनन्द बाहर की चीज़ों में नहीं, तुम्हारे अन्दर है। जब तुम उसे महसूस (अनुभव) करने लगते हो तो तुम्हारी चढ़ाई ऊपर को होने लगती है यानी अन्तर की तरफ़ का रास्ता खुलने लगता है। लेकिन मन की आदत जन्म-जन्मान्तर से नीचे की तरफ़ यानी दुनियाँ की तरफ़ जाने की है। यह जिस्म और इसमें रहने वाला मन ही शैतान है जो हर प्राणी को पथभ्रष्ट करता रहता है, उसे बहकाया करता है, यानी इन्द्रियों में फँसाता रहता है। शैतान किसी इन्सान का नाम नहीं है। दुनियाँ की सारी बुराइयों का नाम ही शैतान है। नतीज़ा यह होता है कि मन नीचे को खींचता है और आत्मा ऊपर को।

यह द्वन्द की अवस्था है। इसी को देवासुर संग्राम भी कहते हैं। आजकल ज्यादातर अभ्यासियों की हालत यही है। इसमें प्रार्थना करो और गुरु से मदद माँगो। जब तक यह संग्राम समाप्त नहीं होगा, सत पर नहीं आओगे। जब तक इच्छाएँ, ख़्वाहिशें मौजूद हैं, यहीं रहोगे, छुटकारा नहीं होगा और बार-बार नीचे आओगे।

जो सत्संग करते हैं, नित्य अभ्यास करते हैं, उन्होंने रास्ता पकड़ रखा है। वे कभी न कभी Upper mind (सत वृत्ति) पर अवश्य आयेंगे। जो परमात्मा को नहीं पूजते हैं, गिरेंगे। चाहे कितना भी बुरा आदमी हो, लगन से परमात्मा का नाम लेने वाला बहता नहीं है। दीन और दुनियाँ दोनों बना लेता है। दुनियाँ में कर्म पूरे कर लेता है और दीन भी मिल जाता है। जो किसी पेड़ से रस्से के द्वारा बँधा है वह घूमता भले ही रहे परन्तु गिरता नहीं है। गुरु के प्रेम का, परमात्मा के नाम का रस्सा अपनी कमर में बाँध लो। कितने भी भटको किन्तु रास्ते से हटने नहीं पाओगे।

दुनियाँ की ख़्वाहिशात को ज्ञान से दबा कर या भोग कर उनसे उपराम हो जाना ही दुनियाँ का बनाना है। मन की इच्छाएँ पूरी हो जाने पर या मन के उपराम हो जाने पर आत्मा की शक्तियाँ जाग उठती हैं और असली पिता या पति परमात्मा के प्रति प्रेम पैदा हो जाता है। यही प्रेम खैंच-खैंच कर अभ्यासी को परमात्मा के दरबार में ले जाता है और उससे मिलाकर एक कर देता है। फिर हमेशा-हमेशा के लिए अभ्यासी अपनी हस्ती (अहं) मिटा देता है। यही दीन का बनना है। जो प्राणी सच्चे गुरु का सहारा लेकर, उसकी याद को दिल में रखकर और उसके भरोसे पर शुभ कर्म करता है, वह बह सकता है लेकिन डूब कभी नहीं सकता। वह इन्द्रिय भोग में फँस सकता है, लेकिन फिर चेतकर परमात्मा के चरणों में लिपट जाता है। इसके विपरीत जो परमात्मा से विमुख हैं वे पिछले अच्छे संस्कारों के कारण अच्छी अवस्था में दिखाई देते हैं, लेकिन जब बुरे संस्कारों का उभार होगा तो उनका कोई सहारा न होगा और वह इन्द्रिय-भोगों में बहकर उन्हीं में फँसा रहेगा और डूब जायगा।

तीन बातें करते रहो। (1) अभ्यास (2) परमात्मा या गुरु से लौ लगाये रहो, और (3) समय कितना भी लगे, इसका ख़्याल मत करो। धीरे-धीरे मन को नियन्त्रण में लाओ। अगर मन नहीं मानता तो लड़ो मत, वरना समय व्यर्थ जायगा। सन्तों का तरीक़ा राज़ी-व-रज़ा का है, हठ योग का नहीं, राजयोग का है।

ईश्वर तुम सबको कामयाबी दे।

राम सन्देश : जनवरी-फरवरी ,।९९४

परमार्थ दीनता से बनता है

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

परमार्थ दीनता से बनता है, केवल बल और पुरुषार्थ से नहीं। जब तक ईश्वर की कृपा नहीं होगी, काम नहीं बनेगा ।सच बात तो यह है कि निम्नलिखित तीन बातें सभी सत्संगी भाइयों को याद रखनी चाहिए, और इसी से ईश्वर कृपा प्राप्त होगी.

।) केवल पुरुषार्थ से परमार्थ नहीं बनेगा

2) 'परमात्मा चाहेगा तो हम से करा लेगा ' - केवल यह कहने से काम नहीं चलेगा

3) परमार्थ के लिए प्रयत्न करना होगा और ईश्वर के सामने दीन बनना पड़ेगा। दीन बनना यह है कि ईश्वर के हुक्मों पर यानि धर्म और सत पर चलना। दीनता आने पर ईश्वर प्रेम जागेगा, ईश्वर कृपा होगी, और ईश्वर कृपा होने पर परमार्थ बनेगा।

इन्सान नहीं जानता कि वह चाहता क्या है और माँगता क्या है। इन्सान अंतःकरण के घाट पर बैठा है। जैसी चाह उठती है वैसा ही वह करता है। जब परमात्मा के दर्शन की चाह होती है तो वह बेज़ार हो जाता है और ऐसा लगता है कि वह अब इस दुनियाँ की चीज़ें नहीं चाहता, पर उसे मालूम नहीं कि उसके अन्दर और बहुत सी चाहों के अम्बार लगे हैं। जब उनकी चाह उठेगी परमात्मा की चाह जाने कहाँ चली जायेगी।

अभ्यास यह है कि मन का घाट बदला जाय और चाहों (इच्छाओं) को एक-एक करके नष्ट कर दें। छोड़ना तो यह है कि अन्दर कोई चाह बाकी न रहे। यदि आपके अन्दर की चाहें बनी हुई हैं तो केवल जंगल में जाने से वैराग्य नहीं होता। इसलिए सन्त कहते हैं कि ऐसी ख़्वाहिशों को जो दुनियाँ के विरुद्ध नहीं हैं, पूरा कर देने में कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु भोग को शास्त्रों के मुताबिक़ भोगो।

प्रारम्भ में उन चीज़ों को छोड़ो जो छोटी-छोटी चीज़ें हैं और आसानी से छोड़ी जा सकती हैं। बड़ी चीज़ों को लेने से निराशा होगी। आदतों का क़बूल कर लेना आसान है लेकिन उनको छोड़ना उतना ही मुश्किल है। शुरुआत छोटी-छोटी चीज़ों से करो।जब इनमें कामयाबी मिलेगी तो हिम्मत और शक्ति कुछ और बढ़ जायेगी। तब बड़ी-बड़ी चीज़ों से लड़ सकोगे। जब तक क़ुर्बानी न कर सको, तब तक बड़ी चीज़ों से मत लड़ो।रास्ता मन और बुद्धि के द्वारा ही चलना है। जब तक मन और बुद्धि शुद्ध और शान्त नहीं होंगे तब तक आत्मा दोनों से न्यारी नहीं होगी और ईश्वर के चरणों में नहीं लगेगी।

यह प्रेम-मार्ग है, कर्म-मार्ग नहीं। प्रेम-मार्ग बड़ा ही ऊँचा है। इसमें मन और बुद्धि को शुद्ध करते हैं। मन में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार - सब आगये। इन सभी को शुद्ध करने के पश्चात ईश्वर के दर्शन हो पाते हैं।

जब दो तारों में गाँठ लग जाती है तो वे अलग नहीं हो सकते। उन्हें अलग करने के लिए गाँठ खोलनी पड़ती है। इसी तरह मन और आत्मा में गाँठ पड़ गयी है। जब यह गाँठ छूट जाय तो परमात्मा के दर्शन हों। अज्ञानता ही यह गाँठ है। सांसारिक चीज़ों को अपना समझने लगे और सारी दुनियावीं चीज़ों में आनन्द देखने लगे, यही अज्ञानता है। आनन्द तो आत्मा में है न कि विषयों में या दुनियाँ में। जब ज्ञान द्वारा यह भ्रान्ति छूट जाती है तब मालुम पड़ता है कि आनन्द तो आत्मा में ही है, इन वस्तुओं में नहीं।

जब आप सोते हैं तो स्वप्न देखते हैं और स्वप्न में सुखी और दुखी होते हैं। परन्तु आँख खुलने पर सब झूँठा जान पड़ता है। स्वप्न में कभी आप राजा बनते हैं और कभी क़त्ल किये जाते हैं। राजा बनने पर ख़ुशी होती है और क़त्ल किये जाने पर दुःख। यह सभी सुख-दुःख भ्रान्ति होने के कारण था। इसी प्रकार हम साँसारिक वस्तुओं के मोह में फँस जाते हैं और भ्रान्तिवश उनमें सुख खोजते हैं।

ख़्याल से ही हम भ्रान्ति में फँसे हैं और ख्याल से ही छूटेंगे। यह सारी दुनियाँ ख़्याल से ही बनी है और ख़्याल से ही छूटेगीभी। इसलिए सतगुरु का ख़्याल बाँध कर इन सभी साँसारिक वासनाओं और भोगों को काटते जाओ॥ यही सबसे नज़दीक रास्ता ईश्वर को पाने का है।

राम सन्देश : मई-जून, 2001.

परमार्थ में सफलता के सुलभ साधन

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

ईश्वर की प्राप्ति के दो ज़रिये हैं - एक हठयोग, और दूसरा राजयोग. हठयोग में पहले गुदा का मुक़ाम (ख़ास) से छिपी हुई (कुंडलियों की) शक्तियों को अभ्यास द्वारा जगाया जाता है और इन पर अपना अधिकार क़ायम किया जाता है. इस तरह से क्रमशः ऊपर के चक्रों को जगाते हुए देह की तमाम शक्तियों पर काबू पाकर ईश्वर में ध्यान लगाया जाता है.

यह तरीक़ा है तो सही और पहले ऋषियों ने इसी को अपनाया है. लेकिन आजकल के ज़माने में अव्वल तो वातावरण ही ऐसा नहीं है जिससे यह साधन बने, फिर इन्सान की इच्छा-शक्ति कमज़ोर हो गयी है, देह का बल पहले लोगों की निस्बत (अपेक्षा) कम हो गया है, फ़ुर्सत भी मनुष्यों को इतनी नहीं है, न ख़ुराक़ ही अच्छी मिलती है जो इसके लिए ज़रूरी है. फिर जानने वाले नहीं रहे, जो हैं भी वह पूरे माहिर यानी एक्सपर्ट नहीं हैं. जिनसे कुछ कामयाबी होती भी है, तो सिर्फ़ जिस्म तक ही रहती है. शरीर तन्दरुस्त रहता है, बीमारी नहीं होती. लकिन असली ग़रज़ जो मन के निरोध शान्त करने की है, वह पूरी नहीं होती. फिर इसके साधन में शक्तियों को जगाने के साथ अक्सर अभ्यासी भोगों और शक्तियों में फँस जाता है, जिससे असल रास्ते से दूर जा पड़ता है, भटक जाता है.

इसलिए सन्तों ने पिछले तरीक़ों का त्याग कर दिया और बहुत कम या बिरले सन्त अब इसे अपनाते हैं. उन्होंने ग़ैर ज़रूरी चीज़ों को छोड़कर ज़रूरी बातों से ताल्लुक़ रखा जो चार हैं - (1) इन्द्री,मन, बुद्धि को काबू में करना और ख़ुदी का नाश करना, यानी Character formation (2) अपनी आत्मा का अनुभव करना यानी Self realization

(3) मन को एकाग्र और शुद्ध करना, यानी Concentration (4) विचार-मनन द्वारा बुद्धि को शुद्ध करना, ईश्वर के गुणों का विचार करना, यानी Meditation इन चारों तरीक़ों का नतीजा ईश्वर की सत्ता का ज्ञान प्राप्त करना यानी Realization है.

दूसरा तरीक़ा सन्तों का है जो राजयोग कहलाता है. इसमें भी कई तरीक़े हैं. कोई प्रकाश को लेता है, कोई नाम के उच्चारण पर ज़ोर देता है, कोई महापुरुषों की सौहबत पर ज़्यादा ज़ोर देता है. लेकिन जहाँ तक देखने में आता है, सन्तों के हर एक तरीक़े में यह तीनों साधन बतलाये जाते हैं :

(1) महापुरुषों की सौहबत यानी सत्संग करना और उनका ध्यान,

(2) परमात्मा के नाम का उच्चारण करना (ज़ुबान से या घट से सुनना),

(3) प्रकाश या शब्द का ध्यान, किसी न किसी शक्ल में कराया जाता है.

बाज़ ने सत्गुरु की तलाश और उनकी सौहबत पर ज़्यादा ज़ोर दिया है और नाम के उच्चारण को दूसरे (गौण) ..... रखा है, बाज़ सन्तों ने गुरु से नाम लेकर एकांत सेवन करके नाम के उच्चारण पर ज़्यादा ज़ोर दिया है. बाज़ों ने प्रकाश के ध्यान को ही मुख्य माना है. लेकिन हर तरीक़े में परमात्मा की मौहब्बत और दुनियाँ से उपराम (विरक्त) होना ज़रूरी बतलाया है.

सन्त मत के कुछ सन्तों का यह विचार है कि सच्चे गुरु के मिलने पर, उनका बाहरी और अन्दरूनी सत्संग करने और उनसे प्यार करने पर त्याग ख़ुद-ब-ख़ुद हो जाता है. त्याग पर अलहदा ज़ोर देने की आवश्यकता नहीं है. उन्होंने प्रेम ही को मुख्य कारण माना है. यह बिलकुल ठीक है, पर तजुर्बा यह बतलाता है कि ऐसे अभ्यासी का, जो पूर्ण तौर से अपने गुरु के कहने में हो और उसी का आशिक़ होकर तन-मन-धन सब अर्पण कर दे, मिलना बहुत मुश्किल है.

हज़ारों अभ्यासियों में से कोई एक दो ऐसे निकलते हैं और अगर कोई ऐसा गुरु है जो ईश्वर-रूप है और ऐसा शिष्य है जिसने अपना सब तन,मन, धन हमेशा के लिए अपने गुरु पर क़ुरबान कर दिया हो तो उसको दुनियाँ की वस्तुओं से ख़ुद ही त्याग हो जायेगा और उसका गुरु से यह प्रेम उसे भवसागर से पार करा देगा. इसलिए हमारे यहाँ के सत्संगी भाइयों को चाहिए के प्रेम के साथ-साथ सत्संग और भजन में अपने मन को देखते चलें और

जिन-जिन चीज़ों में मन फँसा हुआ है और असली लक्ष्य यानी ईश्वर से दूर ले जाता है, उनका त्याग करतें जाना चाहिए. यही सच्चा प्रेम है. अगर प्रेम के साथ मन की वासनाओं का भी त्याग करते रहेंगे तो परमार्थ का रास्ता जल्दी कटेगा.

ज़्यादातर देखने में आता है कि सत्संग में सत्संगियों की हालत बहुत अच्छी रहती है, जहाँ सत्संग से अलग हुए, वह हालत जाती रहती है,और कोई तरक़्क़ी नहीं मालूम देती. इसकी वजह यही है कि सत्संग के वक्त मन दुनियाँ की चीज़ों को छोड़कर उपराम हो जाता है और ईश्वर में मन लग जाता है. लेकिन बाद को उन्हीं वासनाओं में फँस जाता है और कोल्हू के बैल की तरह बरसों अभ्यास करने पर भी जहाँ का तहाँ रहता है. इसलिए सब भाइयों को प्रेम के बढ़ाने के साथ-साथ दुनियांवी चीज़ों में उतना ही फँसना चाहिए जिसके वगैर गुज़ारा न हो.

मन और बुद्धि की शुद्धि ज़रूरी है

परमार्थ यानी आत्मा का अनुभव करने के लिए या ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिए, या हमेशा का सुख हासिल करने और दुःख से निवृति हासिल करने के लिए, दो चीज़ों की सख़्त ज़रूरत है. जितने काम हम करते हैं या तो दिल (मन) की ख़्वाहिश के मुताबिक या बुद्धि के सुझाव से करते हैं. इन दोनों का शुद्ध होना ज़रूरी है. जब तक ज़िन्दगी के ये दोनों पहिये सही तौर पर और साथ-साथ नहीं चलेंगे, ज़िन्दगी का सफ़र या तो मुश्किल से हो सकेगा या बड़ी मुद्दत में तय होगा, और यह भी मुमकिन है कि कई-कई जन्मों तक चक्कर खाते रहें और कामयाबी हासिल न हो.

शुद्ध मन से मतलब यह है कि उसको ईश्वर से लगाव हो और तलाश करके उसको सत्गुरु मिल गया हो और उससे उसको प्रीत हो गयी हो. शुद्ध बुद्धि से मतलब है कि बुद्धि में दुनियाँ की नाशवानता देखकर सच्चाई यानी हमेशा रहने वाली चीज़ों की तलाश हो और दुनियाँ से उपराम हो गया हो. जब तक ये दोनों चीज़े न होंगी इस दुनियाँ के प्रपंच से छूटना नामुमकिन है.

अगर हमको सच्चा गुरु मिल गया है और हमें उसमें सच्चा विश्वास हो जावे और हम उसके आदेशों पर चलें, तो हम अपने लक्ष्य पर निश्चय ही पहुँच जावेंगे. और अगर सच्चा गुरु तो मिल जाय मगर उसमें हमारा सच्चा विश्वास और प्रेम न हो, और हम अपने कर्म और रहनी-सहनी उसके कहने के मुताबिक न बना पायें, तो कामयाबी नामुमकिन सी हो जाती है और अगर हम उस शुद्ध बुद्धि से दुनियाँ की नाशवानता पर ध्यान देकर, जो चीज़ें नाशवान हैं और जिनमें सुख सिर्फ़ ज़ाहिरदारी है और दुःख भरा पड़ा है, छाँट-छाँट कर सच्चाई की तरफ़ नहीं चलते हैं तो भी कामयाबी नामुमकिन हो जाती है, क्योंकि इस रास्ते में हर क़दम बड़े भयानक जानवर (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आदि) हर समय मुँह खोले निगलने को तैयार रहते हैं.

इसलिए रास्ते के जानने वाले (गुरु) की ज़रूरत है जो हमारी हिफाज़त (सुरक्षा) करता जाय वरना मुमकिन है कि न जाने किस चक्कर में फँस कर हम यह जन्म व्यर्थ कर दें. इसलिए जो मुतलाशी (जिज्ञासु) इस बात के हैं कि उनको हमेशा- हमेशा के दुःख से निवृति हो जाये और हमेशा का सुख मिले, उनको चाहिए कि जब तक सच्चा गुरु न मिले, तब तक नाशवान चीज़ों से तबियत हटाकर सच्चाई की तरफ़ चलें और मन से जो हमेशा न रहने वाली चीज़ें हैं, उनकी ख्वाहिशों को आहिस्ता-आहिस्ता छोड़ते जावें. ज़िन्दगी में जिन चीज़ों के वगैर गुज़ारा न हो उनको साथ रखें और उनमें भी अन्दर से न फँसें और जिन चीज़ों से वास्ता न हो या ग़ैर ज़रूरी सी हों, उनसे मन हटाने की कोशिश करें और सच्चे गुरु की तलाश में रहें.

जब सच्चा गुरु मिल जाये तब पूर्ण रूप से अपने आपको उसके अधीन कर दें और जैसा वह कहे वैसा ही करें. और अगर किसी को सच्चा गुरु मिल गया है तो उसके कहने के मुताबिक़ और शुद्ध बुद्धि से सोच विचार करके जो रास्ता वह बतावे उस पर चलने की कोशिश करे. अगर किसी को गुरु में विश्वास भी है पर बुद्धि ने वगैर सोच-विचार करे उसको अपनाया है और पूरी तरह क़बूल नहीं किया है तो गुरु के बतलाये हुए रास्ते पर पूरी श्रद्धा

और भक्ति के साथ नहीं चलेगा. जब तक दिल उसमें मुक़म्मिल तौर पर शामिल नहीं होगा, उससे कामयाबी नहीं होगी और आखिर को रास्ते से भटक जायेगा और छोड़ देगा.

इसलिए हर जिज्ञासु को अपनी कामयाबी के लिए ज़रूरी है कि सच्चे गुरु की शरण ले और विवेक से काम ले. जितनी- जितनी तरक़्क़ी इन दोनों बातों में करता जावेगा, उतना ही रास्ता उसका जल्दी तय होता जायेगा और दो- तीन जन्मों में हमेशा-हमेशा के लिए आवागमन के प्रपंच से छूट जावेगा. बल्कि यह भी ज़रूरी नहीं है कि दो- तीन जन्म ही लगें. यह रास्ते की मुद्दत मुतलाशी (जिज्ञासु) के शौक और रफ़्तार पर मुनहसिर है. (उसकी रुचि, उत्साह, और गति की प्रगति पर निर्भर है.)

पूजा में मन न लगने के कारण और उपाय

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जिसको देखो वह यही शिकायत करता है कि उसका पूजा में मन नहीं लगता. मन न लगने की वजह यह है कि तुमने दुनियाँ के काम और उसकी चीज़ों को मुख्य समझ रखा है और पूजा और परमार्थ को गौण. मन तो एक ही है और वह हर समय दुनियाँ की चीज़ों में फँसा रहता है, उन्हीं में आनन्द तलाश करता है, और दुनियाँ को ही सब कुछ समझ रखा है, तो मन दुनियाँ में से निकले कैसे ? परमार्थ का ख़्याल तो अब शुरू हुआ है, इसमें रस और आनन्द तो तब आयेगा जब इसमें घुसोगे और अपने मन को दुनियाँ की तरफ़ से मोड़ कर उधर लगाओगे.

यह सोच लेना कि गुरु-कृपा होगी तो सब ठीक हो जायेगा कमज़ोरी है. गुरु-कृपा तो शुरू-शुरू में एक तरह से hypnotism (सम्मोहन) का काम करती है और वह temporary (अस्थायी) तौर पर आपकी सुरत को ऊपर खैंच लेती है जिससे थोड़ी बहुत देर के लिये ऊपर के घाट का रस मिलने लगता है और मन उसमें लगने लगता है. लेकिन यह अवस्था सदा नहीं रह सकती. जब तक स्वयँ कोशिश नहीं करोगे और अपनी सुरत को खैंच कर उसकी स्थिति ऊपर के घाटों में नहीं करोगे तब तक मन को ऊपर के घाटों का आनन्द कैसे मिलेगा, और वह कैसे पूजा में लगेगा ? मुद्दत से यह मन दुनियाँ को ही सब कुछ समझ रहा है, जन्म-जन्मान्तर से वह दुनियाँ में फँसा हुआ है और दुनियाँ में ही रम रहा है. आहिस्ता-आहिस्ता दुनियाँ की क़दर को कम करो और परमार्थ को मुक़द्दम (मुख्य) रख कर उसकी तरफ़ झुको.

एक काम तो आप जन्म-जन्मान्तर से कर रहे हैं और एक काम अब शुरू हुआ है. उसके लिये भी दुनियाँ के और घर के कामकाज में समय नहीं दे पाते. इसलिए जब तक मन पर जब्र नहीं करोगे, वह तो दुनियाँ में ही फँसेगा. जब तक दुनियाँ के कर्मों यानी इन्द्रिय-

भोग, मन की ख़्वाहिशात और बुद्धि की चतुराई को ही मुक़्क़दम (मुख्य) समझ रखा है तब तक मन पूजा में नहीं लगेगा. जब यह सोचोगे कि यह दुनियाँ जो तुम बना रहे हो, थोड़े दिनों का शौक़ है, यहाँ की हर चीज़ बनती है, बिगड़ती है और नष्ट हो जाती है, जब तक यहाँ की असारता को नहीं समझोगे तब तक अपनी तवज्जह (सुरत) को दुनियाँ से हटाकर उस ईश्वर की तरफ़ नहीं लगा सकोगे जो तुम्हारा हमेशा का साथी है. दुनियाँ की क़दर मन से जब तक कम नहीं होगी तब तक मन दूसरी चीज़ को पसन्द नहीं करेगा. दुनियाँ का यह कारख़ाना एक ऐसा जाल है कि इसमें जो एक बार फँस गया वह फँसता ही चला जाता है. आपने मकान बनवाया तो सैंकड़ों झंझट उसको बनाने में सामने आये. कहीं से रूपये का इन्तज़ाम किया तो कहीं से सामान का. धूप, बरसात और ख़राब मौसम में खड़े रहकर उसके काम का निरीक्षण किया. मकान जब बन कर तैयार हुआ तो यह फ़िकर पड़ गयी कि कोई अच्छा किरायेदार मिले. जब किरायेदार मिल गया तो उससे तू-तू, मैं-मैं होने लग गयी. अब उसको निकालने की फ़िकर पड़ गयी. टूट-फूट, मरम्मत कराने की फ़िकर पड़ गयी. मकान बनवाया तो इसलिए था कि आराम और ख़ुशी मिलेगी, लेकिन ख़ुशी मिलना तो दूर रहा उल्टी फ़िकर पीछे पड़ गयी. कहाँ है चैन ? कहाँ है ख़ुशी ? ख़ुशी जिसे तुम दुनियाँ की चीज़ों में तलाश करते हो वह उनमें नहीं है. एक तरफ़ तो तराज़ू का वह पड़ला है जिसमें मनों का बोझ है, यानी दिन-रात के चौबीसों घण्टों में कुछ मिनट छोड़कर दुनियाँ में ही व्यवहार कर रहे हो और उसी के सोच-विचार में लगे हो. दूसरी तरफ़ का पलड़ा बहुत ही हल्का है. परमार्थ के कामों में या सन्ध्या-पूजा में अगर बैठे तो दस-पाँच मिनट के लिये और उसमें भी एक- दो मिनट तबियत लगी तो लगी वरना मन में दुनियाँ के ही विचार आते रहे. अब तुम ही सोचो कि सारे दिन तो दुनियाँ का काम किया और एक -दो मिनट मन पूजा में लगा तो कैसे काम चलेगा ? मन तो उधर ही जायेगा जिधर यह सारे दिन लगा रहता है. मन को उधर से हटाओ. विवेक-बुद्धि से काम लो. सोचो कि दुनियाँ की तमाम वस्तुएँ जिनमें जिनमें तुम आनन्द लेते हो, वे नश्वर हैं. कुछ तो नाश हो चुकी हैं और कुछ नाश होने वाली हैं. उनसे अपना मन हटाओ. सख़्ती से काम लो और बुराई से हट कर सत-वृत्ति पर आओ. मन में

ख़्वाहिश उठती है, बुद्धि उसका साथ देती है और इन्द्रियाँ उस काम को पूरा करती हैं. सब तरफ़ से मन को भींच कर ईश्वर की तरफ़ लगाओ तब तबियत लगेगी.

हर समय आपने मन पर निगाह रखो कि यह कौन-कौन सी ख़्वाहिशें उठा रहा है और वे तुम्हें किधर ले जा रही हैं ? असली अभ्यास यह है कि उन ख़्वाहिशों को मत उठने दो, अगर उठती हैं तो उन्हें दबा दो. आगे मत बढ़ने दो. इस काम में अपनी कोशिश के साथ-साथ परमात्मा से प्रार्थना करते रहो और उससे मदद माँगो. भाव को बदल कर स्वभाव बना लो. इन्द्रियों में उतना फँसो जितना मज़बूरी की वजह से हो, उनका आनन्द प्राप्त करने के लिये उनमें व्यवहार मत करो. औलाद पैदा करो राष्ट्र (nation) की ख़ातिर न कि इन्द्रिय भोग और आनन्द के लिये. सब चीज़ें for duty sake(कर्त्तव्य मात्र) भोगनी चाहिये, यही धर्म है. जो मनुष्य इन्द्रिय-भोग में फँसा है, वह मन, जो उससे कहीं अधिक बलवान है, उससे कैसे आपने आपको हटायेगा. आत्मा मन के फन्दे से न्यारी होकर ऊपर कैसे चढ़ेगी ? तम और रज से निकलकर सत पर आओ. तुम्हारे अन्दर नेकी ही नेकी हो जाय, सच्चाई ही सच्चाई हो जाय. बुराई लेशमात्र भी न रहे, तब परमार्थ का रास्ता खुलता है.

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने एक कहानी अपने प्रेमियों को सुनाई थी. एक सेठ कहीं जा रहा था. रास्ते में जंगल पड़ा. तीन डाकुओं ने उसे घेर लिया और उसका सारा माल छीन कर उसे रस्सियों के द्वारा पेड़ से बाँध दिया. एक ने कहा - "इसे जान से मार दो." दूसरा बोला कि रस्सियों से बंधा-बंधा अपने आप मर जायेगा. हमें मारने की क्या ज़रूरत है. यह कह कर वे चल दिये. तीसरे डाकू को को कुछ दया आयी, उसने उस सेठ को रस्सियों से खोलकर जंगल के बाहर निकाल दिया और उस सड़क तक छोड़ आया जो उसके घर तक जाती थी. डाकू इससे आगे नहीं गया क्योंकि उसे पुलिस पकड़ लेती.

इस कहानी का आध्यात्मिक विश्लेषण यह है कि सेठ जीवात्मा है और जंगल यह संसार है. उसका माल उसके पूर्व जन्मों के शुभ संस्कार हैं. डाकू तमोगुणी मन है जिसका स्वभाव है इन्द्रियों में लिप्त रहना. यह आदमी को जान से मार देता है यानी मनुष्य में आदमी के से गुण नहीं रहते, वह जानवर की दशा में चला जाता है. यही मनुष्य को मार देना है. दूसरा डाकू

रजोगुणी मन है जो दुनियाँ की ख़्वाहिशात में फँसाता है और रस्सियों की तरह उसे बन्धनों में जकड़ देता है कि मरते मर जाता है, लेकिन उसकी ख़्वाहिशें पूरी होने पर नहीं आतीं. तीसरा डाकू सतोगुणी मन है जो मनुष्य को नेकी पर चला रहा है, भलाई और सच्चाई उसने अपना स्वभाव बना लिया है. वह बन्धनों से मुक्त होकर सीधे रास्ते पर पड़ जायेगा और यह सीधा रास्ता संसार रूपी जंगल से निकाल कर उसे अपने निज घर यानी परमात्मा के पास ले जायेगा, और आत्मा निर्लेप होकर परमात्मा के दर्शन करती है और उससे मिलकर एक हो जाती है. यही लक्ष्य है और यही मोक्ष है.

प्रेम का स्वरुप

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

इस जगत में प्रेम ही असली सार है जिससे तीनों लोकों की रचना ठहरी हुई है। अगर प्रेम न रहे तो सारी रचना नष्ट हो जाय। इस प्रेम के तीन दर्जे हैं। (1) एक प्रेम इन्द्रियों के भोग के कारण होता है, यानी जिन चीज़ों से इन्द्रियों को आनन्द मिलता है उनसे हम प्रेम करते हैं। (2) दूसरा प्रेम मन के कारण होता है, यानी जिन चीज़ों या प्राणियों से हमारे मन की इच्छाएँ पूरी होने की आशा होती है, उनसे हम प्रेम करते हैं। (3) तीसरा प्रेम बुद्धि के कारण होता है। बुद्धि से जो हम निर्णय करते हैं कि अमुक वस्तु की प्राप्ति से हमारा लाभ होगा और हमको सुख मिलेगा, उससे हम प्रेम करते हैं। परन्तु यह सभी चीज़ें बदलती रहती हैं, यानी इन्द्रियों का आनन्द, मन के संकल्प-विकल्प और इच्छाएँ तथा बुद्धि की चतुराई, आदि सभी हमेशा बदलते रहते हैं। इससे इन तीनों तरह के प्रेम भी बदलते रहते हैं और इनका कोई भरोसा नहीं है। जिस चीज़ में हमें इन्द्रिय-सुख नहीं मिलता उसे हम छोड़ देते हैं। जिस किसी आदमी या वस्तु से हमारे मन की इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं, उससे हम अपना सम्बन्ध हटा लेते हैं और अलग हो जाते हैं। जब हमारी बुद्धि हमें यह बताती है कि अमुक आदमी या वस्तु से हमारा स्वार्थ पूरा नहीं होगा तो हम उसे छोड़ देते हैं। इस प्रकार जिस आदमी की सुरत इन तीनों स्थानों में लगी है, अर्थात इन्द्रिय, मन और बुद्धि में लगी है, उसका प्रेम हमेशा क़ायम नहीं रहता।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिये। बुद्धि का स्थान मन और आत्मा के बीच में है। वहाँ इसके दो रूप हो जाते हैं। जब वह दुनियाँ की तरफ़ लगती है तब वह मलिन बुद्धि कहलाती है, और जब वह दुनियाँ को छोड़कर आत्मा की तरफ़ लगती है, तब वह शुद्ध बुद्धि कहलाती है। जो बुद्धि मन के साथ बहती है, यानी मलिन बुद्धि, वह बदलती रहती है और उसका प्रेम भी

बदलता रहता है। जो बुद्धि शुद्ध हो जाती है, दुनियाँ और उसके सामान की तरफ़ नहीं ले जाती, वह परमात्मा की तरफ़ ले जाती है और उसका प्रेम भी टिकाऊ रहता है।

इस दुनियाँ की हरेक वस्तु क्षणिक और नश्वर है। अतः उस वस्तु का प्रेम भी क्षणिक और नश्वर होता है, क़ायम रहने वाला नहीं होता। लेकिन जब अभ्यासी मन की इन तीन अवस्थाओं से ऊपर आ जाता है, यानी तम, रज और सत से ऊपर उठ जाता है और आत्मिक अभ्यास करके अपनी आत्मा का अनुभव कर लेता है तो उसकी आत्मिक शक्तियाँ जाग उठती

हैं। उसकी आत्मा अपने अंशी कुल मालिक से दुनियाँ का सब व्यवहार करते हुए प्रेम करने लगती हैं। ऐसी दशा में दुनियाँ से वास्ता तो रहता है, लेकिन प्रेम नहीं रहता। चूँकि यह दोनों असल में अनादि हैं, एक ही हैं, हमेशा से हैं और हमेशा रहने वाले हैं, इससे यही सच्चा प्रेम है और विश्वास के लायक है। यही प्रेम सच्चा सुखदायक है। और प्रेम में सुख के साथ दुःख भी है लेकिन इस प्रेम में आनन्द ही आनन्द है।

<u>सत्संगी, सिद्ध, संत-सद्गुरु</u>

सारे संसारी जीव इन्द्रिय-भोग में फँसे हुए हैं और उसी में आते-जाते और चक्कर काटते रहते हैं। इन्द्रियों का सुख शाश्वत नहीं है और इस सुख के साथ विशेष दुःख लगा हुआ है। जो इस सच्चाई को जानकर अभ्यास करता हुआ, आत्मा या परमात्मा को अपना लक्ष्य बनाकर अभ्यास करता है, वह सत्संगी कहलाता है। यह छठे चक्र यानी आज्ञा-चक्र से कुछ ऊपर चढ़ गया है। उसके साथ सत्संग करने से कुछ न कुछ इन्द्रियों को वश में करने में मदद मिलती है।

दूसरे अभ्यासी वह हैं जो त्रिकुटी से ऊपर निकल गये हैं लेकिन सतलोक तक नहीं पहुँचे हैं। इनको सिद्ध कहते हैं। इनके साथ सत्संग करने से मन की वासनाएँ दूर होने लगती हैं और मन कुछ एकाग्र होने लगता है।

तीसरे अभ्यासी वे लोग हैं जो सतपद से पार हो चुके हैं। इनके साथ अभ्यास करने से असली परमार्थ बनना आरम्भ होता है और इन्हीं को संत या सद्गुरु कहते हैं। संतों का सत्संग किये बिना आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। जिन लोगों को असली परमार्थ की चाह है उनको चाहिए कि संत सद्गुरु की खोज करें और अगर वे सौभाग्यवश मिल जावें तो उनकी संगति से लाभ उठाकर अपना काम बना लें, क्योंकि यह रत्न अनमोल है। और अगर वे न मिल पायें तो किसी साधु की मदद लेकर अभ्यास प्रारम्भ कर दें और संत सद्गुरु मिलने पर उनकी शरण ले लें। अगर संत सद्गुरु न मिलें तो किसी ऐसे साध की संगति अख़्त्यार करें जो किसी संत की सौहबत (सत-संगति) उठा चुका हो और अभ्यास करता हो और त्रिकुटी से या तो पार हो गया हो या होने वाला हो। यदि वह भी न मिलें तो किसी ऐसे प्रेमी-भक्त से, जो किसी साध की संगति उठा चुका हो, अभ्यास सीख कर शुरू कर दे और साध या सद्गुरु की तलाश में रहे। बिना सद्गुरु की शरण लिये और उसका सत्संग किये असली परमार्थ नहीं बन सकता ।

अभ्यास के चार तरीके

अभ्यास के सैंकड़ों तरीक़े हैं, परन्तु ग़ौर से देखा जाय तो सब तरीक़े चार हिस्सों में बट जाते हैं।

(1) सलूक - इस तरीक़े में अभ्यास की विधि बतला दी जाती है और आगे की निशानियाँ बतला दी जाती हैं जिससे अभ्यासी रास्ते को जाँच सकता है कि ठीक चल रहा है या नहीं। इसमें अभ्यासी एक के बाद दूसरे चक्रों को बेधता हुआ स्वयं अपने परिश्रम से आगे बढ़ता है। इस तरीक़े में बहुत वक़्त लगता है और यह रास्ता बहुत मुशिकल है। प्राणायाम के कठिन साधन हर आदमी के लिये सम्भव नहीं हैं। हठयोग की सारी क्रियायें इसी में सम्मिलित हैं। इसमें किसी जानकार के बिना कोई बिरला ही सफल होता है।

(2) जज़्ब (खिंचन) - इस तरीक़े में गुरु जो स्वयं मजज़ूब यानी खिंचे हुए होते हैं, दूसरे को अपनी जगह पर खींच लेते हैं जिससे सुरत को अपने प्रीतम का ध्यान तो रहता

हैं लेकिन मन नीचे ही रह जाता है जिससे वे दुनियाँ के काम के नहीं रहते। इसमें दोष यह है कि मन नीचे के स्थानों को छोड़कर ऊपर नहीं आता और सब संस्कार दबे रह जाते हैं इसलिए फिर जन्म लेना पड़ता है। अभ्यासी एक जगह ठहर कर रह जाता है और आगे की तरक़्क़ी रुक जाती है।

(3) सलूकुल जज़्ब - इस तरीक़े में शुरू में ख़ुद रास्ता चलना पड़ता है और इसमें कोई रस नहीं आता। शुरू-शुरू में धीरे-धीरे रास्ता तय होता है और बार-बार इन्द्रियाँ अपने में फँसाती हैं। बाद को गुरु कृपा शामिल होने लगती है। खिंचावट ऊपर को होने लगती है और रास्ता भी तय होने लगता है। इसमें यह कमी है कि शुरू में रस और आनन्द न मिलने के कारण अभ्यासी अक्सर इसे छोड़ बैठते हैं।

(4) जज़्बुल्ल सलूक - इस तरीक़े में संत-सद्गुरु अपनी इच्छा-शक्ति (will powe) से मन को एकाग्र कर देते हैं। मन के एकाग्र होने से सुरत भी एकाग्र हो जाती है और ऊपर को चढ़ती है। इसमें अभ्यासी को शुरू से ही आनन्द आने लगता है और अभ्यास में रस मिलने लगता है। दूसरे, संत-सतगुरु नीचे के चक्रों के देवताओं को ऊपर के चक्रों के देवताओं से मिला देते हैं और अपने प्रेम की डोर से बाँध कर अभ्यासी को आत्मा का दर्शन करा देते हैं और उसे असली आनन्द का अनुभव करा देते हैं। इसी को चढ़ाव या अरूज कहते हैं। इसके बाद सलूक यानी मन की गढ़त कराते हैं जिससे आहिस्ता-आहिस्ता अख़लाक़ (चरित्र, सदाचार) ठीक होने लगता है यानी रहनी-सहनी ठीक होने लगती है। इस तरीक़े में आनन्द मिलने से अभ्यासी का शौक (चाव) बढ़ता जाता है और विश्वास पक्का हो जाता है। उसका मन तम से रज पर और रज से सत पर आ जाता है। नीचे गिरने का नाम सूफ़ियों की भाषा में नज़ूल है।

जब तक मन शान्त नहीं हो जाता यानी उसकी सारी वासनाएँ समाप्त नहीं हो जातीं तब तक वह संयमित (तक़मीलशुदा) नहीं कहलाता। संयमित होना या तक़मील होना यह है कि हर शक्ति कायदे में आ जाय। बिलकुल ठीक-ठीक शक्ति का प्रयोग हो। मन की उपरामता मुद्दत (बहुत काल) में होती है और पचास बरस से पहले बहुत ही कम अभ्यासी

इस स्थान पर पहुँच पाते हैं। इसमें यह विशेषता है कि अभ्यासी को शुरू में परिश्रम स्वयं नहीं करना पड़ता बल्कि गुरु की कमाई का फ़ायदा मिल जाता है और आत्मा का आनन्द जल्दी से अनुभव हो जाता है। शर्त यह है कि शिष्य की दुई मिट चुकी हो, उसने अपना अहं पूर्ण रूप से गुरु को समर्पण कर दिया हो यानी पूरी तरह गुरु में लय हो गया हो।

आत्मा का आनन्द ऐसा आनन्द है कि जिसने एक बार उसका अनुभव कर लिया वह उसको कभी भूल ही नहीं सकता। यह ज़रूर है कि अपने-अपने संस्कारों के अनुसार अभ्यासी दुनियाँ की वासनाओं में फँस जाता है लेकिन यह आत्म- अनुभव और उसका आनन्द उसको ज़्यादे देर उसको वहाँ ठहरने नहीं देता और भोगों का ज़ोर कम हो जाने पर फिर उसकी याद सताती है और वह उस भोग को छोड़कर फिर अपने इष्ट की तरफ़ चलने लगता है। इसी तरह धीरे-धीरे आत्मा सब चीज़ों से उपराम होकर अपने प्रीतम के चरणों में पहुँच जाती है और मन हमेशा के लिए शान्त हो जाता है। यह ज़रूर है कि जब तक मन जगत की इच्छाओं से उपराम नहीं होता, आत्मा को परमात्मा की शरण नहीं मिलती और वह दुनियाँ के भोगों में फँसती रहती है। यह रास्ता बहुत सुगम और सफल है लेकिन इसमें गुरु और शिष्य दोनों में दो बातों का होना बहुत ज़रूरी है. गुरु में - (1) सच्चा गुरु हो यानी जिसने परमात्मा के चरणों में हमेशा के लिए जगह पा ली हो । (2) वह बेग़रज़ हो यानी शिष्य की सिवाय आत्मिक उन्नति के कुछ न चाहता हो। शिष्य में - (1) शिष्य को यह पक्का विश्वास हो कि जो कुछ गुरु कहता है उसी पर चलने में उसकी भलाई है, चाहे सख़्ती हो या नरमी, दोनों अवस्थाओं में गुरु में दृढ़ विश्वास रखे। (2) उसको गुरु से सच्ची प्रीति हो यानी उसके हृदय में सिवाय गुरु के प्रेम के कोई दूसरी चाह न हो और यदि हो भी तो वह सिर्फ़ अपने उद्धार की हो। गुरु में अपने आपको पूर्ण रूप से समर्पण और लय कर चुका हो।

जितनी कमी इन दोनों बातों में होगी उतनी ही देर आत्मा के साक्षात्कार में लगेगी। यह तरीक़ा है जो हमारे यहाँ बरता जाता है, जिसकी नींव कृपा करके हमारे बुजुर्गों ने डाली है। इसमें आत्म दर्शन पहले होता है और आचरण बाद में सुधरता है। फिर परमात्मा की

नज़दीकी (सामीप्य) हासिल करने के अतिरिक्त कोई कामना शेष नहीं रहती। इसीलिए कहा है -

अव्वले माँ आख़िरे हर मुनतहीस्त,

आखरे माँ जेबे तमन्ना तिहीस्त।

(भावार्थ - हमारा प्रारम्भ वहाँ से होता है जहाँ औरों का अभ्यास समाप्त होता है, हमारा अन्त वहाँ है जहाँ तमन्ना की जेब ख़ाली हो जाती है - मन में कोई इच्छा शेष नहीं रहती।)

हमारे तरीक़े के भाइयों को जिन्हें अभ्यास में आनन्द तो आता है लेकिन आचरण ठीक नहीं हुआ है, घबराना नहीं चाहिए। यह रास्ता बहुत लम्बा व कठिन अवश्य है परन्तु सफलता उन सभी को मिलती है जो इस पर बराबर चलते रहते हैं। इसका अन्त भी बेमिसाल है यानी इसकी प्रीति के पश्चात कुछ और प्राप्त करना बाकी नहीं रहता। अभ्यासियों को तीन बातें अवश्य करनी चाहिए - (1) जहाँ तक हो सके गुरु का सत्संग करे। (2) आन्तरिक अभ्यास - ध्यान, भजन, सुमिरन और मनन करते रहें। यहाँ तक कि एक सेकिण्ड के लिये भी अभ्यास को न छोड़ें। (3) अपने मन के ख़्यालों पर हमेशा निगाह रखें और बुरे ख़्यालों को हटाकर अच्छे ख़्याल कायम करते रहें। निश्चित है कि फ़ायदा होगा।

राम सन्देश : मार्च-अप्रैल, 2002.

प्रेम से वैराग-आत्मज्ञान या ईश्वर प्राप्ति का सबसे सरल और छोटा रास्ता.

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

वैराग्य क्यों पैदा होता है ? जब हम कोई काम करते हैं या किसी चीज़ को भोगते हैं तो हमारा ध्यान उसके अच्छे नतीज़ों की तरफ़ रहता है. जैसा हम चाहते हैं वैसा नतीज़ा नहीं मिलता तब हमें दुःख होता है. जब हम देखते हैं कि यह तो दुःख का कारण है तो हमें इस काम या भोग से वैराग हो जाता है. शादी हुई, बड़ी ख़ुशी होती है कि अब तो हमारे सुख के दिन आयेंगे, अब तो हमें जीवन-साथी मिल गया. लेकिन जब गृहस्थी के झटके लगते हैं तो मन में वह ख़ुशी नहीं रहती जिसको लेकर शादी की थी. यह दुःख के डर से पैदा हुआ वैराग्य है.

लड़कियाँ ब्याह का बड़ा चाव रखती हैं कि हमारी इच्छाएँ पूरी होंगी. जहाँ ससुराल में आयीं और अगर मुसीबतें सामने आयीं तो दुखी होने लगती हैं. शादी से ऊबने लगती हैं. शादी के बाद अगर दुःख मिला तो दुनियाँ से वैराग्य होने लगता है. शादी से पहले जो ख़ुशी पैदा हुई थी वह असल में एक ख़्याल था, ख़ुशी नहीं थी. इस तरह का जो वैराग्य होता है वह ख़्याल के द्वारा होता है. यानी किसी चीज़ को सोचकर वहाँ से मन हट जाना. पहला वैराग डर से या भय से पैदा हुआ, दूसरा सोचने से पैदा हुआ. यह विवेक वैराग है.

ईश्वर को प्यार करते-करते जब उससे सच्चा प्यार हो जाता है, उसकी नज़दीकी के प्यार में जो आनन्द है, वह दुनियाँ की किसी चीज़ में नहीं है. इसलिए उस प्यार का आकर्षण धीरे-धीरे दुनियाँ और उसकी सब चीज़ों का मन से त्याग करा देता है.

पहला वैराग डर से हुआ, दूसरा विवेक से और तीसरा वैराग साधना से हुआ. एक चौथा वैराग और है. आपने सपने में देखा कि शेर आ रहा है और उसके डर से आप भागे जा रहे हैं. सामने से साँप आ गया. बस, कैसे बचा जाये. उस वक़्त मन में कितनी घबराहट होती है. जब आँख खुलती है तो उसी डर से आप कुछ देर तो काँपते हैं फिर जब नींद से पूरी तरह होश में आते हैं तो उसे भूल जाते हैं - यह तो सपना था. सपने का ज्ञान हो जाने पर सत्य

को, असलियत को जान जाते हैं. कोई आदमी रेगिस्तान में जाता है और उसे प्यास लगी हो तो वह यह देखता है कि दूर रेत में पानी बह रहा है. प्यास के कारण वह लपक कर वहाँ जाता है तो देखता है कि वहाँ पानी नहीं है, और थोड़ी दूर पर धारा बह रही है. आगे जाता है तो देखता है कि पानी नहीं वह तो रेत है, नदी तो आगे बह रही है. चलते-चलते उसे यही लगता है कि यहाँ नहीं नदी तो और आगे है, और आगे बह रही है. यह तो सब रेत ही रेत है. जितना आगे बढ़ता जाता है पानी उतना ही आगे नज़र आता है. इसी मृगतृष्णा में वह अपनी जान दे देता है.

इसी तरह से आदमी दुनियाँ की चीज़ों को पकड़ता है. जिस चीज़ या भोग को आनन्द की आस लगाकर पकड़ता है और उसमें उसे आनन्द नहीं मिलता तब दूसरी-दूसरी चीज़ों को पकड़ता है. जब उन्हें भी झूँठी पाता है तो उनके आगे जो और चीज़ें हैं उन्हें प्राप्त करने की कोशिश करता है, परन्तु देखता है कि जिस स्थायी आनन्द की उसे तलाश है वह दुनियाँ की चीज़ों में नहीं है. जिसे यह ख़्याल पैदा हो गया, उसके मन में तो दुनियाँ से वैराग पैदा हो जाता है. जिसको यह ख़्याल पैदा नहीं होता वह दुनियाँ की वस्तुओं में, मृगतृष्णा के आनन्द में, अपना अमूल्य जीवन गवाँ बैठता है. जब यह हक़ीक़त खुल जाती है, यानी यह ज्ञान हो जाता है कि दुनियाँ की चीज़ों में वह आनन्द नहीं है जिसकी उसे तलाश है, तो फिर मनुष्य उन चीज़ों में नहीं फँसता. इस तरह का वैराग विवेक द्वारा, उपराम होने से पैदा होता है.

स्वामी विवेकानंद जी एक बार कहीं जा रहे थे. बहुत प्यास लग रही थी. शहर के किनारे ही थोड़ी दूर पर रेत का एक टीला था. ऐसा लगा कि यह तो बड़ा सुहावना उपवन है, यह रहा, बस पास में ही तो है. जब वहाँ पहुँचे और देखा तो वैसा कुछ नहीं था. प्यास बहुत लगी हुई थी तो एक बार फिर उन्होंने उस तरफ़ देखा, कुछ दूर पर फिर वैसा ही दृश्य दिखाई दिया, लेकिन वहाँ भी था नहीं. फिर उधर से उन्होंने अपना ख़्याल ही हटा लिया. जान गए कि यह ख़्याल ही था.

ये जो दुनियाँ में दीखता है उसमें नफ़रत और मोंहब्बत धोखा है. ज्ञान होने पर असलियत खुल जाती है. इस हालत में अगरचे (यद्यपि) मनुष्य सबको देख रहा है, लेकिन

जानता है कि इसमें किसी चीज़ में असली आनन्द नहीं है. आनन्द तो वो है जो उसने अपने अन्तर में प्राप्त कर लिया है. नफ़रत और मौहब्बत से हटकर पहले ज्ञान के द्वारा यह अभ्यास करना है कि यह दुनियाँ दिखती कुछ है, वास्तव में वैसी नहीं है. अगर ऐसा अभ्यास पक्का हो गया है तो यह वेदान्त है.

जिसने दुनियाँ को एक सराय समझ लिया है, सब जगह सराय का तमाशा देख रहा है और यह निश्चय हो गया है कि यह सब तो स्वप्न है जो हम देख रहे हैं - वही वेदान्ती है. आत्मा जब तक मन के साथ रहती है तब तक स्वप्न की अवस्था जैसी रहती है, दुनियाँ के अन्दर सभी जगह सराय का सा आनन्द आता है, लेकिन जब वह मन से न्यारी हो जाती है तब यह समझती है कि यह सब तो धोखा है, असली आनन्द तो सिर्फ़ ईश्वर में है. फिर ऐसा आदमी जिसकी आत्मा जाग्रत हो गयी हो, ईश्वर में अपनी तबियत लगा लेता है और स्वतः आनन्द भोगता है. बाकी दुनियाँ उसके लिए सराय ही हुई - यह ज्ञान के द्वारा वैराग हुआ.

गोरखपुर में बैनर्जी साहब (परमसन्त श्री अक्षय कुमार बैनर्जी) से भेंट हुई.आप शिव भगवान के उपासक थे. आप कहते थे कि माँ और शिव भगवान (प्रकृति और पुरुष) विलास करते हैं, तब ऐसा लगता है कि सब ओर आनन्द ही आनन्द फैल रहा है. उन्होंने एक दफ़ा बतलाया कि दो रूप हैं - शिव भगवान के, कभी तो वह सती के साथ विलास करते हैं और बाल-बच्चों जैसा खेल हो रहा है, और कभी वह श्मसान में धूनी रमाकर पूजा करते हैं. भक्त इस सब को माया का खेल समझता है. माँ ही अपना खेल खेल रही है.

भक्त उसमें खुश रहते हैं लेकिन जब वह खेल ही खेल है उनके लिए, तो वह उसमें फँसते भी नहीं. उसमें आनन्द भी हासिल करते हैं, ईश्वर का अनुभव भी हासिल करते हैं, और माया का जो खेल है उसको भी देख रहे हैं. उनके लिए हर जगह ख़ुशी ही ख़ुशी है, उसको भी देख रहे हैं. वैराग में कुछ दुःख भी होते हैं, पर यहाँ तो कुछ भी नहीं है. यहाँ तो हर जगह खेल हो रहा है. ऐसा भक्त तो दुनियाँ का तमाशा देखकर यह सोचता है कि एक सिनेमा हो रहा है, खेलने वाले खेल रहे हैं. इस दुनियाँ का जो पर्दा है उसके ऊपर खेल हो रहा है और शिव

भगवान माँ के साथ लीला कर रहे हैं, इसमें कुछ सार नहीं है, उसमें फँसते नहीं लेकिन उस खेल का आनन्द भोगते हैं. यह सबसे ऊँचा वैराग है.

तो पहला वैराग हुआ डर से, चीज़ों को भोगकर जो दुःख होता है उससे डर कर वैराग हो जाता है. ऐसे बहुत से लोग हैं जो जब यह देखते हैं कि बाल-बच्चे हैं, इनका पालन पोषण करना है, घर वालों की परवरिश करना है, इसके लिए महनत करनी पड़ेगी तो घर द्वार छोड़कर जंगल में चले जाते हैं. न बाल-बच्चे होंगे और न झंझट होगा. यह डर के कारण वैराग है.

दूसरा विवेक का वैराग है. हर चीज़ को देखते, मनन करते हैं कि इसको हम भोगेंगे तो इसमें दुःख तकलीफें मिलेंगी क्योंकि इनका नतीज़ा दुःख है, यह चीज़ें नाशवान हैं. इसलिए वे ऐसा सोचकर उस भोग से, उस चीज़ से दूर रहते हैं.

तीसरा, जो साधन करके वैराग होता है वह सर्वोत्तम है. वे देख लेते हैं कि उन्होंने जिस वस्तु को भोगा उसी को निस्सार पाया. तजुर्बा करके अभ्यास करते जाते हैं. तरह -तरह की चीज़ों को धर्मशास्त्र के अनुसार भोगते जाते हैं और जब उनमें सार (स्थायी आनन्द) नहीं पाते हैं तो उनसे अपने आपको बचाते जाते हैं. यह साधना से वैराग है. यही वैराग जब पक्का हो जाता है, और परमानन्द को प्राप्त कर लेते हैं तो साधक दुनियाँ में सब जगह माँ का यश देखते हैं. उनके लिए यहाँ न दुःख है न सुख है. आनन्द ही आनन्द भोगते हैं और इसके साथ ही साथ अपने आप को सबसे निर्लेप रखते हुए ईश्वर के प्रेम में आनन्दित रहते हैं. यहाँ पर वैराग तो है लेकिन साधना के द्वारा है.

वगैर अनुराग के कोई वैराग सही नहीं होता. विवेक पहली चीज़ है. उसके बाद दूसरी चीज़ है प्रेम. इसी प्रेम को हासिल करने के लिए जितनी रुकावटें रास्ते में आयें उन्हें तर्क से दूर करते जाओ. यह वैराग तर्क का हुआ. यह वेदान्त का मार्ग है. ईश्वर का प्रेम गुरुकृपा से हासिल करना और उस प्रेम में मस्त रहना और जो चीज़ उससे दूर रखें, उनको छोड़ देना, प्रेम से वैराग हुआ. प्रेम पहले, वैराग बाद में. दोनों में इतना ही फ़र्क़ है. हरेक वेदान्त पर नहीं

चल सकता. इसमें सब चीज़ों को आहिस्ता-आहिस्ता त्याग किया जाता है. त्याग करने में दुःख होता है इसलिए हर मनुष्य उस पर नहीं चल पाता.

संतमत में, आपके इस सत्संग में (गुरु रूप) परमात्मा का प्रेम हासिल करके दुनियाँ की चीज़ें ख़ुशी और आसानी से दूर हो जाती हैं, यानी उनसे उपराम हो जाता है. उन्हें भोगता तो है, लेकिन उनमें लगाव नहीं रखता. इससे उसे दुःख नहीं उठाना पड़ता. आपको परमात्मा से या गुरु से प्रेम हो गया तो आप उसी 'इश्क़ की शराब' में मदहोश रहते हैं. ईश्वर प्रेम का नशा ऐसा है कि आप चाहते हैं कि वह चौबीस घंटे बना रहे. यही है प्रेम से वैराग-आत्मज्ञान या ईश्वर प्राप्ति का सबसे सरल और छोटा रास्ता.

फ़ैज़ - ईश्वर कृपा

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

ईश्वर की तरफ से फ़ैज़ (कृपा की धार) हरेक प्राणी पर पहुँच रही है. उसी तरह गुरु का फ़ैज़ हरेक शिष्य पर पहुँचता है. जो उसे (गुरु को) याद कर रहा है वह उस फ़ैज़ को महसूस करता है और फ़ायदा उठता है. सूरज की रौशनी सब पर एकसी पड़ती है. जो चाहते हैं उसकी गर्मी और प्रकाश से फायदा उठाते हैं. लेकिन चमगादड़ को कुछ नहीं दिखाई देता. इसमें सूरज का क्या दोष है ? जितनी जिसमें ग्रहण शक्ति ज्यादा है, जितनी जिसकी लगन अधिक है उतना ही अधिक फ़ायदा उसको होता है. जिस किसी को शौक़ होता है वह अपनी कोशिश से उस फ़ैज़ की धार को खेंच लेता है. इसमें फ़ैज़ का क्या दोष है. पत्थर, बनस्पति , जानवर, आदमी अपनी जागृति के मुताबिक़ फ़ायदा उठा रहे हैं. पत्थर सचेत (सेंसटिव) नहीं है इसलिए उस पर असर नहीं के बराबर होता है. उसके मुक़ाबले में बनस्पति ज्यादा सेंसटिव है, उस पर असर भी ज्यादा होता है . जानवर बनस्पति से ज्यादा सचेत होते हैं उन पर उनसे ज्यादा असर होता है. और मनुष्य सबसे अधिक सचेत है, इसलिए उस पर सबसे ज्यादा असर होता है. लेकिन स्वभाव और अधिकार के अनुसार उसका अनुभव अलग-अलग होता है. मामूली आदमी ईश्वर की तरफ से बेफ़िक्र रहता है. इसलिए वह कम अनुभव करता है. भक्त अपने दिल के दरवाज़े खोले रखता है, वह उस फ़ैज़ को क़बूल कर रहा है इसलिए वह अनुभव भी मामूली आदमियों के मुक़ाबले ज्यादा कर रहा है. जितना जिसका ख़्याल उस तरफ गया उतना ही आनन्द वह अनुभव करता है. ख्याल भी बराबर रहे और ईश्वर से प्रेम भी हो तब आनन्द मिलता है.. प्रेम तब होगा जब मन तम और रज से हटकर सत वृत्ति पर आएगा. अगर मन तम और रज में फँसा हुआ है तब आनन्द नहीं आएगा.

निज कृपा, गुरु कृपा, ईश्वर कृपा

परमात्मा तब तक मदद नहीं करता जब तक हम खुद नहीं चाहते. पहले अपनी कोशिश ज़रूरी है. इसी को निज कृपा कहते हैं. लेकिन अपनी कोशिश करने से ही कामयाबी नहीं

आती. जब हम सब कोशिश कर लेते हैं, थक जाते हैं, कोई बस नहीं चलता, तब हमारे अहंकार पर चोट पड़ती है, वह चकनाचूर हो जाता है, दीनता आने लगती है और हम कहने लगते हैं - " हे प्रभु। हमारे बस का नहीं है, तुम्हारी कृपा के बिना कुछ नहीं होगा. जब हम दीन बन जाते हैं तो खुदी का पर्दा हट जाता है और रास्ता साफ़ होने लगता है, गुरु कृपा का आभास होने लगता है. यह सोचकर मत बैठो कि परमात्मा बड़ा दयालु है. वह सब काम खुद ही कर लेगा. पुरुषार्थ करो - यह निज कृपा है. पहले निज कृपा फिर गुरु कृपा और तब ईश्वर कृपा होती है. आराम से लेटे रहो, कुछ करो धरो मत और सोचो कि सब हो जायेगा. कैसे हो जायेगा ? कोई आदत बुरी पड़ गयी है और छूटती नहीं है तो उसे दूर करने की कोशिश करो. अगर किसी डर की वजह से कोई आदत छूटती है तो वह अस्थायी है. जहाँ डर गया, फिर वह आदत वापस आ जाएगी. उससे नफरत पैदा हो जाये तब वह स्थायी रूप से जाएगी. इसका एक सरल तरीक़ा संतों ने बताया है - गुरु से प्रेम बढ़ाओ और जितना प्रेम बढ़ता जायेगा उतनी दूसरी चीज़ों से नफ़रत होती जाएगी. गुरु के प्रेम में तुम वह काम करना स्वयं बन्द कर दोगे जो उन्हें पसन्द नहीं है. इस तरह बुरी आदतें धीरे-धीरे खुद छूटती चली जायेंगी।

राज़ी-ब-रज़ा

इस संसार में सब दुखी हैं. अस्पतालों में जाकर देखो तो दुःख का वारापार नहीं मिलेगा. किसी का लड़का बीमार है तो वह उसके दुःख से दुखी है. कोई रुपये की कमी की वजह से दुखी है. ऐसे अनेक सांसारिक दुःख हैं और इन दुखों को दूर करने का यत्न मनुष्य दिन रात करते रहते हैं किन्तु इन दुखों को दूर हो जाने पर असली सुख की प्राप्ति नहीं होती. जब तक दुनियाँ में हो, ऐसे दुःख सुख तो आते ही रहेंगे. ख्वाहिश पैदा करते हो तो संस्कार बनते हैं और उन्हें भुगतने के लिए आवागमन का चक्र चलता रहता है. जब तक यह ज्ञान नहीं होगा कि यह दुनियाँ सुख की जगह नहीं है, यहाँ तो दुःख ही दुःख हैं, इससे छुटकारा पाने की ख़्वाहिश पैदा नहीं होगी और जब तक इस दुनियाँ से छुटकारा नहीं होगा, सच्चा सुख नहीं मिलेगा. भगवान बुद्ध की शिक्षा इस मामले में सीधी सादी है.

आवागमन से छूटने की ख़्वाहिश करना चाहते हो तो और सब ख़्वाहिशों को छोड़ो. अच्छी ख़्वाहिश करोगे तो अच्छा मिलेगा, बुरी करोगे तो बुरा मिलेगा. यहाँ तो हर चीज़ का बदला है. जो दुःख-सुख या बीमार आती हैं वो पिछले कर्मों का नतीजा है. भोगने तो पड़ेंगे ही. उन्हें अगर ख़ुशी से भोग लिया जाये तो आगे के संस्कार नहीं बनेंगे. इसीलिए सूफ़ियों में राज़ी-ब-रज़ा की शिक्षा दी जाती है. जिस हाल में मालिक ने रखा है, उसी हाल में खुश रहो. दूसरा तरीक़ा यह है कि यह ख़्याल करो कि अच्छा हुआ इतनी सी ही तकलीफ हुई या इतना ही नुकसान हुआ. अगर और ज़्यादा तक़लीफ़ होती या और ज़्यादा नुक़सान होता तो क्या होता?

सबसे ऊँची राज़ी-ब-रज़ा यह है कि जब कोई दुःख या तक़लीफ़ आये तो यह ख्याल करें कि बड़ा अच्छा हुआ, संस्कार कटा. इस संस्कार के कटने से कुछ तो नज़दीकी ईश्वर से हुई. संतों की निराली राज़ी-ब -रज़ा है और वह अनोखी और बेजोड़ है. उन पर जब कोई कष्ट आता है तो वे खुश होते हैं - कहते हैं कि ईश्वर हमारा प्रीतम है, वह तो हमें छेड़ रहा है. क्या अदा है उसकी, कभी हमें तक़लीफ़ देता है और कभी आराम. उन्होंने अपने आप को ईश्वर में इतना लय कर लिया है कि उन्हें यह भी ख्याल नहीं आता कि हमारे संस्कार कट रहे हैं या हम ईश्वर के नज़दीक जा रहे हैं. उन्हें अपने जिस्म तक का होश नहीं रहता कि हम मर गए या ज़िन्दा हैं. तक़लीफ़ को छोड़ने का तो उनके सामने सबाल ही नहीं उठता . वे तो उसका स्वागत करते हैं. किसी संत ने कहा है --

ऐ बला आ कि तू मेरे लिए रहमत होगी ,

तेरे पहलू में छिपी मेरे माशूक की सूरत होगी.

वादए वसल यूं शब्द नज़दीक

आतिशे शौक तेज़ तर गरदद

(पिया मिलन की घड़ी पास को आवे - प्रेम विरह की ज्वाला तपन बढ़ती जावे)

जितना रास्ता कटता जायेगा उतना ही अपने निज घर की याद आती जाएगी. उधर की तरफ खिंचावट बढ़ती जाती है, तड़प बढ़ती जाती है. लेकिन माया ऐसी आसानी से निकलने नहीं देती और अटका देती है. अच्छे-अच्छे गिर जाते हैं. यदि ईश्वर से प्रेम है, उनमें लय हैं और उन पर पूर्ण भरोसा है तो उनकी कृपा होती है और साधक फिर रास्ते पर चल पड़ता है. इसलिए जब तक़लीफ़ आवे तो अपने भाग्य को सराहे और सोचे कि यह प्रभु की बड़ी कृपा है ।

राम सन्देश : मार्च-अप्रेल, 2001.

भक्ति मार्ग में सांसारिक बाधाएँ

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

संत-महात्माओं और ईश्वर-भक्तों के जीवन चरित्र पढ़ने से यह मालूम होता है कि दुनियाँ के लोगों ने ईश्वर-भक्ति के रास्ते में बड़ी-बड़ी बाधाएँ और मुसीबतें पैदा कीं. ईसा और मंसूर को सूली पर चढ़ना पड़ा, मीरा को विष दिया गया, शम्स तबरेज़ की खाल उतारी गयी, गुरु अर्जुनदेव को गरम-गरम रेत और गुरु तेग़बहादुर जी को जलते तेल से नहलवाया गया, गुरु गोविन्द सिंह जी के बच्चों को जीते जी दीवार में चुनवाया गया. ऋषि दयानन्द को काँच पीसकर पिलाया गया, वगैरा-वगैरा. इस तरह की हज़ारों मिसालें मिलती हैं. संत-महात्माओं को दुनियाँ वालों ने हमेशा तंग किया, उन्हें तरह-तरह के दुःख दिए, जिससे वे परमार्थ की कार्यवाही न कर सकें.

घोर कलयुग आता जा रहा है. आगे जाकर किस वक्त में क्या मुसीबत आयेगी इसका अंदाज़ा नहीं हो सकता, लेकिन जो कुछ संतों और महापुरुषों ने कहा है उसे सोचकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं. अगर ये अत्याचार न हों तो प्रभु के प्यार की परीक्षा कैसे हो, उसमें पुख़्तगी (परिपक्वता) कैसे आयेगी ? इसलिए जो मालिक को सच्चे दिल से प्यार करता है वही उन मुसीबतों को सहन कर सकेगा और भक्ति और परमार्थ के रास्ते से डगमग नहीं होगा.

यह दुनियाँ काल (शैतान, माया) का पसारा है. काल ने सबको फाँस रखा है. परमार्थ पथ पर चलना इस फंदे से अपने आपको निकालना है. लेकिन काल, अपनी दुनियाँ से किसी को निकलने नहीं देता. जैसे-जैसे अभ्यासी परमार्थ-पथ पर अग्रसर होता जाता है, काल उसके लिए अधिकाधिक बाधाएँ पैदा करता है. और जो पहुँचे हुए हैं, जैसे संत, महात्मा और साधुजन, उनके लिए मुसीबतों का रूप और भी भयंकर होता जाता है. सबसे पहले मुसीबत घर वालों की तरफ़ से पैदा होती है. भक्तों के पीछे जात बिरादरी और छुआछूत की बाधा घर वालों की तरफ से लगती है. घर वाले रोकते हैं कि किसी तरह से परमार्थी कार्यवाही न होने

पावे, सत्संग में न जाने पावे, बदनाम करते हैं और हँसी उड़ाते हैं. यह सब भगवान की मौज और भविष्य में किसी अच्छाई के लिए हो रहा है.

एक कहानी है. किसी घर में घड़ी नहीं थी. उस घर का एक आदमी घड़ी खरीद लाया और दीवार पर लटका दी. वह घड़ी हर समय टिक-टिक करती रहती थी. उस घर में एक अंधी बुढ़िया रहती थी. उसने न कभी घड़ी देखी थी और न वह उसकी कदर जानती थी. घड़ी की टिक-टिक उसे हर समय परेशान करती थी और वह चाहती थी कि उस घड़ी को फेंक दे, लेकिन उसका बस नहीं चलता था. एक दिन घर में चोरी हो गयी. उस बुढ़ियाँ ने कहा कि चोरी इस मनहूस घड़ी की वजह से हुई है. इसके बाद एक-एक करके कई बच्चे बीमार पड़े. बुढ़िया ने कहा कि जबसे टिक-टिक वाली यह मनहूस घड़ी घर में आयी है, हमारे घर पर मुसीबत छा गयी है. इसे घर से बाहर फेंक दो. मगर किसी ने उसकी बात नहीं सुनी. एक दिन उसके घर में कोई बच्चा मर गया. बस फिर क्या था ? बुढ़िया का गुस्सा हद से गुज़र गया, वह अपने आपको न रोक सकी. उसने टटोलते-टटोलते किसी तरह से घड़ी को पा लिया और पहले तो उसे खूब कुचला और फिर उसे घर से बाहर फेंक दिया.

जब किसी घर में संत पधारते हैं या कोई दुनियाँदार उनकी सेवा में जाता है, अथवा किसी सत्संग में शामिल होता है, या उपदेश ले लेता है तो उसके घर वाले उसके पीछे लग जाते हैं और घर की हर मुसीबत और बला की ज़िम्मेदारी सत्संग या संत महात्मा के मत्थे मढ़ देते हैं. कहते हैं कि जब से इन महात्मा जी का आगमन हुआ है, इनका सत्संग किया है, मुसीबत ही मुसीबत आ रही है. कहने का मतलब यह है कि दुनियाँ ने संतो और उनके भक्तों और सेवकों को कभी चैन से नहीं रहने दिया और न रहने देगी, बल्कि हर रोज़ कोई नई व्याधि पैदा करेगी. सच्चे जिज्ञासु इसको अपने प्रीतम की मौज़ और उसका उपहार समझते हैं. इससे उनका कोई नुक़सान नहीं होता बल्कि जितनी ज़्यादा दुनियाँ उनको तंग करती है उतनी ज़्यादा ही उनकी भक्ति बढ़ती है और दुनियाँ से वैराग पैदा होता है.

यहीं पर सच्चे और झूठे की परख होती है. जो मालिक के सच्चे भक्त हुए हैं उन्होंने दुनियाँ की तरफ़ से निरादर, अपमान और दुर्व्यवहार आदि सभी बातें भुगती हैं और सब कुछ

सहन किया है. दुनियाँ वाले बदनामी करें या नेकनामी. चाहे कोई बुरा कहे या दुत्कारे, हमें इसकी परवाह नहीं. जिन्होंने भक्ति का रास्ता पकड़ा है उन्होंने अपनी दुनियाँ उजाड़ कर रख दी. संसार और परमार्थ, लोक और परलोक, दोनों एक साथ नहीं मिल सकते. एक को दूसरे पर क़ुर्बान करना पड़ेगा. अगर परलोक चाहते हो तो दुनियाँ छोड़नी पड़ेगी. मगर दिखाने के लिए तोड़-फोड़ नहीं करनी चाहिए. ढोंगी और कपटी के लिए मालिक के दरबार में कोई जगह नहीं है. तब मालूम हो जायेगा कि भक्ति कहाँ तक पहुँची है. जिसमें सच्ची और पक्की भक्ति होगी वही प्रभु के दरबार में पहुँचेगा.

कभी-कभी भक्ति और प्रेम का एक ज्वार-भाटा सा आता है और उसमें साधक यह समझने लगता है कि मैंने सब कुछ पा लिया. मगर अक्सर ऐसी बाढ़ स्थिर नहीं रहती. एक भक्त ने ईश्वर प्रेम के आवेश में अपने पैरों में पत्थर मारने शुरू कर दिए. उसने कहा कि अगर ईश्वर नहीं मिलता तो मैं अपने पैरों को पत्थर मार-मार कर कुचल डालूँगा. मगर उसकी यह भक्ति कच्ची थी. पैर भी कुचले गए और ईश्वर भी नहीं मिला. यह एक तरह का ढ़ोंग लगता है. अगर थोड़ी देर के लिए आँखों से आँसू बहने लगें. कुछ क्षणों के लिए बुद्धि तर्क-वितर्क छोड़ दे और मन शान्त हो जाए तो क्या यह असली प्रेम है ? क्या इसमें स्थिरता आ गयी ?

सत्संग में आकर गुरु चरणों में बैठने से, सत्संग के वातावरण से, थोड़ी देर के लिए हरेक साधक पर ऐसी अस्थिर हालत गुज़रती है. मगर जहाँ घर पहुँचे और बच्चों ने लिपटकर मीठी-मीठी बातें कीं या स्त्री ने कुछ कह- सुन दिया, सारी भक्ति धुँआ हो जाती है. फिर लौट कर वहीं आ जाते हैं जहाँ थे. भक्ति का वेग आने से हमेशा के लिए गुब्बार दूर नहीं होता. किसी तालाब की सतह पर काई जमी है. उसे हाथ से हटा दो, साफ़ पानी दिखाई देने लगेगा. लेकिन फिर आस-पास से आकर काई उसको ढँक लेगी.

इस तरह का वेग आना मन का ऊँचा भाव है. यह लक्षण तो अच्छा है पर permanent (स्थायी) नहीं है. इस तरह के क्षणिक भाव से क्या ईश्वर मिल गया ? नहीं. उस भाव को

कोशिश करके ऐसा स्थायी बनाओ कि हर समय वही हाल रहे. दुनियाँ की हर चीज़ में ईश्वर का रूप देखो. हरेक का काम उस ईश्वर की सेवा समझ कर करो.

इन्सान जब तक दुनियाँ में रहता है, वहाँ के (दुनियाँ के) कर्म तो करने ही पड़ेंगे. एक कर्म फँसाता है और वही कर्म निकालता भी है. अगर उस कर्म को करने में अपने आपको शामिल कर दोगे तो वह कर्म तुम्हें फँसायेगा और अगर उस कर्म को ईश्वर का कर्म और ईश्वर की सेवा समझकर करोगे तो वही कर्म तुम्हें कर्म-बंधन से छुड़ायेगा. मालिक की याद बराबर बनी रहेगी और प्रेम व भक्ति मज़बूत होती जाएगी. मन से सोचो और बुद्धि से विचार करो कि यह लड़का (बेटा) जिसे तुम अपना कहते हो वह किसका है ? क्या वह तुम्हारे साथ आया था या तुम्हारे साथ जायेगा ? तुम्हारा यह मकान किसका है ? क्या तुम इसे अपने साथ ले जाओगे ?

इस तरह हर चीज़ के बारे में सोचो तो तुम देखोगे कि इस दुनियाँ में कुछ भी या कोई भी तुम्हारा नहीं है. न तुम्हारे साथ आया न तुम्हारे साथ जायेगा. यहाँ की कोई चीज़ तुम्हारे काम नहीं आयेगी. ये सब फँसाने वाली हैं. न मालूम तुम्हारी कितनी शादियाँ पिछले जन्मों में हुईं, कितने बेटे-बेटियाँ हुईं, कितने मकान बने, मगर अभी तक तुम्हारी मनचाही ख़्वाहिश या इच्छा तृप्त नहीं

हुई ? यह सब तो होता रहता है और आगे भी हो सकता है, लेकिन मनुष्य जन्म बार-बार नहीं मिलता। इसी मनुष्य योनि में ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है, दूसरी किसी योनि में नहीं. इसलिए इस जीवन को अमूल्य जानकर इसका उपयोग ईश्वर-प्राप्ति के लिए करो।

यह ज़िन्दगी झूठी ज़िन्दगी है. आत्मा मलीन मन के पर्दों में दबी हुई है. जब यह परदे हट जाते हैं और आत्मा निखर आती है तभी असली ज़िन्दगी शुरू होती है. जब किसी पर ईश्वर कृपा होती है और ईश्वर उसे अपनाना चाहता है तो उसके बंधन टूटने लगते हैं. सबसे पहले उसकी प्यारी से प्यारी चीज़ उससे छीनी जाती है. दुनियाँदार इसे देखकर रोते हैं. संत खुश होते हैं कि हे प्रभु। कितना अच्छा हुआ. इसे लेकर तूने मेरा बंधन काट दिया। इस तरह हर

क़दम पर इम्तहान होता है. वगैर इम्तहान के कोई उसे प्राप्त नहीं कर सकता. क़ुर्बानी तो करनी ही पड़ेगी. अगर उसे पाना चाहते हो तो दुनियाँ की चीज़ें तो क्या गर्दन तक काट कर देनी पड़ेगी।

जब तक तन नाहीं जरत, मन नाहीं मर जात /

तब लग मूरति स्याम की, सपनेहुँ नाहीं लखात //

यह दुनियाँ धोखा दे रही है. दिखाई कुछ दे रहा है, असलियत कुछ और है. जो असल है वह सिर्फ़ ईश्वर है, उसे पाने की कोशिश करो।

जब हमें किसी चीज़ से सुख मिलता है, तब हम ईश्वर को बड़ा धन्यवाद देते हैं, और जब किसी चीज़ से दुःख मिलता है या मुसीबत आती है तो ईश्वर से दूर भाग खड़े होते हैं या उसे याद भर कर लेते हैं. उस दुःख को मज़बूरी में बर्दाश्त करते हैं. ईश्वर को धन्यवाद नहीं देते और न उसमें खुश होते हैं. यही कहते हैं कि ईश्वर को ऐसा ही मन्जूर था. लेकिन यह मालिक की रज़ा या मर्ज़ी के साथ co-operate (सहयोग) करना नहीं है क्योंकि आत्मा अभी निखरी नहीं है।

असल निखार तब होगा जब लड़का मरने पर भी वह ख़ुशी हो जो लोग लड़का पैदा होने के वक़्त मनाते हैं. हमारे गुरु महाराज, पूज्य महात्मा रामचन्द्र जी महाराज, जिगर के कैंसर से पीड़ित थे. उन्हें बहुत तक़लीफ़ थी लेकिन वे सदा प्रसन्न दिखाई पड़ते थे. किसी भक्त ने उनसे निवेदन किया कि - "आप इसे अच्छा करने के लिए ईश्वर से दुआ क्यों नहीं करते हैं .? ईश्वर अपने प्यारे भक्तों को इतनी तक़लीफ़ क्यों देता है.? 'आपने कहा - "अगर तुम्हारा माशूक़ (प्रेमी / प्रेमिका) तुम्हारे गाल पर प्यार से चपत लगा दे तो उसे तुम तक़लीफ़ समझोगे या उसकी एक अदा .? क्या तुम उससे ख़ुश होंगे या नाराज़ .? इसी तरह तक़लीफ़ भी माशूक़ की एक अदा है / ईश्वर हमारा प्रियतम है और प्यार में उसने अगर कोई मुसीबत भेज दी तो यह उसकी अदा है. इसमें हमें तो बड़ा आनन्द आता है." कहने का मतलब यह है कि जब तक पूर्ण समर्पण नहीं हो जाता, ऐसी अवस्था नहीं आती।

दुःख तो आते ही रहेंगे. दुःख बर्दाश्त करने के भी चार रूप हैं :-

(1) मज़बूरी में दुःख बर्दाश्त करना. यह 'राज़ी-ब-रज़ा' (यथा-लाभ-संतोष) वाली हालत नहीं है.

(2) दुःख को प्रभु की कृपा समझकर बर्दाश्त करना.

(3) दुःख आवे तो अपने आपको सराहे और सोचे कि - "हे प्रभु । तेरी बड़ी कृपा है. न मालूम कितनी बड़ी मुसीबत थी जो

तूने इतने थोड़े ही में काट दी. न मालूम सूली पर ही चढ़ना पड़ता जो तेरी दया से, परेशानी की शक्ल में, एक काँटा ही छीद कर रह गया.

(4) दुःख आवे तो यह माने कि यह मेरे माशूक़ की तरफ़ से एक तोहफ़ा है, और उसमें ख़ुश रहे.

दुःख बर्दाश्त करने का ये चौथा तरीक़ा तो पहुँची हुई महान हस्तियों ने ही अपनाकर दिखाया है. शेर खा रहा है, शरीर की बोटी-बोटी नोचकर चबा रहा है और फिर भी आवाज़ निकल रही है - "शिवोहम, शिवोहम" जो खा रहा है वह भी ईश्वर है और जिसे खा रहा है वह भी ईश्वर है. जलते हुए तबे पर बैठे हैं, सिर पर उबलता हुआ तेल डाला जा रहा है, दूर-दूर तक दुर्गन्ध उड़ रही है और फिर भी मुँह से निकल रहा है - " वाहे गुरु, वाहे गुरु." यह है असली और पूर्ण समर्पण -- और सच्ची 'राज़ी -ब -रज़ा' की अमली तस्बीर अर्थात 'यथा-लाभ-संतोष' का व्यावहारिक स्वरुप.

कोई चीज़ मुफ्त नहीं मिलती. जो चीज़ जितनी महँगी है उतनी ही ज़्यादा उसकी क़ीमत देनी होगी. अगर ईश्वर को चाहते हो, हमेशा का आनन्द और सुख चाहते हो तो जान की बाज़ी लगानी पड़ेगी. क़ीमत क्या है ? अपने अरमानों का ख़ून कर दो, इच्छा रहित हो जाओ और अपने आपको पूरी तरह समर्पण कर दो. इसकी मिसाल (उदाहरण) संतों के जीवन से मिलेगी और इसका राज़ (भेद) उनके सत्संग में मिलेगा.

जहाँ आपस में मोहब्बत से रह रहे हों वहीं सतयुग है. जहाँ एक दूसरे से differ करते हों (विरोध या असहमति रखते

हों), आपस में मतभेद या भेद-भाव हो वहीं कलियुग है. दैवी जीवन वही है जहाँ सबके साथ ख़ुशी-ख़ुशी co-operate (सहयोग) करते हों.

भजन सुमिरन का तरीक़ा

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

मन में तरेंगे उठें तो सुमिरन व भजन करना चाहिए। सुरत को तीसरे तिल में समेटें। दोनों आँखों की रौशनी जहाँ मिलती है, वही ध्यान करना चाहिए। वहां ध्यान जमाने से प्रकाश नज़र आएगा. शब्द भी वहीं सुनाई देगा परन्तु उसे अन्तर में सुनना चाहिए। गुरु का ध्यान करना स्थूल, व शब्द का सुनना अथवा प्रकाश का देखना सूक्ष्म है।गुरु का ध्यान करते-करते जब प्रकाश दिखाई देने लगे, अथवा जब शब्द सुनाई पड़ने लगे तो फिर ध्यान को छोड़कर उसी अभ्यास को करने लगना चाहिए।

अगर प्रकाश देखने या शब्द सुनने के साथ-साथ गुरु का ध्यान भी करते रहें तो चित्त ठिकाने नहीं रहेगा और दोनों में से कोई भी नहीं हो सकेगा। नियमित ढ़ंग से साधन में जब पुष्टता आएगी तभी शब्द और ध्यान दोनों चल सकते हैं। तस्बीर को सामने रख कर या किसी मूर्ति आदि पर ध्यान नहीं करना चाहिए। अगर गुरु सामने मौजूद हों तो भी उनकी ख़्याली शक्ल का ही ध्यान करना चाहिए, हालाँकि यह ख़्याली शक्ल का ध्यान भी स्थूल ही माना जाता है, पर शुरू-शुरू में अभ्यासियों को ऐसा करना कठिन होगा। चूँकि आत्मा के केंद्र में ही परमात्मा है, अतः उनका अनुभव हाँसिल करने के लिए ऐसी हालत पर आना है जहाँ कोई ख़्याल न हो।

ध्यान अन्तर में होवे, इसके लिए यह आवश्यक है की हमारी सुरत (attention) जो अभी बाहरी पदार्थों में लगी हुई है - वहाँ से हटे और सिमट कर अन्तर में लौटे। मन की धार यानी संकल्प-विकल्प जब तक शांत नहीं होंगे तब तक ध्यान पक्का नहीं हो सकता . मन काल का अंश है . यह सुरत को दुनियांवी पदार्थों की तरफ खींचता और बिखेरता रहता

है। मन दुनियाँ में सबसे अधिक तीव्र गति वाला और महा चंचल है, कभी शान्त नहीं रह सकता। इसकी मिसाल शान्त-प्रशान्त तालाब के जल से दी गयी है। जैसे प्रशान्त जल में हवा चलने से या हलकी से हलकी चीज़ फेंकने पर छोटी-छोटी तरंगें उठने लगती हैं, वैसे ही

इन्द्रियों के प्रभाव से या शरीर के ज़रा से हिलने मात्र से मन में संकल्प-विकल्प उठने शुरू हो जाते हैं।

योग, यज्ञ, तप, तीर्थ, व्रत, नियम, पूजा इत्यादि जो कुछ भी साधन किये जाते हैं, पहले पहल सब मन को शान्त करने के लिए ही किये जाते हैं। इन तरंगों की रोक-थाम सुमिरन व भजन से की जाती है ।इसमें भींचा- भीची करनी पड़ती है। मन को वासनाओं से हटाना भींचा-भीची कहलाती है। इसके लिए सन्त लोग कम खाना, कम सोना, कम बोलना, एकान्त सेवन और ज़्यादातर समय ध्यान में मशगूल (रत) रहने की सलाह देते हैं।

सुख प्राप्ति से मन मोटा होता है। सुख, साधन में महा बाधक होता है। परमात्मा की याद दुःख में ही आती है। इसीलिए दुखों को परमात्मा की नियामत समझा जाता है। कहा भी है –

सुख के माथे सिल परे, जो नाम हिये से जाय

बलिहारी वा दुःख की, जो पल-पल नाम रटाय.

मन व माया को कमज़ोर करने के लिए अपने आप को दीन समझें। जब तक दीनता नहीं आती, तब तक आपा नहीं मिटता। आपा मिटे वगैर आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता और आत्मानुभव के बिना उद्धार नहीं होता है। स्वार्थ और परमार्थ साथ-साथ नहीं रह सकते। केवल एक ही रह सकेगा। ख़ुदा को पाने के लिए ख़ुदी को निर्मूल करना पड़ेगा और वह तभी होगा जब दुनियाँ से सच्चा वैराग और गुरु चरणों में अनुराग होगा। वैराग का यह मतलब कभी नहीं कि घर-बार, स्त्री, परिवार आदि को छोड़ कर जंगल में चला जाए. जंगल में जाने से भी भला वैराग हो सकता है ? शरीर और मन तो वहाँ भी मौजूद रहेंगे। और जब ये रहेंगे तो इनके व्यवहार भी करने पड़ेंगे।

सच्चे मायने में वैराग का अर्थ वीतराग होना है, यानी किसी चीज़ में राग (आसक्ति) न हो। शरीर से सब कुछ भोगता हुआ भी किसी चीज़ से लगाव न रहे और न कहीं अटकाव हो। चरणों में अनुराग से मतलब है कि हर समय अपने को अपनी सुरत को परमात्मा के चरणों में लगाए रखें और उसकी मौज़ में अपने को लय कर दें। इस रास्ते में अनेकों कठिनाइयाँ आयेंगी, परन्तु उनसे घबरायें नहीं, धैर्य पूर्वक, गुरु में पूर्ण प्रीति और प्रतीत के साथ, उनका बताया हुआ साधन करते जायें। कामयाबी अवश्य मिलेगी।

मन की चौकसी

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के कुछ पत्रों का साराँश)

मनुष्य जो कर्म करता है उसका उसके मन पर अक्स पड़ जाता है और जब मन बाहर से हटकर सोते समय या संध्या करते समय अन्तर की तरफ़ प्रविष्ट होता है तब वह शक्लें सामने आती हैं. इसलिए अभ्यासी को चाहिए कि दुनियाँ के साथ व्यवहार करते समय सचेत रहे और उन्हीं चीज़ों से वास्ता रखे जो ज़रूरी हैं. बेफ़ायदा बातों और कामों में अपने को न फँसाये. ऐसा अभ्यास करते रहने से मन संध्या के समय और ख़्याल नहीं उठावेगा. दूसरे, अपने मन को समझना चाहिए. यह दुनियाँ तो थोड़े दिनों की है. सब चीज़ों को छोड़ना है. इसलिए इस दुनियाँ और इसकी चीज़ों से दिल नहीं लगाना चाहिए, वरना छोड़ते समय बड़ा दुःख होगा. तीसरे, अपने गुरु या परमात्मा के लिए प्रेम अंग जगाना चाहिए जिसका तरीक़ा यह है कि विरह की बानी के पद गए जावें जिससे तड़प पैदा हो. ऐसा करते रहने से कुछ दिनों बाद तबियत लगने लगेगी. मन बाहरी चीज़ों का रसिया है. मन को शुरू में अन्दर की तरफ़ मोड़ने में उसको दुःख होता है और वह इससे भागता है. लेकिन अभ्यास करते रहने से और बाहर से तबियत हटा देने से अन्तर की तरफ़ ठहरने लगता है और अन्तर में ठहरने से अभ्यास में आनन्द आता है और अभ्यासी तरक़्क़ी करने लगता है।

मन की चाल जन्म जन्मान्तर से बहिर्मुखी होती आयी है. अन्दर की तरफ़ जाने के लिए इसमें समय की ज़रूरत है. इसलिए अभ्यासी को घबराना नहीं चाहिए बल्कि कर्म करते रहना चाहिए. शुरू में गुरु की पवित्र मूर्ति का ध्यान करना चाहिए. अगर उसमें सच्चा प्रेम और विश्वास है तो मन ज़रूर एकाग्र होकर ठहरने और ऊपर की तरफ़ चलने लगेगा. चलते-फिरते यह ख़्याल रखना चाहिए कि मेरी जगह गुरु ने ले ली है. मैं वही हूँ. यही सहज योग है. इसके अभ्यास के लिए न कोई निश्चित वक्त और न कोई निश्चित जगह है. हरेक मनुष्य हर समय और हर जगह यह अभ्यास कर सकता है।

प्रेम में दूरी नहीं है. अगर सच्चा प्रेम है तो प्रियतम और प्रेमी हर वक्त साथ रहते हैं. अपने आपको नमूना बना कर दिखाने से दूसरों पर ख़ुद-ब-ख़ुद असर पड़ेगा. सन्ध्या में तबियत न लगना यह ज़ाहिर करता है कि अभी तक दुनियाँ की चीज़ों से प्रेम है. यहाँ कोई अपना नहीं, सब धोखा है।

बुराई सब में होती है लेकिन जो बुराई को बुराई समझता है वह बुराई छोड़ देता है. असली अभ्यास यही है कि वह ग्रन्थि जो मन की वजह से पड़ गयी है, खुल जाय और आत्मा आज़ाद हो जाय. बग़ैर मन को काबू किये यह ग्रन्थि नहीं टूटती. मन को काबू करना बहुत मुशिकल होता है. सारे प्रयत्न इसीलिए किये जाते हैं. इसको प्रेम की रस्सी से गुरु के साथ बाँध देते हैं. शुरू-शुरू में यह बहुत उछलता -कूदता है लेकिन ज्यों-ज्यों गुरु से रिश्ता मज़बूत होता जाता है उतनी ही उसकी उछल -कूद बन्द होती जाती है और एक दिन पूर्ण रूप से गुरु के आधीन हो जाता है और तब ही आत्मा का प्रकाश पूर्ण रूप से होता है.

बग़ैर मन के पूरे तौर से शान्त हुए आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता. इसके लिए गुरु की सौंहबत (साधना) बहुत मददगार (सहायक) है. जब -जब मौक़ा मिले गुरु का ज़ाहिरी सत्संग करना चाहिए और जब दूरी हो उस समय सुरत शब्द का अभ्यास, जो गुरु का दूसरा रूप है, करना चाहिए।

मन दुनियाँ की चीज़ों में आनन्द पाता है. उसका क़ुदरती झुकाव दुनियाँ के विषयों की तरफ है और वह उसी तरफ़ मनुष्य को ले जाता है. जब आत्मा भी अपने निज आनन्द को भूल कर अज्ञान वश विषयों से मौंहब्बत करने लगती है तो अपने आपको और अपने प्रियतम को भूल जाती है और आवागमन के चक्र में फँस जाती है. एक साथ मन दुनियाँ के विषयों को नहीं छोड़ता और उस तरफ़ ले ही जाता है. लेकिन अगर आत्मा उसमें आनन्द न ले और अपने परमात्मा की तरफ़ फिर जाय या उसको अपना अनुभव हो जाय तो फिर दुनियाँ के विषयों में उसको आनन्द नहीं आता और उनसे प्रीति कम हो जाती है. आहिस्ता-आहिस्ता मन भी उन विषयों को छोड़ देता है।

परमात्मा के दो रूप हैं. एक जो घट-घट में बसता है और दूसरा रूप उसका स्थूल है जो गुरु है. शुरू-शुरू में स्थूल रूप से ताल्लुक़ (सम्बन्ध) जोड़ा जाता है. फिर आहिस्ता-आहिस्ता कारण रूप परमात्मा से ताल्लुक़ हो जाता है और इस तरह आसानी से अभ्यासी बहुत जल्दी परमात्मा के प्रेम का पात्र बन जाता है।

परमात्मा के प्रेम के आते ही बुराइयाँ दूर होने लगती हैं और आख़िर में सिवाय उसके प्रेम के और कुछ नहीं रहता. यही मोक्ष और मुक्ति है।

गुरु उसको कहते हैं दुनियाँ में जिससे बेहतर, खुश्तर (आनन्द दायक) और प्यारी वस्तु और कोई न हो और जिसके लिए दुनियाँ की हर वस्तु छोड़ी जा सकती हो. इस तरह आहिस्ता-आहिस्ता दुनियाँ से हटाव और परमात्मा से प्रेम पैदा हो जाता है. मन की उछल-कूद उस वक्त तक बन्द नहीं होती जब तक उसके पुराने संस्कार खत्म नहीं हो जाते और उसके लिए एक उम्र चाहिए. हाँ, ख़ुशक़िस्मती (सौभाग्य) से गुरु या परमात्मा का प्रेम पैदा हो जाय और मन पर कड़ी निगाह रखी जाय, साथ ही साथ परहेज़ किया जाय, तो आहिस्ता-आहिस्ता मन की उछल-कूद बन्द हो जाती है और प्रेम बढ़ने लगता है. लेकिन फिर भी चौकन्ना रहना चाहिए. न मालूम किस वक्त गिरा दे /

तक़लीफ़ों का सामना करने से शक्ति का विकास होता है. आसुरी वृत्तियों का आना अच्छा है. जब अपने आपको कमज़ोर पाओगे तो दीन होकर परमात्मा को पुकारोगे. ज़रूर मदद मिलेगी. मौहब्बत की ज़्यादती (आधिक्य) से आदमी होश-हवास खो बैठता है. इस मामले में जल्दी नहीं होनी चाहिए, ताकि दोनों काम बनते जावें। परमात्मा या गुरु से सबसे ज़्यादा प्रेम करो ताकि सच्ची ख़ुशी मिले और दुनियाँ से आज़ाद हो जाओ. दुनियाँ को भोगो ताकि पिछले संस्कार समाप्त हो जायें. इस तरह दीन और दुनियाँ दोनों बन जायेंगे, जो लोग परमात्मा और गुरु से सच्चा प्रेम करते हैं, और दुनियाँ में रहते हुए अपने दुनियावी फ़र्ज़ (साँसारिक कर्तव्य) धर्मशास्त्र के अनुसार पूरे करते हैं वे एक ही जन्म में भवसागर से पार हो जाते हैं।

जब तक मन दुनियाँ से बेज़ार (उपराम) नहीं होगा और उससे निराश न होगा, रूहानी तरक़्क़ी (आत्मिक उन्नति) नामुमकिन है. इसका यह मतलब नहीं कि दुनियाँ के काम न किये जायें या ख़्वाहिशात (इच्छाएँ) न उठाई जायें । ख़्वाहिशात का उठना क़ुदरती (स्वाभाविक) बात है, लेकिन ख़ूब समझ लेना चाहिए कि जो होना है वह होकर रहेगा. इन्सान के किये कुछ नहीं होता, और अगर इन्सान के किये कुछ होता भी है तो जितनी ख़्वाहिशात ज़्यादा होती हैं उतना ही दुःख भी ज़्यादा होता है। । ख़्वाहिशात अगर पूरी नहीं होतीं तो भी दुःख होता है और अगर पूरी होती हैं तो भी दुःख का कारण बनती हैं. सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि इस बात को ज़हननशीन (स्मरण) कर लो तथा पुख़्ता (निश्चय) कर लो कि यह दुनियाँ ईश्वर की है, तुम्हारी नहीं. तुम भी ईश्वर के हो और यह सब काम ईश्वर का है. वह जैसा चाहेगा वैसा होगा. अपना बोझ उस पर डाल दो। वह जिस हालत में रखे, ख़ुश रहो. इन्सान की सब ख़्वाहिशात पूरी नहीं होती हैं. वह दुःखी होता है और गढ्ढे में पड़ा रहता है. अगर ख़ुश रहना चाहते हो तो जहाँ उसने रखा है और जिस हाल में रखा है, उसमें ख़ुश रहो. ईमानदारी से काम करो तथा भगवान का नाम लेते जाओ।

राम सन्देश : सितम्बर -अक्टूबर, 2008

मन के विकार

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

साधक के लिए परमार्थ-पथ में विघ्नकारक मन के पाँच विकार हैं : काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार।

काम - काम का साधारण अर्थ कामना या सांसारिक पदार्थों की चाह से है। मन की बनावट सांसारिक मसाले से हुई है। यही कारण है कि मन का झुकाव मुख्यतः जगत के पदार्थों की ओर रहता है और वह हर घड़ी किसी न किसी भोग्य पदार्थ की चाह उठाता रहता है।

सब चाहों में प्रबल स्त्री सम्बन्धी चाह है। यद्यपि काम के अन्तर्गत सब प्रकार की चाहें आ जाती हैं फिर भी विशेषकर इस शब्द के साथ स्त्री-सम्बन्धी चाह की ओर ध्यान दिलाया जाता है। इस अंग का असर मन पर बहुत जल्दी होता है। स्त्री-चिन्तन, उसके बारे में सुनने, उसका साक्षात या उसके चित्र को देखने मात्र से मन में काम का वेग प्रबल हो जाता है। उसकी तमाम शक्ति इसी ओर केन्द्रित हो जाने का कारण मन अभ्यास के क़ाबिल नहीं रहता। अतः सत्संगी के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे संग, खेल, तमाशे से बचे जिनमें काम सम्बन्धी विचारों की मन में जाग्रति हो। इसके रंग की पकड़ बहुत गहरी होती है।

काम अंग की जड़ दसवें द्वार में है इसे सब चाहों का प्रेरक समझिये। पिण्ड में इसकी धार स्थूल व प्रबल है पर ब्रह्माण्ड में यह सूक्ष्म रूप से विद्यमान है। साधक चाहे जितना ऊँचा अभ्यासी हो जाय पर जब तक शरीर है, इससे सावधान ही रहे. विश्वामित्र जैसे तपोसिद्ध ऋषि को भी इसने चलायमान कर दिया। हम और आप तो किस गिनती में हैं।

काम या चाह की प्रबलता चिन्ता को जन्म देती है जो साधक के मन के शान्ति रूपी साम्राज्य का हरण कर लेती है। किसी ने ठीक ही कहा है -

चाह गई, चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।

जिसको कछु न चाहिए, वह जग शहंशाह॥

इसलिए भलाई इसी में है कि सत्संगी ऐसी बातों व संग से परहेज़ करें जो उसकी वृत्ति को कामुक बनाते हैं।

क्रोध - क्रोध गुस्से को कहते हैं। इसकी जड़ त्रिकुटी में है। जब मन की इच्छा पूरी नहीं होती या दूसरे के द्वारा अपमान किया जाता है तभी क्रोध का आवेश होता है। क्रोध से शक्ति की ह्रास होता है जिससे विवेक बुद्धि का नाश होकर साधक कर्तव्य पथ से च्युत हो जाता है। अतः क्रोध अंग से अपने आपको बचाना चाहिए।

इसी अंग की शाख ईर्ष्या व विरोध है। ईर्ष्या दूसरे की मान प्रतिष्ठा को देखकर जलने को कहते हैं. विरोध जिससे हम नाराज़ हैं उसकी मुख़ालिफ़त करने को कहते हैं। इस अंग के कारण हम दूसरे की बुराई एवं ऐबों को अपने मन में बार-बार स्मरण करते हैं। इससे हमारा मन गन्दा व चँचल होता है। अतः आत्मकल्याण के निमित्त साधक को इनसे बचना चाहिए अन्यथा प्रेम अंग नहीं जागेगा।

लोभ - इसका अभिप्रायः तृष्णा या लालसा की घनीभूत अवस्था से है। इसकी जड़ संतों ने सहस्त्रदल कँवल से नीचे बताई है। इस वृत्ति के कारण मनुष्य दूसरों को दुःख पहुँचाने व उनकी हक़तल्फ़ी करने और अधिकार छीनने से ज़रा भी हिचकिचाता नहीं। उसका मन किस क़दर कठोर हो जाता है और साधन करने की योग्यता खो देता है। ऐसे व्यक्ति की तमाम वृत्ति वस्तु-संग्रह व उसके रख-रखाव की ओर रहती है। वह अपनी वस्तु किसी दूसरे को नहीं देना चाहता है बल्कि दूसरों को परहित ख़र्च करते हुए देखकर भी कुढ़ता है तथा मूर्ख कहकर उनकी निन्दा करता है। सत्संगियों को इस अंग से बचना चाहिए तथा परोपकार के निमित्त अपनी कमाई में से कुछ ख़र्च करना चाहिए। इससे मन कोमल होता है और प्रेम का रंग चढ़ने की योग्यता प्राप्त करता है।

मोह - इसका आदि-स्थान सहस्त्रदल कँवल हैं। इसकी अधिकता साधक के लिए घातक हैं क्योंकि जिसका मोह उसके हृदय में होगा उसके वह अधीन रहेगा और उसके कथनानुसार ही वह बरतेगा। उसके कहने से बहक कर सत्संग से विरत हो जायेगा। सत्संग करने से जो सुज्ञान उसे प्राप्त हुआ था वह मलिन पड़ जायेगा और वृत्ति सांसारिक हो जायेगी। वह सत्संगियों की निन्दा करेगा और जो प्रेमीजन भक्ति के अंग में बरतेंगे उन्हें देखकर जलेगा और इस प्रकार उसके मन का स्वभाव दुष्ट हो जायेगा।

अहंकार - इसके शाब्दिक अर्थ अभिमान के हैं। मान बढ़ाई की प्रबल चाह इसी से पैदा होती है। इसके अनेक रूप दृष्टिगोचर होते हैं। विद्या, जाति, कुटुम्ब, रूप, बुद्धि की चतुराई, सन्तान, सेवक, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, धन, बड़े लोगों से जान-पहचान व सुन्दर स्त्री का अभिमान किसे न होगा। पर जब तक इस तरह के अभिमान के बन्धन ढ़ीले नहीं होंगे तब तक सच्ची दीनता व बुद्धि इसके बुरे परिणाम से चेतायें भी, तो भी ध्यान उन विचारों से हटना नहीं चाहता। इसलिए भलाई इसी में है कि सत्संगी ऐसी बातों व संग से परहेज़ करें.

मन के विकारों में सुरत की धारों का बिखेर होता है। इसके कारण प्रभु चरणों की ओर अनवरत समूह नहीं बन पाता। महादेव जी के मन्दिर में पिण्डों के ऊपर जलहरी में जल भरकर रखते हैं और ऐसी व्यवस्था करते हैं कि बून्दों का प्रवाह महादेव जी की पिण्डी पर निरन्तर बहे। इस भौतिक प्रयोग में साधक को यही समझाने की चेष्टा की गयी है कि तमाम साधना का तत्व यह है कि आपकी सुरत की धार विकारों में अटके बिना आदि महादेव की ओर बढ़े तभी उनके दर्शन का विलास आपको प्राप्त होगा ओर आप कृतार्थ हो जायेंगे।

राम सन्देश : दिसम्बर, 1993

मन को दुनियावी इच्छाओं से साफ़ करो

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

मनुष्य गुरु - कृपा या ईश्वर-कृपा के लिए दुआ करता रहता है लेकिन गुरुजनों का कहना है कि यह भूल है। गुरु -कृपा या ईश्वर-कृपा हर समय हो रही है, एक पल भी बन्द नहीं है। अगर वह बन्द हो जाय तो ज़िन्दगी नहीं रह सकती। फ़र्क़ सिर्फ महसूस या गैर - महसूस (आभास - अनाभास) होने का है। जिसने अपना पात्र बना लिया है, वह ज़्यादा कृपा महसूस करता है और जिसका अभी अधिकार नहीं बना है, वह कृपा महसूस ही नहीं करता। इसलिए कोशिश अपने आप को पात्र बनाने की करनी चाहिए. गंगा बह रही है, लेकिन उसमें से एक शख़्स उतना ही जल ले सकता है जितना उसके पास बर्तन है। जिसके पास लोटा है, वह लोटा भर पानी भर लेता है, जिसके पास घड़ा है वह घड़ा भर पानी भर लेता है।

सूरज चमक रहा है, सब पर गर्मी और रौशनी पड़ रही है. जितना जिसने अपने शरीर को रौशनी के लिए खोल रखा है, वह उतनी ही रौशनी और गर्मी पा लेता है। जिसने जितने कपडे पहिने हैं, उतना ही वह उससे महरूम (वंचित) रहता है। आग जल रही है, हज़ारों ही चीज़ें पास रखी हैं, किसी में उसका असर कैसा ही पड़ता है और किसी में कैसा ही।

सब पात्रता और अधिकार पर निर्भर है। गुरु और ईश्वर की कृपा हरेक पर हर समय हो रही है लेकिन जिसने जितने कपडे मन और माया के पहने हुए हैं, उसे उतनी ही कम कृपा अनुभव होती है। जिसने जितना अपने आप को बना लिया है, यानी मोह और माया से अलहदा कर रखा है, वह उतनी ही कृपा ज़्यादा महसूस करता है। इसलिए ज़रुरत पात्रता के बनाने की है। अपनी आत्मा पर से मन और माया के परदे हटाने की ज़रुरत है। पत्थर, वनस्पति, जानवर, मनुष्य, देवता, संत - सब पर उसकी कृपा एक सी ही हो रही है लेकिन

अन्तर आभास और अनाभास का है। जिसके ज़्यादा आवरण हटे हुए हैं, उसे उतनी ही ज़्यादा कृपा महसूस होती है।

दूसरी बात यह है कि दुनियाँदार उसकी कृपा को समझते नहीं हैं। जब आदमी को दुनियाँ की चीज़ें मिलती हैं, उनमें वह ख़ुश होता है और समझता है कि ईश्वर की बड़ी कृपा है। वास्तव में वह ईश्वर से दूर होता जाता है। उसके और ईश्वर के बीच में माया आती जाती है।अगर उसकी दुनियाँ की चीज़ों पर आघात होता है तो वो समझता है कि मेरे ऊपर ईश्वर की कृपा नहीं हो रही है, हालाँकि मामला इसके बिलकुल विपरीत है, क्योकि इससे ईश्वर की नज़दीकी प्राप्त होती है।

जब दुनियाँ की किसी चीज़ से हमें तकलीफ पहुँचती है या वह चीज़ हमसे छीनी जाती है तो हमारे बुरे कर्मों की समाप्ति हो जाती है और जब कोई दुनियाँ की कोई चीज़ हमें हासिल होती है, तो शुभ कर्मों के फल का अंत भी हो जाता है। जब ईश्वर की नज़दीकी हो जाती है, उसका प्रेम मिल जाता है, बुरे कर्मों को हम छोड़ देते हैं तो बाक़ी सब कर्म ख़ुद ही नाश हो जाते हैं और वह (ईश्वर) सब माफ़ कर देता है। इसलिए उसकी कृपा यह है कि माया के झगड़ों से छूट कर उससे नज़दीकी हो जाय और हमें हमेशा-हमेशा का सुख और दुखों से मोक्ष मिल जाय।

लेकिन दुनियाँदार इसका उलटा समझते हैं। वे ईश्वर से छुटकारे के लिए दुआ नहीं करते, दुनियाँ की चीज़ों को प्राप्त करने के लिए दुआ करते रहते हैं और इस तरह यहीं पर फँसे रहते हैं। दुनियाँ का एक-एक ज़र्रा, मन की एक -एक ख़्वाहिश हमारा हर वक्त विरोध करते हैं जिससे कि हमारा अपने असल (ईश्वर) से मिलन न हो। इसलिए जो आदमी दुनियाँ की इच्छाओं में फँसा हुआ है वह तो सच्ची कृपा चाहता ही नहीं बल्कि कृपा का विरोध करता है।

जब आत्मा का विकास संतो की कृपा और अभ्यास से होने लगता है तभी मालूम होने लगता है कि असली कृपा क्या है। साँसारिक इच्छाओं से अपने पात्र को बचाना है और यह जितना साफ़ हो जाता है उतनी ही उसकी कृपा अनुभव होती है। इसलिए हमारा फ़र्ज़ है कि अपने मन को हर समय दुनियाँ की इच्छाओं से आहिस्ता-आहिस्ता साफ़ करते रहें।

गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करें.

मनुष्यों की तीन प्रवत्तियाँ

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

मनुष्य तीन प्रवृत्ति के होते हैं। पहली प्रकार के ऐसे लोग होते हैं जिनका ध्यान शरीर पर अधिक होता है। खाना, पीना, सोना और विषय भोग कर लेना, इनका मुख्य ध्येय होता है। इन्हें अच्छे -बुरे से कोई मतलब, न यह परमात्मा नाम की किसी चीज़ को जानते हैं। इनके सिद्धान्त के मुताबिक मनुष्य शरीर मिला है वासनाओं की पूर्ति के लिए - खाओ, पियो और मौज़ उड़ाओ। ईश्वर चर्चा से यह दूर रहते हैं। अगर कभी इनसे ईश्वर के बारे में वार्ता भी की जाये तो उसको वो नहीं मानते, उसे ढ़ोंग बताते हैं। कहते हैं कि ईश्वर कोई चीज़ नहीं है, किसने देखा है, इत्यादि। यह लोग सबसे निचली अवस्था के हैं। पशु योनी में गिने जाते हैं। इनके मन का अभी विकास नहीं हुआ है। सोचने -विचारने की शक्ति केवल जानवरों के दर्ज़े की ही है। इन पर ईश्वर चर्चा का कोई प्रभाव नहीं होता और न ही ये लोग उसके पात्र हैं। इसलिए इनके लिए शास्त्रों में कर्म करने का विधान है। कर्म करते - करते इनके मन का विकास होने लगेगा। उसके बाद इन्हें गुरु की आवश्यकता महसूस होगी।

दूसरी प्रवत्ति के मनुष्य वे होते हैं जिनके मन का अच्छी तरह विकास हो चुका है। अच्छाई - बुराई को ख़ूब समझते हैं। बुरी बात से बचना चाहते हैं और अच्छी बात अपनाना चाहते हैं। वे परमात्मा को मानते हैं और उससे डरते हैं। ऐसे लोगों की सँख्या सबसे अधिक है। दुनियाँ में इसी श्रेणी के मनुष्य सबसे अधिक हैं और इनको ही आध्यात्मिक सहायता की ज़रूरत है ताकि वे आत्मा को बलवान बना कर उसे मन के बन्धन से आज़ाद करा सकें।

ऐसे लोग कुछ -न -कुछ पिछली कमाई किये होते हैं, सुःख और शान्ति के खोजी होते हैं। उनका जी तो चाहता है कि हम बुराई की बातों से बचें, अच्छे -अच्छे काम करें, परमात्मा की प्राप्ति हमें हो जाये जिससे हम हमेशा की शान्ति पा जायें। लेकिन पिछले संस्कारों के वश वे ऐसे काम कर डालते हैं जिन्हें वे करना नहीं चाहते। ऐसा इसलिए होता है कि मन

जन्म -जन्म से उस काम का आदी हैं और उनकी आत्मा इतनी कमज़ोर हो गयी है कि मन उस पर हावी हो जाता है। वह चाहते हैं अच्छा कर्म करना, हो जाता है बुरा। यह द्वन्द की अवस्था है। ऐसे लोगों को ही गुरु की आवश्यकता है। मनुष्य योनी बीच की योनी है। पशुओं से ऊँची और देवताओं से नीची। इसलिए इसमें भले -बुरे का ज्ञान होता है। यहाँ मन का प्रमुख स्थान होता है। मन तीन प्रकार का होता है - सात्त्विक मन, राजसी मन और तामसी मन। सात्त्विक मन - जो अच्छाई की तरफ़ ख़्याल रखे, बुराई का जहाँ नाम भी न हो - देवताओं की सी ख़सलत (स्वभाव)। राजसी मन - जो अच्छाई -बुराई दोनों में बरतें, इन्सान की सी ख़सलत (स्वभाव)। तामसी मन - जो हमेशा बुराई में ही बरते। क्या अच्छाहै, क्या बुरा है, यह ख़्याल न हो - जानवरों की सी ख़सलत (स्वभाव)।

इन्सानी ख़सलत वालों के लिये कर्म बन्धन नहीं है। ये प्रेम के भूखे हैं। ये मन के घाट पर अटके हुए हैं जो बीच का घाट है, कभी ऊपर को खिंच जाते हैं, कभी नीचे को। ऐसे ही लोग परमार्थ के सच्चे खोजी होते हैं और अगर वक़्त के पूरे सदगुरु इन्हें मिल जायें और पूर्ण समर्पण हो तो उनका कल्याण हो जाता है।

दैवी प्रवत्ति के वे लोग होते हैं जिन्होंने पिछले जन्म में ही सब - कुछ कमाई कर ली है पर कोई ऐसा संस्कार या ख़्वाहिश मरते वक्त बाक़ी रह गयी थी जिसको पूरा करने या भोगने के लिये जन्म लेना पड़ा। इनके अन्दर बुराई का अंश नहीं होता। ये ख़ुद हमेशा अच्छाई ही अच्छाई में बरतते हैं और दूसरों को भी वैसा करने को कहते हैं। इनकी ख़सलत

(स्वभाव) देवताओं की सी होती है। इन्हें करना -धरना कुछ नहीं पडता। जिस संस्कार के वश आये थे उसे भोग कर वापिस अपने धाम को चलें जाते हैं। इन्हें ज़्यादा मदद की ज़रूरत नहीं होती। केवल नाम -मात्र के लिये गुरु धारण किया करते हैं।

जिस तरह तीन प्रवत्ति के मनुष्य होते हैं उसी तरह गुरु की भी तीन श्रेणीयां हैं - (1) गुरु (2) सदगुरु, और (3) परमगुरु, यानी जिस्मानी, ख़्याली और रूहानी गुरु। जो लोग निचली अवस्था के हैं, जिनका बाहरी रूप (यानी माद्दा) पर ध्यान ज़्यादा है, मन का

विकास अभी पूरा नहीं हो पाया, गुरु का शरीर ही उनका गुरु है, जो लोग इससे ऊँची अवस्था प्राप्त कर चुके हैं, मन पूरी तरह विकसित हो चुका है, गुरु का ख़्याल ही उनका गुरु है। दूसरे शब्दों में यों समझ लीजिये कि ध्यान करते वक़्त गुरु का शरीर उनके ध्यान में नहीं आता बल्कि गुरु का ख़्याल ही उनके सामने होता है। उनके अन्दर शब्द जारी हो जाता है और प्रकाश दिखायी देने लगता है। यहीं सदगुरु हैं।

परमगुरु परमात्मा को कहते हैं जो सबका गुरु है। देहधारी गुरु का सहारा लेकर सदगुरु यानी शब्द और प्रकाश तक पहुँचते हैं। शब्द और प्रकाश का सहारा लेकर साधक में प्रेम पैदा हो जाता है। उसके बाद परमगुरु यानी परमात्मा के देश में पहुँच जाते हैं, यानी ॐ का ख़्याल आने लगता है और चारों गतियों (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य) से गुज़र कर उससे मिलकर एक हो जाते हैं। इन्हीं जीवन मुक्त आत्माओं को आध्यात्मिक गुरु (रूहानी गुरु) कहते हैं। इनके अन्दर सिवाय परमात्मा के प्रेम के और कोई ख़्वाहिश नहीं होती। सब ख़्वाहिशें चाहें वे इन्द्रिय, मन, बुद्धि के मुताल्लिक हों, जलकर ख़त्म हो जाती हैं। यही गुरु कहलाने के लायक़ हैं। इनकी सोहबत में बैठने, इनके वचन सुनने, इनका ख़्याल करने से आहिस्ता -आहिस्ता मन -बुद्धि के पर्दे कट जाते हैं। आत्मा अपने असली रूप में ज़ाहिर होतीं है, परमात्मा का प्रेम दिन पर दिन बढ़ने लगता है और जिज्ञासु एक दिन अपने प्रीतम से मिलकर एक हो जाता है। " पारस लोहा कंचन करत, गुरु करें आप समान ."

राम सन्देश : जनवरी-मार्च, 2003.

मोक्ष का ज़रिया - धन

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

कोई शख़्स (व्यक्ति) ईश्वर को चाहता है लेकिन तुम दुनियाँ को चाह रहे हो, इसलिए तुम्हें उल्टा नज़र आता है. वो जो ईश्वर को चाहने वाला है, उसे समझदार लोग सन्त कहते हैं. यानी गुरु को या जो तुम्हारा भाई है जिसको तुमने बड़ा (गुरु) माना है, अगर वह तुम्हारे रुपये को तबाह (बर्बाद) करने में है तो उसको क्या फ़ायदा मिलेगा ? किसी शख़्स के पास पैसा है तो गुरु कहता है, भाई, जिस किसी को देना हो दो. बाकी देखो छोड़कर मत जाना. उसको गरीबों में तक़सीम कर जाना, बाँट देना. तो या तो तुमको उसके बदले में ईश्वर का प्यार मिलेगा और नहीं तो जितना तुम गरीबों को दे गये हो, उससे दस गुना तुम्हें अगले जनम में मिलेगा. और अगर तुम ज़मीन में गाड़ कर छोड़ गये तो साँप बनोगे यहाँ आकर. इस तरह तुम दुनियाँ से नहीं निकल सकते. तो गुरु की इसमें क्या भलाई है ? वो यह तो नहीं कहता की मुझे दे दो. वो ये कहता है कि इसे गरीबों में बाँट दो. ईश्वर को दे रहे हो वापस. ईश्वर की सेवा क्या है ? ईश्वर के क्या तुम पाँव दबाओगे ? जितने मुसीबतज़दा (दुःख के मारे) हैं उनमें ईश्वर बसता है. उनको जो तुम खाना खिला रहे हो, वो ईश्वर को खाना खिला रहे हो. उनकी सेवा तो ईश्वर की सेवा है और उसका फल ईश्वर का प्रेम है. ईश्वर प्रेम से आपका आक़बत (परलोक) बनता है और मोक्ष मिलता है. इस तरह गुरु तुमको मोक्ष पाने का ज़रिया बतला रहे हैं. तो उस रुपये से मोक्ष हासिल कर लो।

ये रुपया तुम्हारे किस काम का ? आप कहेंगे कि हमारे रिश्तेदार, कुटुम्बी वगैरह हैं, जिन्हें देना ज़रूरी है. अव्वल तो वो मना नहीं करता, जितना देना चाहते हो उतना उन्हें दो. मगर रिश्तेदारों से ताल्लुक़ कब तक का है तुम्हारा. जब तक तुम्हारी आँखें खुली हैं (तुम जीवित हो). मरने के बाद तुम्हारा उनसे कोई रिश्ता नहीं. मरने के बाद किसी का रिश्त क़ायम रहता है ? ज़िन्दगी तक ताल्लुक़ (सम्बन्ध) है. मरने के बाद तो एक ही रिश्ता रहता

हैं - जैसे तुमने कर्म किये हैं वो भोगोगे या बिलकुल पाक (पवित्र, अछूते) जाते हो तो अल्लाह (भगवान) से रिश्ता है, और कोई रिश्ता ही नहीं है. मरने के बाद तो ये बेटा हमारा कोई नहीं रहेगा ।

फ़ातहा देंगे न फ़ानी में भी दो रोज़ के बाद /

ख़्वाह मरे गोद में, ख़्वाह बुढ़ापे में जाय //

अर्थ - चाहे मरे हुए दो दिन ही हुए हों, कोई भी तुम्हारे लिए दुआ नहीं करेगा, चाहे शिशुपन में मृत्यु हो. चाहे वृद्धावस्था में मरने के बाद कौन कब तक याद करता है ? थोड़े दिनों घर वाली की याद रहती है, थोड़े दिनों माँ-बाप की याद रहती है. इसके बाद तो वही धन्धा है. सब भूल-भाल गये, कौन फ़ातहा देता (प्रार्थना करता) है अपने बुजुर्गों के लिए ? यही दुनियाँ का हाल है. कौन अपने बाप-दादा के नाम पर ख़ैरात करता है ? कोई नहीं करता. तो फिर जो चीज़ तुम्हारे हाथ में है उसको दूसरों पर क्यों छोड़ते हो ? बाद में जो भी वसीयत करके जायेंगे वह भी उसे मिलेगा या नहीं मिलेगा, यह भी सन्देहास्पद है ।

एक बड़े भारी रईस थे हमारे यहाँ. वे वसीयत कर गये कि मेरे नौकर को पाँच सौ रुपये दे देना. तीन सौ रुपया इसका मुझ पर है, दो सौ और दे देना इसकी शादी के लिये. देहली में मौत हुई. मैं मौजूद था. डायरी में उन्होंने वसीयतनामा करके लड़के को दिया. उसने कहा - " हाँ पिताजी । जैसा आप कहेंगे, वैसा ही होगा. इधर वो मरे, उधर पहला जो वार किया उनके लड़के ने, वह उस नौकर पर किया. तनख़्वाह भी मार ली और घर से निकाल दिया. तो था भी वह वसीयत करने वाला बेवक़ूफ़. अगर अपने हाथ से दे जाता तो उसको कौन रोक सकता था. वो मालिक था अपनी चीज़ का. तो बजाय ख़ुद देने के,आप लिख कर दे गये. तो ये कौन सी अक़्लमंदी है. जितना जिसको करना है, अपनी ज़िन्दगी में कर जाओ. क्या होगा पीछे, ये कोई नहीं जानता. लोग वसीयत करते हैं, पर मुबारिक रहे वो वकील लोग जो सच का झूठ और झूठ को सच कर दिखाते हैं. आप कितनी भी पाबंदी करके जायें फिर भी उसमें एक ऐसी मेख मार देंगे कि सब करा कराया बिगड़ जायेगा । तो भाई दूसरों के हाथ में क्यों

छोड़कर जाते हो ? जो तुम्हें करना हो, करो. इसके लिये मना नहीं करते, लेकिन इस मिटटी (धन) को क्यों मिटटी में डालकर जाते हो ? क्यों नहीं ईश्वर का ईश्वर को वापिस कर देते ? अपने बीबी-बच्चों को देते हो, ये तुम्हारा स्वार्थ है. यह जो रिश्तेदारों को देना है, ये लगाव के साथ है. इसका कोई सबाब (पुण्य) नहीं है. लड़कों को, भतीजों को, बेटों को जो दे रहे हो, वो तो तुम स्वयं को दे रहे हो. जो तुम बिना कोई शर्त लगाये, निस्वार्थ गरीबों को दे दोगे, वह तुम ईश्वर को दोगे. ईश्वर का दिया, ईश्वर को वापिस कर जाओ क्योंकि पीछे यह तुम्हारे किस काम आयेगा।

ये बात हम किसी से कहें तो कौन उसको मानने को तैयार होगा ? लेकिन इसमें ग़लत क्या है ? हमारी बात जो सुनते हैं, और हम पर विश्वास करते हैं, हम उनसे यही कहते हैं. सरदार जी (पूज्य डॉ. करतारसिंह जी साहब) से हमने बारबार यही कहा है, देखना, अपनी ज़िन्दगी में सब निबटा जाना. हमने अपनी ज़िन्दगी में जितना हमसे हो सका रुपया, पैसा या ज़ायदाद, सब ख़तम कर दी. ये मुसीबत कि मरते वक़्त यह ख़्याल आये कि हाय। हमने यह नहीं किया, वो नहीं किया, इससे मरने के पहले ही क्यों न कर दें. हाँ, आप अपने गुज़ारे के लिये रख लें. लड़कों तक के लिये सरदर्द नहीं बनें. इतना रख लो अपने पास कि आख़री वक़्त तक तुम्हारे लिये काफी हो जाये. बाक़ी जाकर ईश्वर को वापिस कर दो - यानी ज़रूरतमंद गरीबों को दे दो।

अगर किसी को इसके बदले का ख़्याल है तो अगले जन्म में दस गुना मिलेगा. यह तो तुमने उसके (ईश्वर के) बैंक में जमा कर दिए और अगर तुमने ईश्वर की सेवा के ख़्याल से दिया है तो ईश्वर का प्रेम मिलेगा. और इस प्रेम के बदले आख़िर में मोक्ष मिल सकता है. यही (धन) तुम्हारे बंधन का बायस (निमित्त) है और वही तुम्हारी मोक्ष का बायस है. तो गुरु तो यह कहता है कि अपने पैसे से सौदा करो मोक्ष का. अगर धरती पर छोड़कर जाओगे तो बेकार. रिश्तेदारों को देकर जाओगे तो आज तक तो हमने यही देखा है कि जिसको दिया उसने फ़ज़ीते ही किये. बाद में यही कहते हैं कि देखो साहब, उसको तो इतना दे गये, हमको कुछ नहीं दिया. सब रुपया पैसा देकर तुम तो अपनी तरफ़ से उनकी मदद और ख़िदमत करते हो, फिर भी सब बेकार. इसलिए जितना ज़रूरी हो, उतना दो. बाकी अल्लाह का अल्लाह को वापिस कर दो. यह धन दौलत भी मग़फ़रत (मोक्ष) का ज़रिया बन सकता है।

राम सन्देश : जुलाई-अगस्त, 2008 .

वैराग्य और अनुराग

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

परमार्थ पथ पर चलने के लिए दो बातें अत्यन्त आवश्यक हैं. पहली है संसार और उसके पदार्थों की उदासीनता, और दूसरी है मालिक के चरणों में प्रीति. पहली को वैराग्य और दूसरी को अनुराग कहा गया है. जितनी लगन संसार में लगी है और जितनी प्रीति संसार के पदार्थों से है, उसमें कमी लाकर वही लगन ईश्वर की ओर मुड़े, तब परमार्थी चाल चल सके. इसका उपाय यह है कि पहले अपने आपको देखो कि तुम्हारे ऊपर इस दुनियाँ में क्या बीत रही है. कोई-न-कोई उलझन नित्य लगी रहती है. एक से छुटकारा नहीं हो पाता कि दूसरी उलझन आ खड़ी होती है. कितना ही बन्दोबस्त करो दुःख-तकलीफ़ से पीछा नहीं छूटता. औरों की ओर दृष्टि डालो तो देखने में आएगा कि इतनी बेबसी और लाचारी है कि कोई यत्न नहीं चलता. यही क्रम न मालूम कबसे चला आ रहा है और कब तक चलेगा. न मालूम कितने जन्म इसी गोरख धन्धे में बीत गए और यदि इसी तरह चलते रहे तो और अनेक जन्म इसी प्रकार बीतते रहेंगे. जिसका नाम वास्तविक शान्ति, सुख और आनन्द है और जो मनुष्य जन्म का ध्येय है, वह कदापि नहीं मिल सकता।

जब तक इन उलझनों में मनुष्य फँसा हुआ है, तब तक दुनियाँ से उदासीनता और वैराग्य होना कठिन है. किन्तु संतों ने इसका उपाय बताया है. वे कहते हैं कि उतने ही कर्म दुनियादारी के करो जितने यहाँ के लोगों से व्यवहार और बर्ताव के लिए आवश्यक और उचित हैं. उससे अधिक लगन इस दुनियाँ में न लगाई जावे, बल्कि नित्य प्रति दिन उसमें भी कुछ न कुछ कमी की जावे. इस संसार को अपने रहने की जगह न समझो और इस बात का पक्का इरादा कर लो कि यह देश हमारा नहीं है, इसे छोड़कर हमें अपने प्रीतम ईश्वर के धाम जाना है. वही हमारा निज देश है. परमेश्वर ही परम पिता है यानी सबका सच्चा पिता है और वही सच्चा मालिक है. जीव इस संसार में आकर अपने सच्चे पिता और स्वामी को भूल गया

है और उससे बहुत दूर हो गया है, क्योंकि उसका ध्यान दुनियाँ की तरफ हो गया है. अपने सच्चे पिता और सच्चे मालिक की याद करना और ऐसे कर्म करना जिसके द्वारा नित्य प्रति उसकी समीपता प्राप्त हो, मनुष्य का निज धर्म है।

परमेश्वर ही सर्व शक्ति का भण्डार है. संसार के सब जीवों में, बनस्पति में और प्रत्येक वस्तु में चैतन्यता उसी अनन्त शक्ति के भण्डार से आ रही है. इसी चैतन्यता का अंश सब में मौजूद है. वह चैतन्यता का भण्डार सबका स्वामी है, और उससे निकलकर धार रूप में जो चैतन्यता सब में गुप्त रूप से मौजूद है, वह उसकी अंश और सेवक है. भय, भाव और सम्पूर्ण आदर के साथ स्वामी की आराधना करना सेवक का परमधर्म है. जिस मनुष्य चोले में यह चैतन्य की धार पूर्ण रूप से प्रगट हो, वह संत सतगुरु है. जिनमें किसी क़दर कम मात्रा में प्रगट हो अथवा जो उस धार से मेला करने के साधन में लगे हों और जिनके सब कर्म यही समझ कर होते हों कि वे उस सर्वशक्तिमान की धार से संचालित हैं, ऐसे लोग साध, प्रेमी और भक्तजन कहलाते हैं. उनसे भी भय, भाव और आदर के साथ नाता जोड़ना चाहिए।

तन और मन से, अन्तर और बाहर से, स्वामी की सेवा और आराधना करने से मन का स्वभाव बदलता जायेगा. संसार और उसके पदार्थों से विमुख होकर वह अपने स्वामी परमेश्वर के निकट होता जायेगा. यह विधि इस देश से छुटकारा पाने की संतों ने बताई है. इसके अलावा अन्य किसी तरकीब से इस देश से छुटकारा सम्भव नहीं है. अधिक से अधिक यह हो सकता है कि शुभ कर्म करने का फल भी शुभ मिले, किन्तु सच्चा छुटकारा केवल शुभ कर्म करने से नहीं हो सकता. हाँ, शुभ कर्म सतवृत्ति की ओर अवश्य ले जाते हैं. सच्चे छुटकारे की कार्यवाही केवल संतमत में ही है।

संसार में जितने भी धर्म फैले हैं सबों की अपनी-अपनी, पृथक-पृथक नीति है. उस नीति का पालन करने से इस देश का बर्ताव बहुत कुछ सही ढ़ंग से हो सकता है, और मनुष्य की आन्तरिक उन्नति भी किसी विशेष आन्तरिक घाट तक हो सकती है. यदि अभ्यासी बहुत ऊँचा है तो उसकी स्थिति ब्रह्मपद तक हो सकती है, जहाँ वह अपने को ब्रह्म कहने लगता है, अहं ब्रह्मास्मि की ध्वनि करने लगता है. किन्तु संतमत में इस स्थिति का भी कोई विशेष

महत्त्व नहीं है क्योंकि ब्रह्म की धार, शिव की धार, शक्ति की धार और प्राण की धार का सहारा लेने से मनुष्य चाहे कितनी भी ऊँची आध्यात्मिक स्थिति में हो, नीचे उतरने की डोरी लगी रहती है. जन्म मरण का चक्र चलता रहता है. संतों का धाम जो सच्चे मालिक का देश है उसकी धार का सहारा लेने से एक न एक दिन जन्म मरण का चक्र छूट जाता है. जिसको सत की धार यानी सच्चे मालिक के धाम की धार की पकड़ प्राप्त प्राप्त हो गयी वह चाहे नीची स्थिति में हो, ब्रह्मपद में जाकर बैठने वालों से बढ़कर है. संतों का कहना है कि उसको केवल अपने शेष कर्मों से छुटकारा पाना है, जो अधिकतर सहज में कट जाते हैं और शेष को मालिक अपनी दया से क्षमा कर देता है।

जिनको सच्चे मालिक की शरण प्राप्त नहीं हुई है वे चाहे दुनियाँ वालों की निगाह में कितने ही धर्मात्मा हों, किन्तु बढ़के पापियों में समझे जायेंगे। उनके कर्मों का भण्डार अभी जमा है. इसके विपरीत जिनको सच्चे मालिक की शरण प्राप्त है, वे चाहे देखने में पापी लगते हों, उनके सब पाप क्षमा हो जायेंगे. नीचे के घाट पर रहना गुनाह (पाप) है और सत की धार का सहारा लेकर ऊँचे घाट पर जाना बे-गुनाही (पाप रहित होना) है. जिस कर्म से सत की धार से सामीप्य हो वह धर्म और परमार्थ है, शेष सब कर्म अधर्म और अनर्थ हैं।

मनुष्य का ध्यान (attention) दुनियाँ के अनगिनत पदार्थों में बंटा हुआ है. उसे सच्ची चाह और गरज़मन्दी परमेश्वर की प्राप्ति की नहीं है. बिना सच्ची चाह पैदा हुए सँसार और उसके पदार्थों से उसका ध्यान नहीं हट सकता और जब तक उधर से ध्यान नहीं हटेगा, न तो वह मालिक की तरफ़ लगेगा और न सच्चा प्रेम गुरु और परमेश्वर के चरणों में पैदा होगा. जहाँ-जहाँ मनुष्य का ध्यान अटका हुआ है वहीं मोह और बन्धन है, और यही सँसार में फँसाने वाला है. इसी को माया जाल कहते हैं. जब मनुष्य को यह भान हो जायेगा कि जितना ध्यान उसका सँसार की ओर जाता है उतना ही उसका परमार्थी नुक़सान होता है और वह सच्चे मालिक से दूर होता जाता है, तब उसके मन में भय पैदा होगा. भय के साथ गुरु-चरणों में भाव आयेगा, यानी उनके चरणों में श्रद्धा उत्पन्न होगी और यह विश्वास पैदा हो जायेगा कि केवल उन्हीं से नाता जोड़ने और उनका ही सहारा लेने से इस माया-जाल से छुटकारा हो

सकता है और जन्म-मरण की तपन से बचाव हो सकता है. इसके बाद उसके मन में गुरु के प्रति महान आदर उत्पन्न हो जायेगा।

आरम्भ में शिष्य का गुरु के साथ स्वामी और सेवक का भाव रहता है. इसके आगे जैसे-जैसे विश्वास और प्रीति बढ़ती जाती है, यह भाव बदलते रहते हैं, जैसे पिता- पुत्र भाव, सखा भाव, मधुर भाव (जिसे पति-पत्नी भाव भी कहा है) आदि, आदि. प्रत्येक भाव का अलग-अलग महत्व है. जब उसका जिस भाव का अधिकार पैदा नहीं हुआ है तब तक उसमें बरता नहीं जा सकता. देखा-देखी और सुना-सुनी से काम नहीं चलता। अभ्यास होना चाहिए. संत लोग जो रास्ता चल चुके हैं उन्होंने बताया है कि पिण्ड तक के सिमटाव के लिए जहाँ तक सुरत मन के प्रभाव में है, स्वामी-सेवक का भाव रहेगा. पिण्ड के परे जहाँ सुरत ऊपर है और मन नीचे है,अर्थात मन सुरत के प्रभाव में है, वहाँ पिता-पुत्र का भाव रहेगा. दशम द्वार में पहुँचकर जब सुरत तन और मन से न्यारी हो जायेगी तब वास्तविक प्रेम जागेगा और उसके अन्तर्गत जो भाव जागेगा वह मधुर-भाव, स्त्री पति भाव कहलाता है. यही सबसे ऊँचा भाव है ।

सुरत मालिक की अंश है. अतः सच्चे प्रेम का अधिकार भी केवल उसी को है. किन्तु वह तन और मन के जाल में उलझी हुई है और जब तक वह इनसे न्यारी न हो जाये, सच्चा प्रेम नहीं आ सकता. इस भाव के आने में अनेकों जन्म लग जाते हैं. किसी संत ने कहा है -

एक जनम गुरु भक्ति कर, जनम दूसरे नाम /

जनम तीसरे मुक्ति पद, चौथे में निज धाम //

सर्वप्रथम गुरु भक्ति है और यह स्वामी-सेवक भाव में होगी. स्वामी-सेवक भाव में भय, भाव और आदर रहता है. भाव इस बात का कि गुरु हमारे परम हितकारी हैं, वे ही हमारे रक्षक और सहायक हैं. यदि हमारे ऊपर कोई कष्ट और मुसीबत आती है तो वह उनकी ओर से नहीं है, वह तो हमारे कर्मों का फल है. उसमें हमारा ही हित है क्योंकि इससे हमारे कर्म शीघ्र कट जावेंगे और इस माया-देश से हमारा छुटकारा हो जायेगा. चाहे कितनी ही बड़ी

आपत्ति आवे उसमें भी हमारा कुछ न कुछ हित है. जब यह भाव दृढ़ हो जायेगा तो उन्हें प्रसन्न करने के लिए और उनका कृपा-पात्र बनने के लिए आदर-भाव पैदा होगा. वह प्रत्येक कर्म ऐसा करने का अभ्यास करेगा जिससे गुरुदेव प्रसन्न हों और कृपा-दृष्टि करें. बिना चूं चरा के वह उनकी इच्छानुसार व्यवहार करने के लिए प्रतिक्षण तैयार रहेगा. संशय-रहित आज्ञा पालन करेगा. इसी स्थिति को दीक्षा प्राप्त या बैतशुदा हालत कहते हैं. शिष्य गुरु को पूर्णतया समर्पित हो जाता है. उनके हाथों बिक जाता है. स्वामी-सेवक भाव में यह विचार कभी नहीं आता कि स्वामी हम पर कभी अत्याचार करेगा, बल्कि वह जो कुछ करेगा हमारे हित के लिए करेगा. चाहे धक्के ही मिलें, द्वार छोड़कर कभी नहीं जायेगा. कूकर की तरह हमेशा टुकड़े की आस में बैठा रहेगा. शिष्य को इस प्रकार का आसरा गुरु और मालिक का होना चाहिए।

यही स्वांमी-सेवक भाव आगे चलकर पिता-पुत्र भाव में बदल जाता है. सेवक की सेवा से स्वामी जब बहुत प्रसन्न होता है और उसे तरह अपने आश्रित देखता है तो गुरु उसे पुत्र-तुल्य स्नेह करने लगते हैं. इस भाव में एक प्रकार का अधिकार या हक़ जैसा हो जाता है जैसे पुत्र को पिता से होता है. पुत्र पिता से सब कुछ ले सकता है, उसका पुत्र पर कोई अहसान नहीं होता. जहाँ अहसान नहीं, वहाँ कर्मों का बोझ भी नहीं चढ़ता. जिसका अहसान हो उससे नहीं लेना चाहिए. पुत्र अपने पिता के सिवाय और किसी से नहीं लेता. अपने माता-पिता से चाहे वह झगड़ कर ही ले, उसे अपना हक़ मानता है, और उसका कोई बोझ नहीं मानता. चाहे दुःख-तक़लीफ़ हो, अपने माता-पिता को परम हितकारी जनता है और उनका आधार नहीं छोड़ता. बल्कि जब उसे ज़्यादा दुःख-तक़लीफ़ हो तो उनका आधार प्राप्त करने के लिए उनकी ओर और ज़्यादा झुकता है. सिवाय अपने माता-पिता के उसे और कहीं से आधार मिलने की आशा नहीं होती. बालक अपने माता-पिता के सिवाय अन्य किसी को नहीं जानता. उसे उनके खून के रिश्ते का प्यार है. उसका शरीर माता-पिता के रक्त से बना है और वही रक्त उसमें मौजूद है. यह और बात है की बड़े होने पर और बातों में ध्यान लग जाने पर वह उन्हें भूल जाये और उसकी प्रीति कम हो जाये. परमेश्वर ही सबका सच्चा

माता-पिता हैं, सुरत उसकी अंश है. अभी सुरत तन मन से न्यारी नहीं हुई है, अभी तो स्वामी-सेवक भाव में बरतो, और जब सुरत तन-मन से किसी क़दर न्यारी हो जाये तब बालक या पुत्र बनोगे और तब सच्चे मालिक पिता भाव से तुम्हारा पालन करेंगे।

जब सुरत पूरी तरह तन-मन के फन्दे से न्यारी हो जायेगी तब पति-पत्नी भाव या मधुर भाव शुरू होगा. इसी भाव को प्राप्त करने के लिए सब यत्न किये जाते हैं. यहीं आकर प्राकृतिक और वास्तविक प्रेम स्वामी के चरणों में पैदा होता है. उसके पैदा हो जाने पर सब अभ्यास और कर्म-धर्म बन्द हो जाते हैं, कुछ करना-धरना नहीं पड़ता. सब साधना समाप्त हो जाती है. अब जो कुछ भी कर्म होते हैं उनका कर्ता मनुष्य नहीं बल्कि वह औज़ार है और मालिक उसका प्रेरक. सब काम मालिक की प्रेरणा से होते हैं. अब कोई आवरण या पर्दा शेष नहीं रहा. सुरत और शब्द एक हो गए। अब वह स्वयं प्रेम स्वरुप हो गयी. इसी स्थिति के लिए कबीर साहब ने कहा है -

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल /

लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गयी लाल //

शरण की महिमा

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

सत्संगी को चाहिए कि वह सत्पुरुष दयाल परमात्मा, जो असली भण्डार हैं, उसके चरणों को दृढ़ता से पकड़े और उनको सर्वसमर्थ और सबका प्रेरक जाने। जो भी काम वह करे उसके फल की आशा न रखे, उसे मालिक की मौज़ पर छोड़ दे। कोई काम करने से पहले अपनी बुद्धि से ख़ूब सोच-समझकर विचार कर ले। इससे बुरे का निषेध तो पहले ही हो जायेगा। वह बुराई से बच जायेगा। और, जब वह यह समझ ले कि इसका नतीज़ा अच्छा निकलेगा, तभी उस काम को करे। इतना करना तो उसके हाथ में हैं, लेकिन जैसा फल उस काम का उसने सोच रखा हैं, वैसा फल मिले या न मिले, यह उसके हाथ में नहीं हैं। यह उस सर्व समर्थ और कुल मालिक के हाथ में हैं. इसलिए फल उसकी मर्ज़ी पर छोड़ दे। लड़का बीमार हैं तो अपनी हैंसियत के मुताबिक़ इलाज हरेक कराता हैं और उस इलाज के फलस्वरूप आशा रखता हैं कि वह लड़का अच्छा हो जायेगा। इतना करना उसके हाथ में हैं और यह उसका कर्तव्य हैं। पर लड़के का अच्छा होना या न होना यह मालिक के अख़्त्यार (अधिकार) की बात हैं। दुःख तब होता हैं जब हम किसी काम के नतीज़े पर निगाह (दृष्टि) रखते हैं। जैसा नतीज़ा हम चाहते हैं अगर वैसा नहीं होता तो हमें दुःख होता हैं। इसलिए जैसी परमात्मा की मौज़ हो उसी में राज़ी रहें और जितना बन सके भजन, सुमिरन, ध्यान तथा महापुरुषों की वाणी का पाठ करें। सत्संग करें और दीन-दुखियों की, बड़ों की और गुरुजनों की सेवा करें। यह दृढ़ विश्वास अपने मन में रखें कि मालिक दयालु हैं, वह हमेशा मेरे लिए अच्छा ही करेगा। इस भावना को लेकर अगर कोई संसार में व्यवहार करे तो गुज़ारा मुमकिन (सम्भव) हैं।

यह अच्छी तरह समझ लो कि जो भी काम करो, अगर उसका फल मालिक की मौज़ पर छोड़ दोगे तो बन्धन नहीं होगा. कर्म करते हुए अकर्ता हो जाओगे। संचित कर्म धीरे-धीरे

कट जायेंगे। आयन्दा (भविष्य) के लिए कर्म भार नहीं चढ़ेगा यानी कियमाण कर्म नहीं लगेंगे और प्रारब्ध कर्मों की भी ज़ोर बहुत कम हो जायेगा। इस तरह सतगुरु के चरणों का सहारा लेकर, सत्पुरुष दयाल के चरणों का लक्ष्य बाँधकर और पक्का इरादा करके कि पहुँच कर ठहरूँगा तो वहीं ठहरूँगा, ऐसा अभ्यास करेगा और दिन-दिन अपनी प्रतीत गुरु चरणों में बढ़ायेगा तो संसार की तरफ़ से चित्त उपराम होता जायेगा, और आत्मा ऊपर उठती जायेगी और मन के बन्धनों से मुक्त होने लगेगी। इस तरह करने से एक या दो जन्मों में ही धुर धाम तक पहुँचना मुमकिन है। चाहे जन्म दो की बजाय तीन, चार या ज़्यादा भी लग जायें मगर जो जन्म इसको अगला मिलेगा वह वर्तमान जन्म से अच्छा होगा. परमार्थी कमाई ज़्यादा बनेगी और दुनियाँ में भी सुख मिलेगा। अगले जन्म में सतगुरु की प्राप्ति उसे ज़रूर होगी (चाहे किसी रूप में हो), और उसके थोड़े समय के सत्संग से, उस जन्म की कमाई खुल जायेगी। जितने दिन शरीर छोड़कर देह धारण करने में लगेंगे, उतने समय तक ऊँचे स्थान में रहेगा, और सतगुरु के दर्शन और वचन मिलेंगे। इस तरह हर अगले जन्म में सतगुरु के दर्शन और वचन मिलेंगे और उनकी कमाई करता जायेगा। मरने और नया जन्म लेने में किसी तरह का हर्ज़ और नुक़सान नहीं है, बल्कि ख़ुशी की बात है, कि काम पूरा हो और धुर-धाम में निवास पावें।

जो इस तरह पूरी शरण लेगा उसका एक ही जन्म में, इसी जन्म में, उद्धार मुमकिन है। जिसकी शरण में कमी है उसे अपनी कमाई के अनुसार एक या अनेक जन्म लेने पड़ेंगे। मगर शरण लेने में इस बात का जरा भी ख़्याल न रखे कि कितने जन्म लेने पड़ेंगे। चरणों को दृढ़ करके पकड़े यानी नतीज़े पर ध्यान न रखे। मालिक की मर्ज़ी, जब जी चाहे पास बुला ले। चाहे इस जन्म में और चाहे किसी अगले जन्म में। अपने को उसकी शरण में पूरी तरह पेश करके ढ़ीला छोड़ दे।

जिस तरह सुरत इस देह में विभिन्न चक्रों में बैठकर, अपनी धार की ताक़त से कुल कार्यवाही उस देह की कराती है, उसी तरह सत्पुरुष दयाल जो सब सुरतों को शक्ति देने वाले और प्रेरक हैं, हरेक के घट में मौजूद हैं। वे सर्वसमर्थ हैं। जो अपने ही घट में विराजमान हैं,

उनसे प्रीत और प्रतीत करने में कोई दिक़्क़त नहीं होनी चाहिए। लेकिन मन ऐसा होने नहीं देता। वह अपनी चतुराई और तदबीर से मालिक का पूरा-पूरा भरोसा, जैसा होना चाहिये, वैसा होने नहीं देता। इसका कारण यह है कि जिस काम को करने के लिए उसको सुपुर्द किया है, उसे पूरे भरोसे के साथ नहीं करता। उसमें अपनी अक़्लमंदी और तदबीर ज़रूर अड़ा देता है, और चाहता है कि वह काम उसकी मर्ज़ी के मुताबिक़ हो। अगर इसके मुताबिक़ नहीं होता तो दुःखी होता है और सोचता है कि अगर मैं अमुक उपाय करता तो काम ठीक हो जाता, या अमुक बात में कसर रह गयी। उसको मालिक की मौज़ नहीं समझता। जो ऐसे मन हैं वे पूरी तरह शरण में भरोसा नहीं रखते। उन्हीं को मनमत कहते हैं। वे परमात्मा से विमुख हैं।

तक़दीर और तदबीर दो चीज़ें हैं। तक़दीर वह है जो हमारे पिछले कर्म हैं जिनके मुताबिक़ तुम्हें यह ज़िन्दगी मिली है. तक़दीर ही ऐसे वातावरण में और ऐसे माँ-बाप के यहाँ हमें पैदा करती है, जहाँ पिछले जन्मों का क्रम चलता रहे। एक ही घर में कई बच्चे पैदा होते हैं। वे जैसे-जैसे बड़े होते जाते हैं उनके स्वभाव और कर्म न्यारे-न्यारे होते जाते हैं। यह तक़दीर का विस्तार (manifestation) है। जैसे-जैसे उनके मन का विकास होता जाता है, दुनियाँ का प्रभाव उस पर पड़ने लगता है और आत्मा की रौशनी पाकर पिछले कर्म जाग्रत अवस्था में आ जाते हैं। इस तरह फिर वही कर्म करने में लग जाता है जो पिछले जन्मों में करता रहा है और जो उसकी आदत है. किसी दरख़्त के बीज को अगर पानी, हवा, धूप वग़ैरा न मिले तो वह उग नहीं सकता और न परवरिश पा सकता है, और न उसमें फल आ सकते हैं। बीज तक़दीर है, उसे जब वातावरण ठीक मिलता है तब वह उगने लगता है, धूप, पानी वग़ैरा दुनियाँ के प्रभाव पाकर वह उगने लगता है और फिर उसमें फल आता है। यही कर्म फल है। बच्चा पैदा होता है, दुनियाँ का वातावरण पाकर उसके पिछले कर्म उदय होते हैं, और उनमें वह व्यवहार करता है। फिर उन कर्मों का फल मिलता है। यह सब तक़दीर का दायरा (घेरा) है। तदबीर के ज़रिये (द्वारा) इन्सान अपनी तक़दीर को बदल सकता है। जिन बातों को वह अपनी पिछली ज़िन्दगी में पूरी तरह हासिल न कर सका, वे इस ज़िन्दगी में ज़रा सी

कोशिश करने से हासिल हो सकती हैं। जतन और जुस्तजू (पुरुषार्थ) चाहिये। हर काम का फल ज़रूर मिलता है। अच्छे काम का अच्छा और बुरे काम का बुरा, मगर देने वाला सतपुरुष दयाल है। उससे दुनियाँ माँगोगे, दुनिया मिलेगी, दीन माँगोगे दीन मिलेगा। उससे उसको माँगोगे, मिलेगा। मगर हर चीज़ की क़ीमत देनी पड़ती है।अगर उस प्रभु को पाना चाहते हो तो अपने को ख़त्म कर दो। जीते जी मरना पड़ेगा। ऐसा किस तरह हो ? इसके लिए तीन बातें ख़ास हैं :-

(1) Character Formation - यानी इख़लाक़ (चरित्र) सुधारना - सच्चाई को क़बूल (ग्रहण) करो, बुराई को छोड़ते चलो। बुराई को छोड़कर नेकी पर आ जाओ। जो सोचो, अच्छा ही सोचो। जो करो, अच्छा ही करो। अपनी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि को शुद्ध करके discipline (अनुशासन, नियंत्रण) में लाओ। बुद्धि ईश्वर में लीन हो, यानी बुद्धि की सलाह से काम करें। इन्द्रियाँ मन की मातहती में काम करें।

(2) Cooperate with the Mother - यानी प्रकृति माँ के साथ मिल कर चलो। यह दुनियाँ और इसके सामान, लड़के-बाले, स्त्री, कुटुम्बी, दोस्त-अहबाब - सब प्रकृति माँ का रूप हैं। उनसे मिलकर चलो, लेकिन अपने को उनसे अलहदा समझो। कोई हमेशा नहीं रहेगा। लड़का पैदा हुआ है, मरेगा ज़रूर। फिर इससे मोह क्या ? इस तरह विवेक से बन्धन ढ़ीले करते चलो। अपने कर्तव्य पूरे करो, और अन्दर से सबसे अलग। सिर्फ़ एक मालिक सत्पुरुष दयाल को ही अपना समझो और उसी से प्रेम करो। सब प्राणी मात्र की सेवा करो। जो काम भी दुनियाँ का करो, अपने आनन्द के लिए मत करो, बल्कि ईश्वर का समझकर उसको ख़ुश करने के लिए करो। यही detachment (अलग होना) है, यही अभ्यास है। उसको duty sake (कर्तव्य समझकर) करो। यही माँ के साथ मिलकर चलना है। आनन्द के लिए ईश्वर का नाम लो, उसका ध्यान करो।

(3) तीसरी चीज़ है सन्तों की सौ्हबत (सत्संग)। महापुरुषों की सौ्हबत करो। उनके सत्संग से लाभ उठाओ। गुरु के वाक्यों को ब्रह्म-वाक्य समझकर उन पर अमल (अभ्यास)

करो ॥ उनके चरणों में प्रेम पैदा करो और अपने आपको मेट दो। आगे चलकर यही प्रेम ईश्वर प्रेम में तब्दील हो जायेगा।

गंगा का जल कितना पवित्र है। कभी सड़ता नहीं है। मगर किसी तरह अगर यह दूर जा पड़े और बीच में एक मेड़ सी बन जाये तो उसे गड्ढे का पानी कहते हैं, वह गंगा से अलग हो जाता है, सड़ने लगता है। तुम भी गंगा के पानी हो लेकिन गड्ढे में पड़े सड़ रहे हो क्योंकि मेड़ बीच में बन गयी है। तुम उसी सत्पुरुष दयाल का अंश हो जो सर्वशक्तिमान है, सर्वव्यापी है, लेकिन मन की वजह से, मेरे-तेरेपन की वजह से तुम्हारे और उसके बीच में एक मेड़ बन गयी है। उसको तोड़ दो, तुम और वह एक हो। यह बिना गुरु की शरण लिये, बिना उसके वाक्यों पर अमल किये और बिना सत्संग के नहीं होगा। जो चीज़ ईश्वर से अलहदगी (दूर) करे, जो मालिक से दूर ले जाये, उसे त्याग दो। कोई भी कर्म जो मालिक से दूर ले जाये, 'पाप' है, जो कर्म मालिक से नज़दीकी हासिल करने में सहायक हो वही 'पुण्य' है।

राम सन्देश - सितम्बर, 1995

सत्संग में आने का असली फ़ायदा

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जिस तरह दुनियाँ के कामों को बिना सोचे समझे, बिना ढँग के, बिना शऊर के, करने से कामयाबी नहीं मिलती, उसी तरह सत्संग में शामिल होकर, बिना सत्संग के सिद्धांतों को समझे, बिना सलीक़े और ढँग से सत्संग करने, से सत्संग का असली फ़ायदा नहीं होता। बहुत से लोगों का ख़्याल है कि उनका काम सत्संग में शामिल हो जाना और शामिल होकर बराबर सत्संग करना है और कुछ नहीं - और इतने से ही सब कुछ हो जायेगा। इससे मालूम होता है कि उन्हें सत्संग का उसूल ही नहीं मालूम या उन्होंने ठीक से इसे समझा ही नहीं है।

सत्संग में शामिल होने की वजह यह है कि अब उन्होंने सत्संग को क़बूल कर लिया है और उस पर चलने को तैयार हैं। चलने से ही रास्ता कट सकता है और मन्ज़िल तक पहुँचा जा सकता है और फिर उसके फल की आशा की जा सकती है। जब तक अभ्यासी सत्संग में शामिल होकर उसके उसूलों को समझकर अभ्यास को बाक़ायदा शुरू नहीं करेगा, वह असली मतलब से दूर रहेगा। इसमें तो शक नहीं कि जैसे जल के भीतर का पत्थर जल के बाहर के पत्थरों से शीतल रहता है, ऐसे ही सत्संग के अन्दर पड़ा हुआ जीव बहुत कुछ दुनियाँ की तपन से बचा रहता है, लेकिन सत्संग में शामिल होने का असली मतलब यह नहीं है और ना ही सत्संग इस गरज़ के लिए क़ायम किया गया है।

सत्संग का असली मतलब यह है कि मन की सफाई करके अभ्यासी दुरुस्ती से अभ्यास कर सके जिससे आहिस्ता -आहिस्ता जीव के दिल में संसार की तरफ से उदासीनता पैदा होकर, अपने सच्चे मालिक के चरणों में अनुराग पैदा हो और वह जीते जी अपना उद्धार होते देखकर अपने भाग्य को सराहे, और ईश्वर का बुलावा आने पर ख़ुशी-

ख़ुशी यहाँ से रवाना हो और मालिक के चरणों में समां जाए। जो अभ्यासी ऐसा कर सकता है, वो सत्संग का मक़सद समझता है।

हमारे यहाँ सत्संग को असली परमार्थ की शिक्षा देने का मदरसा कहा जाता है. जो प्रेमी भाई चेतकर सत्संग करते हैं, इसकी गरज़ (ध्येय) को सामने रखते हैं, वो सत्संग को सलीक़े और ढ़ंग से करते हैं और सत्संग से असली फायदा उठाते हैं। जो लोग ऐसा नहीं करते वो इस फ़ायदे से महरूम (वंचित) रह जाते हैं। चेत कर सत्संग करने से चार बातें सच्चे परमार्थी के अन्दर प्रगट होनी चाहिए, जो इस तरह हैं।

पहली- पूरा और सच्चा यक़ीन परमात्मा की हस्ती का, उसके हर जगह मौजूद होने का और गहरा शौक उसके दर्शन का पैदा होना चाहिए।

दूसरी - संसार के भोग-विलास का सामान होते हुए और इस्तेमाल में आते हुए भी उसको सच्ची ख़ुशी न मिले और वह यह चाहता रहे कि संसार से ज़ल्दी से ज़ल्दी छूटकर वो अपने सच्चे पिता (परमात्मा) की शरण में पहुँचे।

तीसरा - यह ख़्याल बराबर उठते रहें कि हमसे ऐसे काम होते रहें जिससे परमात्मा हमसे ख़ुश रहे और हमें अपनी मोहब्बत का दान दे। हमसे कोई ऐसा काम न हो जिससे उसकी नाराज़गी और दूरी हो।

चौथी - उसको ज़ाहिरी और अन्दरूनी सत्संग मिले जिससे उसे पूरा निश्चय हो जाए कि कोई गुप्त शक्ति हर वक़्त मेरी देखभाल और सँभाल कर रही है।

जिन अभ्यासियों को ये चार बातें हासिल हो जाती हैं वे ही सत्संग की क़ीमत समझते सकते हैं और वे ही परमात्मा के प्रेम के अधिकारी होते हैं और इसी तरह सच्चाई से चलकर वो मोक्ष हासिल कर सकते हैं।